एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०
मुख्य कार्यालय रामनगर, नई दिल्ली-110055
शो रूम 4/16-बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002
शाखाएँ .
अमीनाबाद पार्क, लखनऊ-226001
285/J, विपिन विहारी गांगुली स्ट्रीट कलकत्ता-700012
सुल्तान बाजार, हैदराबाद-500001
ब्लैकी हाऊस, 103/5, वालचन्द हीराचन्द मार्ग, बम्बई-400001
खजाची रोड, पटना-800004
माई हीरा गेट, जालन्धर-144008
152, अन्ना सलाए, मद्रास-600002
3, गाँधी सागर ईस्ट, नागपुर-440002
के० पी० सी० सी० बिल्डिंग, रेस कोर्स रोड, बगलौर-560009
613/7, महात्मा गाँधी रोड एर्नाकुलम, कोचीन-682035

मूल्य : 125.00 रुपये

एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०, रामनगर, नई दिल्ली-110055 द्वारा प्रकाशित एवं राजेन्द्र रवीन्द्र प्रिंटर्स (प्रा०) लि०, रामनगर, नई दिल्ली-110055 द्वारा मुद्रित ।

'गांधी युग पुराण' का निर्माण कर रहे है जिसे 12 खडो मे प्रकाशित करने की योजना है।

सेठ जी के व्यक्तित्व, कृतित्व तथा जीवन-दर्शन का अनुशीलन करना ही प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का मूल उद्देश्य है।

आलोचनात्मक साहित्य एवं उसकी समीक्षा

सेठ गोविन्ददास के व्यक्तित्व, कृतित्व से सम्बन्ध रखने वाले निम्न ग्र थ ही अब तक उपलब्ध है —

1 सेठ गोविन्ददास (जीवनी)—श्रीमती रत्नकुमारी देवी, काव्यतीर्थ 1939
2 सेठ गोविन्ददास के नाटक—वही 1939
3 सेठ गोविन्ददास नाट्य कला तथा कृतिया—डा० रामचरण महेन्द्र 1956
4 सेठ गोविन्ददास—साहित्य : समीक्षा—वही 1963
5 नाटककार सेठ गोविन्ददास—श्रीमती सावित्री शुक्ल, एम० ए० 1958
6 सेठ गोविन्ददास अभिनदन ग्र थ—सपादक डा० नगेन्द्र 1956
7 सेठ गोविन्ददास व्यक्तित्व एव साहित्य—सपादक प्रो० विजय कुमार शुक्ल एव श्री गोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव 1956
8 राष्ट्र और राष्ट्र भाषा के अनन्य सेवक डा० सेठ गोविन्द दास—सपादक श्री बाकेबिहारी भटनागर 1965
9 सेठ गोविन्ददास—कला एव कृतित्व (शोध-प्रबन्ध)—डा० केशरीनदन मिश्र अप्रकाशित

'सेठ गोविन्ददास के नाटक' पुस्तक मे सेठ जी के चौदह नाटको—कर्तव्य, हर्ष, कुलीनता, विश्वासघात, प्रकाश, ईर्ष्या, सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य, स्पर्द्धा, नवरस, दलित कुसुम, बडा पापी कौन, विश्वप्रेम, सेवापथ, विकास—का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसमे लेखिका ने प्राय प्रत्येक नाटक की कथा-वस्तु के अन्तर्गत इतने अधिक उद्धरण दे दिये हैं कि मूल नाटक पढने की आवश्यकता ही नही रहती। कथावस्तु के विपुल विस्तार मे लेखिका की आलोचना खो गई है। पुस्तक मे उल्लेखनीय कोई विशेषता नही है।

डॉ० रामचरण महेन्द्र की दोनो आलोचनात्मक पुस्तके मिला दी जाए तो इनमे सेठ जी का लगभग सम्पूर्ण साहित्य विवेचित हो चुका है। साहित्य-परिचय कराने की दृष्टि से दोनो पुस्तको के महत्त्व की उपेक्षा नही की जा सकती, लेकिन दोनो पुस्तके सर्वथा दोपमुक्त है ऐसा कदापि नही कहा जा सकता। इन दोनो पुस्तको मे लेखक का दृष्टिकोण मूलत प्रशसापरक ही अधिक रहा है अत कृतियो की निष्पक्ष आलोचना नही हुई है।

'नाटककार सेठ गोविन्ददास' एम० ए० परीक्षा के लिए लिखा गया प्रबन्ध है। इसमे डा० रामचरण महेन्द्र की 'नाट्य कला एव कृतियाँ' पुस्तक का पूरा लाभ उठाया गया है। अधिकाँश स्थलो पर उसी प्रकार के भाव व्यक्त किये गये है, हाँ भाषा लेखिका की अपनी अवश्य है। 'सेठ जी के नाटको मे गीत' प्रसग के अतर्गत लेखिका की कुछ मौलिकता दिखाई पडती है। इस प्रसग मे भी उसका समग्र विवेचन सर्वथा ग्राह्य है, ऐसा नही कहा जा सकता। खैर, एम० ए० परीक्षा का प्रवन्ध होने के कारण उसकी लेखिका की अपनी सीमाएँ थी और उससे हम उच्चस्तरीय आलोचना की अपेक्षा भी नही कर सकते।

'सेठ गोविन्ददास अभिनदन ग्रथ', 'सेठ गोविन्ददास व्यक्तित्व एव साहित्य' तथा 'राष्ट्र और राष्ट्रभाषा के अनन्य सेवक' मौलिक कृतिया न होकर विभिन्न लेखो का सकलन है। इनमे व्यक्तित्व एव कृतित्व पर प्रकाश डालने वाले लेखो का सग्रह है।

सेठ गोविन्ददास के व्यक्तित्व और साहित्य पर अब तक उपलब्ध आलोचनात्मक ग्रथो मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण डा० केशरीनदन मिश्र का शोध-प्रबन्ध 'सेठ गोविन्द दास कला एव कृतित्व' है। यह 1964 मे परीक्षार्थ प्रस्तुत किया गया था और उसी वर्ष पी-एच० डी० के लिए स्वीकृत हुआ है। अभी तक यह ग्रथ अप्रकाशित है। इसकी टकित प्रति शोधकर्ता के सौजन्य से मुझे देखने एव मनन के लिए प्राप्त हो गई थी, और मैने उसका पूरा अनुशीलन किया है। मैं अपना शोध-प्रबन्ध लिख रहा था और इस बीच यह शोध-प्रवन्ध स्वीकार हुआ है। इसमे सेठ जी की जीवनी और उनके सम्पूर्ण साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

सेठ जी के जीवन एव साहित्य पर प्रथम शोध-प्रबन्ध होने के कारण इसकी अपनी कुछ सीमाएँ भी है। दोषारोपण की प्रवृत्ति से दूर रहकर इसकी कतिपय सीमाओ का उल्लेख इस सन्दर्भ मे अप्रासगिक न होगा।

(1) शोध-प्रबन्ध का नाम 'कला एव कृतित्व' अवश्य है पर इसमे सेठ जी की समग्र नाट्य-कृतियो के आधार पर उनकी नाट्य-कला का विवेचन नही किया गया है।

(2) इसमे सेठ जी के जीवन-दर्शन पर कोई प्रकाश नही डाला गया है।

(3) सेठ जी की जीवनी तो प्रस्तुत की गई है, परन्तु उनके व्यक्तित्व का विवेचन नही है। जीवनी का आधार भी मूलत 'आत्म-निरीक्षण' को ही बनाया गया है उसके अनेक अध्यायो को ज्यो का त्यो समाविष्ट कर लिया गया है, तात्पर्य यह कि अन्य सूत्रो से जीवन सम्बन्धी बातो को खोजने का प्रयास नही किया गया है। व्यक्तित्व-विवेचन के विना मात्र जीवनी का प्रस्तुतीकरण सूना प्रतीत होता है।

(4) सेठ गोविन्ददास के साहित्य पर प्रकाशित एवं विभिन्न सकलनो मे सग्रहीत लेखो का भी शोधकर्ता ने स्वतन्त्र ग्रथ के रूप मे अपने शोध-प्रबन्ध मे उल्लेख किया

है। प्राक्कथन के अतर्गत पृष्ठ 3 (टकित प्रति) पर 'सेठ जी के साहित्य पर प्रकाशित साहित्य की सक्षिप्त समीक्षा उपशीर्षक के सदर्भ मे डा० मिश्र लिखते है—

सेठ जी के साहित्य पर अभी तक निम्नलिखित ग्र थ प्रकाशित हुए है—

(1) सेठ गोविन्ददास के नाटक—श्रीमती रत्नकुमारी
(2) सेठ गोविन्ददास के सामाजिक नाटक—श्री शिखरचन्द जैन
(3) सेठ गोविन्ददास की नाट्य कला—श्री दुर्गाशकर मिश्र
(4) सेठ गोविन्ददास के ऐतिहासिक नाटक—प्रो० देवर्षि सनाढ्य
(5) आधुनिक हिन्दी नाटक—डा० नगेन्द्र
(6) सेठ गोविन्ददास की नाट्यकला तथा कृतियाँ—प्रो० रामचरण महेन्द्र
(7) सेठ गोविन्ददास साहित्य समीक्षा—प्रो० रामचरण महेन्द्र
(8) नाटककार सेठ गोविन्ददास—श्री शातिप्रिय द्विवेदी
(9) गोविन्ददास अभिनदन ग्र थ—स० डा० नगेन्द्र
(10) सेठ गोविन्ददास के एकाँकी नाटक—प्रो० ब्रजमोहन गुप्त
(11) सेठ गोविन्ददास की जीवनी—श्रीमती रत्नकुमारी
(12) सेठ गोविन्ददास के नाटक—डा० सत्येन्द्र
(13) सेठ गोविन्ददास के नाटक—प्रो० रामचरण महेन्द्र
(14) एकाकीकार सेठ गोविन्ददास—प्रो० रामचरण महेन्द्र
(15) एकाकीकार सेठ गोविन्ददास—सद्गुरुशरण अवस्थी
(16) सेठ जी के नाटक—श्री व्यौहार राजेन्द्र सिह
(17) सेवापथ—श्री सद्गुरुशरण अवस्थी
(18) कर्तव्य (आलोचना)—डा० हजारीप्रसाद
(19) पाकिस्तान—डा० हजारीप्रसाद

प्रकाशित ग्र थो के नाम से उल्लिखित इन 19 लेखो और पुस्तको मे से केवल छ (क्रम सख्या 1, 5, 6, 7, 9 एव 11) ही ग्र थ है शेष लेख है जिनमे से दो (क्रम सख्या 2, 4) तो डा० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित 'सेठ गोविन्ददास अभिनदन ग्र थ' मे ही सग्रहीत है। 'आधुनिक हिन्दी नाटक' को इस वर्ग के अतर्गत किस आधार पर रखा गया है ? सभवत लेखो को ग्र थ मानने का भ्रम डा० रामचरण महेन्द्र की पुस्तक 'सेठ गोविन्ददास नाट्य कला तथा कृतिया' के पृष्ठ 217 पर प्रकाशित 'सहायक ग्र थो और लेखो की सूची' देखने के कारण हुआ प्रतीत होता है। वहाँ भी लगभग इन्ही पुस्तको और लेखो की सूची है और इस बात का कोई सकेत नही है कि कौन-सी पुस्तक है और कौन-सा लेख।

(5) इसमे सेठ जी के ऐतिहासिक नाटको मे इतिहास और कल्पना तत्त्वो का अलग-अलग विवेचन नही है।

वास्तव मे मेरा उद्देश्य यहाँ शोध-प्रबन्ध की विस्तृत आलोचना करना नही है अपितु प्रसगवश मैंने उसकी कुछ सीमाओ का सकेत किया है।

सेठ गोविन्ददास के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर लिखे गए आलोचनात्मक ग्रथो के ऊपर दिए गए परिचय से स्पष्ट है कि इस पर एक प्रामाणिक एव सुव्यवस्थित शोध-प्रबन्ध की अपेक्षा बनी रह जाती है। इसी की पूर्ति के निमित्त यह शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया जा रहा है। इसका प्रमुख लक्ष्य सेठ जी के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षो का निरूपण करना, उनके द्वारा निर्मित सम्पूर्ण साहित्य का वैज्ञानिक एव निष्पक्ष विवेचन करना तथा उनके जीवन-दर्शन के आधारभूत तत्त्वो को स्पष्ट करना है। इसमे सेठ जी के प्रकाशित और अप्रकाशित दोनो प्रकार के साहित्य को विवेचन का आधार बनाया गया है। अप्रकाशित साहित्य को किसी भी प्रकार उपेक्षणीय नही बनाया गया है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मे मैने साहित्य के शारीरिक ढाचे को महत्त्व न देकर उसके आत्म-तत्त्व को महत्त्व दिया है। इसमे वैज्ञानिक पद्धति को ही मूलत प्रश्रय मिला है। रचनाओ के मर्म उद्घाटन के प्रति बुद्धि सदैव सचेष्ट रही है। पुनरावृत्ति से जहाँ तक सभव हो सका है, बचने का प्रयास किया गया है।

शोध-प्रबन्ध की संक्षिप्त रूपरेखा

सम्पूर्ण शोध-प्रबन्ध तीन खडो मे विभाजित किया गया है। इसका प्रथम खड व्यक्तित्व, द्वितीय कृतित्व तथा तृतीय जीवन-दर्शन है। तृतीय खड के बाद उपसहार और अत मे परिशिष्ट है।

प्रथम खड मे दो अध्याय है—पहले मे जीवनी और दूसरे मे व्यक्तित्व-विश्लेषण है। जीवनी के अन्तर्गत ही सेठ जी के राजनीतिक एव सामाजिक जीवन पर भी प्रकाश डाला गया है। व्यक्तित्व-विश्लेषण के प्रसग मे सेठ जी के व्यक्तित्व के बाह्य पक्ष एव आतरिक पक्ष का विश्लेषण किया गया है। इसी मे सेठ जी के अन्तर्निहित गुणो एव उनकी कतिपय सीमाओ का उल्लेख हुआ है।

दूसरा खड सबसे बडा है। इसमे कुल दस अध्याय है। सर्वप्रथम सेठ जी की समग्र कृतियो का उनकी साहित्यिक विधा के अनुरूप वर्गीकरण किया गया है। इसके बाद आगे के अध्यायो मे इन्ही साहित्यिक विधाओ का अनुशीलन किया गया है।

इसके चौथे अध्याय मे काव्य, पाँचवे मे यात्रा-साहित्य, छठे मे आत्मकथा, सस्मरण एव जीवनी, सातवे मे निबन्ध, आठवे मे उपन्यास एव कहानिया, नौवे मे पूरे नाटक, दसवे मे एकाकी, ग्यारहवे मे नाट्य कला और बारहवे मे गाधीवाद एव पाश्चात्य नाट्य शिल्प के प्रभाव का विस्तृत विवेचन किया गया है।

काव्य के अतर्गत महाकाव्य एव स्फुट काव्य दोनो का अनुशीलन है। महाकाव्य 'प्रेम-विजय' का विवेचन निम्न शीर्षको के अतर्गत किया गया है।

रचना काल, निर्माण की पृष्ठभूमि, कथानक, उद्गम स्रोत, मौलिक उद्भावनाएँ, चरित्र-चित्रण, रस योजना, प्रकृति-चित्रण, भाषा-शैली, अलकार विधान, छन्द योजना, युग-चेतना और महाकाव्यत्व।

'यात्रा-साहित्य' के अतर्गत यात्रा-पुस्तको का आलोचनात्मक अध्ययन है और अत मे यात्रा साहित्य का साहित्यिक मूल्याकन है।

छठे अध्याय के अतर्गत आत्मकथा, सस्मरण एव जीवनी की परिभाषा देकर इन सबका आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यही आत्मकथा का साहित्यिक मूल्याकन भी किया गया है।

सातवे अध्याय मे सेठ जी के दो निबन्ध पुस्तको मे सकलित आठ निबन्धो का आलोचनात्मक अनुशीलन है और अत मे इन निबन्धो की सामान्य विशेषताओ पर प्रकाश डाला गया है।

आठवे अध्याय मे सेठ जी के बृहद् उपन्यास 'इन्दुमती' की विस्तृत समीक्षा निम्न शीर्षको के अतर्गत की गई है—

रचनाकाल एव निर्माण की पृष्ठभूमि, कथावस्तु, पात्र और चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देश-काल, भाषा-शैली, उद्देश्य, सीमाएँ तथा साहित्यिक मूल्याकन।

नौवे अध्याय के अतर्गत सेठ जी के पूरे नाटको का अनुशीलन है। इसमे उनके पौराणिक, ऐतिहासिक, जीवनी, सामाजिक, समस्या, प्रतीक और दार्शनिक नाटको तथा नाटकीय सवाद का विवेचन किया गया है। इस सदर्भ मे प्रयुक्त 'विशेषताएँ' या 'प्रमुख विशेपताएँ' शीर्षक के अतर्गत मैने नाट्य-कृति के गुण-दोष दोनो का विवेचन किया है, कहने का तात्पर्य यह कि 'विशेषता' को मैंने व्यापक अर्थ मे लिया है। सेठ जी के ऐतिहासिक नाटको मे इतिहास-तत्त्व का विवेचन प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्र थो के आधार पर किया गया है।

दसवे अध्याय मे एकाकियो का अनुशीलन है। इसमे पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एकाकियो का विवेचन तो है ही, इसके अतिरिक्त एकपात्री एकॉकियो, हास्य व्यग्य प्रधान प्रहसनो और वैदेशिक कथाओ पर आधारित एकाकियो का विवेचन भी किया गया है।

ग्यारहवे अध्याय मे सेठ जी की नाट्य-कला पर प्रकाश डाला गया है। उनकी नाट्य कला सम्वन्धी कुछ मूल वातो पर निम्न दृष्टियो मे विचार किया गया है—

कथानक, पात्र और चरित्र-चित्रण, सवाद, भाषा, शैली और टेक्नीक, देशकाल, उद्देश्य, अभिनेयता।

वारहवे अध्याय मे उनके नाटको पर गाँधीवाद का प्रभाव दिखाया गया है तथा नाटको की कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, भाषा-शैली तथा अभिनेयता पर पाश्चात्य नाट्य शिल्प के प्रभाव का विवेचन है।

तृतीय खड सवमे छोटा है और इसमे केवल एक अध्याय है। इसके अन्तर्गत मैंने सेठ जी की समग्र कृतियो के आधार पर उनका जीवन-दर्शन प्रस्तुत किया है। उनके जीवन-दर्शन का विवेचन क्रमश जीवन-दृष्टि, धार्मिक एव सास्कृतिक दृष्टिकोण, दार्श-

निक दृष्टिकोण, सामाजिक एव राजनीतिक दृष्टिकोण, राष्ट्रीय भावना, मानवतावाद तथा कला एव साहित्य के प्रति दृष्टिकोण शीर्षक के अतर्गत किया गया है।

अत मे उपसहार है जिसमे सेठ जी की हिन्दी सेवा पर प्रकाश डाला गया है और उनका हिन्दी साहित्य मे स्थान-निर्धारण भी इसी के अतर्गत किया गया है। सबसे अत मे परिशिष्ट है जिसमे सहायक पुस्तको की सूची है।

सेठ जी के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर परपरा की दृष्टि से यह दूसरा शोध-प्रबन्ध है लेकिन विषयवस्तु के विवेचन की मौलिकता के आधार पर इसका स्थान क्या होगा, इस बात का निर्णय सुविज्ञ पाठक ही कर सकेंगे।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का प्रणयन श्रद्धेय डा० हरिहरप्रसाद गुप्त, एम० ए०, डी० फिल, भूतपूर्व प्रिंसिपल एव अध्यक्ष हिन्दी विभाग, वैश्य पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, शामली (मुजफ्फरनगर), के विद्वत्तापूर्ण निर्देशन मे हुआ है। इस प्रबन्ध के जो गुण है, वे उनके है, और जो दोष है, वे मेरे है। उनकी इस महती कृपा के लिए कृतज्ञता ज्ञापन वहुत तुच्छ प्रतीत होता है, अत मैं उनके समक्ष केवल नत मस्तक होकर इस आभार को सदा अपने पास रखना चाहता हू।

अपने अत्यन्त व्यस्त जीवन से समय निकाल कर श्रद्धेय गुरुवर डा० नगेन्द्र ने प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के कुछ अश देखने की कृपा की है और त्रुटियो के निवारणार्थ विद्वत्तापूर्ण निर्देश दिये है, उनकी इस महती कृपा के लिए औपचारिक आभार मात्र प्रकट करके ही मैं गुरु-ऋण से मुक्त होना नही चाहता। आदरणीय गुरुवर डा० दशरथ ओझा के सत्परामर्शो से भी मै लाभान्वित हुआ हूँ, उनके प्रति आभार प्रदर्शन क्या धृष्टता न होगी ?

मै अपने अनुशीलन के प्रत्यक्ष विषय सेठ गोविन्ददास का आभारी हूँ, जिनके सहयोग के बिना यह प्रबन्ध इस रूप मे लिखा ही न जा सकता था। उन्होने अपनी 30 वर्ष पुरानी सब फाइले, अप्रकाशित पाडुलिपिया मेरे सुपुर्द कर दी थी और समय-समय पर मेरी शकाओ का समाधान भी करते रहे। डॉ० केशरीनदन मिश्र ने मेरे एक पत्र द्वारा सामान्य आग्रह पर अपने अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध "सेठ गोविन्ददास कला एव कृतित्व" की टकित प्रति भेजकर जिस सहृदयता का परिचय दिया है उसके लिए उनका हृदय से आभारी हूँ। डॉ० सुरेन्द्र बहादुरसिंह का निरतर प्रोत्साहन मार्ग मे आने वाली वाधाओ से जूझने की शक्ति देता रहा है। सामग्री-सचय मे सर्वश्री रामलल्लन सिंह, सियाराम एव राधेश्याम द्वारा प्राप्त सहयोग के लिए उन्हे साधुवाद देता हू। कृतज्ञता-ज्ञापन के इस पावन अवसर पर कैसे भूलू सहधर्मिणी मिथिलेश को जो स्वय दीप-शिखा सी जलती रह कर मेरी साधना का मार्ग प्रशस्त करती रही, पर उनके प्रति धन्यवाद प्रकट करना क्या अपने ही प्रति धन्यवाद प्रकट करना नही है ?

अन्त में मैं उन सभी विद्वानों के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ जिनके ग्रंथों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सहायता लेकर मैंने प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का निर्माण किया है। पुस्तक की रूप-सज्जा के लिए एस० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि० के अधिकारी एवं कर्मचारी धन्यवाद के पात्र हैं।

हिन्दी-विभाग
डी० ए० वी० कालेज
अमृतसर।

रामशंकर सिंह

मेठ गोविन्ददास के पितामह राजा गोकुलदास आधुनिक जवलपुर नगर के निर्माता माने जाते हैं। जवलपुर मे आज भी उनके समय का वना हुआ 'राजा गोकुलदास महल' अपने वीते वैभव की कहानी कह रहा है। सेठ जी का परिवार इसी महल मे रहता है, उनके पुत्र-पौत्रादि जवलपुर मे ही रहते है। ससद के अधिवेशन के दिनो मे दिल्ली मे उनका स्वल्प-कालिक वास होता है।

जाति

राजस्थान के वीर क्षत्रियो को राजपूत तथा व्यापार-कुशल वैश्यो को मारवाड़ी कहा जाता है। इन राजपूतो और मारवाडियो मे अनेक समुदाय है। राजपूतो मे सिसोदिया, राठौर, चौहान, कछवाहे, इत्यादि और मारवाडियो मे अग्रवाल, ओसवाल, खण्डेलवाल तथा माहेश्वरी आदि है। सेठ जी का सम्बन्ध मारवाडी जाति के माहेश्वरी समुदाय से है।

मारवाडियो की पुरानी कथाए राजस्थान के भाट नामक एक विशष समुदाय के पास सग्रहीत है। मेठ जी के पूर्वजो की वशावली जयसलमेर के भाटो की वहियो मे मिलती है। इन भाटो की वहियो के अनुसार माहेश्वरी जाति की उत्पत्ति कोई पाच हजार वर्ष पूर्व हुई थी।

'माहेश्वरी' जाति सूचक शब्द सेठ जी के परिवार का कोई भी सदस्य अपने नाम के अन्त मे नही लिखता। नाम के पहले 'सेठ' लिखने की परपरा पूर्वजो से चली आ रही है और उसी परपरा का पालन अव भी उनके परिवार मे होता है।[1]

वश परिचय

मेठ गोविन्ददास की पारिवारिक श्रृखला मे उनके पूर्वज सेठ सेवाराम का नाम विशेप रूप से उल्लेखनीय है। सेवाराम जी राज-भक्त होने के कारण अग्रेजो के अत्यधिक पक्षपाती थे। उनकी राज-भक्ति से प्रसन्न होकर अग्रेज-सत्ताधारियो ने उन्हे कई प्रशसापरक पत्र दिये थे, उन्ही पत्रो मे से एक छोटे-से पत्र मे पोलिटिकल एजेन्ट श्री सी० फ्रेजर ने 22 फरवरी, सन् 1828 मे लिखा था——

"सेठ सेवाराम जवलपुर के सर्वश्रेष्ठ धनी महाजनो मे से एक है और आप वडे ऊचे तथा सम्माननीय चरित्र के व्यक्ति है।"[2]

सेवाराम जी के दो पुत्र थे। वडे पुत्र का नाम राम कृष्णदास तथा छोटे का खुशहालचद था। राम कृष्णदास को सासारिक कार्यो के प्रति अरुचि थी इसलिए वे अपना अधिकाश समय भगवद्पूजा तथा अन्य धार्मिक कार्यो मे व्यतीत करते थे। वे आठो पहर गोपाल-सेवा मे ही लगे रहते थे। उन्होने वल्लभ कुल सप्रदाय

---

1 सेठ जी से हुई प्रत्यक्ष वार्ता के आधार पर।

2 आत्म-निरीक्षण (भाग 1), पृ० 18।

मे दीक्षा ली थी और अपने प्राचीन गोपाल लाल जी के मन्दिर को भी उसी सप्रदाय का कराया। इन्ही के समय से सेठ जी का परिवार धार्मिक क्षेत्र मे वल्लभ-सप्रदाय का अनुयायी चला आ रहा है। इनके कोई सन्तान न थी।[1]

सेवाराम जी के दूसरे पुत्र खुशहाल चद अपने पिता के ही समान अध्य-वसायी व्यक्ति थे। उन्होने पिता द्वारा उत्तराधिकार मे प्राप्त पाच लाख की सम्पत्ति को पच्चीस लाख तक बढाया।[2] सन् 1857 का स्वातन्त्र्य-सग्राम उन्ही के जीवन काल मे हुआ था। राज-भक्ति के कारण उन्होने उस समय अग्रेजो की सहायता की और इस सहायता के फलस्वरूप उन्हे अग्रेज सरकार से एक सोने का कमर पट्टा सम्मान के रूप मे प्राप्त हुआ था। उस कमर पट्टे पर खुदा है--

"Presented by Government of India to
Seth Khusal Chand
for his loyal services to the state during
the rebellion of 1857
October 1857"[3]

अपने समय मे खुशहालचद जी का प्रतिष्ठित समाज मे अत्यधिक सम्मान था। उनकी मृत्यु 63 वर्ष की आयु मे हुई।

खुशहालचद जी के दो पुत्र थे--गोकुलदास और गोपालदास। गोपालदास जी का युवावस्था मे ही देहावसान हो गया। उनके केवल एक सन्तान थी-- वल्लभदास। श्री वल्लभदास का लालन-पालन सेठ गोकुलदास के सरक्षण मे हुआ।

सेठ गोकुलदास अपने पितामह श्री खुशहालचद के ही समान राज-भक्त थे। उनकी राज-भक्ति से प्रसन्न होकर अग्रेज सरकार ने उन्हे उस समय की महत्वपूर्ण उपाधि 'राजा' से विभूपित किया था। समाज मे आप राजा गोकुलदास के नाम से प्रसिद्ध थे और धन, मान की दृष्टि से आपका स्थान राजा के ही समकक्ष था। अपने अथक परिश्रम द्वारा पिता से प्राप्त पच्चीस लाख की सम्पत्ति को सात करोड तक बढाया। इनके समय मे चादी और सोने का रुपया गिना नही वरन् बोरियो मे भरकर तोला जाता था और बाद मे रुपयो से भरी बोरियो की गिनती की जाती थी। उनके सम्बन्ध मे एक कहावत सी प्रचलित थी कि यदि वे मिट्टी को छूते थे तो सोना हो जाता था, पर इसी के साथ एक बात और भी थी कि जिस तरह मिट्टी सोना बनकर उनके हाथो मे आती थी उसी तरह दान मे सोना उनकी उगलियो के बीच से पानी बनकर बहता रहता था।[4]

---

1 आत्म-निरीक्षण (भाग 1), पृ० 18-19 के आधार पर।
2 वही, पृ० 19।
3 सेठ गोविन्ददास (जीवनी), पृ० 10।
4 आत्म-निरीक्षण (भाग 1), पृ० 20।

वास्तव मे राजा गोकुलदास दानशील, धार्मिक वृत्ति वाले व्यक्ति थे। आज भी जबलपुर के स्थानीय सस्थाओ के भवनो के रूप मे उनकी कीर्ति अक्षय है। राजा गोकुलदास सेठ जी के पितामह थे और इनके जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव इनके पितामह का ही पडा है।

राजा गोकुलदास के कई सताने हुई, उनमे केवल जीवनदास को छोडकर शेष सभी असमय ही काल की ग्रास बन गई। यही जीवनदास जी सेठ गोविन्ददास के पिता थे।

सेठ जीवनदास भविष्य की चिता न करने वाले वर्तमान मे विश्वास करने वाले व्यक्ति थे। आपका जीवन उस समय के सर्वाधिक समृद्धिशाली व्यक्तियो के अनुरूप था। उनकी शान-शौकत और शौक उस समय के सारे भारत के सम्पत्ति-शाली समाज मे विख्यात थे।[1] आप विलासी प्रवृत्ति के व्यक्ति होने के कारण वेश्या-ससर्ग को भी अनुचित नही मानते थे इसलिए उनके समय मे राजा गोकुल-दास महल मे वेश्याओ के लिए भी एक अलग विभाग था।[2] सेठ जीवनदास मे जहा कुछ दुर्गुण थे वहा उनमे कुछ विशेषताएँ भी थी। आप क्रोध की प्रतिमूर्ति होकर भी अत्यन्त उदार थे। क्रोध आने पर नौकरो को चाबुक (जिसका नाम सुल्तान दूल्हा था) से पीटते थे किन्तु क्रोध उतर जाने पर उन्ही नौकरो को बुलाकर शाति से समझाते थे और उन्हे कपडे आदि इनाम देते थे। उनकी धार्मिक प्रवृत्ति भी कुल के अनुरूप ही थी, वे वल्लभ सप्रदाय मे दीक्षित थे और नित्य प्रात मन्दिर का दर्शन करने जाते थे।[3] वास्तव मे उग्रता के साथ उदारता, विलासिता के साथ धार्मिकता और राज-भक्ति के साथ आत्म-सम्मान की भावना उनके चरित्र की प्रमुख विशेपताएँ थी। राज-भक्ति के कारण उन्हे सरकार से 'दीवान बहादुर' की उपाधि प्राप्त हुई थी।

गोविंददास जी अपने माता-पिता की केवल एकमात्र पुरुष सतान है। उन्होंने लिखा है—"मेरे पहले मेरी माता के कोई सतान न हुई थी। जब मै पौने दो वर्ष का था, उस समय मेरे एक बहन हुई, पर वह उसी दिन मर गई। मेरी जो बहन जीवित रही और उसके बाद मेरे और कोई भाई-बहन न हुए, वह मुझ से पूरे चार वर्ष छोटी थी। अत शैशव काल मे इन बहन-भाइयो के कारण बच्चो मे जो स्पर्द्धा या ईर्ष्या होती है, उसका मुझे कोई अनुभव नही है।"[4]

जन्म

अत्यन्त वैभव-सम्पन्न, समृद्धिशाली परिवार मे 16 अक्तूबर सन् 1896 तदनुसार आश्विन शुक्ल विजय दशमी वि० स० 1953 को सेठ गोविन्ददास का

---

1 आत्म-निरीक्षण (भाग 1), पृ० 20।
2 वही, पृ० 39।
3 वही, पृ० 99।
4 वही, पृ० 30।

जन्म हुआ। उनके जन्म ने राजा गोकुलदास की चिरसचित अभिलाषा को पूर्ण कर दिया। धन, सम्मान तथा अन्य सब कुछ विद्यमान होने पर भी पौत्र का अभाव उनके जीवन का सबसे बडा अभाव था। इस अभाव की पूर्ति होने से जितना हर्ष राजा गोकुलदास को हुआ उतना अन्य किसी को नही। इसीलिए पौत्र जन्मोत्सव पर उन्होने मुक्त हस्त से धन लुटाया और उत्सव मनाने का यह कार्यक्रम लगभग एक महीने तक चला। इस उत्साहपूर्ण आयोजन मे लगभग एक लाख रुपया व्यय हुआ और लगभग इतना ही रुपया निर्धनो को भी बाटा गया।[1]

वैभवशाली परिवार मे जन्म लेने तथा अपने पितामह की आखो का तारा होने के कारण सेठ गोविन्ददास का लालन-पालन अत्यन्त स्नेह के साथ विलासितापूर्ण वातावरण मे हुआ। प्रारभ से ही इनके स्वास्थ्य के विषय मे कितना ध्यान रखा जाता था, इसका अनुमान केवल इसी से लगाया जा सकता है कि इनको जिस गाय का दूध पिलाना होता था, उस गाय की पहले पशुओ के डाक्टर द्वारा परीक्षा होती थी और उसके दूध की 'बायोलाजिस्ट' द्वारा जाच होती थी। परीक्षा के पश्चात् उसके चारे का नुस्खा स्वय सिविल सर्जन द्वारा लिखा जाता था और उन्ही के परामर्श के अनुसार ही गाय को खुराक दी जाती थी। दूध निकालने तथा पिलाने का बर्तन भी सिविल सर्जन की आज्ञानुसार साफ किया जाता था।[2] सदैव इस बात का प्रयत्न किया जाता कि इनके जीवन पर अभावो की छाया न पडे। इनके स्नेहपूर्ण लालन-पालन का सर्वाधिक ध्यान इनके पितामह राजा गोकुलदास को रहता था। सेठ जी के अपने शब्दो मे—"इतना अधिक काम रहने पर भी मेरे पितामह मुझसे सम्बन्ध रखने वाले अनेक काम स्वय करते। कई बार मुझे तेल लगाते, उबटन लगाते, नहलाते, मेरा शरीर पोछते और मुझे चम्मच से दूध भी पिलाते।"[3] माता से भी अधिक इन पर इनके पितामह का स्नेह था।

नामकरण

वल्लभ कुल सप्रदाय के अनुयायी होने के कारण अपनी धार्मिक प्रवृत्ति के अनुरूप राजा गोकुलदास ने अपने पौत्र का नाम 'गोविन्ददास' रखा। सेठ जी प्रारभ मे 'प्रसू', 'सरस्वती प्रिय.' आदि साहित्यिक उपनामो से रचना करते थे, परन्तु बाद मे इसे छोड दिया।[4]

---

1 सेठ गोविन्ददास अभिनदन ग्रठ—सपादक डा० नगेन्द्र, पृ० 50।
2 आत्म-निरीक्षण, भाग 1, पृ० 22।
3 वही, पृ० 23।
4 सेठ जी से प्रत्यक्ष वार्ता के आधार पर।

शैशव तथा किशोरावस्था

सेठ जी के कोमल मन पर बाल्यावस्था मे ही परिवार की धार्मिक परम्परा तथा सामन्तशाही वातावरण का प्रभाव पडा। पितामह तथा माता के अत्यन्त स्नेहभाजन होने के कारण आरम्भ मे ही उनका लालन-पालन राजकुमारो की भांति किया गया। राजा गोकुलदास महल के राज-भक्ति पूर्ण, वैभव-सम्पन्न तथा विलासितामय वातावरण मे पोषित होने वाले बालक गोविन्ददास को देखकर उस समय यह कल्पना भी नही की जा सकती थी कि यही बालक आगे चलकर पारिवारिक परपरा के प्रतिकूल, अपने पूर्वजो से पूजित ब्रिटिश राज्य की शृखलाओ को विच्छिन्न करने मे अग्रणी होगा।

बालक गोविन्ददास बचपन मे ही अपने पितामह के साथ गोपाल बाग मे घूमने के लिए जाया करते थे। जब किसी भी वृक्ष या पौधे मे कलिया लगती तब उन कलियों का बडा होना, उनका चटक कर अनेक पखडियो वाला फूल बनना, उस फूल का फल मे परिणत होना आदि क्रियाएँ बडे मनोयोग से देखा करते थे। शैशवावस्था मे ही उनके कोमल मन मे प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति विस्मय की भावना का उदय हो चुका था जिसका प्रसार आगे चलकर उनके साहित्य मे भी परिलक्षित होता है।

सेठ गोविन्ददास की हिन्दू धर्म तथा भारतीय सस्कृति के प्रति इतनी रुचि होने के प्रमुख कारणों मे एक यह भी है कि बचपन मे जब वे खेलने योग्य हुए तब उनके धर्मप्राण पितामह ने उन्हे मिट्टी, लकडी, पत्थर और धातु की बनी हिन्दू देवी-देवताओ की मूर्तिया खेलने के लिए दी। इन सब मूर्तियो मे अपनी विशेष प्रकार की आकृति के कारण गणेशजी, दुर्गाजी तथा हनुमानजी की मूर्तिया सबसे अधिक कौतूहलवर्द्धक थी। उस समय इन मूर्तियो से सम्बन्धित अनेक प्रकार की पौराणिक कथाए इन्हे सुनाई जाती थी। इन कथाओ को पूरी तरह न समझते हुए भी ये इनके लिए मनोरजक अवश्य थी। बाल्यकाल मे ही इनके कोमल मन पर इन पौराणिक कथाओ का प्रभाव पडा।[1]

बाल्यावस्था की एक अद्भुत घटना का वर्णन सेठ जी के शब्दो मे इस प्रकार है—"उन्ही दिनो उस समय की मेरी दृष्टि से मेरे यहा एक अद्भुत घटना घटित हुई। यह घटना थी एक बिल्ली की जचकी। इस बिल्ली ने तीन बच्चे जने—एक सफेद, एक काला और एक उसी के रग का चितकबरा। मैं इन बच्चो को देख आश्चर्य-स्तम्भित रह गया। मेरे आश्चर्य के दो कारण थे—पहला तो यह कि चितकबरी बिल्ली के तीन बच्चे अलग-अलग रग के कैसे हुए। दूसरे न जाने कैसे मैं यह समझता था कि जैसे कली पहले बधी हुई होती है और जब वह फूल के रूप मे आती है तब उसकी पखडिया अलग-अलग होती है उसी प्रकार

1 आत्म-निरीक्षण, भाग 1, पृ० 25-26 के आधार पर।

पैदा होते समय जीवधारी भी एक लौंदे के रूप मे होते होगे और फिर उनके हाथ, पैर, नाक, कान, आखे, मुह सारे अग उस लौदे मे से निकलते होगे। इस बिल्ली के बच्चो के सारे अग पहले से ही कैसे बन गए, इस पर मै विचार करता रहा।"[1]

बाल्यकाल की यह घटना इस बात का प्रमाण है कि आरम्भ से ही गोविन्ददास जी मे विचार करने और मनन करने की प्रवृत्ति विद्यमान थी। छोटी-छोटी घटनाएँ उनके कल्पना-प्रधान मस्तिष्क को किस प्रकार झकझोरती थी।

सेठ गोविन्ददास का परिवार वल्लभ-सम्प्रदाय का अनुयायी रहा है। इस सप्रदाय के प्रति भक्ति-भावना के कारण इनके परिवार मे ब्रज मडल की रास-मडलियो के मधुर रास हुआ करते थे। बचपन मे कृष्ण की मूर्तियो से खेलने और उनसे सम्बन्धित कथाओ को सुनने के पश्चात् उन्ही कथाओ का रास मे प्रदर्शन उन्हे इतना आनन्द प्रदान करता था कि कभी-कभी उसमे तल्लीन होकर ये अपनी सुध-बुध भी भूल जाते थे। नवरात्र के दिनो मे जबलपुर मे रामलीला भी होती थी, किन्तु रामलीला मे कृष्णलीला के समान इनकी तल्लीनता नही थी।

तीन वर्ष की अवस्था मे ही इनके हृदय मे मन्दिर के प्रति भक्ति की भावना का उदय हो गया था क्योकि बाल्यकाल मे ही इनके पितामह ने अपने कौटुम्बिक श्री गोपाललाल जी के मन्दिर से इनका सम्बन्ध करा दिया था और तभी से ये मन्दिर के प्रत्येक उत्सव मे उत्साह से सम्मिलित होते थे।

किशोरावस्था मे ही गायो के प्रति इनके मन मे किस प्रकार अनुराग की भावना पैदा हुई थी उसका उल्लेख इन्होने इस प्रकार किया है—

"पुष्टि मार्ग मे गायो का भी बहुत बडा स्थान है अत धार्मिक दृष्टि से, और दूध, दही, मक्खन, घी के लिए भी हमारे घर मे सदा से ही एक सुन्दर गौशाला रही है। इस गौशाला के साडो से तो मैं बहुत डरता, पर पहले बछडे, बछडियो से मै बहुत खेलता और कुछ बडे होने पर गायो को अन्न की लोइया तथा हरी घास खूब खिलाता। कभी-कभी तो मेरे दिन के दिन गौशाला मे बीत जाते। मैं गौशाला मे जैसा मग्न हो जाता वैसा शायद कही नही।"[2]

सेठ जी के शब्दो मे, "शैशव की अन्य बाते तो शैशव के सग ही समाप्त हो गई, पर मन्दिर के प्रति भक्ति और गायो के प्रति अनुराग मेरे जीवन के साथी हो गए। आगे चलकर जब मै सार्वजनिक जीवन मे आया और गोवध बन्द कराने के आन्दोलन का जो मेरे सार्वजनिक जीवन मे इतना स्थान हुआ, उसकी नीव मेरी शैशव अवस्था मे ही पड गई थी।"[3]

---

1 आत्म-निरीक्षण, भाग 1, पृ० 27।

2 वही, पृ० 30।

3 वही, पृ० 30।

परिस्थिति का हमे पूरा ज्ञान नही होगा तब तक हम उसके व्यक्तित्व का विश्लेषण नही कर सकते। वश-परम्परा के अन्तर्गत वे सभी कारण आते है जो शिशु के जन्म काल के समय तथा उससे पूर्व भी उपस्थित थे। परिस्थिति के अन्तर्गत वे कारण आते है जो जन्म के उपरान्त एक व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करते है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक वुडवर्थ का कथन है कि "Behaviour at any moment, depends on the individual's structure, condition and activity in progress, and also upon the stimuli received from the environment Moreover structure, condition and activity in progress are dependent in part upon past activity and so on past environment"[1]

सेठ गोविन्ददास के व्यक्तित्व का निर्माण करने मे उनकी वश-परम्परा का विशेष योगदान है। उनके जीवन पर सबसे अधिक व्यापक प्रभाव उनके पितामह राजा गोकुलदास का और उसके पश्चात् उनकी श्रद्धामयी माता का है। उनके पिता सेठ जीवनदास ने भी कुछ अश तक उनके जीवन को प्रभावित किया है।

पितामह का प्रभाव

अपने पिता और पितामह के सदृश राजा गोकुलदास यदि एक ओर अपने व्यापार-धन्धे और रियासती कामो मे लगे रहते तो दूसरी ओर वे बडे धर्मनिष्ठ और सामाजिक व्यक्ति भी थे। बारहों महीने वे उषःकाल मे तीन बजे उठते, स्नान आदि से निवृत्त हो वल्लभ कुल के तिलक छापे लगाकर चार बजे पूजा पर बैठते और सात बजे तक पूरे एक पहर पूजा करते। नित्य सन्ध्या-वन्दन, तर्पण, और अग्नि-होत्र करने के सिवा वे भगवद् कथा सुनते। एक ओर उनका पूजा पाठ चला करता और दूसरी ओर एक पडित कथा बाचता। सात बजे पूजा समाप्त करके वे नगर के लोगो और सरकारी अफसरो से मिलने-जुलने चले जाते। नगर के लोगो से उनका बडे भारी परिमाण मे सम्बन्ध था। इसका कारण यह था कि शादी-ब्याह, बीमारी, मौत, झगडे-झासे सब मे वे साधारण से साधारण व्यक्तियो के घर पहुचते। पूरे एक पहर तक इन सामाजिक सम्बन्धो को निभाते हुए घूमने के बाद वे दस बजे लौटकर मन्दिर मे स्नान कर राजभोग की आरती करते और मन्दिर मे यदि कोई उत्सव होता, तो उस उत्सव मे सम्मिलित होते।[2]

पितामह के इन उच्च मानवीय गुणो—धर्मनिष्ठा, आस्तिकता, निरालस्य तथा सामाजिकता का सेठ जी पर व्यापक प्रभाव पडा है। पितामह के ऋण को

---

1 *Psychology*, R S Woodworth, 10th Edn 1935, P 122

2 आत्म-निरीक्षण, भाग 1, पृ० 39।

स्वीकार करते हुए उन्होंने लिखा है कि "उनके उप काल मे उठने के कारण मैं भी उप काल मे उठा दिया जाता। उतनी जल्दी नहाता तो नही, पर हरि कथा का श्रवण अवश्य करता।"[1] बाल्यावस्था के ये बाल्य सस्कार आज भी विद्यमान हैं।

राजा गोकुलदास सरल, सहृदय दानशील, उदार तथा ईमानदार व्यक्ति थे। वे प्राय यह बात कहा करते थे कि "बेईमानी से कमाया हुआ धन उस बरफ के मानिन्द रहता है जिस पर उबलता हुआ पानी छिडका जाता है।"[2] पितामह के इस मानवतावादी उच्च सिद्धान्त को सेठ जी ने अपने जीवन का एक सिद्धान्त बनाया है और इसलिए वे अपनी अन्तरात्मा तथा दूसरो के प्रति ईमानदार रह सके हैं।

राजा गोकुलदास कट्टर हिन्दू थे और किसी विजातीय को छूने के बाद बिना स्नान किए पानी तक न पीते थे, पर सामाजिक दृष्टि से वे हिन्दू, मुसलमान या अन्य किसी जाति मे कोई भेद न रखते।[3]

हिन्दू धर्म के प्रति श्रद्धा की भावना जो आज सेठ जी मे दिखाई पडती है उसके मूल मे पितामह का हिन्दुत्व प्रेम किसी न किसी अश मे विद्यमान है। हिन्दुत्व पर गर्व होते हुए भी सेठ जी अस्पृश्यता को एक अभिशाप मानते हैं। अपनी इसी उच्च भावना के कारण सन् 1947 मे, एक ट्रस्टी की हैसियत से, आपने अपने कौटुम्बिक श्री गोपाललाल जी के मन्दिर मे हरिजन-प्रवेश के लिए एक प्रस्ताव पेश किया। इनके भतीजे श्री नरसिहदास ने इस प्रस्ताव का डटकर विरोध किया और यह प्रस्ताव पास नही हो सका। प्रस्ताव का समर्थन न होने पर इन्होंने स्वय मन्दिर के ट्रस्टी पद से त्यागपत्र दे दिया।[4] आदर्श के प्रति निष्ठा की भावना का यह एक प्रत्यक्ष उदाहरण है।

माता का प्रभाव

गोविन्ददास की माता धार्मिक और नैतिक दोनो ही दृष्टियो से आदर्श चरित्र थी।[5] उनके विषय मे स्वय सेठ जी का कथन है—आदर्श नारी का जो वर्णन हमारे प्राचीन ग्रन्थो मे मिलता है, मेरी माता जी वैसी ही थी। उनकी भगवद्-भक्ति और पतिपरायणता दोनो ही पराकाष्ठा को पहुची हुई थी। पति को वे कदाचित भगवान के रूप मे ही देखती थी। उनकी यह पति-भक्ति पति की प्रसन्नता के लिए उन्हे उन मुसलमान वेश्याओ के पास ले जाती जिन्हे अपनी धर्म-निष्ठा के कारण

---

1 आत्म-निरीक्षण भाग 1, पृ० 39।
2 वही, पृ० 49।
3 वही पृ० 53।
4 वही भाग 2, पृ० 21।
5 सेठ गोविन्ददास (जीवनी), पृ० 22।

छूने मे भी वे पाप समझती ।[1] माता की धर्म-निष्ठा तथा नैतिकता का गोविन्ददास के जीवन पर व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है ।

पिता का प्रभाव

सेठ गोविन्ददास के पिता अपने समय के विलासी व्यक्तियो मे मे एक थे । जीवन की समस्याओ से मुक्त रहकर शान-शौकतपूर्ण जीवन बिताने मे ही वे जीवन की सार्थकता मानते थे । उनकी शान-शौकत और शौक उस समय के सारे भारत के सम्पत्तिशाली समाज मे विख्यात थे । राजा गोकुलदास महल मे उनके लिए एक अलग विभाग था, जहा उनकी अपनी रखैल वेश्याएँ रहती थी । सेठ गोविन्ददास का पिता के इस विभाग से बहुत कम सम्बन्ध था, फिर भी यदा-कदा अपनी माता के साथ इस विभाग मे जाया करते थे, अत पिता के शान-शौकतपूर्ण जीवन का कुछ प्रभाव उनके जीवन पर पडा । पिता के शाही जीवन से प्रभावित होते हुए भी वे उस अनैतिक जीवन से कोसो दूर रहे, जिसमे उनके पिता का जीवन आप्लावित रहा ।

शैशव के सस्कारो का उल्लेख करते हुए सेठ जी ने लिखा है—"एक ओर मेरे पितामह का अत्यन्त सादा, धार्मिक और सामाजिक जीवन तथा उससे सम्बन्ध रखने वाले सारे वातावरण का मुझ पर प्रभाव पड रहा था और दूसरी ओर पिताजी के शौकीन, विलासी और शाही जीवन तथा उससे सम्बन्ध रखने वाले समस्त वायुमण्डल का ।"[2] उन्होने आगे लिखा है—"परन्तु मेरे पितामह और मेरी माता जी का प्रयत्न यही था कि मुझ पर पिताजी और उनसे सम्बन्ध रखने वाले जीवन का प्रभाव न पडे । पिता जी के कारण यद्यपि मुझे राजा गोकुलदास महल के इस विभाग से सर्वथा विलग रखना कदाचित सम्भव न था, पर इस बात का सतत प्रयत्न किया जाता कि मै वहा न जाऊ । मै अधिकतर अपने पितामह के साथ ही रहता और दौरे पर भी उनके साथ जाता । इसलिए पिता जी वाले विभाग का प्रभाव मुझ पर बहुत अधिक न पड सका ।"[3]

पारिवारिक परिस्थिति

सेठ गोविन्ददास जी का कुटुम्ब राजभक्त कुटुम्ब था । इस राजभक्ति के कारण ही उस कुटुम्ब मे सम्पदा और सुख दोनो की ही वृद्धि हुई थी और दोनो की ही रक्षा होती थी । उनके कुटुम्ब मे सैकडो गावो की जमीदारी थी, जिसमे हर क्षण सरकारी सहायता की आवश्यकता रहती थी । उनके घर के व्यापारो मे

---

1 आत्म-निरीक्षण, भाग 1, पृ० 41 ।

2 वही, पृ० 45 ।

3 वही, पृ० 45 ।

कलकत्ते की ग्लैन्डर्स अरबथनाट कंपनी के विलायती कपड़े की एजेन्सी थी, जिससे उन्हें लगभग एक लाख रुपये साल की आमदनी थी। उनके गावों और दुकानों के सैकड़ों मुकदमे अंग्रेजी कचहरियों में चलते थे। राजभक्ति के कारण ही सेठ जी के पितामह श्री गोकुलदास को 'राजा' की तथा इनके पिता श्री जीवनदास को 'दीवान बहादुर' की सम्मानसूचक उपाधि मिली थी। सेठ जी के परिवार का सारा वातावरण सामन्तशाही हो गया था।

इस सामन्तशाही वातावरण में पोषित बालक गोविन्ददास को देखकर स्वप्न में भी यह कल्पना नहीं की जा सकती थी कि आगे चलकर यही बालक ब्रिटिश राज्य की नींव हिलाने के लिए कटिबद्ध होगा। आशा के विपरीत, पारिवारिक परंपरा से पृथक् दृष्टिकोण लेकर सेठ जी आगे बढ़े और उनका यह दृष्टिकोण—राष्ट्रप्रेम—ही उन्हें सार्वजनिक जीवन में लाया।

साहित्यिक संस्कार

वैभव-विलास से पूर्ण जिस सामन्तशाही वातावरण में सेठ जी का लालन-पालन हुआ था उसमें तो उनके साहित्यकार बनने की संभावना बहुत ही कम थी। घर और उसके आसपास का वातावरण ऐसा नहीं था जो उनकी साहित्यिक अभिरुचि को बढ़ाने में किसी प्रकार सहायक होता अपितु कहना तो यह चाहिए कि उनका पारिवारिक वातावरण उन्हें एक राजभक्त, कुशल व्यापारी बनाने में अधिक समर्थ था। पारिवारिक वातावरण के प्रतिकूल एक साहित्यकार के रूप में उनके व्यक्तित्व का जो विकास हुआ है उसमें उनकी अन्तःप्रेरणाओं का अधिक हाथ है। इस सम्बन्ध में उनकी स्पष्ट स्वीकारोक्ति है—मेरा अनुभव है कि साहित्य-सृजन के लिए कुछ न कुछ स्वाभाविक संस्कार व्यक्ति में अन्तर्निहित रहते हैं, जिनका पैतृक परंपराओं और संस्कारों से सम्बन्ध नहीं रहता। अन्यथा मैं केवल बारह वर्ष की अवस्था में अपना पहला छोटा-सा उपन्यास 'चम्पावती' नहीं लिख सकता था।[1] 'चम्पावती' के बाद सेठ जी ने उसी प्रकार के दो उपन्यास और लिखे—'कृष्णलता' और 'सोमलता'। मैट्रिक के पाठ्यक्रम का अध्ययन करते समय शेक्सपीयर के चार नाटकों के आधार पर सेठ जी ने चार उपन्यासों की रचना की—'रोम्यो-जूलियट' पर 'सुरेन्द्र-सुन्दरी', 'एज यू लाइक इट' पर 'कृष्ण-कामिनी', 'पेरेक्लीज प्रिंस आफ टायर' पर 'होनहार' और 'विंटर्स टेल' पर 'व्यर्थ सन्देह'।

यद्यपि सेठ जी का साहित्य-सृजन उपन्यास और कविता से प्रारंभ हुआ है किन्तु अन्त में जिस विधा को उन्होंने पूर्ण रूप से अपनाया वह है—नाटक। नाटकों के प्रति सहज स्वाभाविक आकर्षण का कारण उनका बचपन में कृष्ण-

---

1 मेरी सृजन साधना—सेठ गोविन्ददास, राष्ट्र और राष्ट्रभाषा के अनन्य सेवक, सं० बांकेबिहारी भटनागर, पृ० 147।

लीला का अभिनय तथा यौवन में पारसी नाटक कम्पनियो द्वारा अभिनीत नाटको का बार-बार देखना था। सेठ जी ने नाट्य साहित्य का भी अध्ययन किया। उनका कहना है—नाट्य-साहित्य भी केवल इसी देश का नही बल्कि अग्रेजी के द्वारा समस्त ससार का मैने पढा।[1] सेठ जी के अनुसार उनके साहित्य-सृजन के प्रेरणास्रोत वीर साहित्य, देशभक्तो की जीवनिया, वेदान्त दर्शन, गाधी जी और गाधी जी का जीवन-दर्शन तथा इस काल के देश को स्वाधीन कराने वाले आन्दोलन है।[2]

विवाह और सतति ·

जीवन के सन्ध्या काल के निकट पहुच रहे राजा गोकुलदास की यह इच्छा थी कि उनके पौत्र का विवाह उनके सामने ही हो जाए। उस समय बाल-विवाह की प्रथा थी और मारवाडियो मे तो सबसे अधिक। इस सम्बन्ध मे सेठ जी का कथन है कि "मेरी सगाई राजस्थान के जयपुर राज्य मे शेखावटी नामक इलाके के सीकर नगर मे रहने वाले सीकर के जागीरदार राव राजा जी के पोद्दार लक्ष्मीनारायण जी बीयाणी की पुत्री गोदावरी देवी से उस समय हो गई थी जब हम दोनो को ही पूरा होश नही था।"[3] इस विवाह को राजा गोकुलदास अपने जीवन का अतिम कार्य समझते थे, अत इस अन्तिम कार्य को उन्होंने अति धूम-धाम के साथ पूर्ण करने का निश्चय किया। विवाह की तैयारी मे पूरा एक वर्ष लग गया। जबलपुर से तीन हजार आदमी बारात मे सीकर गए। इस विवाह मे पाच लाख रुपये के ऊपर खर्च हुआ और सचमुच ही राजा साहब के जीवन का यह अन्तिम कार्य सिद्ध हुआ, क्योंकि इसके दस मास के पश्चात् ही राजा साहब का देहावसान हो गया। जिस समय गोविन्ददास का विवाह हुआ उस समय उनकी अवस्था 11½ वर्ष और जिस समय राजा साहब का देहान्त हुआ उस समय उनकी आयु 12½ वर्ष के लगभग थी।[4] विवाह के तीन वर्ष बाद सोलहवे वर्ष मे नववधू का द्विरागमन हुआ। रूप का आकर्षण न होने के कारण प्रारभ मे पत्नी के प्रति सेठ जी के विचार अनुकूलता के नही थे। उन्होंने लिखा है—वह कुछ बडी अवश्य हो गई थी, पर न शरीर मे भरी थी और न रग मे ही कोई परिवर्तन हुआ था। चौदह-पन्द्रह वर्ष की लडकी की उतनी ही शिक्षा हुई थी जितनी पाच-छ वर्ष की लडकी की होती।[5]

---

1 मेरी सृजन साधना—सेठ गोविन्ददास, राष्ट्र और राष्ट्रभाषा के अनन्य सेवक, स० बाकेबिहारी भटनागर, पृ० 150।

2 वही, पृ० 149।

3 आत्म-निरीक्षण, भाग 1, पृ० 85।

4 सेठ गोविन्ददास (जीवनी), पृ० 19-20।

5 आत्म-निरीक्षण, भाग 1, पृ० 110।

आत्म-समर्पण, त्याग तथा सेवा के महान् गुणो से विभूषित गोदावरी देवी ने सेठ जी के प्रारम्भिक विचारो को बदल दिया। पत्नी के प्रति सेठ जी की प्रारम्भिक उपेक्षा वृत्ति अधिक समय तक न रह सकी। हृदय की पावन प्रेम धारा ने उपेक्षा की कलुषित वृत्ति को धो डाला। पत्नी की प्रशसा करते हुए उनकी वाणी प्रस्फुटित हुई—अपने स्वभाव की स्वाभाविक सौम्यता तथा अनजाने ही समर्पण प्रेम का पथ पकड, हमारे कुटुम्ब के लिए अपने को सर्वथा अनुकल बना, वह हमारे घर के लिए तो महाकवि मिल्टन के निम्नलिखित कथन के अनुरूप हो गई—

"उसके हर कदम मे सादगी थी, उसकी आखो मे थे दैवी गुण। उसकी हर कृति मे था आत्म-सम्मान और स्नेह। प्रेम, माधुर्य और अच्छापन उसके व्यक्तित्व मे चमकता था, उसमे छिपी हुई शक्ति थी, वह शक्ति थी स्वर्गीय।"[1]

सेठ जी के सुखी कौटुम्बिक जीवन का मूल कारण उनकी पत्नी ही है। जीवन के सन्ध्या काल के निकट पहुचकर भी उनकी पत्नी के स्वभाव की सोम्यता मे किसी प्रकार का परिवर्तन नही हुआ है।

सेठ जी के चार सताने हुई। इन चार सतानो मे दो पुत्र और दो पुत्रिया है। इनके नाम है—सेठ मनमोहनदास, सेठ जगमोहनदास, श्रीमती रत्नकुमारी तथा श्रीमती पद्मा। इनमे श्री जगमोहनदास सन् 1964 मे दिवगत हो गए। सेठ जी के लिए यह एक असह्य आघात था और आज भी वे पुत्र शोक से शोकार्त है।

जीविकोपार्जन

पिता से सैद्धान्तिक मतभेद के कारण, 4 अगस्त सन् 1932 को पैतृक सम्पत्ति से त्यागपत्र दे देने के पश्चात् सेठ गोविन्ददास के सामने जीविका का प्रश्न अपने विकटतम रूप मे उपस्थित हुआ। उन्हे भी कभी अपनी जीविका के विषय मे सोचना होगा, इस बात की शायद उन्होंने भी कल्पना न की थी। जिस समय गोविन्ददास ने अपने घर की सम्पत्ति का त्याग किया था, उस समय उन्होने अपनी सोने की घडी, कमीज के सोने के बटन और पूजन के चादी के बर्तनो को भी अपने घर के लोगो को लौटा दिया था और बिना एक पाई लिए वे घर से निकले थे। अब तक का काम उन्होंने मित्रो से कर्ज लेकर चलाया था, जो सदा होते रहना सभव न था।[2] उन्होने लिखा है—बहुत सोच-विचार के बाद मुझे जीविकोपार्जन के लिए अपना साहित्य ही साधन दिखा। मेरे नाटको की सख्या काफी हो गई थी। इन्हे प्रकाशित करा इनमे से कुछ को पाठ्यक्रम मे रखाने तथा रगमच के अलावा कुछ के फिल्म बनाने की कोशिश करने का मैंने निश्चय किया।[3]

---

1 आत्म-निरीक्षण भाग 1, पृ० 118।

2 सेठ गोविन्ददास (जीवनी), पृ० 83-84 के आधार पर।

3 आत्म-निरीक्षण, भाग 2, पृ० 324-25।

सन् 1934 मे अपने नाटको के फिल्म बनवाने के लिए सेठ जी बम्बई गए। फिल्म व्यवसाय मे इस समय काफी आमदनी थी, इसके अतिरिक्त अच्छी फिल्मों द्वारा समाज की सेवा भी की जा सकती थी, इसीलिए वे इस तरफ विशेष रूप से आकृष्ट हुए। बम्बई मे रहकर सेठ जी ने अपनी एक फिल्म कम्पनी स्थापित करने का विचार किया। उन्होंने निश्चय किया कि इस कम्पनी मे जो भी चित्र बने उनके कथानक, कथोपकथन, गायन आदि आदर्श हो, यहा तक कि उनमे काम करने वाले व्यक्ति भी आदर्श व्यक्ति हो, कोई बाजारू नट या नटी न रखे जाए।

ढाई लाख की पूजी से एक प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी बनाई गई जिसका नाम रखा गया 'आदर्श चित्र लिमिटेड'। सेठ जी को इस कम्पनी का मनेजिग एजेण्ट नियुक्त किया गया और उनका पारिश्रमिक 500) मासिक तथा आमदनी मे तिहाई हिस्सा निश्चित किया गया।[1]

'आदर्श चित्र लिमिटेड' मे सेठ गोविन्ददास के प्रसिद्ध एतिहासिक नाटक 'कुलीनता' की कथा पर 'धुआधार' तथा उनके सामाजिक नाटक 'दलित कुसुम' की कथा पर इसी नाम का चित्र बनाया गया। इन चित्रो मे कम्पनी को आर्थिक लाभ न होकर अपितु हानि उठानी पडी। गोविन्ददास जी के जीवन मे यह पहला कार्य था, जो न तो उनके निश्चय के अनुसार आदर्श ढग से चला और न अब तक सफल ही हुआ।

इसके अतिरिक्त गोविन्ददास जी ने दो कम्पनियो की स्थापना और की। वे है—'जबलपुर कैमिकल कम्पनी' तथा 'हिन्दुस्तान स्वदेशी स्टोर्स'। वे इन दोनो के भी मैनेजिग एजेन्ट थे।[2]

राजनीति से कुछ समय के लिए अवकाश ग्रहण कर सेठ गोविन्ददास सन् 1939 मे कलकत्ता गए और वहाँ उन्होने शेयर तथा पाट बाजार मे अपना व्यापार प्रारभ किया। इस क्षेत्र मे कोई अनुभव न होने पर भी उनको काफी लाभ हो रहा था, यहा तक कि कुछ दिनो मे वे इस क्षेत्र के विशेषज्ञ माने जाने लगे। उसी समय विश्व का द्वितीय महायुद्ध प्रारभ हुआ और युद्ध व्यापारिक दृष्टि से सेठ जी के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ क्योकि इससे उनका लाभ बढने लगा। एक समय तो उनको अनुभव हुआ कि वे शीघ्र ही करोडपति बन जाएगे, किन्तु उसी समय व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारभ हुआ और इस लाभप्रद व्यापार को छोडकर सेठ जी जबलपुर वापस आ गए। इस व्यापार के बाद उन्होने कोई व्यापार प्रारभ नही किया। सम्प्रति वे लोक सभा के सदस्य है और सन् 1952 से ही इसके सदस्य चले आ रहे है।

---

1 आत्म-निरीक्षण, भाग 2, पृ० 326 के आधार पर।

2 सेठ गोविन्ददास (जीवनी), पृ० 87।

राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन

राजनीतिक व्यक्तित्व की जो परिभाषा भारतीय धारणा के अनुसार की जाती है, वह पश्चिमी देशो मे बहुत भिन्न है। पश्चिम मे पोलिटीशियन का अर्थ लगभग एक विशेषज्ञ के रूप मे होता है—उसके पीछे एक विशेष शिक्षा और चिन्तन-धारा इत्यादि होती है। किन्तु भारत ने तो हाल ही मे पराधीनता की शृखलाओ मे मुक्ति पाई है और इसलिए यहा पर अभी तक की सारी राजनीति आन्दोलनकारी और सघर्ष-प्रधान राजनीति ही रही। अत हमारे यहाँ राजनीतिक व्यक्तित्व का प्रमुख मानदड वह त्याग एव बलिदान है, जो कि विदेशी सत्ता के विरुद्ध सघर्ष के दौरान हमारे नागरिको ने किया। इस दृष्टि से यदि हम सेठ गोविन्ददास के लगभग 40 वर्षो के सार्वजनिक एव राजनीतिक जीवन को देखे तो यह भलीभाति समझा जा सकता है कि उनका जीवन एक अद्भुत त्याग-वृत्ति, सर्वस्व बलिदान की भावना एव असीम कष्ट-सहिष्णुता का आलोकमय मिश्रण है और इसलिए वे स्वाधीनता-सग्राम के दृढव्रती सैनिको मे अपना एक विशेष स्थान रखते है।[1]

सेठ जी का सक्रिय रूप से राजनीति मे प्रवेश तो 1920 मे हुआ किन्तु इससे पूर्व वे सार्वजनिक सेवा-कार्यो मे भाग लेते रहे है। सन् 1919 मे सागर मे मध्य प्रान्तीय राजनैतिक परिषद और मध्यप्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ, सेठ गोविन्ददास जी इस सम्मेलन के सभापति चुने गए। अब तक सेठ जी मध्यप्रान्त के अग्रणी नेता पडित विष्णुदत्त जी शुक्ल तथा पडित माधवराव जी सप्रे के ससर्ग मे आ चुके थे।

एक सार्वजनिक कार्यकर्त्ता के रूप मे सेठ जी ने सर्वप्रथम नागपुर काग्रेस मे भाग लिया था और इसी नागपुर काग्रेस ने सर्वप्रथम गाधीवादी कार्यक्रम को अपनाकर देश के इतिहास मे एक नया मोड प्रदान किया था।

इस समय देश का राजनीतिक वातावरण विक्षुब्ध था। लोकमान्य तिलक का सिंहनाद "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है", सघर्ष का स्पष्ट सकेत कर रहा था। सन् 1920 इस बीज के पुष्पित और पल्लवित होने के लिए सबसे उपयुक्त समय था। प्रथम महायुद्ध समाप्त हो चुका था और इसके साथ ही समाप्त थी भारतीय नेताओ की वे आकाक्षाएँ जिनकी पूर्ति वे ब्रिटिश सरकार से युद्ध मे ब्रिटेन की सहायता के फलस्वरूप चाहते थे। पजाब का हत्याकाड हो चुका था। ब्रिटिश राज्य का दमन एव उत्पीडन अपने नग्नतम रूप मे प्रगट हो गया था। सभी भारतीय नेता सघर्ष के लिए प्रस्तुत थे किन्तु सघर्ष का साधन क्या हो, इस पर मतभेद था। महात्मा गाधी ने इस सघर्ष के लिए आत्मिक बल, सत्य और अहिंसा को साधन के रूप मे अपनाया। उनका निश्चित मत था कि आत्मिक

---

1 सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रथ—सपादक डा० नगेन्द्र, पृ० 55।

बल पशुता से और सत्य तथा अहिसा, हिंसा से सफलतापूर्वक मुकाबला कर सकती है। विश्व के लिए यह प्रयोग सर्वथा एक नवीन प्रयोग था।

महात्मा गाधी ने इस महान यज्ञ मे आहुति डालने के लिए देश के प्रत्येक व्यक्ति को आमंत्रित किया। उन्होंने कहा कि आत्मिक बल का आश्रय कर, सत्य और अहिसा के शस्त्र को हाथ मे ले प्रत्येक भारतीय को अंग्रेजी सत्ता से असहयोग करना चाहिए। स्कूलो, अदालतो, कौंसिलो और विदेशी माल के बहिष्कार असहयोग क्षेत्र मे पहले चार कदम थे। गाधी जी की घोषणा थी कि यदि देश उनका साथ देगा तो वे एक वर्ष के भीतर देश में स्वराज्य की स्थापना कर देंगे। जिन अनेको महारथियो ने इस पावन यज्ञ मे अपने सर्वस्व की आहुति डालने का सकल्प किया था, उन्ही मे से सेठ गोविन्ददास जी भी एक थे।

यह पहले बताया जा चुका है कि सेठ गोविन्ददास जी का कुटुम्ब राजभक्त कुटुम्ब था। राजभक्ति के कारण ही धन और मान की दृष्टि से यह कुटुम्ब अपने प्रान्त मे विख्यात था। उनके यहाँ विलायती कपड़ो की कोठी के कारण एक लाख रुपये की सालाना आमदनी थी। उनके गावों और दूकानो के सैकड़ो मामले अग्रेजी कचहरियो मे चलते थे। सेठ गोविन्ददास जी राजा गोकुलदास जी के एकमात्र पौत्र तथा अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र होने के कारण अत्यन्त लाड-प्यार और शान-शौकत से पाले गए थे। इस स्थिति मे असहयोगी जीवन उनके अब तक के जीवन के ठीक विरुद्ध दिशा का जीवन था।[1]

सेठ गोविन्ददास जी सच्चरित्र थे और उन्हे कोई व्यसन न था। वे धर्म-निष्ठ थे और साहित्य-सेवी थे। पर सच्चरित्र, निर्व्यसनी और साहित्य-सेवी गोविन्ददास जी भी पूरे रईस थे। उनका ठाट-बाट, उनका रहन-सहन, उनकी वेश-भूषा उस समय के बडे-से-बडे भारतीय रईसो के समान थी। दिन मे पांच बार कपड़े बदले जाते थे। कम से कम एक दर्जन नौकर उनकी टहल के लिए नियुक्त थे।

सेठ जी के परिवार का कोई भी सदस्य यह नही चाहता था कि वे असहयोगी बने। उनके पिता, उनकी माता, उनकी पत्नी, सभी गोविन्ददास जी के इस मार्ग के कट्टर विरोधी थे।

यद्यपि कलकत्ते की सन् 1920 की स्पेशल कांग्रेस मे असहयोग का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया था तथापि उस प्रस्ताव पर अमल नागपुर कांग्रेस के बाद होने वाला था। नागपुर कांग्रेस मे सम्मिलित होने का सेठ गोविन्ददास जी ने निश्चय किया। इस निश्चय के मालूम होते ही उनके महल मे जो तूफान उठा, वह इसके पहले कभी 'राजा गोकुलदास महल' मे न उठा था। पिता, माता, पत्नी, नातेदार, घर के पुराने-नए कर्मचारी, सब एक ओर, और अकेले सेठ गोविन्ददास जी एक ओर। रोने-धोने से लेकर आत्महत्या की चर्चा तक, एक भी ऐसी

---

1 सेठ गोविन्ददास जीवनी, पृ० 34।

बात नहीं है जो इस तूफान में न हुई हो। परन्तु सेठ गोविन्ददास जी दृढ-प्रतिज्ञ और अटल निश्चय के व्यक्ति सिद्ध हुए। वे पर्वत के सदृश अचल रहे। नागपुर काग्रेस मे सम्मिलित होने से उन्हे कोई रोक न सका। नागपुर काग्रेस मे सम्मिलित होकर उन्होंने असहयोग की दीक्षा ले ही ली। असहयोग की दीक्षा लेते ही उन्होंने सबसे पहले आनरेरी मजिस्ट्रेट के पद, दरबारी होने के पद तथा डिस्ट्रिक्ट कौसिल की नामजदी मेम्बरी से इस्तीफा दिया।[1]

अत्यधिक कष्ट होने पर भी उन्होने मोटी खादी को पहना। मोटी धोती के सबब से शुरू-शुरू मे तो उनकी मुलायम चमडी मे कमर के आस-पास घाव तक हो गए। जो मुकदमे उनके नाम पर चलते थे, उन्हे उन्होने वापस ले लिया और नया मुकदमा दायर करना बन्द कर दिया। सबसे बडा झगडा हुआ कलकत्ते की म्लेन्टर अरबथनाट कपनी की विलायती कपडे की एजेन्सी छोडने मे। दीवान बहादुर जीवनदास जी का और उनका इस विषय पर ऐसा वाद-विवाद हुआ, जैसा इसके पहले कभी न हुआ था। पिता-पुत्र का यह झगडा दिनो नही, महीनो चला, पर अन्त मे सेठ गोविन्ददास जी विजयी हुए। दीवान बहादुर साहब को लाख रुपये की उस वार्षिक आमदनी को लात मार देना पडा। कलकत्ता क्या, हिन्दुस्तान के किसी भी हिस्से मे इतनी बडी आमदनी का विलायती कपडे का व्यापार किसी भी व्यापारी ने न छोडा था।[2]

असहयोग की दीक्षा लेने के पश्चात प्रान्त मे काग्रेस को एक शक्तिशाली सस्था बनाने के लिए सेठ जी ने अथक परिश्रम करना प्रारम्भ किया। वे नगर-नगर एव गाव-गाव घूमे। एक-एक दिन मे दस-दस और बारह-बारह मील की पैदल यात्रा की। परिणाम यह हुआ कि कुछ ही महीनो मे मध्य प्रान्त के हिन्दुस्तानी भाषा भाषी जिलो मे, जहा अब तक कोई सार्वजनिक जीवन ही न था, काग्रेस एक जीती जागती सस्था बन गई।

नागपुर काग्रेस मे पडित विष्णुदत्त जी शुक्ल का देहावसान हो गया था। नागपुर मे ही काग्रेस ने भाषा के अनुसार प्रान्तो का विभाजन किया था। मध्य प्रान्त के हिन्दी भाषा भाषी जिलो को नेता की आवश्यकता थी और उसने सेठ गोविन्ददास जी के रूप मे सफल, सर्वमान्य और यशस्वी नेता को पा लिया। यह कहना भी कोई अतिशयोक्ति न होगी कि आपने अपने सार्वजनिक जीवन मे नेता के रूप मे ही प्रवेश किया था और तब से लेकर अब तक इस क्षेत्र मे आपका नेतृत्व अक्षुण्ण है। आपके नेतृत्व मे इस क्षेत्र को एक नवीन चेतना एव स्फूर्ति प्राप्त हुई और इसके बाद इस क्षेत्र ने राष्ट्रीय सग्राम मे जो योग दिया, उसका इतिहास मे अपना एक विशिष्ट स्थान है। इस क्षेत्र का राजनीतिक इतिहास

---

1 सेठ गोविन्ददास जीवनी, पृ० 36।
2 वही, पृ० 37।

आपके राजनीतिक जीवन से आरम्भ होता है और इसके बाद आपके जीवन मे घटी हुई घटनाएँ ही इस क्षेत्र का इतिहास बन गई है।[1]

सन् 1921 मे महात्मा गाधी जबलपुर पधारे। इस समय सेठ गोविन्ददास जी ने तिलक स्वराज्य फड मे दस हजार रुपया दिया। सेठ जी के त्याग और कार्य से गाधी जी अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होने 'यग इडिया' तथा 'नव जीवन' मे सेठ जी की भूरि-भूरि प्रशसा की।

सन् 1921 के मई मास मे मध्य प्रान्तीय राजनैतिक परिषद का प्रथम अधिवेशन जबलपुर मे हुआ। सेठ गोविन्ददास जी उसकी स्वागत समिति के अध्यक्ष थे। इसी वर्ष वे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के सदस्य भी निर्वाचित हुए और तब से अब तक बराबर वे उसके सदस्य चले आए है।

सन् 1922 के दिसम्बर मे गया मे काग्रेस-अधिवेशन हुआ। स्वर्गीय देश-बन्धु दास इसके सभापति थे। कौसिल-प्रवेश के प्रश्न पर वाद-विवाद ने उग्र रूप धारण किया लेकिन अन्त मे काग्रेस ने कौसिल-प्रवेश के विरुद्ध अपना निर्णय दिया। इतने पर भी इस वाद-विवाद का अन्त न हुआ। पडित मोतीलाल नेहरू तथा श्री देशबधु दास ने काग्रेस के अन्तर्गत स्वराज्य पार्टी की स्थापना की। सेठ जी इस स्वराज्य पार्टी मे सम्मिलित हुए और वे मध्य प्रान्तीय स्वराज्य पार्टी के अध्यक्ष तथा अखिल भारतीय स्वराज्य पार्टी के कोषाध्यक्ष नियुक्त हुए। स्वराज्य पार्टी मे सम्मिलित होने के पूर्व सेठ गोविन्ददास ने यह बात मोतीलाल नेहरू तथा देश-बन्धु दास से स्पष्ट कह दी थी कि वे स्वय चुनाव मे तब तक खडे न होगे जब तक काग्रेस स्वराज्य-पार्टी को चुनाव लडने की आज्ञा न दे देगी।

काग्रेस का यह गृह-कलह अधिक न बढ पाया और सन् 1923 के मध्य मे दिल्ली मे काग्रेस के स्पेशल अधिवेशन मे स्वराज्य पार्टी को कौसिलो मे जाने की अनुमति दे दी गई। सन् 1923 का चुनाव स्वराज्य पार्टी ने लडा। मध्य प्रान्त के जमीदारो की ओर से सेठ गोविन्ददास जी केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य निर्विरोध चुन लिये गए। इस समय आप केन्द्रीय असेम्बली के सबसे कम आयु वाले सदस्य थे और उस समय से लेकर अब तक आप बराबर केन्द्रीय प्रतिनिधि सभा के सदस्य निर्वाचित होते रहे है। इस समय भी आप लोकसभा के सदस्य है और सबसे पुराने सदस्य है। आपके इस दीर्घ ससदीय जीवन के कारण ही कुछ लोग आपको आधुनिक ससद का 'चाचा' कहकर पुकारते है।

सन् 1924 से केन्द्रीय असेम्बली मे पडित मोतीलाल नेहरू के साथ सेठ जी ने कार्य करना प्रारम्भ किया। असेम्बली मे वे केवल दो वर्ष रहे और इन दो वर्षो मे उन्होने वहा सिर्फ दो भाषण किए। पहला 'ली कमीशन' और दूसरा 'मुडीमैन कमेटी' की रिपोर्ट पर।

---

1 सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रथ—सपादक डा० नगेन्द्र, पृ० 58।

सन् 1925 मे कौंसिल आफ स्टेट का चुनाव था। सर मानिक जी दादाभाई और सर हरिसिंह गौर इसके लिए खडे हो रहे थे। कौंसिल आफ स्टेट के मतदाताओं मे जमींदारों और बडे आदमियों का ही बहुमत था, जो काग्रेस और स्वराज्य पार्टी से कोसो दूर रहते थे। उन्ही के समुदाय का और अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति ही इन दो महारथियों को पराजित कर सकता था अत प० मोतीलाल नेहरू ने सेठ जी की इच्छा न रहने पर भी उन्हे कौंसिल आफ स्टेट के लिए खडा कर दिया। चुनाव के केवल 17 दिन बाकी थे। सर मानिक जी दादाभाई और सर हरिसिंह गौर का 6 माह से चुनाव प्रचार चल रहा था। मतदाता मध्यप्रान्त के 18 जिलों मे फैले हुए थे। सेठ जी अपनी व्यक्तिगत विशेषताओ के कारण प्रचड बहुमत से विजयी हुए। सर हरिसिंह गौर की तो जमानत ही जब्त हो गई। इस जीत के कारण मध्य प्रान्त मे स्वराज्य पार्टी का प्रभुत्व बढ गया।[1]

सन् 1926 से 1929 तक सेठ गोविन्ददास जी कौंसिल आफ स्टेट के सदस्य रहे। सदस्यों मे केवल 9 काग्रेसवादी थे और इन 9 मे भी मध्य प्रान्त के श्री ताबे ने होम मेम्बर का पद स्वीकार कर लिया। अब कौंसिल के समस्त सदस्यों मे सेठ जी सबसे कम आयु वाले सदस्य थे अत उन्हे वहा 'इडियाज यगैस्ट एल्डर' कहा जाता था।

इन 9 काग्रेसवादियों की एक पृथक पार्टी बनी। सेठ जी इस पार्टी के मत्री चुने गए।

कौंसिल के इन चार वर्षों के जीवन के सम्बन्ध मे सेठ जी ने लिखा है—जिस प्रकार का इस कौंसिल का सगठन था उसमे यद्यपि इन चार वर्षों मे कोई बडा महत्त्वपूर्ण काम नही हुआ, पर व्यक्तिगत दृष्टि से मेरा यहा का कार्य अच्छी से अच्छी कोटि का कार्य माना गया।[2]

सेठ जी प्रथम व्यक्ति थे जिन्होने 16 मार्च, 1926 को कौंसिल के सामने यह प्रस्ताव रखा कि 'केन्द्रीय धारा सभाओ के नियमो मे इस प्रकार परिवर्तन किया जाए जिससे सदस्यों को हिन्दी या उर्दू मे भाषण कर सकने का अधिकार रहे।[3]

14 सितम्बर सन् 1926 को गोवध रोकने के लिए अपना प्रस्ताव रखते हुए सेठ जी ने कहा—दस वर्ष की उम्र के नीचे की दुधारू गाये, भैसे और खेती के जानवरो का वध रोका जाए। एक अन्य प्रस्ताव मे उन्होने कौंसिल से अनुरोध किया कि फौज को गोमास देने के लिए जो गोवध होता है, वह तत्काल बद किया

1 सेठ गोविन्ददास जीवनी, पृ० 51।

2. आत्म-निरीक्षण, भाग 2, पृ० 133।

3 आत्म-निरीक्षण, भाग 2, पृ० 137।

जाए।[1] गोवध-निषेध को कानूनी सरक्षण दिलाने का प्रयास करने वाले व्यक्तियों मे सेठ जी अग्रणी है।

सन् 1928 मे प्रथम वार सेठ गोविन्ददास जी सर्वसम्मति से महाकोशल प्रदेश काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष निर्वाचित हुए और तव से लेकर अव तक 20 वार आप इस पद को सुशोभित कर चुके है।

सन् 1930 मे गाधी जी ने नमक सत्याग्रह की घोषणा की किन्तु महाकोशल मे इसे जगल सत्याग्रह का रूप दिया गया। इस सत्याग्रह के सम्वन्ध मे प्रान्तीय कार्यकारिणी ने स्वयसेवको का एक दल जवलपुर से 12 मील की दूरी पर स्थित महारानी दुर्गावती की समाधि स्थल तक ले जाने का निश्चय किया और यह भी निश्चय किया गया कि स्वयसेवक उस चवूतरे को स्पर्श कर देश की स्वतन्त्रता के लिए अपनी जान भी दे देने की प्रतिज्ञा करे।

सेठ गोविन्ददास जी की अध्यक्षता मे स्वयसेवको का यह जलूस पैदल वीरागना महारानी दुर्गावती के समाधि-स्थल को रवाना हुआ। गोविन्ददास जी और उनके हजारो पैदल साथी वीरागना के चवूतरे पर पहुचे। सवसे पहले चवूतरे को स्पर्श कर गोविन्ददास जी ने प्रतिज्ञा की कि वे देश की स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राण दे देगे पर स्वातत्र्य सग्राम से अपना मुह नही मोडेगे। उनके पश्चात प० द्वारिकाप्रसाद जी मिश्र तथा अन्य स्वयसेवको ने प्रतिज्ञा की।

इस शपथ ग्रहण के पश्चात् जवलपुर मे एक विशाल सार्वजनिक सभा मे वैज्ञानिक ढग से अवैधानिक नमक बनाया गया। मन मे वन्दी वनाए जाने की आशा होते हुए भी सेठ जी अभी तक गिरफ्तार नही किए गए थे। सेठ जी ने लिखा है—"जब नमक वनाने के बाद भी हम गिरफ्तार न हुए तव मैं सोच मे पड गया। अव क्या किया जाए, यह हमारे सामने एक समस्या थी। जगल सत्याग्रह इतनी जल्दी हो नही सकता था, उसके लिए तैयारी की आवश्यकता थी और उस तैयारी तक हम अपनी गिरफ्तारी रुकी रहना ठीक न समझते थे, क्योकि मेरा मत था कि हमारी गिरफ्तारी से जगल सत्याग्रह तथा प्रान्त के समूचे सत्याग्रही मण्डल को अत्यधिक प्रोत्साहन मिलेगा।"[2]

अपने को तुरन्त गिरफ्तार कराने के उद्देश्य से सेठ जी ने एक विशाल सार्वजनिक सभा कर उसमे जब्त साहित्य को पढने का निश्चय किया। विशाल सार्वजनिक सभा का आयोजन हुआ और उसमे श्री सुन्दरलाल जी द्वारा लिखित 'भारत मे अग्रेजी राज्य' पुस्तक जनता के सामने पढी गई। ऐसी विराट सभा जवलपुर मे कभी न हुई थी। इस अवसर पर सेठ जी ने अपना मार्मिक भाषण देते हुए कहा—"जयसलमेर से मेरे पूर्वज सेठ सेवाराम जी आपके इस नगर मे

---

1 आत्म-निरीक्षण, भाग 2, पृ० 138।

2 वही, पृ० 195।

लोटा-डोर मात्र लेकर आए थे। उन्होने और उनके बाद के मेरे पूर्वजो ने इस नगर और प्रान्त की जनता, आप सबके सहयोग, सौहार्द और कृपा के कारण यहा हजारो नही, लाखो नही, करोडो कमाए। मुझे इस बात पर हर्ष है कि मेरा कोई भी पूर्वज आपके इस उपकार को विस्मृत न कर सका और जो धन उन्हे आपसे प्राप्त हुआ था उसे शक्ति भर आपकी सेवा मे लगाने का उन्होने प्रयत्न किया। परन्तु इस देश का सबसे बडा अभिशाप तो इस देश की पराधीनता है। मुझे खेद है कि गुलामी की इन जजीरो को तोडने के लिए मेरे पूर्व पुरुषो ने कोई प्रयत्न नही किया। मैं जानता हू इस प्रयत्न का पथ अत्यन्त भयावह है। मैं हू उसी पथ का पथिक और जो धन हमे इसी देश से मिला है वह सर्वस्व यदि इस देश की स्वाधीनता के यज्ञ मे स्वाहा होकर फिर से मेरे हाथ मे लोटा-डोर ही रह जाएगा तो मैं अपने को परम सौभाग्यशाली मानूगा।"[1]

सन् 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता-सग्राम मे ब्रिटिश सरकार की सहायता करने के कारण इनके परदादा सेठ खुशहाल चन्द को उस समय की सरकार ने हीरे से गडा सोने का एक कमरपट्टा दिया था। इस कमरपट्टे का जिक्र करते हुए सेठ जी ने कहा—मैं नही जानता कि मेरे परदादा का उस समय की सरकार को सहायता देने मे क्या उद्देश्य था। सभव है उन्होने यह मानकर सहायता दी हो कि यह सरकार देश के लिए लाभप्रद होगी, परन्तु बाद की घटनाओ ने सिद्ध कर दिया कि यह सरकार इस देश के सारे सकटो का कारण हुई। अत मेरे परदादा का यह कार्य एक पाप हुआ है। मैं इस पाप का प्रायश्चित्त करना चाहता हू और उस कमरपट्टे के पुश्त पर खुदवा देना चाहता हूँ कि जिस प्रकार सरकार को स्थापित करने का परदादा ने प्रयत्न किया उसी को उखाड फेकने का उनके परपोते ने।[2]

इस सभा के बाद सेठ जी को उसी दिन रात के लगभग तीन बजे गिरफ्तार कर लिया गया। आपके साथ ही उस समय प० रविशकर शुक्ल, श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र, प० माखनलाल चतुर्वेदी और श्री विष्णुदयाल भार्गव चार महानुभावो को भी गिरफ्तार कर लिया गया।

अपने महान नेता की गिरफ्तारी पर जबलपुर नगर की हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई सभी जातियो ने हडताल की।

जबलपुर के सेण्ट्रल जेल मे इन पाच महारथियो पर मुकदमा चलाया गया। सच्चे सत्याग्रहियो की भाति किसी ने भी मुकद्मे मे कोई पैरवी न की। विष्णु दयाल जी को एक वर्ष और शेष चारो नेताओ को दो-दो वर्ष के कठिन कारावास का दड मिला। गोविन्ददास जी को उनके भाषण के लिए जिस अश पर राजद्रोही ठहराया गया था, वह वही कमरपट्टे वाला अश था।

---

1 आत्म निरीक्षण भाग 2, पृ० 197।

2 सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रथ—स० डा० नगेन्द्र, पृ० 58।

गोविन्ददास जी के महान् साहस पर महाकौशल ने उन्हे 'कौशल-केसरी' की उपधि से विभूषित किया। उनके पूर्वजो को सरकार ने बडी-बडी पदवियाँ दी थी, पर गोविन्ददास जी को जनता की ओर से यह पद मिला।

सेठ जी के लिए जेल जीवन अत्यन्त कष्टसाध्य था। उन्हे हाथ से कोई काम करने की आदत न थी, यहा तक कि पानी तक वे हाथ से उठाकर न पीते थे, किन्तु जेल मे उन्हे सारा कार्य स्वय करना था। यहा स्नान करने मे सेठ जी को बडी परेशानी हुई। इससे पूर्व अपने हाथो उन्होने कभी स्नान नही किया था। जब वे स्नान करते तो एक नौकर उनके शरीर को मलता, साबुन लगाता था और दूसरा पानी डालता था। जेल मे पहले दिन जब उन्होने स्नान करना प्रारभ किया तो जिस लोटे से वे नहा रहे थे वह कई बार भटाभट उनके सिर मे लगा और नहाने के बाद उन्होने देखा कि कानो के पास अभी तक साबुन लगा है। इस घटना से उन्हे अपने आप पर बडी ग्लानि हुई। इस प्रकार की अपनी परतन्त्रता की शृखलाओ से मुक्ति पाने का उन्होने निश्चय किया और अपने से सम्बन्ध रखनेवाले प्राय सभी कार्य जैसे कपडा धोना, बर्तन साफ करना, कमरे मे झाडू लगाना और यहा तक कि पाखाना साफ करना भी उन्होने प्रारभ किया। प्रारभ मे इन कार्यो को करने मे उन्हे बडा कष्ट हुआ। पर वे बडे दृढ-प्रतिज्ञ थे अत धीरे-धीरे उन्होने इन सब चीजो को सीख लिया। अपने नित्य कर्मो मे जितने वे परतन्त्र थे उतने ही स्वावलबी हो गए।[1]

जेल-जीवन का अधिकाश समय सेठ गोविन्ददास जी ने अध्ययन मे बिताया। ससार के धर्म, दर्शन और साहित्य का उन्होने अध्ययन प्रारम्भ किया और उनका यह अध्ययन-क्रम सभी जेल-यात्राओ मे चलता रहा। बहुत दिनो से छूटा हुआ साहित्य-निर्माण का कार्य पुन प्रारम्भ हुआ। यही उन्होने 'कर्तव्य', 'प्रकाश' और 'नवरस' नामक नाटक लिखे।

गोविन्ददास जी करीब साढे दस महीने जेल मे रहे। वे जबलपुर, बुलढाना और दमोह जेल मे रखे गए। गान्धी-इरविन पैक्ट के बाद सारे राजनैतिक कैदी छोड दिए गए। गोविन्ददास जी उन दिनो दमोह जेल मे थे। उन्हे दमोह जेल से मुक्त किया गया और जबलपुर मे उनका अभूतपूर्व स्वागत हुआ।

सन् 1932 मे गाधी जी के द्वितीय गोलमेज परिषद् से लौटने पर फिर से सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ। 4 जनवरी सन् 1932 को गाधी जी को गिरफ्तार कर लिया गया। उन दिनो सेठ गोविन्ददास जी मध्य प्रान्तीय कृषक जाच समिति के अध्यक्ष थे।

गाधी जी की गिरफ्तारी पर उन्हे बधाई देने के लिए 5 जनवरी को जबलपुर मे एक सार्वजनिक सभा बुलाई गई। इस सभा के सम्बन्ध मे पुलिस को

---

1 सेठ गोविन्ददास जीवनी, पृ० 69।

आदेश था कि भाषण प्रारम्भ होते ही नेताओ को गिरफ्तार कर लिया जाए और लाठी चार्ज द्वारा सभा को भग कर दिया जाए। इस स्थिति मे प० द्वारिकाप्रसाद मिश्र ने सलाह दी कि बिना भाषण के ही मूक सभा को चलाया जाए। सर्दी के मौसम मे यह मूक सभा, जिसमे जबलपुर के हजारो नागरिक सम्मिलित थे, चार दिन तक चलती रही। एक भी व्यक्ति सभास्थल छोडकर नही गया। जबलपुर की यह सार्वजनिक सभा देश के इतिहास मे अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

पाचवे दिन साय काल 5 बजे सेठ जी ने अपने भाषण द्वारा सभा की स्तब्धता को भग किया। अपने भाषण मे उन्होने कहा—"सन् 30 के सत्याग्रह मे मैंने जेल जाने का निर्णय किया था, इस बार प्राणो के उत्सर्ग का भी मेरा निर्णय है। सरकार जो चाहे मेरा कर सकती है। मै रहू या न रहू, मेरे बाद कर-बन्दी का आन्दोलन चलाया जाए। मेरे किसान मेरे पिता जी को लगान न दे। यदि मैं मारा न जाकर जेल भेजा गया और कभी जेल से निकला तथा उस समय मैंने यदि सुना कि पिता जी ने सरकारी जमा अदा कर दी तो फिर मैं राजा गोकुल दास महल मे न रहूगा।"[1]

भाषण समाप्त होते ही गोविन्ददास जी, प० द्वारिकाप्रसाद जी मिश्र, लक्ष्मण सिह चौहान तथा हीरालाल बाबा गिरफ्तार कर लिए गए। शेष सभा पर भयकर लाठी प्रहार हुआ। इस बार गोविन्ददास जी को एक वर्ष का कठिन कारावास का दड मिला तथा उन पर दो हजार रुपया जुर्माना किया गया। इस बार वे नागपुर जेल मे रखे गए।

जिन दिनो आप जेल मे थे उन्ही दिनो आपकी पत्नी का स्वास्थ्य अत्यधिक खराब हो गया। पत्नी की अस्वस्थता का समाचार पाकर सेठ जी व्याकुल हो उठे, सरकार भी कुछ शर्तो पर उन्हे छोडने के लिए तैयार हो गई। एक ओर मृत्यु-शय्या पर पडी हुई पत्नी का प्रेम था और दूसरी ओर सिद्धान्तो की हत्या। इस मानसिक सघर्ष मे वे तिलमिला उठे। बहुत सोच-विचार के पश्चात् सिद्धान्तो की रक्षा के लिए उन्होने शर्तो पर छूटना अस्वीकार कर दिया। यह है सिद्धान्तो के प्रति निष्ठा। सरकार उनके दृढ सकल्प से पहले ही परिचित हो चुकी थी, अत उसने अब उन्हे बिना शर्त के ही छोड दिया। उन्हे एक वर्ष की सजा थी, पर वे 6 महीने मे ही छोड दिए गए। इस जेल यात्रा मे उन्होने 'हर्ष', 'कुलीनता' 'विश्वासघात' और 'स्पर्धा' चार नाटक लिखकर पूर्ण किए।

सेठ गोविन्ददास जी को जेल मे ही ज्ञात हो गया था कि उनके पिता ने किसानो से बडी सख्ती के साथ लगान वसूल किया है और सरकारी जमा भी पटा दी है। अत अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार उन्होने 'राजा गोकुलदास महल' मे रहने से इन्कार कर दिया। वे अपने कौटुम्बिक मन्दिर मे ठहरे और वही से अपनी पत्नी को देखने जाते थे।

---

1 आत्म निरीक्षण, भाग 2, पृ० 273।

26 जनवरी सन् 1933 के स्वतन्त्रता-दिवस का नेतृत्व सेठ जी ने किया। उन्हे उसी समय गिरफ्तार कर लिया गया और तीसरी बार उन्हे एक वर्ष के कठिन कारावास का दड मिला तथा दो हजार रुपया जुर्माना किया गया। इस एक वर्ष के कारावास मे उन्होने 6 नाटक लिखे। इन नाटको के नाम है—'विकास', 'दलित कुसुम', 'वडा पापी कौन', 'सिद्धान्त स्वातन्त्र्य' और 'ईर्ष्या'। सन् 1934 के जनवरी मास मे सेठ जी को जेल से मुक्त किया गया। उस समय सत्याग्रह सग्राम के वन्द करने की चर्चा चल रही थी।

इसी वर्ष असेम्वली के चुनाव होने थे। सेठ जी के घोर परिश्रम से महाकोशल मे सर्वत्र काग्रेस विजयी हुई। वे स्वय भी केन्द्रीय असेम्वली मे निर्विरोध चुन लिए गए और उन्हे असेम्वली की काँग्रेस पार्टी का खजाची वनाया गया।

सन् 1939 के मार्च के महीने मे जवलपुर के निकट स्थित ऐतिहासिक ग्राम त्रिपुरी मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ। सेठ गोविन्ददास जी इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष थे और इसकी सफलता का श्रेय आपके कुशल नेतृत्व को ही था। त्रिपुरी काग्रेस अधिवेशन काग्रेस के इतिहास मे अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। इस अधिवेशन की सवसे आकर्षक वस्तु थी काग्रेस के सभापति का वावन हाथियो के रथ मे निकलने वाला जुलूस। अधिवेशन के अन्तिम दिन स्वागत समिति को धन्यवाद देते हुए श्रीमती सरोजिनी नायडू ने कहा—"गोविन्ददास के प्रवन्ध के सामने हरिपुरा का सरदार वल्लभ भाई का प्रवन्ध भी तुच्छ था।"[1]

सन् 1940 मे व्यक्तिगत सत्याग्रह करने के कारण गोविन्ददास जी को चौथी वार गिरफ्तार किया गया। इस वार भी गोविन्ददास जी को एक वर्ष की सजा दी गई किन्तु उन्हे अन्यत्र न भेजकर जबलपुर जेल मे ही रखा गया। यह समय भी उन्होने पढने-लिखने मे विताया। इस वार अस्वस्थता के कारण सेठजी 8 माह के पश्चात् छोड दिए गए।

सन् 1942 मे 'भारत छोडो' आन्दोलन प्रारभ हुआ। सभी प्रमुख राजनीतिक नेता वन्दी बना लिए गए। सेठ गोविन्ददास भी अपने अन्य काग्रेसवादी साथियो के साथ वन्दी वनाए गए और इस वार वे जबलपुर, नागपुर तथा वेलोर जेल मे रखे गए। जिन दिनो वे जेल मे थे उन्हे मालूम हुआ कि उनके पिता का स्वास्थ्य वहुत विगड गया है और वे सख्त वीमार है। सरकार उन्हे कुछ शर्तो पर छोडने के लिए तैयार थी किन्तु उन्होने शर्त पर छूटना स्वीकार न किया, अपितु पुलिस के सरक्षण मे अपने पिता को देखने गए।

लगभग 3 वर्ष का जेल-जीवन बिताने के वाद अप्रैल 1945 मे गोविन्द दास जी को वेलोर जेल से मुक्त किया गया। यह सेठ जी की अन्तिम जेल-यात्रा थी।

---

1 आत्म-निरीक्षण, भाग 2, पृ० 407।

इस प्रकार उन्हे पाच बार जेल-यात्रा करनी पडी और उन्होने अपने जीवन के 8 वर्ष जेल की कोठरियो मे विताए ।

15 अगस्त सन् 1947 को भारत पराधीनता की शृखलाओ से मुक्त हुआ । उनकी तपस्या फलवती हुई और उनके जीवन की चिरसचित अभिलाषा पूर्ण हुई । स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए सेठ जी के महान् त्याग और बलिदान ने उन्हे अखिल भारतीय नेताओ की पक्ति मे लाकर खडा कर दिया ।

दिसम्बर 1946 मे डा० राजेन्द्रप्रसाद की अध्यक्षता मे सविधान सभा का निर्माण हुआ । सेठ गोविन्ददास जी इस सभा के सदस्य मनोनीत हुए । सविधान सभा के सदस्य के रूप मे भारतीय गणतन्त्र के स्वरूप-निर्धारण मे उन्होने अपना अपूर्व योगदान किया । सविधान मे निदेशात्मक सिद्धान्त के रूप मे 'गोवध निषेध' की धारा जुडवाने मे उन्होने अथक परिश्रम किया । हिन्दी को राष्ट्रभाषा पद पर आरूढ करने के लिए सविधान सभा के सदस्य के रूप मे आपने जो परिश्रम किया वह कभी भुलाया नही जा सकता । आपके अनवरत परिश्रम के फलस्वरूप ही सविधान मे यह व्यवस्था की गई कि सन् 1965 से देश की राज-भाषा हिन्दी होगी । हिन्दी को उसका उचित गौरवपूर्ण स्थान दिलाने के लिए आप अब भी कटिबद्ध है ।

सन् 1950 मे भारतीय प्रतिनिधि मडल के नेता के रूप मे कामनवेल्थ पार्लियामेन्टरी एसोसिएशन मे भाग लेने के लिए आप न्यूजीलैण्ड गए और दूसरी बार सन् 1952 मे भारतीय प्रतिनिधि के रूप मे कनाडा गए । इस बार प्रतिनिधि मडल के नेता लोकसभा के अध्यक्ष स्व० श्री मावलकर थे । अपनी विदेश-यात्रा को भी आपने भारतीय सस्कृति का राजदूतत्व ही माना और विदेशो मे जहा-जहा भी आप गए वहा-वहा भारतीय सस्कृति के मर्मज्ञ के रूप मे आपका सुन्दर स्वागत हुआ ।[1]

सन् 1952 से आप लोकसभा के सदस्य है । आप सदैव अपने पुराने क्षेत्र जबलपुर से ही चुनाव लडते है, अपनी लोकप्रियता के कारण ही आपको कभी चुनाव-क्षेत्र के परिवर्तन की आवश्यकता नही हुई । सन् 1967 के चुनाव मे आपने अपने निकटतम प्रतिद्वन्द्वी जनसघी उम्मीदवार को 63,000 मतो से परास्त किया । इस समय सेठ जी ससद मे सबसे पुराने सदस्य है ।

दूसरे, तीसरे और चौथे आमचुनाव के पश्चात् लोक सभा के अध्यक्ष के निर्वाचन होने तक आप ही लोक सभा के अध्यक्ष पद को सुशोभित करते रहे है ।

सेठ गोविन्ददास का सम्पूर्ण राजनीतिक जीवन अत्यन्त विशुद्ध रहा है । यह कहना अत्युक्ति न होगी कि राजनीति के पक मे फसकर भी आप पकज के समान निर्लिप्त रह सके है ।

---

1 सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रथ—स० डा० नगेन्द्र, पृ० 63 ।

राजनीतिक जीवन के समान ही सेठ गोविन्ददास का सामाजिक जीवन भी अत्यन्त कर्मसकुल रहा हैं। वास्तव मे राजनीतिक एव सामाजिक कार्यो की कोई स्पप्ट विभाजन-रेखा नही खीची जा सकती।

सेठ जी के सामाजिक कार्य उनके राजनीति मे प्रवेश से पूर्व ही प्रारभ हो गए थे और प्रवेश के उपरान्त तो उनकी सक्रियता और अधिक बढ गई। उनके प्रारभिक सामाजिक कार्य माहेश्वरी समाज और माहेश्वरी महासभा के समाज-सुधारो के प्रस्तावो को अपने घर मे पालन कराने तक ही सीमित रहे। सेठ जी कई बार माहेश्वरी महासभा के अध्यक्ष निर्वाचित हुए है और उन्होने इस समाज मे प्रचलित जातिगत सकीर्णता को मिटाने का भरसक प्रयास किया है।

राजा गोकुलदास-कुटुम्ब की ओर से दान और सदाव्रत के रूप मे बहुत बडी राशि का नित्य ही वितरण होता रहता था, सेठ जी ने अल्प वय मे ही इस सहायता को एक नवीन रूप प्रदान किया। उन्होने इस सहायता को शालाओ मे पढने वाले विद्यार्थियो की छात्रवृत्ति एव निराश्रय विधवाओ की सहायता का रूप दे दिया। अपनी दिवगत बहन के नाम पर बहुत पहले गोविन्ददास जी ने एक राजकुमारी बाई अनाथालय स्थापित किया था जो आज भी चल रहा हैं। इसके साथ ही आर्थिक सकट-ग्रस्त साहित्यिको एव मित्रो की सहायता भी सेठ जी ने समय-समय पर की हैं। जिनको भी उन्होने सहायता दी, उनमे से अधिकाश को आखिर तक यह विदित नही हो सका कि यह सहायता उन्हे कहा से प्राप्त हो रही है।[1]

सन् 1922 मे जबलपुर मे प्लेग का भयकर आक्रमण हुआ, इस अवसर पर प्लेग पीडितो की सेठ जी ने अकथनीय सेवा की। उस समय जो प्लेग रिलीफ कमेटी बनी थी, आप उसके मत्री थे और इस कमेटी ने सहायता के लिए नियुक्त सरकारी सगठन से भी अधिक कार्य किया।

सन् 1926 मे नर्मदा की भीषण बाढ से पीडित किसानो को आपने दुर्गावती आश्रम की योजना के अन्तर्गत सूत कातने का कार्य देकर उनकी आर्थिक सहायता की। इसी प्रकार सन 1933 मे भयकर भूकम्प से पीडित बिहार की जनता के लिए आपने अपने प्रान्त मे पर्याप्त धन-सग्रह किया और सेवा-कार्य के लिए स्वय भी बिहार गए। भूदान-यज्ञ से सम्बन्धित कार्यो के सिलसिले मे सेठ जी ने अनेक पैदल यात्राएँ की है। वे "महाकोशल मे लगभग पचास हजार एकड जमीन एकत्रित कर चुके है, जिसमे तीस हजार एकड उनके जिले जबलपुर मे एकत्रित हुई है। . फिर गोविन्ददास जी ने केवल दूसरो से जमीन नही ली है, पहले अपने घर की जमीन का छठा भाग देने के बाद उन्होने अन्यो से भूमि मागी।"[2]

---

1 सेठ गोविन्ददास अभिनदन ग्रथ, पृ० 84।

2. वही, पृ०86।

सम्मान

सेठ जी की राजनीतिक, साहित्यिक तथा सामाजिक सेवाओ के फलस्वरूप उन्हे विभिन्न उपाधियो से विभूषित किया गया तथा अनेक महत्वपूर्ण पदो पर भी उन्हे प्रतिष्ठित किया गया। उनकी रचनाओ पर राजकीय पुरस्कार भी प्रदान किए गए और जनता ने भी उन्हे अपना सच्चा हितैषी मानकर उनका सम्मान किया।

सन् 1930 मे नमक सत्याग्रह के समय इनके महान् साहस से मुग्ध होकर महाकोशल की जनता ने इन्हे 'कोशल-केसरी' की उपाधि से विभूषित किया।[1] सन् 1923 मे आप केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्य चुने गए थे, तब से लेकर अब तक आप निरतर केन्द्रीय-प्रतिनिधि सभा मे अपना स्थान बनाए हुए हैं। सन् 1952 से आप लोकसभा के सदस्य है। दूसरे, तीसरे और चौथे आम चुनाव के बाद अध्यक्ष के चुनाव होने तक आप लोकसभा के अध्यक्ष रहे। 20 वर्ष तक आप मध्य प्रदेश काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष रहे और सन् 1939 मे त्रिपुरी काग्रेस के स्वागता-ध्यक्ष। दो बार अखिल भारतीय काग्रेस कार्यकारिणी समिति के सदस्य चुने गए और चार बार प्रदेश की प्रान्तीय राजनीतिक परिषदो के।[2]

सन् 1949 मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि प्रदान की। सन् 1962 मे भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने उन्हे 'पद्मभूषण' की उपाधि से अलकृत किया। सन् 1963 मे जबलपुर विश्वविद्यालय ने उन्हे 'एल-एल० डी०' (डाक्टर आफ ला) की उपाधि से विभूषित किया। सन् 1956 मे उनकी षष्ठी-पूर्ति के अवसर पर सारे देश मे और कुछ स्थानो पर विदेशो मे भी उनकी हीरक जयन्ती मनाई गई। हीरक जयन्ती का केन्द्रीय समारोह नई दिल्ली मे स्व० मैथिलीशरण गुप्त की अध्यक्षता मे आयोजित किया गया। इस समारोह मे तत्कालीन भारत के प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने डा० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित 'सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रथ' उन्हे अर्पित किया। 8 दिसम्बर, 1966 को राष्ट्रपति भवन मे (राष्ट्रपति की अस्वस्थता के कारण) उपराष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन की अध्यक्षता मे आयोजित एक समारोह मे सेठ जी का अभि-नदन किया गया और उन्हे श्री वाकेबिहारी भटनागर द्वारा सपादित 'राष्ट्र और राष्ट्र भाषा के अनन्य सेवक डा० सेठ गोविन्ददास' नामक पुस्तक भेट की गई।

दो बार वे मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष बने है। सन् 1948 मे अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष सेठ जी ही बनाए गए थे और यह अधिवेशन मेरठ मे हुआ था। उनके सभापतित्व-काल मे ही हिन्दी को राजभाषा के गौरवपूर्ण पद पर आसीन होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सन्

1 सेठ गोविन्ददास (जीवनी), पृ० 67।

2 सेठ जी से प्रत्यक्ष वार्ता के आधार पर।

1964 मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के शासन निकाय के वे अध्यक्ष बने और सन् 1965 मे विशेष हिन्दी सम्मेलन के अध्यक्ष।

जुलाई सन् 1964 मे, हिन्दी सलाहकार समिति की उपसमिति जो हिन्दी भाषी राज्यो मे हिन्दी की प्रगति देखने के लिए नियुक्त की गई थी, सेठ गोविन्ददास जी उसके अध्यक्ष मनोनीत हुए थे।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के अधिवेशनो मे दो बार सभापति बनाए गए। ससदीय हिन्दी परिषद् के कई वर्षो तक अध्यक्ष रहे। इसके अतिरिक्त भारत गो-सेवक समाज, अखिल भारतीय माहेश्वरी महासभा के भी आप सभापति रह चुके है।[1]

सेठ जी के नाटको तथा अन्य रचनाओ पर पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। जैसे—'प्रकाश' नाटक पर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा प्रदत्त रत्नकुमारी पुरस्कार, 'गरीबी या अमीरी' पर हिन्दुस्तानी एकेडमी द्वारा प्रदत्त पुरस्कार, 'स्मृतिकण' और 'काश्मीर की एक झलक' पर उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रदत्त शासकीय पुरस्कार तथा 'आत्म-निरीक्षण' पर मध्य प्रदेश सरकार ने शासकीय पुरस्कार प्रदान किया है।

सेठ गोविन्ददास जी की हिन्दी सेवा के उपलक्ष्य मे उत्तर प्रदेश सरकार ने सन् 1967 मे उन्हे 10,000 रु० का पुरस्कार प्रदान किया है। किसी भी अन्य व्यक्ति को हिन्दी सेवा के निमित्त इतना बडा पुरस्कार कभी नही मिला।

---

1 सेठ जी से हुई प्रत्यक्ष वार्ता के आधार पर।

अध्याय 2

व्यक्तित्व-विश्लेषण

व्यक्तित्व एक इकाई है। उसे अन्तर्वर्ती और बहिर्गत पक्षो मे विभाजित इसलिए नही किया जा सकता कि दोनो एक-दूसरे के पूरक है, कार्य-कारण भी। अध्ययन की सुविधा के लिए उसके आकृति और प्रकृति, व्यवहार और स्वभाव अथवा चारित्र्य और शील-विषयक अन्तरग तथा बहिरग भेद किए जा सकते है। व्यक्तित्व का बाह्य पक्ष आकृति, वेशभूषा, रहन-सहन, खान-पान, व्यसन-व्यवहार, हास-परिहास, बोल-चाल आदि से सम्बन्ध रखता है। उसका आन्तरिक पक्ष स्नेह-सद्भाव, विविध मनोवृत्तिया तथा स्वभाव आदि से सम्बद्ध है। मन पर व्यक्तित्व की जो छाप समग्र रूप मे पडती है, वह प्राय अविभाज्य होती है।[1] यहा सेठ जी के व्यक्तित्व का विश्लेषण इसी दृष्टिकोण से किया जा रहा है।

बाह्य पक्ष

आकृति एव वेषभूषा

गौर वर्ण, मध्यम कद, मोटे फ्रेम के चश्मे के भीतर से झाकती हुई दो देदीप्यमान आखे, वार्धक्य की छाया से आक्रान्त होते हुए भी सुन्दर मुख मडल, भारी किस्म का पर स्वस्थ शरीर, सिर पर गाधी टोपी, सफेद खद्दर का लबा कुर्ता और दुग्ध धवल धोती, पैरो मे पप शू तथा कलाई पर चमचमाती घडी। यह है सेठ गोविन्ददास के व्यक्तित्व का बाह्य चित्रण। सेठ जी के बाह्य-दर्शन मे कुछ ऐसा आकर्षण है कि दर्शक पर उनके व्यक्तित्व की छाप पडे बिना नही रह सकती। अपनी इस साधारण वेशभूषा मे भी वे असाधारण प्रतीत होते है।

दिनचर्या

सेठ गोविन्ददास की दिनचर्या बडी व्यवस्थित है। सूर्योदय से पहले उठना, शौचादि से निवृत्त हो घण्टे पौन घण्टे चहल-कदमी करना, उसके बाद स्नान-पूजन कर ठीक समय मन्दिर मे दर्शन करना (मन्दिर मे दर्शन का कार्य केवल जबलपुर

---

1 मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य, पृ० 57।

रहने पर ही होता है), भोजन के समय भोजन कर, वाकी के समय मे से एक एक क्षण का कार्य मे उपयोग कर, रात्रि मे दस वजे के पहले सो जाना, इसमे वडी कठिनाई से ही कभी अन्तर पडता है। दौरे मे भी यह कार्यक्रम इसी भाँति चलता है, यहा तक होता है कि रेल के डिब्बे तक मे वे चहल-कदमी करने का प्रयत्न करते है। चुनाव अभियान अथवा किसी अन्य असाधारण समय की वात ही दूसरी है, अन्यथा उनकी दिनचर्या मे कभी बाधा नही पडती। निश्चित किये हुए समय पर निर्दिप्ट स्थान पर न पहुचते और दूसरो का समय नष्ट करते हुए शायद ही किसी ने उन्हे देखा हो। इसी प्रकार बिना कार्य के दूसरे के द्वारा अपना समय भी नष्ट कराना उन्हे स्वीकार नही। जो समय नियुक्त कर उनसे मिलने जाता है, उसे यदि मुलाकात की प्रतीक्षा मे समय नप्ट नही करना पडता, तो आवश्यकता से अधिक समय उसे मिलता भी नही। वात पूरी होने के वाद यदि वह स्वय नही उठता तो गोविन्ददास जी उठकर उससे पूछ लेते है—"कहिए और तो कोई काम नही है ?" हा, उनका आचार-व्यवहार अवश्य इतना शिष्ट होता है कि उनके इस प्रकार के वर्ताव से भी किसी को अप्रसन्नता नही होती।[1] घडी के काटे की तरह चलना उनके लिए एक स्वाभाविक वात हो गई है। इसीलिए प्रत्येक दिन का उनका कार्य उसी दिन निपट जाता है और कोई भी कार्य स्थगित नही रहता।[2]

खान-पान तथा व्यसन

व्यक्ति के खान-पान के अनुरूप ही प्राय उसके स्वभाव का निर्माण होता है और चूकि व्यक्तित्व-विश्लेपण मे स्वभाव-विश्लेषण का अपना एक विशिष्ट महत्व है अत व्यक्तित्व-विवेचन के प्रकरण मे खान-पान का उल्लेख अनिवार्य है। वल्लभ कुल सप्रदाय मे दीक्षित होने के कारण तथा कुटुम्ब का वातावरण धार्मिक भावनाओ से ओत-प्रोत होने के कारण इनका परिवार प्रारभ से ही निरामिप भोजी रहा है। निरामिष भोजी होने पर भी इनके परिवार का खान-पान सादा तो कभी भी नही रहा। असहयोग आन्दोलन मे सम्मिलित होने से पूर्व सेठ जी के खान-पान मे सादगी नाम की किसी वस्तु की कल्पना भी नही की जा सकती थी। हो भी कैसे ? राजा गोकुलदास महल मे उनके इकलौते पौत्र का खान-पान और पहनावा सादा कैसे रह सकता था ? सेठ जी ने लिखा है—मेरे भोजन मे सदा नाना व्यजन रहते और वस्त्र तो अधिक से अधिक मूल्यवान। उस समय के रईसो के घरो मे खान-पान और वेश-भूषा की सादगी शायद सभव ही न थी, खास कर बाल्यावस्था और युवावस्था मे।[3] असहयोग आन्दोलन मे दीक्षा लेने के पश्चात् सेठजी के

---

1 सेठ जी के सम्पर्क से ज्ञात।

2 सेठ गोविन्ददास (जीवनी), पृ० 99।

3 आत्म-निरीक्षण, भाग 1, पृ० 47।

जीवन मे मादगी आई और उसी के अनुरूप उनका खान-पान भी सादा हो गया। उन्होंने लिखा है—खाने की चीजें भी मैंने घटाई। पहले उनकी सख्या सात की, फिर पाच और अन्त मे तीन।[1] उनका जीवन नितान्त सादा और निर्व्यसनी है, पान तक खाने की उन्हे आदत नही, और सिगरेट तक को उन्होने नही छुआ। हर दृष्टि से वे पूरे 'प्योरिटन' है। वे चाय के आदी नही है। विदेशो मे भ्रमण के समय उन्होंने आइस क्रीम तक नही खाया है।[2]

रचना-प्रक्रिया

सेठ गोविन्ददास के अत्यन्त कर्म-सकुल जीवन को देखते हुए यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि राजनीति मे आकठ डूबा हुआ यह व्यक्ति साहित्य-निर्माण के लिए समय कहा से निकालता होगा और इसकी रचना-प्रक्रिया कैसी होगी? इन प्रश्नो के उत्तर सेठ जी के ही शब्दो मे देखिए—मै कभी भी लिखता हू, प्रातःकाल, मध्याह्न, सध्या या रात्रि कोई भी समय मेरे लिए प्रतिकूल नही रहता, परन्तु जेल के सिवा रात्रि को मैंने बहुत कम लिखा है। आन्तरिक प्रेरणा मेरे लेखन मे प्रधान वस्तु रहती है। अध्ययन और अवलोकन का भी उस पर प्रभाव पडता है। पहले कोई विचार मेरे मन मे आता है। उस विचार पर धीरे-धीरे चिंतन-मनन होकर कथा बनती है। कथा बिना पात्रो के नही हो सकती। तब पात्रो का चरित्र-चित्रण आता है। यह चरित्र-चित्रण बिना सघर्ष के सम्भव नही। सघर्ष दोनो प्रकार का आवश्यक है। बाह्य सघर्ष और आन्तरिक सघर्ष, बाह्य सघर्ष मे दो राष्ट्रो, दो समुदायो, दो व्यक्तियो, अथवा दो घटनाओ आदि का सघर्ष हो सकता है। आन्तरिक सघर्ष व्यक्ति के भावो और विचारो का सघर्ष होता है। यही ललित साहित्य का प्राण है। मनोविज्ञान को यही अपने कार्य का अवसर मिलता है। मेरे हाथो मे कम्प होने की वजह से अब मैं अपने नाटक बोलकर लिखवाता हू। कई लोगो को इसमे असुविधा होती है, परन्तु मुझे इस प्रकार के साहित्य-सृजन मे उल्टी सुविधा हुई है। जो कुछ मैं लिखवाता हू लिखवाते समय उस लेखन के दृश्य मेरे सामने घूमते रहते है।[3]

सेठ जी का कार्यक्रम अत्यन्त व्यस्त रहता है। उन्हे अवकाश बिल्कुल नही मिल पाता, लेकिन जब भी उन्हे थोडा अवसर मिलता है, चाहे वे शेव कर रहे हो, भोजन कर रहे हो अथवा लेटे हो, वे अपने नये नाटको के सवाद बोलने लगते है। सवाद बोलते समय वे पात्रो के अनुरूप वाणी मे उसका अभिनय भी करते जाते

1 आत्म निरीक्षण, भाग 2, पृ० 4।

2 सेठ जी से हुई प्रत्यक्ष वार्त्ता से ज्ञात।

3 मेरी सृजन साधना—सेठ गोविन्ददास, राष्ट्र और राष्ट्रभाषा के अनन्य सेवक स० बाके बिहारी भटनागर, पृ० 147।

है। उनका सेक्रेटरी उनके उच्चरित शब्दो को ज्यो का त्यो लिपिवद्ध करता जाता है और लिखे हुए अश को उन्हे सुनाता चलता है। दिन भर मे नाटक का जितना अश लिखा दिया जाता है, कार्य समाप्त करने से पहले प्रारभ से वहाँ तक पुन. पढा जाता है। इस प्रकार लिखाते-लिखाते ही उसका दो वार वाचन हो जाता है। नाटक समाप्त करने के बाद सम्पूर्ण नाटक तीसरी बार पढा जाता है और छपने के लिए भेजने से पहले उसमे अनेक परिवर्तन-परिवर्द्धन होते है। सेठ जी अपने नाटको मे अत तक थोडा वहुत परिवर्तन करते रहते है। ये परिवर्तन प्राय शब्द-रचना अथवा भाव-निर्देशन के लिए सकेत के रूप मे होते है। नाटको की कथावस्तु प्राय अपरिवर्तित ही रहती है। हाँ, किसी-किसी नाटक मे उन्होने कथावस्तु मे भी परिवर्तन कर दिया है, जैसे 'दलित कुसुम'। इस नाटक के पूर्व कथानक मे कुसुम अपना शील भग करने वाले अत्याचारी को कुछ भी न कहकर स्वय आत्महत्या करने के लिए जाती है परन्तु वाद मे जो परिवर्तन किया गया है उसमे वह अत्याचारी को छुरा घोपकर मार देती है और फिर जाती है।[1]

व्यवहार

सेठ जी का व्यवहार अत्यन्त शिष्ट है। उनकी मृदुभापिता, मिलनसारिता तथा अत्यधिक स्नेह-प्रदर्शन की प्रवृत्ति मिलने वालो के मन पर व्यापक प्रभाव डालती है। उनसे मिलने वाला थोडी ही देर मे उनकी आत्मीयता प्राप्त कर लेता है और यही नही, अपनी सरलता के कारण सर्वथा अपरिचित व्यक्ति के सामने भी वे अपने हृदय की गुप्त से गुप्त वाते कह जाते है जिसके कारण कई वार उन्हे धोखा भी खाना पडा है। प्रधानमत्री से लेकर सामान्य ग्रामीण तथा उनके नौकर-चाकर तक उनका अपनत्व प्राप्त कर सकते है। उनके हृदय मे उच्च पद या धन के प्रति आत्म-समर्पण की भावना नही है इसीलिए उनकी शालीनता, शिष्टाचार तथा नम्रता उच्च पद पर प्रतिष्ठित या धनवान व्यक्तियो के सम्मुख अन्य रूप मे प्रकट नही होती। उनकी ये उच्च मानवीय प्रवृत्तियाँ सबके लिए एक समान होती है।[2]

गोविन्ददास जी अपने नौकरो को कभी नौकर नही समझते। वे उन्हे सदैव अपना सहायक तथा परिवार का अग समझते है और जव कभी उन्हे तकलीफ मे देखते है तो उसे दूर करने का यत्न करते है। उनकी मान्यता है कि परिचारक गण सतत रूप से साथ रहते-रहते परिवार के अग बन जाते है और उन्हे उनके इस अधिकार से वचित करना न केवल उनके साथ अन्याय होगा, वरन् अनैतिकता भी कहलाएगी।[3]

---

1 'दलित-कुसुम' की पूर्व और सशोधित प्रति के आधार पर।

2 सेठ जी के सम्पर्क से ज्ञात।

3 राष्ट्र और राष्ट्र-भापा के अनन्य सेवक सेठ गोविन्ददास—स० बाकेबिहारी भटनागर, पृ० 43।

सेठ जी अत्यन्त नम्र है। एक धनी परिवार मे जन्म लेने तथा 'कोशल-केसरी' कहे जाने पर भी उन्हे अभिमान ने छुआ तक नही है। उनके हिन्दी पत्रो का अन्त सदैव 'कृपा रखिए', 'कष्ट के लिए क्षमा कीजिए', 'यथा-योग्य सेवा लिखते रहिए' आदि से होता है और इनका प्रयोग वे छोटे से छोटे व्यक्ति के लिए भी किया करते है।

सेठ जी को वैष्णव-सस्कार उत्तराधिकार के रूप मे प्राप्त हुआ है। उच्च चारित्रिक निर्माण की विशेषताओ से युक्त होते हुए भी इस धार्मिक सप्रदाय मे कुछ रूढिवादिता जैसे बाल विवाह, पर्दा प्रथा, छूत-छात आदि तथा अन्धविश्वासो जैसे वाह्याडबर, कर्मकाड तथा पडा-पुरोहितो को दान-दक्षिणा आदि का समावेश हो गया है। सेठ जी इन रूढियो तथा अन्ध विश्वासो से मुक्त है। प्राचीनता के उपासक होते हुए भी युग के अनुरूप नवीन परिवेश मे अपने आपको बदलने के लिए वे सदा प्रस्तुत रहते है। अस्पृश्यता को वे एक अभिशाप मानते है तथा जाति के आधार पर ऊँच-नीच का भेद उन्हे स्वीकार नही। पडा-पुरोहितो को वे दान देने के विरुद्ध है क्योकि इससे श्रम का महत्त्व घटता है। उनका विचार है कि इससे उनमे निकम्मापन आता है और दूसरो के श्रम पर परावलबी बनकर जीवित रहने की भावना का विकास होता है। सेठ जी के न चाहते हुए भी यह कार्य उनके घर मे अब भी होता है क्योकि उनकी पत्नी प्राचीन परपराओ मे पली है और उन सस्कारो को छोड सकना उनके लिए सभव नही है। व्यर्थ पारिवारिक क्लेश की आशका से वे यह सब कुछ देखते हुए भी अच्छा-बुरा कुछ भी नही कहते। इस प्रकार परिवार के प्रति भी उनका व्यवहार अत्यन्त शालीन है और किसी भी दशा मे वे शिष्टाचार के नियमो का उल्लघन नही करते।

व्यवस्था-प्रियता

सेठ जी व्यवस्था-प्रिय व्यक्ति है। किसी भी प्रकार की अव्यवस्था उन्हे बिल्कुल पसन्द नही। उनके सोने का कमरा, ड्राइगरूम, अध्ययन कक्ष उनकी व्यवस्था-प्रियता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। कोई भी वस्तु इधर-उधर पडी नही मिलेगी। सब वस्तुएँ अपने निश्चित स्थान पर कलापूर्ण ढग से सुसज्जित दिखाई पडती है। उनकी व्यवस्था-प्रिय प्रकृति से सम्बद्ध एक छोटी-सी घटना है अपने अध्ययन के लिए सेठ जी से कुछ अप्राप्य पुस्तको का एक बडल मैं घर लाया था। पुस्तके एक अखबार मे बधी थी और ऊपर एक सफेद कागज पर उन सब पुस्तको के नाम और उनकी पृष्ठसख्या लिखी थी। अपना कार्य समाप्त करने के बाद उन पुस्तको को वैसे ही बाध मैं सेठ जी को वापस करने गया। उन पुस्तको मे से एक पुस्तक भूल से घर रह गई थी और उसका ध्यान तब आया जब मैं सेठ जी के यहाँ पहुँचा। पुस्तको का बडल सेठ जी को देते हुए मैंने कहा कि इसमे एक पुस्तक नही है, वह घर पर रह गई है कल ला दूगा। मेरी बात सुनते ही सेठ जी बोल पडे—"I am very methodical"।

आप इन पुस्तको को वापस ले जाइये और कल सबको इकट्ठे ही लाइयेगा ।[1] यह छोटी-सी घटना उनकी व्यवस्थाप्रियता का ज्वलत प्रमाण है ।

सरलता तथा निश्छलता :

"सेठ जी का पहला और प्रधान गुण है उनके स्वभाव की सरलता । वह अत्यन्त निश्छल और भोले व्यक्ति है । उनका यह भोलापन ही प्राय उनकी आलोचना का कारण बन जाता है । मन की बात को छिपाना वह नही जानते । अपनी कमजोरी छिपाने का उन्हे अभ्यास नही है । वह प्राय इस बात का विवेक करने मे असमर्थ रहते है कि कौन-सी बात किसके सामने नही करनी है । अक्सर वह अपने मन की अन्तरग इच्छाओ को हर किसी व्यक्ति पर व्यक्त कर देते है, जिन्हे व्यवहार-कुशल जन अपने निकट मित्रो से भी बडी सफाई से छिपा जाते है । सेठ जी के स्वभाव की यह सरलता उनके शुद्ध हृदय का सचारी गुण है । सेठ जी मन, वाणी या कर्म से किसी को धोखा नही देते । उनकी वाणी मे स्पष्टता होती है, जिस बात को वह नही कर सकते है या जो बात उन्हे अच्छी नही लगती है उसका प्रतिवाद करने मे वह अपने आत्मीय मित्रो के सामने भी नही चूकते ।"[2]

सेठ जी के जिन उपर्युक्त गुणो की प्रशसा डा० नगेन्द्र ने मुक्त कठ से की है, श्री रामधारीसिह 'दिनकर' भी उन्ही गुणो के प्रशसक है । उनका कथन है—गोविन्ददास जी बडे ही सरल और निश्छल पुरुष है । रुपये-पैसे के मामले मे वे वहुत ही साफ आदमी है । यही कारण है कि जिन सार्वजनिक आयोजनो मे सेठ साहव का हाथ रहता है, उन आयोजनो को पैसे की दिक्कत नही होती .. सेठ साहव के चरित्र का यह पक्ष इतना निर्मल है कि उसे अनुकरणीय ही समझना चाहिए ।[3] सरलता के साथ ही सेठ जी शात प्रकृति के व्यक्ति है । यह कहना तो गलत है कि उन्हे क्रोध नही आता लेकिन इतना अवश्य है कि उन्हे क्रोध बहुत कम आता है ।

कर्मठता

सेठ गोविन्ददास जी का जीवन अत्यन्त कर्म-सकुल रहा है । उन्होने अपने जीवन के एक-एक क्षण का सदुपयोग किया है और सदैव ही नियमितता का ध्यान रखा है । जीवन की आलस्य-वृत्ति से वे सदा दूर रहे है और निरालस्य को जीवन के साथ

---

1 नई दिल्ली मे फीरोजशाह रोड पर स्थित सेठ जी के निवास-स्थान पर घटी घटना ।

2 निष्ठावान साहित्यकार (लेख)—डा० नगेन्द्र, राष्ट्र और राष्ट्रभाषा के अनन्य सेवक सेठ गोविन्ददास, स० बाकेबिहारी भटनागर, पृ० 53 ।

3 बलिदान की राह पर (लेख)—श्री रामधारीसिंह दिनकर, सेठ गोविन्ददास : व्यक्तित्व एव साहित्य, स० प्रो० विजयकुमार शुक्ल तथा श्री गोविन्द प्रसाद श्रीवास्तव, पृ० 36 ।

छाया की भाँति चिपकाये रखा है। राजनीतिक, सामाजिक, सास्कृतिक तथा साहित्यिक क्षेत्र मे प्राप्त सफलता का बहुत कुछ श्रेय उनके कर्मठ और आलस-रहित जीवन को ही है। सेठ जी की परिश्रमशीलता के विषय मे उनके अनन्य मित्र श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र के विचार इस प्रकार है—"मेरी दृष्टि मे गोविन्ददास जी का बडप्पन उनके राजा गोकुलदास का नाती होने मे नही है। आज देश मे उन्हे जो कुछ भी मान-सम्मान प्राप्त है, वह उनके त्याग और परिश्रमशीलता के कारण। यहाँ मै उनके त्याग की चर्चा न करूँगा क्योंकि काग्रेसियो के पुराने त्याग की बाते सुनते-सुनते लोग उकता गए है। परन्तु गोविन्ददास जी की परिश्रमशीलता से कोई इन्कार नहीं करेगा। उनके बाप-दादो ने धन कमाने के लिए जितना परिश्रम किया था, उससे कम सेठ जी ने नही किया, परन्तु वह साहित्य तथा राजनीति के क्षेत्रो मे ही। उन्होने जब जिस कार्य को अपने हाथ मे लिया है, उसे पूरा करने मे अपने शरीर तथा पारिवारिक सुखो की चिन्ता नही की।"[1]

सेठ जी के व्यक्तित्व के इस महान् गुण के प्रशसको मे डा० नगेन्द्र भी है। इस सम्बन्ध मे उनका कथन है सेठ जी के व्यक्तित्व का दूसरा गुण है कर्मठता। चाहे राजनीतिक सगठन हो अथवा साहित्यिक सेवा-कार्य, एक बार दायित्व ले लेने पर सेठ जी, अद्भुत परिश्रम से, तन्मय होकर, उसका निर्वाह करते है। उनका दैनिक क्रम नाना प्रकार के रचनात्मक कार्यो से पूरी तरह भरा रहता है और वे ठीक घडी के हिसाब से अक्लान्त भाव से उसको पूरा करते है। काग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य के रूप मे, प्रान्तीय काग्रेस के अध्यक्ष के रूप मे, हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान के रूप मे, उन्होने दम तोड कर काम किया है। देश के तूफानी दौरे किये है तथा कठिन पद-यात्राएँ की है। एक बार उनके अत्यन्त रुग्ण हो जाने पर जब डाक्टरो ने उन्हे पूर्ण विश्राम करने की सलाह दी तो उन्होने यह उत्तर दिया कि निष्क्रिय जीवन का भार ढोना मेरे बस की बात नहीं है—बिना काम के मैं जिन्दा रहना नही चाहता। यह कोई सूक्ति या आदर्श वाक्य नही है, उनके लिए व्यावहारिक सत्य है।[2]

जन-नेतृत्व

जन-नेतृत्व के उनमे नैसर्गिक गुण है। आकर्षक एव प्रभावशाली व्यक्तित्व, आत्म-विश्वास, कठिन परिश्रम, अदम्य साहस, अध्ययन-इच्छा, अथक आशावाद, जोश तथा उत्साह, अत्यधिक त्याग, हाथ मे लिए हुए काम को किसी भी प्रकार पूरा करने की

---

1 गोविन्ददास जी (लेख)—श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र, सकलित सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रथ—स० डा० नगेन्द्र, पृ० 102।

2 आदर्शवादी निष्ठावान सिद्धहस्त नाटककार (लेख)—डा० नगेन्द्र, सकलित, सेठ गोविन्ददास व्यक्तित्व एव साहित्य, स० प्रो० विजयकुमार शुक्ल तथा श्री गोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव, पृ० 32–33।

प्रवृत्ति, सम्भाषण-शक्ति और ओजपूर्ण भाषण इनमे मुख्य है। प्रकृति ने उन्हे इतनी ऊची आवाज दी है कि बिना लाउडस्पीकर की सहायता के ही हजारो आदमी उनका भाषण सुविधापूर्वक सुन सकते हैं।[1]

आन्तरिक पक्ष

व्यक्तित्व के आन्तरिक पक्ष का विवेचन करने से पूर्व व्यक्तित्व और चरित्र के अतर को सदा ध्यान मे रखना चाहिए। स्थूल दृष्टि से देखने पर व्यक्तित्व और चरित्र समान भावनाओ को प्रकट करने वाले प्रतीत होते है किंतु सूक्ष्मता से दोनो का विश्लेषण करने पर वे एक दूसरे के प्रतिपक्षी ज्ञात होते है। वास्तव मे "चरित्र बाहर से गृहीत एक विशेष आदर्श है जिसके लिए व्यक्ति अपने सभी अधिकारो को तिलाजलि देता है। चरित्र का ठीक प्रतिपक्षी व्यक्तित्व (Personality) है जो हमारे मनोवेगो और भावनाओ का विधायक बनता है। चरित्र और व्यक्तित्व के इस अन्तर को भली प्रकार समझने के लिए यह स्मरण रखना चाहिए कि सभी प्रकार की शृगारी कविताएँ (गीतिकाव्य के सहित) कवि के व्यक्तित्व की उपज होती है और वे (कविताएँ) चरित्र-निर्माण मे अवरोधक मानी जाती है।"[2] व्यक्तित्व का अर्थ है मानसिक प्रक्रिया मे अनुरूपता अथवा एकरूपता की निर्मिति। इस एकरूपता का अर्थ यह नही कि कोई व्यक्ति सदा-सर्वदा प्रत्येक परिस्थिति मे एक प्रकार की ही भावना रखे अथवा एक-सा ही कार्य करता रहे। व्यक्तित्व का अर्थ इससे व्यापक है। वास्तव मे व्यक्तित्व का अभिप्राय है अपने आन्तरिक स्वरूप को इस प्रकार दृढ कर लेना कि मनुष्य प्रत्येक परिवर्तन-शील स्थिति के अनुरूप अपने को मोड सके। आदर्श व्यक्तित्व का लक्षण यह है कि वह मनुष्य को इस परिवर्तनशील जगत् की नित्य नूतन बनने वाली गतिविधि के अनुरूप चलने के लिए उसके विचारो को प्रगति देता रहे।[3]

सेठ जी का व्यक्तित्व विकासोन्मुख व्यक्तित्व है। युग के अनुरूप अपने को ढालने की प्रवृत्ति सदा उनमे रही है और आज भी वे परिवर्तनशीलता को युग के एक आवश्यक अग के रूप मे स्वीकार करते है। प्राचीन परपराओ से बधे होने पर भी उन नवीन विचारो और सिद्धान्तो का उन्होने सदैव हार्दिक स्वागत किया है जो मानव मात्र के लिए कल्याणकारी है।

सेठ जी के व्यक्तित्व के आन्तरिक पक्ष का निरूपण निम्न तत्त्वो के आधार पर किया जा सकता है

---

1 सेठ गोविन्ददास जीवनी, पृ० 97।

2 समीक्षा-शास्त्र—डा० दशरथ ओझा, पृ० 33-34।

3 वही, पृ० 34।

आस्तिकता तथा धार्मिक प्रवृत्ति

सेठ जी का व्यक्तित्व वैष्णव-भावना और उसके सस्कारो की पृष्ठभूमि मे विकसित हुआ है। आस्तिकता उनके जीवन की मूल भावना है। इस सम्बन्ध में उनका स्पष्ट कथन है—मैं वल्लभ-सम्प्रदाय का हूँ और भगवान श्रीकृष्ण मेरे इष्ट है।[1] तीन वर्ष की अवस्था मे ही उनका उनके कौटुम्बिक श्री गोपाललाल जी के मन्दिर से सम्बन्ध करा दिया गया था और तब से लेकर आज तक उनका वह सम्बन्ध उसी रूप मे बना हुआ है। किशोरावस्था मे ही उनका यज्ञोपवीत करा दिया गया था। उन्होने लिखा है—जिस दिन मेरा यज्ञोपवीत हुआ उसी दिन से मुझसे त्रिकाल सन्ध्योपासन आरभ कराया गया था। एक पडित इस काम के लिए नियुक्त हुए थे। कुछ दिन मे मुझे सध्या के सारे मत्र कठस्थ हो गए। यज्ञोपवीत के दिन से आज तक मेरी त्रिकाल सध्या चलती रही है। आगे चलकर मैं वर्षो जेलो मे रहा, कई बार विदेश भी गया, कुछ समय इन मामलो मे सशयात्मा भी हुआ, पर मेरी सध्या, पूजा, पाठ कभी नही छूटे।[2]

सेठ जी धार्मिक-वृत्ति वाले व्यक्ति है। हिन्दू धर्म के प्रति आस्थावान होने पर भी उनकी धार्मिक भावना सकुचित नही है अपितु सभी धर्मो के प्रति उनके हृदय मे सम्मान का भाव है। उनकी आस्तिकता तथा धार्मिक भावना उनकी कृतियो मे भी परिलक्षित होती है। अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'इन्दुमती' मे उसके प्रमुख पात्र ललित मोहन के मुख से सेठ जी ने जो कुछ कहलवाया है वह वास्तव मे उनकी अपनी आस्तिकता तथा धार्मिक-प्रवृत्ति का परिचायक है। ईश्वर और धर्म के प्रति अपने लगाव के विषय मे ललित मोहन का कथन है—मुझे तो ईश्वर पर भी विश्वास है, और धर्म पर भी, बल्कि मै यह कहूँ तो और ठीक होगा कि ईश्वर के विश्वास के अन्तर्गत धर्म का विश्वास आ जाता है। धर्म की विशाल फैली हुई हदबन्दियाँ चाहे घट गई हो, पर जिन हृदयो मे विश्वास का निवास है, वहाँ सच्चे धर्म का आधिपत्य न तो कम हुआ है और न कभी होगा। यदि मैं निरीश्वरवादी हो जाऊँ तो मै समझता हू कि हानि मेरी ही होगी। ईश्वर के भय के कारण मै कोई बुरा काम न करूँ, इसलिए मुझे ईश्वर की आवश्यकता नही है, न अपनी इच्छाओ की पूर्ति के लिए ही मै उससे कभी वर मांगता। अपने बल और अपनी शान्ति के लिए मैं कोई न कोई अवलम्ब चाहता हू, जो मुझे ईश्वर का विश्वास देता है। यदि मै निरीश्वरवादी हो जाऊँ तो जीवितावस्था मे मेरे पास कोई अवलब न रह जायगा। विश्वासलगर के भग्न होने पर जीवन-जहाज डगमगाने लगेगा। मे जीवित रहते हुए सच्चे धर्म का पालन न कर सकूगा और मृत्यु का सामना करना तो अत्यधिक कठिन हो जाएगा।[3]

वैष्णव-सस्कारो मे युक्त होते हुए भी,जैसा कि पूर्व (आचार-व्यवहार) प्रसग

---

1 स्मृति-कण, पृ० 15।

2 आत्म-निरीक्षण, भाग 1, पृ० 87।

3 इन्दुमती—बृहद् सस्करण, पृ० 252–53।

मे दिखाया जा चुका है सेठ जी उसकी रूढियो तथा अन्ध-विश्वासो से सर्वथा मुक्त है। यह उनकी युग के अनुरूप परिवर्तनशील प्रवृत्ति का परिचायक है जोकि समुन्नत व्यक्तित्व का एक आवश्यक अग है।

कर्त्तव्य-निष्ठा

कर्तव्य के प्रति निष्ठा सेठ जी के व्यक्तित्व की एक प्रमुख विशेपता है। एक बार अपना कर्तव्य निश्चित कर लेनें के बाद वे तन, मन, धन से उसके पालन मे जुट जाते है। जहाँ तक मै समझता हूँ उनके कर्तव्य-च्युत होने की एक भी घटना उद्धृत नही की जा सकती। ऐसी बात भी नही है कि उनके जीवन मे कर्तव्य-च्युत होने के प्रसग ही न आए हो अपितु वास्तविकता यह है कि उनके जीवन मे कई ऐसे प्रसग आए जहाँ कर्तव्य-च्युत होने की पूर्ण सभावना थी, कुछ क्षण के लिए उनका मन डावाडोल भी हुआ पर अपने व्यक्तित्व की सुदृढता के कारण वे पथ-भ्रष्ट होने से वच गए। तुच्छ व्यक्तिगत स्वार्थ-सिद्धि की अपेक्षा उन्हे कर्तव्य-पालन की महानता पर अधिक विश्वास है। उनका समग्र जीवन कर्तव्य-पालन की घटनाओ से भरा है। यहाँ कुछ ऐसी घटनाओ का उल्लेख अप्रासगिक न होगा जिनमे कर्तव्य-पालन के लिए उन्हे मानसिक सघर्ष करना पडा है। उनके जीवन की कुछ प्रमुख घटनाएँ इस प्रकार है

सत्याग्रह आन्दोलन मे बन्दी वनाए जाने से पूर्व एक सार्वजनिक सभा मे भाषण देते हुए सेठ जी ने कहा था कि मेरे जेल जाने के बाद यदि पिता जी ने किसानो से जवर्दस्ती लगान वसूल किया और सरकार को जमा दे दी तो मैं जेल से लौटकर 'राजा गोकुलदास महल' मे न रहूँगा। गोविन्ददास जी ने जेल मे ही सुन लिया था कि उनके पिताजी ने वडी सख्ती से लगान वसूल किया है और सरकारी जमा भी पटा दी है। जेल से वापस आने के वाद पत्नी के मृत्यु-शय्या पर पडे रहने पर भी वे 'राजा गोकुलदास महल' मे रहने नही गए और कई वर्षो तक अपने कौटुम्बिक मन्दिर मे रहे।

सन् 1925 मे गर्मी के मौसम मे सेठ जी अपनी पत्नी तथा पुत्र मनमोहनदास के साथ पचमढी गए थे। वही अचानक उनकी भेट मध्यप्रान्त के गवर्नर सर माटेगु बटलर तथा लेडी वटलर से हो गई। लेडी वटलर ने गोविन्ददास जी की धर्मपत्नी को चाय के लिए निमन्त्रण दिया। असहयोगी होने के कारण गोविन्ददास जी के जाने का तो प्रश्न ही नही उठता था लेकिन शिष्टाचार के नाते वे पत्नी को जाने से न रोक सके। सेठ जी की पत्नी को विशिष्ट उद्देश्य से निमन्त्रित किया गया था। चाय की समाप्ति पर लेडी बटलर ने गोविन्ददास जी की पत्नी से कहा—"सरकार के पास ऐसी कौन सी जगह है जो आपके पति की इच्छा होते ही उन्हे न मिल सके। आप उनसे इस सम्बन्ध मे बात करे और मुझे इशारे से भी कहलवा दे तो मेरे पति उनसे मिलकर सारा मामला तय कर देगे।"[1]

---

1 आत्म-निरीक्षण, भाग 2, पृ0 125।

गोविन्ददास जी के लिए यह बहुत बडा प्रलोभन था, लेकिन इसे स्वीकार करने का अर्थ था अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जाना। अत लेडी बटलर का प्रस्ताव उन्होंने न केवल ठुकरा दिया अपितु उन पर व्यग करते हुए कहा—यहाँ जाल मे फसने वाले नही है। यह प्रयोग किसी दूसरे पर ही किया जाए।[1]

कर्तव्य-परायणता के कारण ही सन् 1937 के प्रान्तीय चुनाव मे उन्होंने अपने चचेरे भाई श्री जमनादास के विरुद्ध काग्रेस की तरफ से खडे श्री व्यौहार राजेन्द्र सिह का पूर्ण समर्थन किया। काग्रेस से सम्बन्धित होने के कारण उसके प्रत्याशी का समर्थन ही न्यायोचित था लेकिन दूसरी तरफ अत्यन्त निकट आत्मीय के विरोध का प्रश्न भी था। कर्तव्य और प्रेम के बीच सघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई लेकिन सेठ जी ने कर्तव्य के लिए प्रेम की आहुति चढा दी। काग्रेस प्रत्याशी के लिए उन्होंने चुनाव प्रचार किया, स्वय होशगाबाद नामक स्थान पर उसके पोलिग एजेन्ट बने, जमनादास जी के मतदाताओं को तोडकर श्री व्यौहार राजेन्द्र सिंह के पक्ष मे मत डालने के लिए प्रेरित किया, परिणाम यह हुआ कि श्री जमनादास जी हार गए और सेठ गोविन्ददास का यह व्यवहार जीवन के अन्तिम क्षण तक उन्हे व्यथित करता रहा जो कि उनके मृत्यु से पूर्व प्रकट किए गए विचारो से स्पप्ट है। मृत्यु के कुछ क्षण पहले उन्होंने सेठ जी से कहा—बाबू साहब, एक ही रज लेकर मैं मर रहा हू। आपने मुझे गए चुनाव मे हराया। उसके पहले हमारे प्रान्त मे राजा गोकुलदास के कुटुम्ब के किसी भी व्यक्ति ने कही नीचा न देखा था, पर आपने इस निगोडी कागेस के लिए अपने कुटुम्ब का भी ख्याल न रखा।[2]

त्याग-वृत्ति

"सेठ जी ने राष्ट्रसेवा के लिए जो त्याग किया है, उससे सभी लोग अच्छी तरह परिचित है। उनके जैसे सम्पन्न परिवार के व्यक्ति के लिए आज से पैतीस-छत्तीस वर्ष पहले गाधी जी के असहयोग आन्दोलन मे कूदने का मतलब था अपनी सम्पत्ति और समृद्धि की पूर्णाहुति दे देना और अग्रेजो का कोपभाजन बनना जिनके हाथ मे उस समय सम्पूर्ण सत्ता थी।[3] प्रारभ से ही सेठ जी का जीवन आदर्शवाद से प्रेरित रहा है, अपनी इसी आदर्शवादिता के कारण जीवन मे महान् त्याग करने मे भी वे पीछे नही रहे है। पिता से मतभेद होने के कारण युवावस्था मे सेठ गोविन्ददास ने करोडो रुपये की पैतृक सम्पत्ति से त्यागपत्र दे दिया। डा० नगेन्द्र के शब्दो मे, "भौतिक दृष्टि से, हमारे स्वातन्त्र्य आन्दोलन के इतिहास मे त्याग के इतने बडे उदाहरण कम ही मिलेगे।"[4]

---

1 सेठ गोविन्ददास जीवनी, पृ० 49।

2 आत्म-निरीक्षण भाग 2, पृ० 350–51।

3 सेठ गोविन्ददास अभिनदन ग्रथ—स० डा०नगेन्द्र, पृ० 2 पर स्वर्गीय डा० राजेन्द्र प्रसाद का मत।

4 निष्ठावान साहित्यकार (लेख)—डा० नगेन्द्र, राष्ट्र और राष्ट्रभाषा के अनन्य सेवक सेठ गोविन्ददास, पृ० 51।

पैतृक सम्पत्ति के बटवारे के विषय मे पिता-पुत्र के बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ उसका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

दीवान बहादुर जीवनदास और सेठ गोविन्ददास का सन् 1920 से परस्पर मतभेद चला आता था। अनेक बार इस मतभेद के कारण घर मे झगडे भी हुए थे, परन्तु पत्नी के बीमारी मे भी गोविन्ददास जी का घर मे आकर न रहना उनके पिता को असह्य प्रतीत हुआ। अत 21 जुलाई सन् 1932 को सपत्ति के बटवारे के लिए उन्होने सेठ गोविन्ददास को एक लम्बा पत्र लिखा, जिसका एक अश उद्धृत है—

"मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ और मुझे यकीन है कि अपने स्वभाव के मुताबिक तुम इसका सच्चा धर्म और न्याय का जवाव दोगे। सवाल यह है कि जिस जायदाद को तुम इस तरह नुकसान पहुँचा रहे हो वह क्या तुम्हारी कमाई हुई है, या अकेली तुम्हारी है ? यह जायदाद तुम्हारे पुरखो ने कमाई है और खानदानी है। बाप दादो की कमाई हुई जायदाद पर पानी फेरना यह मुझसे तो न हो सकेगा। तुम्हे अपने वाल-वच्चो और स्त्री का ख्याल न हो, परन्तु मुझे तो करना होगा और दुनिया के सामने भी भविष्य का ख्याल करते हुए मुझे तो अबोध बालको की रक्षा के लिए कुछ न कुछ इन्तजाम भी करना ही होगा। हर तरह से नाउम्मीद होकर मुझे इसका एक ही तरीका जान पडता है, वह यह कि खानदानी जायदाद का हमारे तुम्हारे बीच मुनासिव बँटवारा हो जाए, जिससे कम से कम मेरे हिस्से की जायदाद तो खानदान के लिए वच जावे।[1]

4 अगस्त सन् 1932 को सेठ गोविन्ददास ने इस पत्र का उत्तर दिया। सेठ जी के पत्र का भी अश देखिए—

"आप बँटवारा चाहते है। पिता-पुत्र का बँटवारा कैसा ? मैंने अपने सार्वजनिक सेवा के पथ मे, जिसे मैं अपना धर्म समझता रहा हूँ, आपकी आज्ञा का कभी पालन नही किया। इस सम्बन्ध मे सदा श्री प्रह्लाद का आदर्श मेरे सम्मुख रहा है, परन्तु आज तो इस बँटवारे मे मेरे व्यक्तिगत लाभ का प्रश्न उपस्थित है, अत आज तो मेरे सामने भगवान रामचन्द्र का उदाहरण है। उन्होने पिताजी की आज्ञा से सारे भारतवर्ष का साम्राज्य छोड दिया था, फिर यह तो एक छोटी सी सम्पत्ति का प्रश्न है। मैंने अपने को सदा एक तुच्छ व्यक्ति माना है। पर फिर भी मेरे सम्मुख आदर्श सदा ही उच्च रहे है। आदर्श, आदर्श ही रहते है और उन तक पहुँचने मे जिस साहस एव त्याग की आवश्यकता होती है वह मेरे समान तुच्छ मनुष्य मे कहा।

मै जानता हूँ कि इस 36 साल की अवस्था तक मै राजा गोकुलदास जी के महलो मे रहा हूँ। जितना अधिक से अधिक आधिभौतिक सुख इस देश के किसी भी मनुष्य को प्राप्त हो सकता है, उतना मुझे प्राप्त रहा है। मै यह भी जानता हूँ कि इस त्याग-पत्र के पश्चात् का शेष जीवन कदाचित् इससे विपरीत ही होगा। पर यह सम्पत्ति मैने तो कमाई नही है। इसको कायम रखने के लिए गरीबो पर होने वाले अत्याचारो को रोकने मे भी

1 सेठ गोविन्ददास जीवनी, परिशिष्ट 2, पृ० 156–57।

मैं असमर्थ हूँ। अत मेरे स्वर्गवासी पितामह पूज्य राजा गोकुलदास जी के पश्चात् जो कुछ सम्पत्ति आपको या मुझे प्राप्त हुई हो, उस सम्पत्ति के सम्बन्ध में धर्मशास्त्र के अनुसार जो कुछ मेरे सत्व हो, उन सत्वो का परित्याग कर आप घर के मुख्यकर्त्ता होने के कारण आप ही के चरणो मे सारी सम्पत्ति को और मेरे सब सत्वो को समर्पित कर मैं इससे अलग होता हूँ। बँटवारे का आधा भाग तो दूर रहा, मुझे उसके किसी भी अश की आवश्यकता नही है।"[1]

सेठ जी के वैयक्तिक त्याग की परपरा समाप्त नही हुई है। हिन्दी और गोरक्षा के लिए वे आत्मोत्सर्ग तक करने को प्रस्तुत है।

अन्याय का विरोध अथवा नैतिक साहस

अन्याय का डटकर विरोध करने मे सेठ गोविन्ददास कभी पीछे नही रहते है। अपनी इस प्रवृत्ति के कारण आपने कई बार स्वर्गीय नेहरू का भी विरोध किया। राष्ट्र-भाषा हिन्दी और गोरक्षा के प्रश्न पर आप ससद् मे कई बार काग्रेस की नीतियो की आलोचना कर चुके है। प्रारभ से ही काग्रेस दल के प्रति निष्ठावान् तथा इसके वरिष्ठ सदस्य होते हुए भी सन् 1963 और 1967 मे प्रस्तुत राजभाषा विधेयक का विरोध किया और काग्रेस मे केवल सेठ जी ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति है जिन्होने इसके विपक्ष मे मतदान किया। सन् 1963 का विधेयक श्री नेहरू की इच्छा से लाया गया था अत विधेयक के विरोध का अर्थ नेहरू का विरोध था, किन्तु सेठ जी ने इस बात की तनिक भी चिंता किये बिना अपना नैतिक साहस दिखाया।

इसी प्रकार की एक घटना और है जिससे सेठ जी के नैतिक साहस का परिचय मिलता है। बात सन् 1928 की है, नर्मदा के पुल को पार करती हुई एक बैलगाडी जा रही थी। उसके पीछे एक मोटर आई। पुल पर इतना स्थान न था कि बैलगाडी के बगल से मोटर निकल आए, अत उसे रुकना पडा। उस मोटर मे अग्रेज फौजी अफसर (कप्तान) था। मोटर से निकलकर उस फौजी अफसर ने गाडीवान को पीटना शुरू कर दिया। सेठ जी ने इसका प्रतिरोध किया, जिस पर उस अग्रेज ने इन्हे भी एक चपत जमा दी। अफसर तो मोटर मे बैठकर भाग गया लेकिन सेठ जी ने मोटर का नम्बर लिख लिया। उस पर मान-हानि का मुकदमा चलाया गया और उसने लिखित रूप मे सेठ जी तथा उस गाडीवान से माफी माँगी, तब उस पर से मुकदमा उठाया गया।[2] उस समय जबकि अग्रेजो का प्रभुत्व सारे देश पर था, एक अग्रेज कप्तान को गाडीवान से माफी मागने के लिए विवश करना सेठ जी का ही साहस था। सेठ जी ने कई अवसरो पर यह विचार व्यक्त किया है कि अन्तरात्मा की आवाज के विरुद्ध कार्य कर सकना उनके लिए असभव है।

---

1 आत्म-निरीक्षण, भाग 3, परिशिष्ट 2, पृ० 76–77।

2. आत्म-निरीक्षण भाग 2, पृ० 163 से 165 तक वर्णित घटना के आधार पर।

उदारता

उदारता सेठ जी के जीवन की अमूल्य निधि है । वे प्राणी मात्र के प्रति अत्यन्त उदार है, यहा तक कि शत्रुओ के प्रति भी उनके मन मे विद्वेप नही हैं । विश्व के कण-कण मे ब्रह्म की सत्ता देखने वाला कलाकार प्राणी मात्र के प्रति अनुदार कैसे हो सकता हैं ? सेठ जी की उदारता उनकी धार्मिक भावना की देन है । उनकी कृतियो मे भी प्रेम, दया, ममता, करुणा, त्याग आदि उदार भावनाएँ दिखाई पडती हे ।[1] अपनी उदार-वृत्ति के कारण ही 'प्रेम-विजय' महाकाव्य मे सेठ जी ने अनत काल से एक दूसरे के घोर शत्रु सुरो और असुरो की कृष्ण द्वारा सन्धि करा के उन्हे मित्रता के सूत्र मे बाँध दिया ।[2] कृष्ण के उपासक होने पर भी गोविन्ददास जी शैवो तथा राम के उपासको को सम्मान की दृष्टि से देखते हैं, यह उनकी धार्मिक उदारता ही है । अवतार सिद्धान्त के प्रति भी उनका दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक है । इस सम्बन्ध मे उनका कथन है—"जिन व्यक्तियो मे भी महान् विशेषताएँ हुई है उन्हे मैं अवतार ही मानता हूँ, जैसे गाधी और ईसा को भी मैं अवतार मानता हूँ ।"[3] इसी दृष्टिकोण को महाकाव्य मे इस प्रकार स्पष्ट किया है—

ब्रह्माड मे केवल एक ब्रह्म है,
सभी उसी से, असुरेश, व्याप्त है,
होती किसी मे यदि है विशेषता,
उसे उसी का अवतार मानते ।[4]

आगे चलकर सेठ जी के व्यक्तित्व का जो विकास सेवाव्रती के रूप मे हुआ है उसके मूल मे उनकी उदार भावना ही मानी जा सकती है ।

भावुकता

"गोविन्ददास जी भावना-प्रधान व्यक्ति है । इसका आपसी सम्बन्धो से बहुत अधिक पता लगता है । जिनसे उनका प्रेम-सम्बन्ध रहता है उनके लिए वे यथाशक्ति सभी कुछ करने को उद्यत रहते है ।[5] डा० नगेन्द्र के शब्दो मे—उनकी कर्मठता और

---

1 'विश्व प्रेम' मे प्रेम, 'निर्माण का आनन्द' मे दया, 'प्रकाश' मे ममता, 'दलित कुसुम' मे करुणा तथा 'स्नेह या स्वर्ग' मे त्याग ।

2. देवासुरो की सन्धि हरि-उद्योग से यो हो गई,
चित्रा, उषा, अनिरुद्ध कारा-मुक्ति भी त्यो हो गई । प्रेम विजय, पृ० 152 ।
सुर और असुरो मे बढी अब मित्रता अति सब कही,
इतिहास ने सग्राम इनका फिर कही देखा नही । वही, पृ० 153 ।

3 गोविन्ददास-ग्रथावली, खड 8, निवेदन, पृष्ठ ग ।

4 गोविन्ददास-ग्रथावली, खड 8, पृ० 147 ।

5 मेरे मधुर मित्र गोविन्ददास जी (लेख)—श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र, सकलित राष्ट्र और राष्ट्रभाषा के अनन्य सेवक—स० बाकेबिहारी भटनागर, पृ० 46 ।

व्यावहारिक जीवन-दृष्टि को देखकर कभी-कभी यह भ्रम हो सकता है कि उनका हृदय पक्ष कदाचित् समृद्ध नहीं है, परन्तु मैंने अनेक व्यक्तिगत और सार्वजनिक प्रसगो मे उन्हे भाव-गद्गद होते देखा है। मेरा विश्वास है उसी आस्था के कारण राजनीति के चक्र-व्यूह म फम कर भी वह अपनी सरलता की रक्षा कर सके है और अनेक अभावो का सामना करने पर भी स्वभाव के मार्दव से वचित नही हुए।[1]

सेठ जी की भावुकता के कारण ही नाटको का कथोपकथन लिखाते समय कोई करुण प्रमग आ जाने पर, उनकी आँखो से आँसू गिरने लगते है। कहा जाता है कि 'भारतेन्दु' नाटक का अन्तिम अश (जिसमे उनकी मृत्यु-दशा का चित्रण है) लिखाते लिखाते सेठ जी स्वय रो पडे थे।

सन्तोष-वृत्ति

सेठ जी वडे सन्तोपी व्यक्ति है। कभी-कभी वडी साधारण सी बातो के लिए उनको आतुर देखकर इसके विपरीत भ्रम हो सकता है, परन्तु यह आतुरता उनकी सरलता का परिणाम हो सकती है। जीवन के गभीर स्तर पर अभाव और असफलता का वह अत्यन्त धीर भाव से सामना करते है। कारण चाहे कुछ भी हो (एक कारण उनका हिन्दी प्रेम भी है) राजनीतिक क्षेत्रो मे उनके त्याग और तपस्या को देखते हुए उपलब्धि अत्यन्त नगण्य ही है—जो उन्होंने दान किया है उसकी तुलना मे प्रतिदान क्या मिला है ? वे अथवा उनके परिवार-जन कही अधिक की आशा न्यायपूर्वक कर सकते थे और उचित प्रतिदान के अभाव मे असतोष और कुठा का शिकार वन सकते थे। जिस प्रकार अनेक कर्मठ और तपे हुए सहकर्मी दूसरे शिविर मे चले गये, उसी प्रकार वे भी जा सकते थे। किन्तु उनकी निष्ठा कभी विचलित नही हुई और न उनके मन मे कभी कडवाहट आई। जो व्रत उन्होंने अपने तरुण जीवन मे आज से लगभग 40 वर्ष पूर्व लिया था, उस पर आज भी उसी विश्वास के साथ अग्रसर है। मैंने कभी उन्हे निराश या क्षुव्ध नही देखा—जो मिला उसको अत्यन्त कृतज्ञ भाव से ईश्वर का वरदान मान कर ग्रहण किया और जो नही मिला उसके लिए कभी सताप नही किया। जव कभी उनके मित्र यह प्रमग छेडते है कि उन्हे अपने त्याग का उचित प्रतिदान नही मिला तो वे पूर्ण सद्भाव से उत्तर देते ह कि मेरे लिए सबसे वडा प्रतिदान तो देश की स्वाधीनता है जो मुझे अपने जीवन मे ही मिल गई, अन्य उपलब्धियाँ तो आनुषगिक है।[2]

सेठ जी से हुई प्रत्यक्ष भेट-वार्ता मे जव मैंने उनके वर्तमान जीवन के विपय मे

---

1 निष्ठावान् साहित्यकार (लेख)—डा० नगेन्द्र, वही, पृ० 52-53।

2 आदर्शवादी निष्ठावान् सिद्धहस्त नाटककार (लेख)—डा० नगेन्द्र, सकलित, सेठ गोविन्ददास व्यक्तित्व एव साहित्य, पृ० 33–34, स० प्रो० विजयकुमार शुक्ल, श्री गोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव।

यह जानने की इच्छा व्यक्त की कि वे इस जीवन से सन्तुष्ट है अथवा असन्तुष्ट, तो इसके प्रत्युत्तर मे उन्होंने जो कुछ कहा वह इस प्रकार है—

मैं अपने साहित्यिक कार्यो से पूर्णतया सन्तुष्ट हूँ। अपनी अन्तरात्मा की आवाज को दबाकर मैं भी यदि हाँ मे हाँ मिला सकता, तो सभव था अधिक से अधिक कोई मन्त्री-पद या कही के राज्यपाल का पद प्राप्त कर लेता। लेकिन मन्त्री को अपने पद से हट जाने और राज्यपाल का कार्यकाल समाप्त हो जाने के बाद उनको कितना सम्मान प्राप्त रहता है, वह किसी से छिपा नही है। मेरा कार्य जहा तक मैं समझता हू कुछ स्थायी महत्त्व का है, या कम से कम मुझे तो आत्म-तोष है। मेरा विश्वास है कि मृत्यु के पश्चात् भी अपनी कृतियो मे मै सदा-सर्वदा विद्यमान रहूगा, इसलिए राजनीतिक पदो पर आसीन रहकर सम्मान प्राप्त करने की अपेक्षा अपनी साहित्य-साधना द्वारा अर्जित सम्मान को मैं अधिक महत्त्व देता हूँ। फिर एक बात और है कि जनता-जनार्दन द्वारा तो मुझे आरभ से ही सम्मान मिला है और अब भी मिल रहा है, अतएव वर्तमान जीवन से असन्तुष्ट होने का प्रश्न ही नही उठता।[1] परपरागत वैष्णव-सस्कार तथा आस्तिकता उनकी सतोषवृत्ति के मूल कारण है।

व्यक्तित्व की सीमाएँ

सेठ जी के व्यक्तित्व की अन्तर्निहित विशेषताओ का यथातथ्य उल्लेख करने के पश्चात् उसकी कतिपय सीमाओ का विवेचन भी आवश्यक है। दोष-दिग्दर्शन के अभाव मे व्यक्तित्व का निरूपण सभवत एकागी होगा। व्यक्ति का पूर्णतया निर्दोष होना एक असभव कल्पना है, क्योकि सर्वथा निर्दोष होने पर वह मनुष्य की श्रेणी से ऊपर उठकर देवो की श्रेणी मे पहुँच जाएगा। देवत्व की भावना यथार्थ से दूर शुद्ध आदर्श की भाव-भूमि है। लेकिन मूल रूप मे गुण और आनुषगिक रूप मे दोष होते हुए भी गुणो की ही प्रधानता मानी जाएगी और यही आदर्श व्यक्तित्व के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता है।

सेठ जी के स्वभाव मे कुछ उतावलापन है। कभी-कभी वे अचानक किसी बात को सुन घबरा जाते हैं, पर बहुत शीघ्र अपने को सभाल लेते है। श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र के शब्दो मे, "अपने कुटुम्ब से उन्हे एक और दुर्गण विरासत म मिला है, वह है छोटी छोटी जोखिमो से अत्यधिक भयभीत रहना।"[2]

उन्होंने स्वावलबी होने का बडा यत्न किया, फिर भी दूसरो पर निर्भर रहने की उनकी आदत सर्वथा नही जा सकी। स्वय हाथ से नहाना तो उन्होंने जेल मे सीखा और अभी भी यदि उनके साथ कोई नौकर न रहे तो बडी गडबड हो जाती है। दूसरो

---

1. सेठ जी से प्रत्यक्ष वार्ता के आधार पर।
2. मेरे मधुर मित्र श्री गोविन्ददास जी (लेख)—श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र, राष्ट्र और राष्ट्र भाषा के अनन्य सेवक, स० बाकेबिहारी भटनागर, पृ० 46।

पर निर्भर रहने की उनकी किसी-किसी कृति पर तो हसी आ जाती है। जैसे वे कभी सडको को याद नहीं रख सकते। जबलपुर तक की सडके उन्हे नही मालूम। उनकी रास्ता भूलने की इस विचित्र आदत को देखकर सस्कृत नाटको की कचुकी का स्मरण हो आता है, जो राजा को उसके महल तक का रास्ता बताते हुए उसके आगे-आगे चलता और यह कहता था 'इतो इतो राजन्' ।[1]

निष्कर्ष

सेठ गोविन्ददास के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विश्लेषण करने के उपरात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि उनके व्यक्तित्व मे कमल के समान सुन्दरता और कोमलता दोनो तत्वो का अद्भुत सामजस्य हुआ है। उनका बाह्य जितना सुन्दर, आकर्षक और तेजस्वी है, अन्तरग भी उतना ही निर्मल, उदार और ओजस्वी है।

1 सेठ गोविन्ददास जीवनी, पृ० 97।

द्वितीय खंड

कृतित्व

अध्याय 3

समग्र कृतियों पर विहंगम दृष्टि और उनका वर्गीकरण

सेठ गोविन्ददास बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकार है। उनकी प्रतिभा का विकास साहित्य की विविध विधाओं के माध्यम से हुआ है। वैसे तो आप साहित्य के क्षेत्र मे अपनी नाट्य-कृतियो के कारण प्रसिद्ध है किन्तु तथ्य यह है कि आपकी सशक्त लेखनी से साहित्यिक विधाओ का कोई ही कोना कदाचित् अछूता रह गया हो। आपने काव्य-रचना की है और केवल काव्य-रचना ही नही अपितु इसके अन्तर्गत महाकाव्य का प्रणयन किया है, उपन्यास लिखा है, यात्रा-साहित्य का निर्माण किया है, सस्मरण प्रस्तुत किए है, आत्म-परक साहित्य का सृजन किया है, निवन्ध लिखे है, ससद् के तथा हिन्दी भाषा के प्रचार के भाषण प्रस्तुत किए है तथा सर्वाधिक मात्रा मे नाटको, एकाकियो और प्रहसनो का निर्माण किया है।

सेठ गोविन्ददास की समग्र कृतियो का वर्गीकरण साहित्यिक विधाओ के अनुरूप इस प्रकार किया जा सकता है—

काव्य

(क) **महाकाव्य**—प्रेम-विजय

(ख) **स्फुट कविताएँ**—1 पत्र-पुष्प (स्फुट कविताओ का सग्रह)
2 सवाद सप्तक (सात पद्यात्मक सवादो का सग्रह)

यात्रा साहित्य

1 हमारा प्रधान उपनिवेश (अफ्रीका की यात्रा)
2 सुदूर दक्षिण पूर्व (न्यूजीलैड, आस्ट्रेलिया, फीजी और मलाया की यात्रा)
3 पृथ्वी परिक्रमा (मिस्र, यूनान, स्विट्जरलैड, फ्रास, इगलैड, कनाडा, अमरीका, जापान, स्याम और वर्मा की यात्रा)
4 उत्तराखड की यात्रा (यमुनोत्तरी, गगोत्तरी, केदारनाथ और वदरीनाथ की यात्रा)
5 दक्षिण भारत की तीर्थ यात्रा (दक्षिण भारत के तीर्थ स्थानो की यात्रा)

आत्मकथा, संस्मरण और जीवनी

1 आत्म-निरीक्षण (तीन भागो मे आत्मकथा)
2 स्मृति-कण (आधुनिक भारत के चालीस प्रसिद्ध व्यक्तियो के सस्मरण)
3 चेहरे जाने पहचाने (सेठ जी के निकट सम्पर्क मे आए साधारण व्यक्तियो के सस्मरण)
4 मोतीलाल नेहरू (एक जीवनी)
5 युग पुरुष नेहरू (नेहरू जी के व्यक्तित्व एव उनके प्रसिद्ध कार्यो का सक्षिप्त विवरण)

निबन्ध साहित्य

1 नाट्य-कला मीमासा (नाट्य-कला, नाट्य-साहित्य, नाट्य-शास्त्र एव रगमच पर लेख)
2 मेरे जीवन के विचार स्तभ (भारतीय सस्कृति, भारतीय सस्कृति मे अहिसा भारत की राजभाषा, भारत मे गाय चार निबधो का सग्रह)

उपन्यास

इन्दुमती

नाट्य-साहित्य (नाटक, एकाकी और प्रहसन)

पौराणिक नाटक—

1 कर्त्तव्य
2 कर्ण

ऐतिहासिक नाटक—

1 हर्ष
2 कुलीनता
3 शशिगुप्त
4 शेरशाह
5 भिक्षु से गृहस्थ और गृहस्थ से भिक्षु
6 अशोक
7 विजय वेलि अथवा कुरुप
8 सिंहल द्वीप
9 विश्वासघात

जीवनी नाटक—

1 महाप्रभु वल्लभाचार्य
2 रहीम

3. भारतेन्दु
4. महात्मा गाँधी

सामाजिक नाटक—

1 विश्व प्रेम
2 प्रकाश
3 सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य
4 सेवा पथ
5 पाकिस्तान
6 भूदान यज्ञ

समस्या नाटक—

1 दलित कुसुम
2 पतित सुमन
3 त्याग या ग्रहण
4 हिंसा या अहिंसा
5. सतोष कहाँ ?
6 दु ख क्यो ?
7 प्रेम या पाप
8. गरीबी या अमीरी
9 महत्व किसे ?
10 बडा पापी कौन ?

प्रतीक नाटक—

नवरस

दार्शनिक नाटक—

सुख किस मे

नाटकीय सवाद—

विकास

गीति-नाट्य—

स्नेह या स्वर्ग

एकांकी

पौराणिक एकाकी—कृषि-यज्ञ

ऐतिहासिक एकाकी—

1 प्रागैतिहासिक काल के भारत की झलक (छ एकाकियो का सग्रह जिसमे कृषि यज्ञ पौराणिक है) सग्रहीत एकाकियो के नाम इस प्रकार है—

रैक्व और जान श्रुति
कर्म ही सच्चा वर्ण अथवा जाबाल सत्यकाम
महावीर का मौन भग
बुद्ध की एक शिष्या विशाखा
बुद्ध के सच्चे स्नेही कौन

2 प्राचीन काश्मीर की एक झलक (चार एकाकियो का सग्रह)

जालौक और भिखारिणी
चन्द्रापीड और चर्मकार
सहित या रहित
अट्ठानवे किसे

3 दक्षिण भारत की एक झलक (आठ एकाकियो का सग्रह)

केरल का सुदामा
वे आसू
शिवाजी का सच्चा स्वरूप
सच्चा धर्म
बाजीराव की तस्वीर
सच्ची पूजा
प्रायश्चित्त
भय का भूत

4 मुगल कालीन भारत की एक झलक (पाच एकाकियो का सग्रह)

महाकवि कुम्भन दास अथवा अपरिग्रह की पराकाष्ठा
गुरु तेग बहादुर की भविष्यवाणी
पतन की पराकाष्ठा
निर्दोष की रक्षा
अजीबोगरीब मुलाकात

5. अग्रेजो का आगमन और उसके बाद (सात एकाकियो का सग्रह)

कृष्णकुमारी
अजीजन
कगाल नही
सूखे सन्तरे
सच्चा कॉंग्रेसी कौन
जब मा रो पडी
जब भाग्य जागता है

6 हमारे मुक्तिदाता (पाँच एकाकियो का सग्रह)
शकराचार्य की प्रतिज्ञा
चैतन्य का सन्यास
गुरु नानक और नमाज
महर्षि की महत्ता
परमहस का पत्नी प्रेम अथवा एक अद्भुत सुहागरात

सामाजिक एकांकी—

1 स्पर्द्धा तथा सात अन्य एकाकी
स्पर्द्धा
मानवमन
निर्माण का आनन्द
मैत्री
सुदामा के तदुल
आई सी
यू नो
हगर स्ट्राइक

2 धोखेबाज तथा दस अन्य एकाकी
धोखेवाज
फासी
व्यवहार
अधिकार लिप्सा
ईद और होली
उठाओ खाओ खाना अथवा वफे डिनर
वूढे की जीभ
चौवीस घटे
वद नोट
महराज

एक पात्री नाटक—

1 शाप और वर
2 प्रलय और सृष्टि
3 अलवेला
4 सच्चा जीवन
5 पट-दर्शन
6 शवरी

हास्य-व्यंग्य प्रधान प्रहसन

1 भविष्यवाणी
2 जाति उत्थान
3 विटेमिन
4 वह मरा क्यो
5 हार्म-पावर
6 अर्द्ध जागृत

वैदेशिक कथाओ पर आधारित एकांकी—

1 मातासायी और धर्मभीरु
2 सिगपायी लान
3 मुकदेन
4 स्तारिक और वावुस्के
5 गुल बीबी या इस्लामी दुनिया मे पर्दे की खाक
6 परो वाले कारखाने
7 स्तखानौफ या छोटे से छोटे बडे से बडा
8 दो मूर्तियाँ
9 पाप का घडा

उपर्युक्त कृतियो मे प्रकाशित और अप्रकाशित दोनो प्रकार की कृतियाँ सम्मिलित हैं।

अध्याय 4

काव्य

भाव-प्रवण तथा सवेदनशील कलाकार की अभिव्यक्ति का सर्वाधिक सशक्त माध्यम काव्य ही है, यहा काव्य से मेरा तात्पर्य केवल पद्य-साहित्य से है। कोई भी बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न कलाकार अपनी प्रतिभा को साहित्य की किसी विधा विशेष की कारा मे अवरुद्ध रखना नही चाहता। अपनी तलस्पर्शिनी अनुभूति तथा गगनविहारिणी कल्पना के कारण वह साहित्य की सभी विधाओ मे समान अधिकार के साथ साहित्य सृजन कर सकता है —यह बात अलग है कि किसी विधा विशेष मे उसकी अपनी रुचि के कारण सृजन कार्य अधिक महत्त्वपूर्ण बन जाए और दूसरी मे उतना महत्त्वपूर्ण न बन सके।

सेठ गोविन्ददास का प्रारभिक साहित्य-सृजन वैसे तो उपन्यास से प्रारभ होता है, क्योकि 12 वर्ष की अवस्था मे उन्होने 'चम्पावती' नामक अपना पहला 'उपन्यास' लिखा था, परन्तु वास्तविकता यह है कि उनके सृजन-कार्य का आरभ काव्य-निर्माण से मानना अधिक समीचीन प्रतीत होता है क्योकि जो उपन्यास उन्होने उस समय लिखा था, वह अनुपलब्ध है, इसलिए उसका साहित्यिक महत्त्व निर्धारित कर सकना असभव है। कृति के अप्राप्य होने का अर्थ न होना ही मानकर हम उनके साहित्यिक निर्माण कार्य का प्रारभ काव्य से ही मानते है।

सेठ गोविन्ददास के काव्य-निर्माण का प्रारभ सन् 1916 मे आरभ किए गए 'बाणासुर-पराभव' महाकाव्य से तथा इसका पर्यवसान सन् 1932 मे लिखे गए 'सवाद-सप्तक' से होता है। उनका समस्त पद्य-साहित्य सन् 1916 और 32 के मध्य विरचित हुआ है। कुछ आलोचक[1] 'शबरी' (एक पात्री नाटक) तथा 'स्नेह या स्वर्ग' (गीति-नाट्य) को भी उनके पद्य-साहित्य के अन्तर्गत परिगणित करते है, किन्तु मैने 'शबरी' का एक पात्री नाटक के रूप मे तथा 'स्नेह या स्वर्ग' का गीति-नाट्य के रूप मे नाट्य-कृतियो के अन्तर्गत विवेचन किया है। सेठ गोविन्ददास के पद्य-साहित्य के अन्तर्गत मैने उनकी केवल तीन रचनाए ही ली है। वे रचनाए है —

---

1 डा० रामचरण महेन्द्र तथा सेठ जी के साहित्य पर अनुसधान करने वाले डा० केशरीनदन मिश्र।

1 प्रेम-विजय (पूर्वनाम बाणासुर-पराभव)

2 पत्र-पुष्प

3 सवाद सप्तक

सेठ जी के समस्त पद्य-साहित्य को दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—

1. प्रबन्ध काव्य

2 मुक्तक काव्य

प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत महाकाव्य, खड काव्य तथा एकार्थ काव्य आते है। सेठ जी ने कोई खड काव्य या एकार्थ काव्य नही लिखा। महाकाव्य के अन्तर्गत उनकी प्रथम काव्य रचना 'प्रेम-विजय' तथा मुक्तक काव्य के अन्तर्गत उनकी दो रचनाए— पत्र-पुष्प तथा सवाद सप्तक का विवेचन इसी अध्याय मे आगे इस प्रकार किया जा रहा है

(क) महाकाव्य—प्रेम-विजय

(ख) मुक्तक काव्य—(1) पत्र-पुष्प

(2) सवाद-सप्तक

(क) महाकाव्य—प्रेम-विजय

रचना-काल—बाणासुर की पौराणिक कथा पर आधारित 'प्रेम-विजय' महाकाव्य का रचनाकाल सन् 1916 और 19 के बीच का युग है। निर्माण के प्रारभिक युग मे इसकी कथावस्तु ठीक पुराणो मे वर्णित कथा के अनुरूप थी, इसीलिए इसका नाम 'बाणासुर-पराभव' रखा गया था, लेकिन सन् 1930 के जेल-जीवन मे इसमे अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए यद्यपि मूल कथा वैसी रही जैसी पुराणो मे वर्णित है और इसीलिए इसका नाम 'बाणासुर-पराभव' से बदल कर 'प्रेम-विजय' कर दिया गया।

सन् 1930 मे आवश्यक सशोधन-परिवर्द्धन कर देने के पश्चात् भी सन् 1959 तक यह महाकाव्य प्रकाशन की प्रतीक्षा मे पडा रहा। सन् 1959 मे यह प्रकाशित हुआ और गोविन्ददास ग्रथावली के आठवे भाग मे भी इसे समाविष्ट किया गया। इससे पूर्व इसके कुछ अश सन् 1920-21 मे श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पादकत्व मे निकलने वाली 'सरस्वती' पत्रिका मे तथा जबलपुर से निकलने वाली 'श्री शारदा' पत्रिका मे प्रकाशित हुए थे। श्री रामनरेश त्रिपाठी ने भी 'कविता कौमुदी' के दूसरे भाग मे इसका कुछ अश प्रकाशित किया था। पुस्तक-रूप मे प्रकाशित होने से पूर्व सन् 1959 मे यह महाकाव्य 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' मे धारावाहिक रूप से प्रकाशित हो चुका है।

निर्माण की पृष्ठभूमि—इस महाकाव्य का निर्माण द्विवेदी कालीन इतिवृत्तात्मक प्रबन्ध काव्यो के युग मे हुआ है। हिन्दी साहित्य पर उस समय महावीर प्रसाद द्विवेदी का व्यापक प्रभाव था, अथवा यह कहना अधिक उचित होगा कि वे पूरी तरह से साहि-

त्य पर छाए हुए थे । 'कालिदास की निरकुशता' नामक अपने लेख मे उन्होने महाकवि कालिदास पर भी प्रहार किया था अतएव केवल कल्पना के आधार पर ही काव्य-निर्माण उस समय सभव न था । प्रस्तुत महाकाव्य के निर्माण की पृष्ठभूमि के विषय मे स्वय लेखक का मत इस प्रकार है—

जिस समय आरभ मे अर्थात् सन् 1916 और सन् 1919 के बीच यह काव्य लिखा गया उस समय हिन्दी की खडी बोली मे इस प्रकार के प्रबन्ध काव्यो का दौर-दौरा आरभ हुआ था । राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के 'जयद्रथ-वध' का उन्ही दिनो प्रचार हुआ, परन्तु वह खड काव्य था । जहा तक मुझे याद है, महाकाव्य के समस्त लक्षणो वाला खडी बोली का पहला काव्य श्री अयोध्यासिह जी उपाध्याय 'हरिऔध' का 'प्रिय-प्रवास' था । मुझे इस काव्य के लिखने की प्रेरणा इन्ही प्रबन्ध-काव्यो मे मिली ।[1]

कथानक—मूल कथानक का प्रारभ बाणासुर की तपस्या से होता है । अपने पिता बलि के खोए हुए राज्य को पुन प्राप्त करने के लिए बाणासुर शिवजी की प्रसन्नता-हेतु घोर तप करता है । उसके तप से प्रसन्न होकर शिवजी उसे सहस्र भुजाओ का बल प्रदान करते है और साथ ही यह वरदान देते है कि वह किसी से भी पराजित न होगा ।

शिवजो से वरदान प्राप्त करने के पश्चात् बाणासुर अपने नगर मे प्रवेश करता है । पुर-प्रवेश पर वहा के निवासी उसका हार्दिक अभिनदन करते है । उसकी विरहाकुल पत्नी उसके आगमन का समाचार पाकर हर्ष-विभोर हो जाती है । अपनी विरह सतप्त पत्नी को बाण यह आश्वासन देता है कि वह अति शीघ्र इन्द्र का समस्त वैभव लाकर उसके चरणो पर रख देगा ।

सुरो को पराजित कर असुरो के साम्राज्य को पुन प्रतिष्ठित करने के लिए बाण अपने अमात्यो तथा अन्य सभाजनो से मत्रणा करता है । इस अवसर पर कुछ व्यक्ति यह मत प्रकट करते है कि सुरो की पराजय के लिए तुरत युद्ध होना चाहिए, कुछ कायरता के कारण युद्ध का अनुमोदन नही करते और कुछ अहिसा-सिद्धान्त मे विश्वास रखने के कारण युद्ध-कार्य को घृणित बताते है । अत मे प्रधान अमात्य के इस विचार से कि वर्षा की समाप्ति पर आश्विन मे देवताओ पर आक्रमण करना अधिक उचित होगा, सभी अपनी सहमति प्रकट करते है । इस युद्ध के लिए तैयारी उसी समय से प्रारभ हो जाती है ।

वर्षा की समाप्ति और शरदागमन पर बाणासुर सुरपुर तथा कुबेर नगरी पर आक्रमण करता है । उसके आक्रमण का समाचार सुन तथा यह जानकर कि वह अजेय है, इन्द्र कुबेर तथा अन्य देवगण व्याकुल हो उठते है । वे उसका मुकाबला करने की अपेक्षा वहाँ से भाग जाना अधिक उचित समझते है । थोडी ही देर मे अम-

---

1 गोविन्ददास-ग्र थावली, आठवा खड, निवेदन, पृ० घ ।

रावती जन-शून्य हो जाती है और यही दशा कुवेर नगरी की भी होती है। बिना रक्तपात के ही वाणासुर को अमरावती और कुवेर नगरी प्राप्त हो जाती है और इस प्रकार विजय प्राप्त कर वह अपने राज्य शोणित पुर को वापस आता है।

विजय के पश्चात् वाणासुर अपने राजकाज मे सन्नद्ध होता है। सुख के सभी साधन उपलब्ध होने पर भी सन्तान का अभाव उसके जीवन का सबसे बडा अभाव है। सौभाग्य से उसके यहाँ एक कन्या का जन्म होता है जिसका नाम उषा रखा जाता है। उषा के जन्म से वाण और उसकी पत्नी को अपार हर्ष होता है तथा वह (उषा) भी अपने नाम के ही अनुरूप अत्यन्त कान्तिमान होती है। माता-पिता के स्नेहपूर्ण वातावरण मे राजकन्या उषा का लालन-पालन होता है तथा आकाश मे चन्द्रमा की बढती हुई कला के समान वह बढने लगती है।

पाँच वर्ष की अवस्था पूरी होने पर वाण अपनी कन्या उषा को गुरु शुक्राचार्य के आश्रम मे उनकी पत्नी के पास शिक्षा ग्रहण करने के लिए छोड जाता है। आश्रम मे उषा का स्वभाव अत्यन्त कोमल, दयावान तथा करुणापूर्ण चित्रित किया गया है। उसके मधुर व्यवहार से सभी आश्रमवासी प्रसन्न होते है। यहीं उसकी भेंट चित्रा से होती है जो चित्रकला और योगविद्या मे निपुण है। उषा और चित्रा की परस्पर घनिष्ठता हो जाती है, एक के देखे बिना दूसरे को चैन नहीं पडती। शिक्षा समाप्त कर उषा अपनी सखी चित्रा के साथ पुन अपने पिता के घर वापस जाती है।

आश्रमवासिनी उषा जब नगर मे रहने लगती है तो उसे वहाँ के हिंसामय कृत्यो जैसे पशु-आखेट, ईर्ष्या-द्वेष आदि से घृणा होती है। वह अपने पिता से इसका प्रतिवाद करती है किन्तु उसका पिता वाण उसके कथन को केवल बाल-सुलभ प्रवृत्ति मानकर चुप हो जाता है। निराश होकर उषा सेवा का व्रत लेती है और प्रण करती है कि देवताओ तथा राक्षसो मे प्रेमपूर्ण मैत्री की स्थापना के लिए उसका सतत प्रयास जारी रहेगा। अपने पूर्व निश्चय के अनुसार वह सेवा-कार्यो मे प्रवृत्त होती है तथा जन-कल्याण के अनेक कार्य उसके द्वारा सम्पन्न होते है।

एक रात उषा स्वप्न मे देखती है कि वह अपनी सखियो के साथ जगल मे खडी है और वहाँ अनेक हिंसक जन्तु घूम रहे है। कुछ अश्वारोही अपने हथियारो के साथ आखेट के लिए आते है, उषा उन्हे आखेट से विमुख करने का प्रयास करती है किन्तु वे उसकी बातो को अनसुनी करके अपने कार्य मे लग जाते है। उन्ही अश्वारोहियो मे से एक अत्यन्त सुन्दर युवक उषा के पास आता है, उषा उसकी सुन्दरता पर मोहित हो जाती है और वह उषा के प्रति आकर्षित होता है। उषा की अभ्यर्थना पर आखेट के हथियार फेंककर अहिंसावादी बन जाता है और दोनो ससार के कल्याणकारी कार्यो मे प्रवृत्त होने का सकल्प करते है। इसी बीच उषा की सहेली उसको जगा देती है और उसका स्वप्न भग हो जाता है।

जागने के पश्चात् उषा को उस स्वप्न-स्मरण से बहुत व्याकुलता होती है। उसकी मनोव्यथा को जानकर उसकी सखी चित्रा योग द्वारा स्वप्न मे देखे हुए युवक का चित्र बनाकर उसके पलग पर रख आती है और जब वह अपने प्रियतम का चित्र देखती है तो उसे अत्यन्त आश्चर्य होता है। चित्रा उसे बताती है कि उसके प्रियतम श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध है और यह आश्वासन देती है कि शीघ्र ही वह अनिरुद्ध को द्वारिकापुरी से ले आएगी।

चित्रा अपनी योग विद्या द्वारा अनिरुद्ध का पता लगाने मे सफल हो जाती है और द्वारिकापुरी मे पर्यकशायी अनिरुद्ध को पलगसहित लाकर उषा के कमरे मे ज्यो का त्यो सुला देती है। अपने कमरे मे अनिरुद्ध को पाकर उसके मन मे शका उठती है कि यह सारा कार्य कही अनैतिक तो नही है। नागरिक जीवन से अनभिज्ञ होने के कारण वह समाज के नियमो से भी अपरिचित होती है। अनिरुद्ध के, कमरे मे विद्यमान रहते हुए भी उषा उससे शारीरिक सपर्क स्थपित नही करती। उषा अपनी सखी के साथ इस घटना की सूचना अपनी माँ को देने के लिए जाती है।

दूत द्वारा जब वाण को उपर्युक्त घटना की सूचना मिलती है, तो वह अपने सैनिक अनिरुद्ध को बन्दी बनाने के लिए भेजता है। वाण द्वारा भेजे गए सैनिक अनिरुद्ध से परास्त हो जाते है और तब वह (वाण) स्वय आता है। उसको पिता तुल्य समझकर उसके सम्मान की रक्षा के लिए अनिरुद्ध स्वय बन्दी बन जाता है। व्यभिचार के अभियोग मे उषा को आजन्म कारावास का दंड मिलता है और उसके साथ ही उसकी सखी चित्रा को भी।

अनिरुद्ध के बन्दी बनाए जाने का समाचार देवर्षि नारद स्वय द्वारिकापुरी जाकर श्रीकृष्ण के दर्शन कर उन्हे सुनाते है। नारद जी श्रीकृष्ण से यह भी निवेदन करते है कि उन्हे देवासुर सन्धि की दिशा मे प्रयास करना चाहिए। श्रीकृष्ण नारद की वात से सहमति प्रकट करते है और अपनी सेना सजाकर शोणितपुर को प्रस्थान करते है।

वाणासुर को अपने दूत के द्वारा सूचना मिलती है कि श्रीकृष्ण युद्ध के लिए शोणितपुर आ गए है। शिवजी से वरदान प्राप्त होने पर भी पुत्री के शोक मे वाण की मन स्थिति युद्ध मे कूदने की नही होती फिर भी युद्ध से भागने का विचार भी वह नही रखता। इस विकट परिस्थिति मे अपने कर्तव्य के सम्बन्ध मे अतिम निर्णय करने के उद्देश्य से वह शुक्राचार्य के पास जाता है। शुक्राचार्य से उसे ज्ञात होता है उसकी पुत्री व्यभिचारिणी नही, क्योकि श्रीकृष्ण का निर्णय है कि वह (उषा) नितान्त शुद्ध है। शुक्राचार्य ने यह भी वतलाया कि श्रीकृष्ण देवासुरो मे सन्धि के इच्छुक है।

वाणासुर श्रीकृष्ण के सन्धि-प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार करता है। श्रीकृष्ण के प्रयास से देवो तथा दानवो मे स्थायी सन्धि हो जाती है। वाणात्मजा उषा का

विवाह अनिरुद्ध के साथ सम्पन्न होता है और जो सेना युद्ध के उद्देश्य से आई थी, वह विवाह मे सम्मिलित होने के लिए बारात के रूप मे परिवर्तित हो जाती है। दैत्यराज बाण को इस सन्धि तथा पुत्री के विवाह की सम्पन्नता से अत्यन्त हर्ष होता है। इम सन्धि के पश्चात् देवताओ तथा राक्षसो मे परस्पर मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और दोनो भ्रातृवत् रहने लगते है।

उद्गम स्रोत—प्रेम-विजय महाकाव्य के कथानक का आधार कपोल कल्पना न होकर पुराणो मे वर्णित बाणासुर की पौराणिक कथा है। बाणासुर की कथा श्रीमद्भागवत पुराण के दशम स्कन्ध के अध्याय 62 और 63 मे विस्तार से वर्णित है। शिव महापुराण रुद्र सहिता के अध्याय 51, 52, 53, 54, 55 मे भी इस कथा का विस्तार से वर्णन हुआ है। 'प्रेम-विजय' की कथावस्तु का विवरण दे देने के पश्चात् आधार ग्र थो मे वर्णित कथा का विवेचन एक प्रकार से पिष्टपेषण मात्र होगा। अतएव इस स्थल पर आधार ग्रथो की कथा न देकर, दोनो ग्र थो (प्रेम विजय तथा पुराणो) मे वर्णित कथा वैषम्य का विवेचन इसके अगले प्रसग (मौलिक उद्भावनाएँ) मे किया जा रहा है।

मौलिक उद्भावनाएं—'प्रेम-विजय' की कथा का आधार पुराणो को बनाकर भी सेठ जी ने इस महाकाव्य की कथावस्तु को ठीक पुराणो मे वर्णित कथा के अनुरूप नही रखा। पुराणो मे वर्णित बाणासुर की कथा सेठ जी की मौलिक उद्भावनाओ से समन्वित होकर उनके 'प्रेम-विजय' महाकाव्य मे एक नवीन रूप मे परिलक्षित होती है। महाकाव्य की कुछ मौलिक उद्भावनाएँ इस प्रकार है—

1 पुराणो मे देवो तथा दानवो को मनुष्य से इतर अन्य वर्ग का माना गया है। वहाँ देवो की स्वाभाविक सौम्यता तथा दानवो की भयकरता का उल्लेख प्राय सर्वत्र हुआ है। परन्तु 'प्रेम-विजय' मे देवो तथा दानवो को मनुष्य वर्ग का ही माना गया है और किसी पर कोई पूर्व भावना आरोपित नही की गई है।[1]

2 श्रीमद्भागवत पुराण की कथा के अनुसार बाणासुर को शिवजी से 1000 भुजाएँ तथा अपराजेयता का वरदान मिला था और अपनी शक्ति से गर्वान्ध होकर वह वरदाता शिवजी से सग्राम के लिए भी तैयार हो गया था। 'प्रेम-विजय' के अनुसार बाणासुर को 1000 भुजाएँ न प्राप्त होकर 1000 भुजाओ की शक्ति प्राप्त होती है जो अधिक स्वाभाविक हे, यहा बाणासुर के शिवजी से सग्राम के लिए प्रस्तुत होने का भी वर्णन नही है। कथा मे इस परिवर्तन का मूल कारण यह है कि

---

1 निवास जो थे करते वहां वे,
विभक्त थे मानव दो दलो मे,
प्रसिद्ध देवासुर नाम वाले
प्रचड सग्राम प्रवृत्त होते। — 'प्रेम-विजय' प्रथम सर्ग, पृष्ठ 5।

'प्रेम-विजय' मे वाण का चरित्र-चित्रण पूर्वाग्रह से मुक्त होकर किया गया है, दैत्यवश का होने के कारण उसके प्रति घृणा की भावना का पूर्वारोपण नही है।

3 पुराणो मे शिवजी का वर्णन कैलाश पर्वत पर रहने वाले देव के रूप मे हुआ है। परन्तु 'प्रेम-विजय' मे शिव को कैलाशवासी नही माना गया है। इस विषय मे स्वय लेखक का कथन इस प्रकार है

शिव को मैंने कैलाशवासी नही माना है। मैंने यह माना है कि परब्रह्म चैतन्य तत्त्व के रूप मे समस्त सृष्टि मे विद्यमान है अत जो उन्हे जिस रूप मे ध्याता अथवा भजता है उनके वह उसी रूप मे दर्शन पाता है।[1]

4 'प्रेम-विजय' महाकाव्य मे उषा के नामकरण सस्कार के अवसर पर ज्योतिषी द्वारा भविष्यवाणी की जाती है कि वह अति दीर्घ आयु वाली, विदुषी तथा पतिव्रता होगी, अपने कुल से इतर किसी अन्य वर्ग के पुरुष का वरण करेगी, ससार के कल्याण मे रत होगी, देवासुर प्रेम की आधारशिला बनेगी, उसके प्रयत्न से शान्ति की स्थापना होगी तथा उसका यश उषा के समान दिग्दिगन्त व्यापी होगा।[2] पुराणो मे भविष्यवाणी की यह योजना नही है।

5 पौराणिक कथा मे वाणात्मजा उषा को सात वर्ष की आयु मे शिक्षा के लिए कैलाश पर्वत पर शिव-पार्वती के पास भेजे जाने का उल्लेख मिलता है। वहा इस बात का भी सकेत किया गया है कि एक दिन शिव-पार्वती को विहार करते देखकर उषा के मन मे भी इसी प्रकार की भावना जाग्रत हुई थी और पार्वती के यह कहने पर कि उसका (उषा का) प्रियतम उसे स्वप्न मे दिखाई पडेगा और वह उसे खोज द्वारा प्राप्त कर भोगरत हो सकेगी, उषा को शान्ति मिली थी। पुराणो मे स्वप्न-दर्शन का सकेत कैलाश पर्वत पर ही मिल जाता है। 'प्रेम-विजय' महाकाव्य मे शिव को कैलाशवासी न मानने के कारण उषा को कैलाश पर्वत पर भेजना सभव न था, अत उसे शुक्राचार्य के आश्रम मे भिजवाया गया है। शुक्राचार्य के आश्रम मे शिक्षा ग्रहण कर रही उषा के मन मे किसी प्रकार के विकार की भावना का उदय नही दिखाया गया है, यहाँ उसका चरित्र नितान्त शुद्ध चित्रित हुआ है।

6. 'प्रेम-विजय' मे स्वप्न-दर्शन को मनोवैज्ञानिक भूमि पर प्रतिष्ठित किया गया है। हिंसा, अहिंसा के विषय मे विचार करती हुई उषा सो जाती है और उसे स्वप्न मे एक जगल मे आखेट का दृश्य दिखाई देता है। आखेट के लिए आए अश्वारोहियो मे से एक अत्यन्त सुन्दर युवक उसके पास आता है और वह उसकी सुन्दरता पर रीझ जाती है। युवक भी उसके प्रति आकृष्ट होता है। पुराणो मे स्वप्न-दर्शन का वर्णन अत्यन्त साधारण है, वहा उषा स्वप्न मे एक सुन्दर युवक को देखती है और

---

1 गोविन्ददास ग्र थावली, खड 8, निवेदन पृ० ख-ग।
2 प्रेम विजय, पचम सर्ग, पृ० 51-52।

उसके प्रति आकृष्ट हो जाती है। दोनो मे प्रेमालाप होता है किन्तु ज्यो ही वह आलिगन-बद्ध होने का प्रयास करती है उसकी आख खुल जाती है।

7 पुराणो मे यह वर्णित है कि स्वप्न मे देखे हुए युवक (अनिरुद्ध) को उषा अपनी सखी चित्रा द्वारा उडा मगाती है और उससे गन्धर्व विवाह करके भोगरत होती है। चार महीने तक उसे अपने कमरे मे छिपाए रखती है और उसके बाद बाणासुर को पता चलता है। 'प्रेम-विजय' की उषा युवक को उडा तो मगाती है किंतु उससे गन्धर्व विवाह नही करती। यहा उषा का चित्रा के द्वारा अनिरुद्ध को उडा मगाना केवल कौतूहल वश हुआ है, उसके मन मे किसी प्रकार का विकार नही है। आश्रम-वासिनी होने के कारण वह नागरिक जीवन के सामाजिक नियमो से अनभिज्ञ होती है, यहा तक कि उसके मन मे यह सशय उठता है कि यह कार्य कही अनैतिक तो नही है। इस घटना की सूचना देने के लिए वह शीघ्र ही अपनी सखी चित्रा के साथ मा के पास पहुँच जाती है। इस प्रकार 'प्रेम-विजय' की उषा का चरित्र पौराणिक उषा की अपेक्षा अधिक निर्मल है।

8 इस महाकाव्य मे अवतार सम्बन्धी सिद्धान्त का भी एक नए ढग से प्रति-पादन किया गया है। इस विषय मे लेखक का निजी मत इस प्रकार है —

"चौबीस या दश अवतार ही हुए है यह मै नही मानता। जिन व्यक्तियो मे भी महान् विशेषताए हुई है उन्हे मैं अवतार ही मानता हू, जैसे गाधी और ईसा को भी मै अवतार मानता हू। इस काव्य मे भगवान् श्री कृष्ण को मैंने इस काल का सर्वश्रेष्ठ अवतारी पुरुष माना है। साथ ही मै वल्लभ सप्रदाय का अनुयायी हूँ अत श्री कृष्ण तो मेरे इष्ट है ही।"[1]

9 पुराणो मे उल्लेख है कि श्री कृष्ण से पराजित होने के पश्चात् बाणासुर ने अपनी पुत्री उषा का विवाह अनिरुद्ध के साथ किया। सेठ जी ने बाणासुर की पराजय न दिखला कर श्री कृष्ण के द्वारा उसके हृदय-परिवर्तन का दृश्य अकित कर देवासुरो मे स्थायी सधि की योजना की है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह भी कल्पना असगत नही क्योकि बाणासुर के पश्चात् किसी देवासुर सग्राम का उल्लेख पुराणो मे नही है। अत पराजय के स्थान पर सधि का आयोजन सेठ जी की उत्कृष्ट कल्पना का परिचायक है। यहा गाधीवादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। 'प्रेम-विजय' महाकाव्य का उद्देश्य प्रेम की प्रतिष्ठा स्थापित करना है, इसलिए श्री कृष्ण अपने प्रेम द्वारा बाणासुर को जीतते है और उषा अपने प्रेम द्वारा अनिरुद्ध के हृदय पर अधिकार करती है।

10 इस महाकाव्य मे आधुनिकता का स्वर प्रमुख रूप से प्रस्फुटित हुआ है। सामयिक विचारधारा को प्रकट करने वाली कुछ घटनाओ का प्रत्यक्ष अवलोकन सहज

---

1 गोविन्ददास-ग्र थावली, आठवा खड, निवेदन, पृ० ग।

मे ही किया जा सकता है। आधुनिक चिकित्सा सुविधा का सकेत,[1] प्रजातत्र की कल्पना,[2] युद्ध की भयकरता का चित्रण[3] तथा अहिंसा-भावना का प्रसार[4] आदि कतिपय विवरण इसके प्रमाण स्वरूप उद्धृत किए जा सकते है। इन घटनाओ पर विस्तार से विचार 'प्रेम-विजय मे युगचेतना' प्रसग मे किया जाएगा।

उपर्युक्त तथ्य-विवेचन से स्पष्ट है कि 'प्रेम-विजय' पुराणो की छाया मात्र नही है अपितु लेखक ने अपनी मौलिक उद्भावनाओ द्वारा इसकी कथावस्तु मे चार चॉद लगा दिए है।

चरित्र-चित्रण

'प्रेम-विजय' चरित्र-प्रधान काव्य न होकर इतिवृत्त-प्रधान काव्य है। चरित्र-प्रधान काव्य मे कवि का प्रमुख उद्देश्य पात्रो की चारित्रिक विशेषताओ का उद्घाटन रहता है जबकि घटना-प्रधान काव्य मे कवि का ध्यान विशेष रूप से घटनाओ के सघटन की ओर ही रहता है, परन्तु इसका तात्पर्य यह नही कि घटना-प्रधान काव्य मे चरित्र-चित्रण का पक्ष दुर्बल अथवा शून्यप्राय होता है। प्रस्तुत महाकाव्य के चरित्र-चित्रण के आधार पर उक्त कथन की सार्थकता बडी सरलता से सिद्ध की जा सकती है।

पात्र-योजना—'प्रेम-विजय' मे पात्रो की बहुलता नही है। इसके प्रमुख पात्र केवल चार है—वाणासुर, अनिरुद्ध, उषा तथा श्री कृष्ण। गौण पात्रो मे चित्रा, शिवजी, शुक्राचार्य, भार्गवी, वाण पत्नी, नारद तथा वाणासुर के भृत्य एव सैनिक गण आदि आते है।

नायकत्व—यह स्पष्ट है कि इस महाकाव्य की नायिका उषा है, उषा को नायिका मान लेने पर भी 'प्रेम-विजय' को नायिका-प्रधान काव्य नही माना जा सकता क्योकि इस काव्य का मूल उद्देश्य न तो केवल नायिका (उषा) की चारित्रिक विशेषताओ का उल्लेख ही है और न ही महाकाव्य के मूल उद्देश्य (प्रेम द्वारा शान्ति-पूर्ण साम्राज्य की स्थापना) की सिद्धि उषा के द्वारा होती है। उसको नायिका मानने का मूल कारण यह है कि नारी पात्रो मे उसका चरित्र सर्वश्रेष्ठ है। महाकाव्य की कोई भी नारी पात्र उसकी चारित्रिक गरिमा तक नही पहुँच पाती। नायिका-निर्धारण के उपरान्त अब यह प्रश्न उठता है कि इस महाकाव्य का नायक कौन है? महत्त्व की दृष्टि से केवल दो पात्र ऐसे है जिनके नायक के गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित करने के सम्बन्ध मे विचार किया जा सकता है। ये दो पात्र है वाणासुर तथा अनिरुद्ध।

---

1 प्रेम-विजय, द्वितीय सर्ग, पृ० 17 का तीसरा पद।

2 वही, द्वितीय सर्ग, पृ० 17 का चौथा पद।

3 वही, त्रयोदश सर्ग, पृ० 150 का प्रथम पद।

4 वही, सप्तम सर्ग, पृ० 75 का चौथा पद।

डा० केशरीनदन मिश्र ने अपने शोध-प्रबन्ध 'सेठ गोविन्ददास कला एव कृतित्व' मे अनिरुद्ध को इस महाकाव्य का नायक माना है। इस विषय मे उनका कथन इस प्रकार है—

"अनिरुद्ध इस महाकाव्य का नायक है। कुलीन, वीर, धैर्यवान् तथा एकनिष्ठ प्रेमी के साथ-साथ उसका चरित्र जटिल भी है। चित्रा के द्वारा उपा के पास लाए जाने के पश्चात् शोणितपुर मे उसका क्रिया-कलाप बडा जटिल है। बाणासुर कथा के प्रारम्भ से अन्त तक छाए हुए है, अतएव क्या उन्हे इस कथा का नायक मानना हमे ठीक प्रतीत होगा ? वस्तुत बाणासुर काव्य मे अधिक स्थान घेरते है, किन्तु मूल कथा का केन्द्र उपा और अनिरुद्ध ही है। अनिरुद्ध को ही केन्द्र मे रखकर महाकाव्यकार लक्ष्य की सिद्धि किया चाहता है। अनिरुद्ध ही महाकाव्यकार का वह पात्र है जिसके माध्यम से वह अभिप्रेत आदर्श 'सेवा और शान्ति' की सिद्धि चाहता है।[1]

अनिरुद्ध के नायकत्व के विषय मे जिन आधारभूत प्रमाणो का उल्लेख डा० मिश्र ने किया है वे पूर्णतया ग्राह्य नही है। ऐसा लगता है कि उनका विश्लेषण महाकाव्य मे उपलब्ध तथ्यो पर आधारित न होकर बहुत कुछ अनुमान पर आधारित है। वे कथा मे बाणासुर की सर्वाधिक व्यापकता को स्वीकार करते हुए भी उसे नायक नही मानते। उन्होने मूल कथा का केन्द्र उपा और अनिरुद्ध को स्वीकार किया है जो सगत नही प्रतीत होता, उपा और अनिरुद्ध की प्रणय योजना द्वारा कथानक को गति अवश्य प्राप्त होती है किन्तु लक्ष्यसिद्धि तो बाण द्वारा ही होती है। डा० मिश्र ने 'सेवा और शान्ति' को महाकाव्य का अभिप्रेत आदर्श माना है और उसकी सिद्धि का माध्यम अनिरुद्ध को बताया है, उनका यह मत भी तर्कसम्मत प्रतीत नही होता है। उनके कथनानुसार महाकाव्य का अभिप्रेत आदर्श 'सेवा और शान्ति' यदि मान भी लिया जाए, तो भी इसकी सिद्धि अनिरुद्ध के द्वारा न होकर उपा के द्वारा होती है। इसी सन्दर्भ मे उन्होने लिखा है—इस नायक मे सेठ जी ने वर्तमान युग के अनुरूप परिवर्तन कर उसे समाज-सेवक के रूप मे चित्रित करने का प्रयत्न किया है।[2] उनका यह कथन भी तथ्यपूर्ण नही है, महाकाव्य मे किसी भी स्थल पर अनिरुद्ध को सक्रिय सेवारत नही दिखाया गया है, हा, एक स्थान पर इसका वर्णन अवश्य है कि जब उपा और अनिरुद्ध का स्वप्न मे मिलन होता है तो उसकी (उपा) प्रेरणा से अनिरुद्ध अपनी हिंसा वृत्ति को छोडकर उसके साथ सेवा कार्य मे रत होने की इच्छा व्यक्त करता है और (स्वप्न मे ही) आगे यह चित्रित किया गया है कि विश्वसेवा को अपना ध्येय बनाकर वे दोनो मित्रता स्थापित करते है।[3] लेकिन स्वप्न स्वप्न है, उसका वास्त-

1 'सेठ गोविन्ददास—कला एव कृतित्व'—डा० केशरी नदन मिश्र, टकित प्रति, पृ० 96।

2 वही, पृ० 97।

3 प्रेम विजय, अष्टम सर्ग, पृ० 88।

त्रिकता से क्या सम्बन्ध ? फिर स्वप्न कल्पना उषा की अपनी विचारधारा का प्रतीक भी तो हो सकती है। अत प्रमुख रूप से समाज सेवक के रूप मे भी अनिरुद्ध को स्वीकार नही किया जा सकता। स्वय महाकाव्यकार भी अनिरुद्ध को नायक पद पर प्रतिष्ठित करने के पक्ष मे प्रतीत नही होता, अगर ऐसा न होता तो वह प्रथम बार अनिरुद्ध को निष्क्रिय रूप मे (उषा के स्वप्न मे) अष्टम सर्ग और सक्रिय रूप से दशम सर्ग मे न लाता। अष्टम सर्ग से पूर्व अनिरुद्ध का कही भी सकेत नही मिलता। अत महाकाव्य का एक प्रमुख पात्र होते हुए भी अनिरुद्ध को नायक पद पर प्रतिष्ठित नही किया जा सकता।

जहाँ तक महाकाव्य मे उपलब्ध तथ्यो के आधार पर नायकत्व के निर्णय का प्रश्न है, मेरा विचार है कि बाणासुर का पक्ष कही अधिक प्रबल है। कथानक मे प्रवेश की दृष्टि से विचार करे तो बाणासुर का प्रवेश प्रथम सर्ग के आरम्भ मे ही हो जाता है और वह अन्तिम सर्ग बल्कि अन्तिम सर्ग के भी पश्चात् उपसहार तक उपस्थित रहता है। महाकाव्य के तेरह सर्गो मे केवल चार (आठ, नौ, दस और बारह) को छोडकर शेष सभी सर्गो मे वह विद्यमान है। इस काव्य का अन्य कोई पात्र इतना व्यापक नही है। महाकाव्य मे नायक घटनाओ का सूत्रधार होता है, कथा के अग-सगठन मे उसका विशेष योगदान रहता है तथा फल की प्राप्ति भी उसे ही होती है। 'प्रेम-विजय' के अधिकाश सर्ग की घटनाओ का सूत्रधार बाणासुर ही है। केवल कुछ सर्गो मे घटना के सूत्रधार अन्य पात्र बन जाते है—अष्टम सर्ग की स्वप्न-दर्शन घटना का सम्बन्ध उषा से है, नवम सर्ग के चित्र-दर्शन मे घटना का सचालन चित्रा द्वारा होता है, दशम सर्ग मे उषा और अनिरुद्ध का मिलन भी चित्रा के कारण ही हो पाता है, द्वादश सर्ग की घटना के सूत्रधार नारद जी है। इन सर्गो के अतिरिक्त शेष सर्गो की घटनाएँ किसी न किसी रूप मे बाणासुर से सम्बद्ध है। अन्तिम सर्ग मे देवासुर-सन्धि का प्रस्ताव श्रीकृष्ण द्वारा रखा जाता है लेकिन उसकी अन्तिम स्वीकृति बाण द्वारा ही होती है। इस प्रकार कवि के अभिप्रेत आदर्श 'प्रेम द्वारा शान्तिपूर्ण साम्राज्य की स्थापना' की सिद्धि भी बाण द्वारा ही होती है। अत 'प्रेम-विजय' महाकाव्य का नायक अनिरुद्ध न होकर बाणासुर है।

बाणासुर को नायक तथा उषा को नायिका मान लेने के पश्चात् एक समस्या के समाधान की आवश्यकता अब भी शेष रह जाती है। समस्या है कि क्या पिता और पुत्री नायक और नायिका हो सकते है ? इस सम्बन्ध मे अभिनव भरत प० सीताराम चतुर्वेदी का कथन है—"आधुनिक (पाश्चात्य) नाट्यशास्त्र मे आवश्यक नही कि नायक की प्रिया पत्नी ही नायिका हो। स्त्रियो मे से जिसका नाटकीय कथा-प्रवाह मे प्रधान भाग हो वही पाश्चात्यो के अनुसार नायिका होती है, चाहे वह नायक की प्रिया हो या कोई और। परन्तु भारतीय नाट्य-शास्त्र मे नायक की प्रिया ही नायिका कहलाती है।"[1] नाटक की नायिका के सम्बन्ध मे कही गई उक्ति महाकाव्य की

1 अभिनव नाट्यशास्त्र—प० सीताराम चतुर्वेदी, द्वितीय सस्करण, पृ० 212।

नायिका के लिए भी उतनी ही सत्य है। ज्ञात होता है कि इस सम्बन्ध मे सेठ जी ने भारतीय परम्परा का अनुसरण नही किया अपितु इसके विपरीत वे पाश्चात्य प्रभाव से अभिभूत दिखाई पडते है।

प्रमुख पात्रो का चरित्र-चित्रण

बाणासुर—देवो और दानवो के प्रति कवि की समान व्यवहार नीति के कारण दैत्यराज बाणासुर का चरित्र उच्च कोटि का चित्रित हुआ है। उसकी कुछ चरित्रगत विशेषताएँ इस प्रकार है—

महत्त्वाकाक्षा की भावना—बाणासुर महत्त्वाकाक्षी है। वह पराक्रम द्वारा अपने पिता बलि का खोया राज्य पुन प्राप्त कर लेता है किन्तु इससे उसको सतोष नही होता। उसकी महत्त्वाकाक्षा इतनी प्रबल है कि वह इन्द्र से सारा सुर राज्य ले लेना चाहता है—

प्रसिद्ध बाणासुर ने पिता का
गया हुआ राज्य पुन लिया था,
परन्तु सन्तोष उन्हे नही है
प्रयत्न से प्राप्त स्वराज्य से ही।
सुरेश से वे सुरराज्य सारा
पराक्रमी होकर चाहते है।[1]

वीरत्व की भावना—बाणासुर मे वीरत्व की भावना कूट-कूट कर भरी है। देवताओ द्वारा अपने पिता के प्रति किए गए अन्याय से अवगत होकर वह प्रतिशोध की ज्वाला मे जलने लगता है। शक्ति-सम्पन्न होकर वह देवगण से अपने पिता का बदला लेने के उद्देश्य से इन्द्र तथा कुबेर पर आक्रमण करता है। आक्रमण से पूर्व उसका वीरोचित कथन द्रष्टव्य है—

जो दैत्यो का विभव देख जी मे जलता है,
ऊँचा कर पद प्राप्त दानवो को दलता है,
उसी शक्र को हरा, पकड कर हम लावेगे,
अनायास फिर तो कुबेर वश मे आवेगे।[2]

उसे अपनी शक्ति पर विश्वास और गर्व है तभी तो ऐसा प्रण करता है—

न मै विजय कर सका उन्हे जो इस सब बल से,
तज दूँगा निज नाम अलग हो दिति सुत दल से।[3]

---

1 प्रेम-विजय, प्रथम सर्ग, पृ० 5-6।
2 वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० 40।
3 वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० 41।

भक्ति भावना—लेखक ने दैत्यराज बाण को भक्त दैत्यराज के रूप मे चित्रित किया है। वह शिव का एकनिष्ठ उपासक है। शक्ति प्राप्त करने की इच्छा से तपस्या मे सलग्न, महेश की आराधना मे निमग्न बाण का एक चित्र देखिए—

प्रवेश श्री श्रावण मास का है,
घनावली की अविराम धारा
महीप का तप्त-सुगात्र धोती,
समाधि मे निश्चल किन्तु वे है।[1]

दृढ़ता की भावना—बाण के चरित्र मे दृढता की भावना परिलक्षित होती है। एक बार लक्ष्य निर्धारित कर लेने के पश्चात्, मार्ग की विघ्न बाधाओ की चिन्ता किए बिना पूरी दृढता के साथ उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वह जुट जाता है। प्रथम सर्ग का तपस्या प्रसग उसकी दृढता का प्रत्यक्ष प्रमाण है—शिव की प्रसन्नता के लिए तपस्या मे सलग्न होने पर अनेकानेक विघ्न-बाधाएँ आती है, किन्तु इन सबसे वह लेशमात्र भी भयभीत नही होता। कठिन गर्मी, मूसलाधार वर्षा, प्रखर शीत, आँधी तथा तूफान आदि भी उसकी तपस्या भग करने मे असमर्थ है। वन मे प्रस्फुटित दावाग्नि तथा उसकी लपटो का अनुभव करके भी वह अविचलित रहता है—

शनै शनै अग्नि नरेश के भी
समीप आया, वट को जलाया,
डरे न तो भी दनुजेश किंचित,
दिनेश ज्यो अम्बर डम्बरो से।[2]

उसके दृढ निश्चय से ही प्रसन्न होकर शिवजी परब्रह्म के रूप मे प्रकट होते है—

यो दृढता लख बाण की, सुभग ध्यान अनुरूप
परब्रह्म प्रकटे वहाँ, धर कर स्मर हर रूप।[3]

आत्म-सम्मान की भावना—बाणासुर आत्म-सम्मानी व्यक्ति है, आत्म-सम्मान खोकर वह किसी वस्तु को प्राप्त करने का इच्छुक नही है। तपस्या के अन्त मे शिवजी उसे मनोवाछित भिक्षा (वर) माँगने के लिए कहते है, लेकिन आत्म-सम्मानी बाण भिक्षावृत्ति को नीच कार्य समझता है। उसका कथन है—

मेरा अहेतुक तप नही है, मै इसे हूँ मानता,
पर नीच भिक्षा वृत्ति है, मै, शभु, यह भी जानता।[4]

---

1 प्रेम-विजय, प्रथम सर्ग, पृ० 6।
2 वही, प्रथम सर्ग, पृ० 10।
3 वही, पृ० 10।
4 वही, पृ० 13।

उसके अनुसार भिक्षा माँगने से पुरुष के पौरुष का ह्रास हो जाता है और याचक, चाहे कितना ही महान् क्यो न हो, दाता के सम्मुख सदैव तुच्छ ही प्रतीत होता है—

पर, ईश, भिक्षा तो घटाती सदा ही पौरुष सभी,
छोटे बने थे दानहित मम जनक सम्मुख विष्णु भी ।[1]

अन्याय का विरोध—वाणासुर अन्याय का विरोधी है, शिवजी से इच्छित वरदान प्राप्त हो जाने पर भी किसी के प्रति वह अन्याय नही करना चाहता अपितु प्राप्त शक्ति का उपयोग, अन्याय के नाश के लिए, करने का इच्छुक है—

तब वाण बोले—"चाहता मै नही कुछ अन्याय हो,
पर नाश हो अन्याय का, प्रभु, न्याय हो, बस न्याय हो ।'[2]

अपनी इसी भावना के कारण, अनिरुद्ध को व्यभिचारी जान कर वाणासुर क्रोध मे उसे कटु शब्द भी कह देता है—

भवन मे किस कारण आ यहाँ,
अधम, तस्कर-सा छिप के घुसा ?
खल महा, कर घोर अनर्थ तू
अब खडा इस भाँति विनम्र हो ।[3]

अनिरुद्ध और उषा को कारावास का दण्ड देने मे भी उसकी यही भावना (अन्याय का विरोध) परिलक्षित होती है ।

कर्त्तव्यनिष्ठा—कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा वाण के चरित्र का आवश्यक अग है । कर्त्तव्यनिष्ठा के कारण ही वह देवताओ पर आक्रमण करता है, इसी के फलस्वरूप अपनी प्रिय पुत्री उषा को आजन्म कारावास का दण्ड देता है । उषा को कारावास का दण्ड देते समय उसके अन्तर मे स्नेह और कर्त्तव्य के बीच सघर्ष होता है । सघर्षशील मन स्थिति का एक चित्र देखिए—

अतिशय तनया से स्नेह मेरा रहा है,
कठिन समय मे ही किन्तु होती परीक्षा,
सकल प्रणय को मै भूल के न्याय द्वारा,
युवक सहित दूँगा दण्ड कन्या उषा को ।[4]

उषा को कारागृह भेज देने के पश्चात् उसके वियोग मे वाण की दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती है, राज-काज से उन्हे कोई रुचि नही रहती फिर भी कर्त्तव्य के

---

1 प्रेम-विजय, पृ० 13 ।

2 वही, प्रथम सर्ग, पृ० 13 ।

3 वही, एकादश सर्ग, पृ० 118 ।

4 वही, पृ० 114 ।

कारण वे सारा कार्य करते है—

वे कार्य सारे करते स्वराज्य के,
उत्साह स्वाभाविक किन्तु है नही,
कर्त्तव्य के कारण है खिचे हुए
निर्जीव से वे कल के समान है ।[1]

जीवन के प्रारम्भ मे जो वाणासुर प्रतिशोध की ज्वाला से जलता प्रतीत होता है, वृद्धावस्था मे उसका सर्वथा नवीन रूप दृष्टिगोचर होता है। प्रेम से पराजित वाण का देवताओ के प्रति व्यवहार अत्यन्त विनम्रतापूर्ण होता है। वह इन्द्र को उसकी सारी सम्पत्ति स्वेच्छा से लौटा देता है, अपनी शालीनता के कारण ही सर्वथा गर्वमुक्त होकर वह सम्पत्ति का समर्पण करता है, यहा तक कि दूसरे पक्ष को आभास भी नही होने देता कि उनको दान के रूप मे कुछ दिया गया है—

व्यवहार ऐसा असुर पति ने सतत सुरपति से किया,
'श्री दी उन्हे मैंने' न यह सन्देह तक होने दिया ।[2]

वाणासुर की उपर्युक्त वैयक्तिक विशेषताओ के आधार पर उसे धीरोदात्त नायक की कोटि मे परिगणित किया जा सकता है।

अनिरुद्ध—अनिरुद्ध महाकाव्य का प्रमुख पात्र है, उसके चरित्र-चित्रण मे लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है। प्रथम बार नवम सर्ग मे चित्र के माध्यम से उसका परिचय मिलता है। अनिरुद्ध का स्वनिर्मित चित्र दिखाकर चित्रलेखा उषा से कहती है—

गुणी, कला और प्रताप युक्त ये
प्रद्युम्न के श्री अनिरुद्ध पुत्र है,
विशेषत वृष्णिकुलावतस हो
श्री कृष्ण के ये वर वीर पौत्र हैं ।[3]

अनिरुद्ध का यह परोक्ष चरित्राकन है जिसमे उसे गुणवान्, कलाप्रिय तथा अत्यन्त पराक्रमी बताया गया है।

अपनी कलात्मक अभिरुचि के कारण ही वह प्रथम दर्शन मे उषा के प्रति आकृष्ट हो जाता है और उसका यही आकर्षण बाद मे प्रणय मे परिवर्तित होता है। प्रणय मे समर्पण की भावना का पूर्ण विकास उसके चरित्र मे दिखाई देता है—

वाणात्मजा से फिर यो कही गिरा—
भला, बुरा, योग्य, अयोग्य, हे उषे,

---

1 प्रेम-विजय, त्रयोदश सर्ग, पृ० 143 ।
2 वही, उपसहार, पृ० 153 ।
3 वही, नवम सर्ग, पृ० 96 ।

है स्वान्त जैसा, तव पाद पद्म मे,
मैं भेट देता, रखना सदा इसे ।[1]

वाणासुर के द्वारा भेजी गई सेना को अकेले परास्त कर अनिरुद्ध अपनी वीरता का परिचय देता है—

परशुराम उन्हे तब मान के,
परिघ के सहके न प्रहार को,
भट लगे सब ही द्रुत भागने,
निरख दृश्य रुके अनिरुद्ध भी ।[2]

वह आत्मसम्मानी है पर उच्छृखल नही। आत्मसम्मान पर चोट करने वाले को करारा उत्तर दे सकता है, लेकिन मर्यादा की सीमा का उल्लघन न कर पाने के कारण कभी-कभी अपमान को भी सहन कर जाता है। क्रोधाभिभूत वाण के द्वारा अपने प्रति उच्चरित अपशब्दो को सुनकर भी वह अपना सयम बनाए रखता है—

सुन कहा यह, यो अनिरुद्ध ने—
"नृपति, आप पिता सम है मुझे,
इसलिए सहता यह गालियाँ,
यदपि दोष नही कुछ भी किया ।"[3]

अपमान के प्रति अपनी असहिष्णुता की भावना का परिचय देता हुआ अनिरुद्ध वाण से कहता है—

वचन यो कहता यदि दूसरा
विशिख-उत्तर ही मिलता उसे,
मरण भी प्रति उत्तर मे मुझे
सहज था, पर थी न सहिष्णुता ।[4]

उपा के प्रणय-वधन को स्वीकार करने के कारण ही वह वाण के कटु वचनो को सहन करता है—

जनक है उसके पर आप तो
चरण मे जिसके सब भेट है,
फिर उसे दुख दू किस भाँति मै
हनन होकर, था हत आपको ।[5]

---

1 प्रेम-विजय, दशम सर्ग, पृ० 110।
2 वही, एकादश सर्ग, पृ० 117।
3 वही, एकादश सर्ग, पृ० 118।
4 वही, पृ० 118।
5 वही, पृ० 119।

प्रणय के प्रभाव से ही, वाण से विना युद्ध किये ही वह बन्दी बन जाता है—

विना किए ही युद्ध, सह सब प्रणय प्रभाव से,
कारागृह अनिरुद्ध गए, दुख था उन्हे न कुछ ।[1]

कथानक मे प्रवेश की दृष्टि से वहुत बाद मे आने पर भी अनिरुद्ध का चरित्र-चित्रण इतना सुन्दर हुआ है कि वह स्वत नायक के पश्चात् द्वितीय स्थान का अधिकारी वन गया है ।

उषा—उषा के चारित्रिक विकास की रेखाएँ अत्यन्त स्पष्ट है । महाकाव्य-कार ने इस पात्र के माध्यम से युगीन भावनाओ को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है ।

शुक्राचार्य के आश्रम मे शिक्षा ग्रहण कर रही उषा के चरित्र मे उसके स्वभाव की कोमलता, दयालुता, सौजन्य तथा प्राणिमात्र के प्रति सहानुभूति की भावना का सुन्दर विकास परिलक्षित होता है । आश्रम के जीव-जन्तुओ के प्रति वह अत्यन्त स्नेहपूर्ण व्यवहार करती है, लता वृक्षो के सिंचन मे वह अपने परिश्रम की सार्थकता समझती है । सारे ससार को सुखी बनाने के प्रयास मे ही उसे सुख मिलता है—

सकल सृष्टि लख उसका हृदय स्नेह लाता
और सुखी कर सबको, वह भी सुख पाता ।[2]

यही से उसमे विश्व वन्धुत्व की भावना भी धीरे-धीरे जाग्रत होने लगती है । आश्रम मे भृगु तथा भार्गवी के प्रति उसका व्यवहार अत्यन्त श्रद्धापूर्ण रहता है तथा सहेलियो के साथ निश्छल मैत्री सम्वन्ध स्थापित करने मे भी वह सफल होती है ।

शिक्षा की समाप्ति के पश्चात् वह पिता के भवन को वापस जाती है और वहाँ उसके अहिंसक तथा समाजसेवी रूप का अच्छा चित्राकन हुआ है । वैभव के सभी साधन उपलब्ध रहने पर भी राजभवन मे उसका चित्त सदैव खिन्न रहता है क्योकि यहाँ उसे प्रेम का अभाव दिखाई पडता है—

परन्तु सन्तोष नही स्वचित्त मे
अपार ये वैभव देख के हुआ,
न दीखती थी उस प्रेम की प्रभा,
जो चाहती थी वह देखना वहाँ ।[3]

वह अपने पिता को हिंसक कार्यो से विमुख करना चाहती है, किन्तु इसमे उसको सफलता प्राप्त नही होती—

---

1 प्रेम-विजय, पृ० 119 ।
2 वही, षष्ठ सर्ग, पृ० 61 ।
3 वही, सप्तम सर्ग, पृ० 71 ।

उसका हृदय इतना निश्छल है कि वह अनिरुद्ध के आगमन की सूचना देने के लिए स्वय अपनी माँ के पास जाती है—

> यद्यपि हुआ प्रभात, नही छुपाया युवक को,
> गोपनीय यह बात, न थी उषा के हित तनिक।
> ले चित्रा को सग, चली उषा माता-निकट,
> उसकी प्रेम उमग, अब नभ लाली सदृश थी।[1]

उषा के माध्यम से कवि ने अपनी गाधीवादी विचारधारा को अभिव्यक्त किया है। महाकाव्य के अन्तर्दर्शन की जितनी सशक्त अभिव्यक्ति उषा के चरित्र-चित्रण द्वारा हुई है उतनी अन्य किसी के द्वारा नही।

श्रीकृष्ण—श्रीकृष्ण का कार्य बाणासुर का हृदय-परिवर्तन तथा उसके फल-स्वरूप देवासुरो मे स्थायी सन्धि स्थापना का नियोजन करना है। उनका यह कार्य महत्त्वपूर्ण होते हुए भी उनके चारित्रिक विकास की रेखाएँ स्पष्ट नही है, महाकाव्य मे उनका क्रिया-कलाप इस प्रकार चित्रित नही है कि जिससे उनके चरित्र पर स्वत. प्रकाश पड सके। स्वय कवि अपने कथन द्वारा उनकी चारित्रिक विशेषताओ को उद्‌घाटित करता है। सर्वप्रथम कवि ने श्रीकृष्ण को जनोपकारी व्यक्ति के रूप मे चित्रित किया है—

> बैठे वही मधुर मूर्ति जनोपकारी
> श्री कृष्ण को उन महामुनि ने विलोका।[2]

द्वादश सर्ग मे श्रीकृष्ण के विषय मे कही गईं कुछ उक्तियाँ उनके चरित्र पर प्रकाश डालती हैं। इस सम्बन्ध मे कुछ उक्तियाँ द्रष्टव्य है—

> (क) शान्त स्वरूप उनका यह है दिखाता
> होती अनेक विधि उन्नति शान्ति से है,
> आकाश का, उदधि का रग नील जैसा
> वैसा शरीर रग है अति रम्य नीला।[3]
>
> (ख) गभीरता हृदय की उस रग द्वारा
> आकाश सिन्धु सम द्योतक हो रही है,
> हो बाह्य आवरण भीतर सा, न ऐसी
> प्राय सुवस्तु दिखती इस विश्व मे है।[4]

---

1 प्रेम-विजय, एकादश सर्ग, पृ० 111।
2 वही, द्वादश सर्ग, पृ० 134।
3 वही, पृ० 134।
4 वही, पृ० 134।

(ग) है ज्ञान दीप्तिमय नेत्र विशाल दोनो,
लाली मिली अधर की स्मिति मे रसीली,
मुद्रा यही सकल को दिखला रही है
लीला समान यह विश्व सभी उन्हे है ।[1]

इस प्रकार कवि ने उन्हे शात, गभीर, ज्योतिर्मय, कान्तिमान तथा प्रतिभा-सम्पन्न पुरुप के रूप मे चित्रित किया है । श्रीकृष्ण को कवि अवतारी पुरुष मानता है, महर्षि नारद उसके अवतार सम्बन्धी कर्त्तव्य-पालन की ओर सकेत करते है—

भू-भार अत्यन्त अधर्मियो का
कसादि को मार उतार डाला,
सद्धर्म सस्थापित पाण्डवो को
जिता महाभारत मे किया है ।
पूरे किए यद्यपि अन्य सारे
कर्त्तव्य नाना अवतार के है,
तथापि आवश्यक एक बाकी
देवासुरो का हल प्रश्न होना ।[2]

गौण पात्रो मे शिवजी अलौकिक पात्र है । उन्हे परब्रह्म के रूप मे स्वीकार किया गया है । चित्रा को उषा की अनन्य मित्र के रूप मे चित्रित किया गया है जो हर स्थिति मे उसकी सहायता करती है । उसे योगविद्या से सम्पन्न भी माना गया है जिसके द्वारा वह अपनी मनोवाछित इच्छाओ को पूर्ण करने मे समर्थ है । वाण के तपस्या मे सलग्न रहने की स्थिति मे उसकी पत्नी का चरित्र एक विरहिणी के रूप मे चित्रित करने का प्रयास दिखाई पडता है । इसके अतिरिक्त अन्यत्र उसका महत्त्व प्रतिपादन नही किया गया है । शेष पात्रो के चरित्र मे कोई विशिष्टता नही है, उन सबका चरित्र-चित्रण सामान्य स्तर का है ।

'प्रेम-विजय' महाकाव्य मे पात्रो के चरित्र-चित्रण मे कवि-कल्पना का सुन्दर रूप दिखाई पडता है । आधुनिक युग के मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण वाणासुर की कथा को मानवीय भूमि पर प्रतिष्ठित किया गया है । राक्षस होने के कारण वाणासुर के प्रति घृणा की परम्परागत भावना का बहिष्कार करके उसे उच्च मानवीय गुणो से समलकृत करने का सफल प्रयास इस काव्य मे परिलक्षित होता है । पात्रो की बद्धमूल सास्कृतिक धारणा के प्रति कवि का विद्रोहात्मक स्वर मुखरित हुआ है इसीलिए दानवी पात्रो को सर्वथा नवीन रूप सहज मे ही प्राप्त हो गया है ।

---

1 प्रेम-विजय, द्वादश सर्ग, पृ० 135 ।
2 वही, पृ० 137 ।

रस-योजना

'प्रेम-विजय' मे काव्य के सभी रसो का परिपाक तो नही हो पाया है किन्तु शृगार, वात्सल्य, वीर, रौद्र तथा भयानक रसो का चित्रण अवश्य हुआ है। इस महाकाव्य मे शृगार के दोनों रूप—सयोग शृगार तथा वियोग अथवा विप्रलभ शृगार भिन्न-भिन्न स्थलो पर चित्रित हुए है। शृगार के सयोग पक्ष की अपेक्षा उसके वियोग पक्ष का वर्णन अधिक है। सयोग के स्थल जहाँ अत्यन्त सीमित है वही वियोग पक्ष का व्यापक प्रसार परिलक्षित होता है। शृगार के सयोग और विप्रलम्भ दोनो पक्षो का सम्बन्ध वाण-पत्नी तथा उषा से है। सयोग शृगार के कुछ स्थल देखिए—

सहसा सजनि से जब सुना प्रिय आ रहे है क्षेम से,
अति हर्ष से विकसा हृदय, युग नयन छलके प्रेम से।
वहु उमडते उल्लास का तन पर हुआ शृगार-सा।
गथा सुमन ने कामना का इन्द्र धनुषी हार-सा।[1]

यहाँ प्रियतम के शुभागमन का समाचार पाकर वाण-पत्नी के हर्ष सचारी भाव की सुन्दर व्यजना की गई है। आश्रय के रूप मे वाण-पत्नी के अनुभावो का चित्रण भी निम्न पक्तियो मे दर्शनीय है—

वे आर्त तज करने लगी, द्रुत दीप मगल आरती
लज्जायुता मृदु मधुर हँस प्रिय-वदन बाहु निहारती।
'जय' शब्द आधा कह विकम्पित कठ मे वाणी रुकी,
थी तनुलता सस्वेद, पुलकित दृष्टि अति नीचे झुकी।[2]

यहाँ कायिक (आरती करना, वदन तथा बाहु निहारना), वाचिक (जय शब्द का उच्चारण) तथा सात्विक (कपन तथा स्वेद) अनुभावो का रम्य चित्रण हुआ है।

विप्रलभ शृगार के चार भेद माने गए है—

(1) पूर्वराग, (2) मान, (3) प्रवास तथा (4) करुण

पूर्वराग—पूर्वराग उस अवस्था को कहा जाता है जहाँ नायक तथा नायिका प्रथम दर्शन मे अथवा गुण-श्रवण द्वारा एक-दूसरे पर आसक्त हो जाते है, मिलन की अभिलाषा रखते हुए भी कारणवश उनका परस्पर मिलन सम्भव नही हो पाता। प्रथम दर्शन प्राय स्वप्न मे या चित्र द्वारा होता है, यह दर्शन प्रत्यक्ष भी हो सकता है।

मान—नायक तथा नायिका मे परस्पर प्रेम रहते हुए भी जब अकारण या कभी-कभी ईर्ष्यावश एक दूसरे पर कोप करता है तो उस अवस्था को 'मान' की अवस्था कहते हैं।

---

1 प्रेम-विजय, द्वितीय सर्ग, पृ० 20।
2 वही, द्वितीय सर्ग, पृ० 20।

प्रवास—कार्यवश, शापवश अथवा भ्रमवश प्रिय के अन्यत्र चले जाने के कारण जब नायक नायिका एक-दूसरे से मिल नही पाते तो वह प्रवास की स्थिति होती है।

करुण—जब किसी कारणवश नायक नायिका की परस्पर मिलने की आशा टूट जाती है तब करुण वियोग होता है।

'प्रेम-विजय' मे मान तथा करुण विप्रलभ का वर्णन नही है। वहाँ केवल पूर्वराग तथा प्रवास का चित्रण ही हुआ है। स्वप्न मे अनिरुद्ध को देखने और उस पर आसक्त हो जाने के बाद उषा की व्याकुलता तथा मिलनोत्कठा का स्वाभाविक चित्र अकित हुआ है। प्रियतम की अनुपस्थिति मे उषा उसके चित्र से ही वार्तालाप करती है—

यो वाक्य बोली फिर चित्र से उषा—
"हो कौन सौन्दर्य सुधा समुद्र हे!
आके दिये दर्शन स्वप्न मे मुझे,
पुन पधारे इस चित्र रूप मे ?"[1]

अनिरुद्ध के कारागृह चले जाने के उपरात उषा का विरह वर्णन प्रवास मूलक है। इस प्रसग मे वियोग की दस अवस्थाओ मे से अधिकाश का वर्णन हुआ है। वियोगजन्य कुछ अवस्थाएँ तथा उनके उदाहरण द्रष्टव्य है—

अभिलाषा—

लख फिर तुलसी को यो कहा हाथ जोडे—
"जननि, यदि हुआ है दोष, तो मैं सदोषा,
द्रुत यह असु जावे, किन्तु वे मुक्त होवे
मम हित उनको हो कष्ट, आश्चर्य, माता!"[2]

चिन्ता—

समर यह हुआ है, किन्तु वे हैं कहाँ हा!
यदि कुशल न होगे, प्राण मैं भी तजूगी।[3]

स्मरण—

इस विधि कह आई बाग मे बाण कन्या
रुधिर युत बगीचा देख बोली पुन यो—
अहह! सखि, उन्ही ने रक्त है यो बहाया,
जिन शुचि चरणो मे सर्व मैने चढाया![4]

1 प्रेम-विजय, नवम सर्ग, पृष्ठ 94।
2 वही, एकादश सर्ग, पृष्ठ 123।
3 वही, एकादश सर्ग, पृ० 120।
4 वही, पृ० 122।

गुण-कथन

पर, सखि, वह दोषी है नही, भूल मेरी,
मनुज हृदय ही हा ! दास सस्कार का है ।[1]

व्याधि—

कुछ समय गए से चेत आया उषा को,
पर न हृदय की थी पूर्व की-सी अवस्था,
मुख छवि दिखती म्लान अत्यन्त ऐसी
कुवलय कुम्हलाता तप्त हो ज्यो पलो मे ।[2]

मरण सकेत

यदि कुशल न होगे, प्राण मै भी तजू गी,
इस विधि कह बाला मूर्छिता शोक से हो
क्षिति पर गिरती थी, किन्तु झेला सखी ने ।[3]

शृ गार रस के अतिरिक्त कुछ अन्य रसो का भी वर्णन इस काव्य मे हुआ है, अत उन पर भी दृष्टिपात कर लेना अप्रासगिक न होगा—

वात्सल्य रस—शृ गार के पश्चात् इस काव्य का दूसरा प्रमुख रस वात्सल्य है ।

वात्सल्य रस का स्थायी भाव स्नेह है । पुत्रादि इसके आलबन होते है । उनकी चेष्टाए, तुतलाना, घुटनो के बल चलना आदि क्रियाएँ, विद्या-प्रेम, शौर्यादि गुण उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आते है । आलिगन, अग-स्पर्श, शिरचुम्बन, पुलकित होना आदि इसके अनुभाव है तथा अनिष्ट की आशका, हर्ष, गर्व आदि सचारी भाव है ।

प्रस्तुत महाकाव्य मे वात्सल्य का आलबन बालिका उषा है तथा आश्रय बाण और उसकी पत्नी है । वात्सल्य रस के अ तर्गत बाल मनोविज्ञान मूलक (बालिका की) सूक्ष्म बाल-सुलभ प्रवृत्ति का चित्रण नही हुआ है, यहाँ केवल बाह्य चेष्टाओ के अ कन को ही प्रधानता मिली है, इस दृष्टि से 'प्रेम-विजय' का कवि महाकवि सूरदास से बहुत पीछे है । बाह्य चित्रण भी स्वाभाविक न प्रतीत होकर कुछ आरोपित सा लगता है । जान पडता है कि चेष्टापूर्वक कवि वात्सल्य रस का परिपाक कराने का इच्छुक है । एक उदाहरण देखिए—

तुतलाना सुन उसकी माता तुतलाती,
ठुमुक-ठुमुक लख चलना, वह भी अठलाती ।[4]

---

1 प्रेम-विजय, पृ० 122 ।

2 वही, पृ० 120 ।

3 वही, एकादश सर्ग, पृ० 120 ।

4 वही, पचम सर्ग पृ० 53 ।

यहाँ रस के सभी अवयव आलबन (बालिका), आश्रय (माता), उद्दीपन (तुतलाना, ठुमुक ठुमुक चलना) तथा अनुभाव (माता का तुतलाना, उसका इठलाना) विद्यमान होते हुए भी रस व्यजना अपूर्ण है। वात्सल्य के वर्णन मे अन्य कई स्थलो पर भी ऐसा ही हुआ है, लेकिन इसका अर्थ यह नही है कि सर्वत्र इस रस के चित्रण मे कवि को असफलता ही प्राप्त हुई है, कही-कही इसका सुन्दर प्रयोग भी हुआ है। यथा—

लीलादि मे है गिरती उषा कभी
होता धमाका उसके निपात से,
सकप माता सुन दौडती उसे,
भूकप मानो उन हेतु हो गया।[1]

यहाँ 'अनिष्ट की आशका' सचारी भाव की सुन्दर व्यजना हुई है। उद्दीपन भाव (गिरना) तथा कायिक अनुभाव (दौडना) और सात्विक अनुभाव (कप) का चित्रण भी सुन्दर बन पडा है। ऐसे स्थल महाकाव्य मे गिने-चुने ही है।

वीर रस—अनेक स्थलो पर वीरत्वपूर्ण उक्तियो के होते हुए भी रस परिपाक एक आध स्थल पर ही हो पाया है। वाणासुर के सैनिको और अनिरुद्ध मे हुए सघर्ष के अवसर पर प्रथम बार वीर रस अपने अवयवो के साथ वास्तविक स्वरूप मे प्रकट हुआ है—

हत विलोक स्व सैन्य को वहाँ,
शर लगे सब सैनिक छोडने,
इस प्रकार हुई शर-वृष्टियाँ
उरग-वृष्टि मनो उस ठौर हो।[2]

यहाँ अनिरुद्ध आलम्बन, सैनिकगण आश्रय, साथी सैनिको को घायल हुआ देखना उद्दीपन तथा बाण-वृष्टि अनुभाव है। इन अवयवो द्वारा स्थायी भाव उत्साह की सुन्दर व्यजना दर्शनीय है।

रौद्र रस—क्रोध का वर्णन तो कई स्थानो पर किया गया है लेकिन रौद्र रस की अनुभूति केवल एक स्थान पर ही होती है। दूत के द्वारा यह सदेश पाकर कि उषा के अन्त पुर मे एक युवक विद्यमान है, वाणासुर साक्षात् क्रोध की मूर्ति बन जाता है। उसकी दशा-चित्रण मे रौद्ररस का सहज परिपाक हुआ है—

निज प्रिय तनया का वृत्त यो प्राप्त ही मे
सुन बलि सुत कोपे, हो गई वक्र भौहे,

---

1 प्रेम विजय, पचम सर्ग, पृ० 54।
2 वही, एकादश सर्ग, पृ० 116।

अति शमित दृगो मे छा गई क्रोध लाली,
अधर दशन नीचे आ गए आप ही से ।[1]

यहा उषा आलम्बन, बाणासुर आश्रय, उषा का वृत्त उद्दीपन तथा बाणासुर की भौंहो का वक्र होना, अधर का दशनो के नीचे आना आदि अनुभाव है। इनके द्वारा स्थायी भाव क्रोध का उल्लेख किया गया है।

भयानक रस—वीर तथा रौद्र के समान भयानक रस का प्रयोग भी कवि ने अधिक स्थलो पर नही किया है। उसका परिपाक केवल दो-चार स्थलो पर ही हो पाया है। उषा के स्वप्न-दर्शन मे एक सखी का कथन देखिए—

कहा किसी ने—"गज मत्त एक है
चिघाडता वेग समेत आ रहा,
प्रवालिके, धैर्य मुझे रहा नही,
प्रकाशिके ! मै अब क्या करू कहो ।[2]

यहाँ मस्त हाथी आलबन, उसका चिंघाडते हुए वेग से आना उद्दीपन, सखी आश्रय तथा उसका अधैर्य प्रदर्शन वाचिक अनुभाव है। त्रास तथा विषाद सचारी भाव भी व्यजित है। एक अन्य उदाहरण देखिये—

असुर-अधिप की यो कचुकी देख मुद्रा
सभय थरथराया, सोच के चित्त मे यो—
"यदि प्रभु अपराधी दास को मान लेगे,
त्वरित फिर न जाने दण्ड देगे मुझे क्या ?"[3]

प्रस्तुत पद मे सात्विक अनुभाव (थरथराना) तथा त्रास सचारी भाव की सुन्दर व्यजना द्रष्टव्य है।

अगीरस—महाकाव्य मे रस की व्यापकता तथा प्रमुख पात्र से सम्बन्ध के आधार पर विचार करें तो इस महाकाव्य का अगी रस विप्रलभ शृगार ठहरता है, क्योकि यही रस प्रस्तुत महाकाव्य मे सर्वाधिक व्यापक है और इसी का प्रमुख पात्र उषा से सम्बन्ध है। विप्रलभ शृगार तथा वात्सल्य रस का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक है तथापि वीर, रौद्र, भयानक का भी यत्र तत्र प्रयोग हुआ है।

मन पर समग्र रसात्मक प्रभाव की दृष्टि से 'प्रेम-विजय' की रस योजना अधिक सफल नही है। उसका महत्त्व नवीन विचारो के प्रतिपादन तथा समस्याओ के बौद्धिक समाधान मे ही है।

---

1 प्रेम-विजय, एकादश सर्ग, पृ० 112।
2 वही, अष्टम सर्ग, पृ० 82।
3 वही, एकादश सर्ग, पृ० 113।

प्रकृति-चित्रण

हिन्दी साहित्य मे प्रकृति-चित्रण के मुख्यत निम्न रूप उपलब्ध होते है—

1 आलम्वन रूप अथवा शुद्ध प्रकृति-चित्रण

2 उद्दीपन रूप

3 मानवीकरण

4 आलकारिक रूप

5 उपदेशात्मक रूप

6 रहस्यात्मक रूप

7 प्रतीक रूप

सस्कृत के लक्षरण ग्रन्थो मे महाकाव्य के लिये आवश्यक जिन तत्त्वो का निर्देश मिलता है, उनमे प्रकृति-चित्रण भी एक है। प्रस्तुत महाकाव्य मे प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूप चित्रित हुए हैं, इस चित्रण मे कही तो कवि प्राचीन परिपाटी का अनुसरण करता है और कही उनसे सर्वथा मुक्त दिखाई देता है। कही-कही कवि ने छायावादी शैली को भी अपनाया है। इस प्रसग मे 'प्रेम-विजय' मे प्रकृति-चित्रण की विभिन्न प्रणालियो पर कुछ विस्तार से विचार किया जाएगा।

आलबन रूप—जहाँ प्रकृति को ही वर्ण्य विषय बनाकर कवि प्रकृति का चित्रण केवल प्रकृति-वर्णन के उद्देश्य से करता है, वह आलबन रूप कहलाता है। 'प्रेम-विजय' मे प्रकृति-चित्रण के इसी रूप को प्रधानता मिली है, कवि का अधिकाँश प्रकृति-वर्णन आलम्वन रूप मे ही हुआ है। प्रस्तुत काव्य का षट्ऋतु, प्रभात, सध्या आदि का वर्णन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हे। श्रावण मास के आगमन पर कवि का कथन है—

प्रवेश श्री श्रावण मास का है,
घनावली की अविराम धारा
महीप का तप्त-सुगात्र धोती,
समाधि मे निश्चल किन्तु वे है।[1]

यहा चित्रात्मकता भी दर्शनीय है। हेमन्त ऋतु के आने पर कुहरे से आच्छादित आकाश के विपय मे कवि की नवीन कल्पना देखिये—

कुहरे से व्याप्त गगन को
लख, यही भासता मन को
यह भी न शीत अति सहकर
क्या वैठा आच्छादन धर ?[2]

1 प्रेम-विजय, प्रथम सर्ग, पृ० 6।

2 वही, द्वादश सर्ग, पृ० 127।

प्रकृति के आलबन रूप के अतर्गत वस्तु परिगणन शैली का समावेश भी किया जाता है। इस प्रकार का भी एक उदाहरण प्रस्तुत है—

मनोज्ञ मृदु मालती, कलित कुन्द की कान्ति से
प्रकाश सब ओर है शरद स्वच्छ फैला रही,
उसे निरख केवडा, बकुल, यूथिका, केतकी
स्वत शिर झुका-झुका बहुत लज्जिता हो गई।[1]

आलवन रूप मे न केवल प्रकृति के सौम्य वरन् उसके विकराल रूप का चित्रण भी 'प्रेम-विजय' मे मिलता है—

सहायकर्त्री घनघोर आँधी
लगी गिराने विटपी सहस्रो।
असह्य उत्ताप कृशानु का पा
सशब्द नाना फटती शिलाएँ।[2]

विस्तार भय से और उद्धरण न देकर केवल इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि इस प्रकार के वर्णन 'प्रेम-विजय' मे प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है।

उद्दीपन—जहाँ प्रकृति स्वय कवि के मूल भाव का आलबन न हो अपितु उसका आलवन कोई अन्य हो लेकिन प्राकृतिक वातावरण के द्वारा उस मूल भाव को उद्दीप्त किया जाए, वहाँ प्रकृति-चित्रण का उद्दीपन रूप होता है। उद्दीपन रूप प्रकृति-चित्रण के भी दो भेद होते है—साधर्म्यमूलक और वैधर्म्यमूलक। साधर्म्यमूलक उद्दीपन मे प्रकृति मानव भावनाओ के साथ तादात्म्य स्थापित करती है तथा वैधर्म्यमूलक मे प्रकृति विरोधी सत्ता के रूप मे भावो को उद्दीप्त करती है। नायिकाओ के विरह वर्णन मे प्राय इसी पद्धति को अपनाया जाता है।

सेठ जी ने 'प्रेम-विजय' मे उद्दीपन के दोनो रूपो (साधर्म्य तथा वैधर्म्य) को चित्रित किया है। साधर्म्यमूलक उद्दीपन का एक उदाहरण देखिए—

इधर उषा तन पर यो आई रुचिराई,
उधर प्रकृति ने मधु से नूतन छवि पाई।[3]
इसी प्रकार का एक अन्य वर्णन है—
नव मास बीतने पर शिशु जन्म काल आया,
उस समय प्रिय उषा का सुखमय स्वरूप छाया।[4]

यहाँ शिशु जन्म के समय बाण की प्रसन्नता मे प्रकृति भी उषा की लाली फैलाकर प्रसन्न दिखाई दे रही है। बाणात्मजा उषा के जन्म के समय प्रकृति का जो

1 प्रेम-विजय, चतुर्थ सर्ग, पृ० 37।
2 वही, प्रथम सर्ग, पृ० 9।
3 वही, षष्ठ सर्ग, पृ० 64।
4 वही, पचम सर्ग, पृ० 49।

चित्रण किया गया है, वह सब इसी वर्ग के अन्तर्गत आएगा। अनिरुद्ध के कारावास के समय उषा का विरह वर्णन साधर्म्यमूलक उद्दीपन का सुन्दर उदाहरण है। उषा को प्रकृति उसकी भावनाओ का प्रतिरूप जान पडती है—

मृदुल नव लताएँ काँपती दीखती है,
यह सखि, मुझको ही देख के है दुखी क्या।
कलित कुसुम कुँजे श्री विहीना सभी है,
ललित रव खगो का शान्त कैसा हुआ है।[1]

वैधर्म्य मूलक उद्दीपन का चित्रण इस महाकाव्य मे अपेक्षाकृत कम हुआ है। बाण-पत्नी के विरह वर्णन मे इसका सुन्दर रूप देखा जा सकता है—

अति सघन सावन सी सजल युग पलक मे बरसात थी।
फिर 'पी कहाँ' की गूज से बढती विरह की रात थी।[2]

छठे सर्ग मे वसतागमन पर प्रकृति के वैधर्म्यमूलक उद्दीपन रूप का अच्छा वर्णन हुआ है—

है कूजती यो बहु कोकिलाएँ,
मानो गिरा मे स्मर पूजती हो।
अनग सेना सब ओर फैली,
परन्तु पाया दुख प्रेमियो ने।[3]

आलकारिक रूप—जहाँ अलकारो के वर्णन मे प्राकृतिक उपादानो को ग्रहण किया जाता है वहाँ प्रकृति-चित्रण का आलकारिक रूप होता है। इन वर्णनो मे प्रकृति की प्रधानता न होकर अलकार-वैचित्र्य की प्रधानता होती है। 'प्रेम-विजय' मे प्रकृति-चित्रण की इस प्रणाली के कतिपय उद्धरण द्रष्टव्य है—

(क) उपमा अलकार के रूप मे—

है शोण रत्नो युत मुकुट शिर पर लगा मन मोहता,
जैसे उदय गिरि शृग पर से बाल-भास्कर सोहता।[4]

(ख) ललितोपमा अलकार के रूप मे—

गगन निर्मल और प्रशान्त हो
विमल मानस की करता हसी।[5]

---

1 प्रेम-विजय, एकादश सर्ग, पृ० 122।
2 वही, द्वितीय सर्ग, पृ० 19।
3 वही, षष्ठ सर्ग, पृ० 65।
4 वही, तृतीय सर्ग, पृ० 26।
5 वही पचम सर्ग, पृ० 49।

(ग) रूपक अलकार के रूप मे—
सहसा दावानल बुझा, प्रकटे जब करुणेश,
दया-वारि वारीश पा, रहता फिर क्यो शेप ।[1]

(घ) वस्तूत्प्रेक्षा अलकार के रूप मे—
अमित वेग से उडती जाती
वह नभ मे इस भाँति सुहाती
मानो प्यारी चन्द्रकला हो,
अथवा गमनशील चपला हो ।[2]

(ङ) अपह्नुति अलकार के रूप मे—
आगे वहाँ से कुछ दूर देखा
भागीरथी पाप निवारिणी को,
प्रवाह मानो जल-व्याज लेती,
पीयूष धारा वह है वहाती ।[3]

प्रकृति-चित्रण की इस प्रणाली मे सन्देह, प्रतीप, तद्गुण आदि अलकारो के लक्षण भी सरलता से देखे जा सकते है। पुनरावृत्ति से बचने के लिए इन अलकारो के उदाहरण यहाँ न देकर आगे 'अलकार विधान' के प्रसग मे दिए जाएँगे।

उपदेशात्मक रूप—जहाँ कवि प्रकृति को उपदेश देने का साधन बनाकर अपनी भावनाएँ व्यक्त करता है वहाँ उसका उपदेशात्मक रूप होता है। प्रकृति-चित्रण का यह रूप उत्कृष्ट कोटि का नही माना जाता क्योकि यहा उपदेश तत्त्व की प्रमुखता के कारण प्रकृति तत्त्व गौण रहता है।

प्रस्तुत महाकाव्य मे प्रकृति का उपदेशात्मक रूप अधिक स्थलो पर नही है, केवल कही-कही उसका रूप दिखाई पडता है—

वीता उष्मागम, न रहता सर्वदा राज्य कोई ।[4]

यहा ग्रीष्म की समाप्ति के साथ राज्य की अस्थिरता का सकेत भी मिलता है। इसी प्रकार—

वीती वर्षा समय पा, हुआ शरद का राज,
रहती प्रकृति न एक सी, धरती नित नव साज ।[5]

प्रकृति के माध्यम से कवि यह उपदेश देना चाहता है कि मनुष्य का समय सर्वदा एक समान नही रहता।

1 प्रेम-विजय, प्रथम सर्ग, पृ० 10 ।
2 वही, दशम सर्ग पृ० 98 ।
3 वही, पृ० 98 ।
4 वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० 35 ।
5 वही, पृ० 37 ।

वसन्त विरही जनो के लिए अत्यन्त दु खदायी है। उसी को अपना लक्ष्य बनाकर कवि वताना चाहता है कि बुरे कामो का परिणाम बुरा ही होता है—

द्रुमादि को जीवन नव्य चाहे,
वसन्त ने आकर दे दिया हो,
प्रेमी गणो को अति ही सताया,
दिया बडा आलस मानवो को,
इसी महा पातक से सदा ही,
सन्तान पाता वह नाशकारी,
निदाघ को कौन न जानता हो,
पाता बुरा जो करता बुरा है।[1]

उपदेशात्मकता के साथ-साथ इसमे कवि-कल्पना की मौलिकता भी दर्शनीय है।

मानवीकरण—जहाँ प्रकृति को केवल जड पदार्थ न मानकर चेतन प्राणी के रूप मे उपस्थित किया जाता है, उसका वर्णन निर्जीव प्राकृतिक वस्तुओ के रूप मे न होकर वल्कि उसे मानवी रूप प्रदान करके, मानव भावनाओ के प्रत्यक्षीकरण का आधार वनाकर, चित्रित किया जाता है वहाँ मानवीकरण होता है।

'प्रेम-विजय' मे प्रकृति के मानवीकरण मे कवि-कल्पना का सुन्दर प्रसार दिखाई देता है—

निशा उठी छोर सुनील शैया,
चली प्रतीची पथ से उनीदी,
मुखेन्द्र फीका, श्लथ, माँग मोती,
है कौमुदी म्लान दुकूल ओढे,[2]

यहा रात्रि का नारी रूप मे चित्रण कितना मनोमुग्धकारी है।

ऊषा का, दिनेश के स्वागतार्थ जाने वाली एक मुग्धा नायिका के रूप मे, चित्रण देखिए—

सुरग पीतावर अग धारे,
ऊषा प्रमुग्धा अरुणानन-श्री,
प्रफुल्ल पद्मावलि मालिका ले,
दिनेश के स्वागत को चली है।[3]

सूर्यास्त के समय पश्चिम दिशा की लाली के सम्बन्ध मे कवि की नवीन कल्पना का रूप देखिए—

1 प्रेम-विजय, षष्ठ सर्ग, पृ० 66।
2 वही, तृतीय सर्ग, पृ० 22।
3 वही, पृ० 22।

दिनेश अस्ताचल के समीप है ।
दिशा प्रतीची कुछ लाल वर्ण है ।
स्वनाथ के आगम मे विलम्ब को
विलोक मानो वह क्रोध पूर्ण हो ।[1]

यहाँ प्रतीची का नारी रूप मे मानवीकरण तथा उसकी लालिमा का मानवीय भाव क्रोध के रूप मे चित्रण अत्यन्त कलात्मक है ।

'प्रेम-विजय' मे कवि ने प्रकृति-चित्रण की प्रमुखत पाँच प्रणालियो—आलबन, उद्दीपन, आलकारिक, उपदेशात्मक तथा मानवीकरण को अपनाया है । महाकाव्य मे कही तो कवि द्वारा चित्रित प्रकृति की रमणीयता मानव मन को आकर्षित करती है और कही उसकी विकरालता उसमे त्रास का भाव भर देती है । प्रकृति कही तो मानव भावनाओ को उद्दीप्त करती है और कही उसके साथ तादात्म्य । कही वह उपदेशिका का कार्य करती है और कही अलकारो का जामा पहनकर सौन्दर्य वृद्धि का कार्य करती है ।

इन तथ्यो के आधार पर हम निश्चयपूवक कह सकते है कि 'प्रेम-विजय' के प्रकृति-चित्रण मे कवि को आशातीत सफलता प्राप्त हुई है ।

प्रेम-विजय में कलापक्ष

काव्य के दो पक्ष होते है—भाव पक्ष तथा कला पक्ष । भाव पक्ष का सम्बन्ध कवि की अनुभूति से होता है और कला पक्ष का उसकी अभिव्यक्ति से । उत्तम काव्य मे भाव पक्ष और कला पक्ष का सुन्दर सामजस्य रहता है । किसी काव्य मे भाव पक्ष की प्रधानता होते हुए भी यदि कला पक्ष निष्प्राण है तो वह काव्य उत्कृष्ट कोटि का नही माना जा सकता । अत अब हमे यह देखना है कि 'प्रेम-विजय' मे कलागत विशेषताओ को समाविष्ट करने मे कवि किस सीमा तक सफल हुआ है । कलापक्ष के अन्तर्गत मुख्यत भाषा-शैली, अलकार-विधान तथा छन्द-योजना आदि आते है । 'प्रेम-विजय' की कलागत विशेषताओ का अध्ययन इन्ही तत्त्वो के आधार पर किया जाएगा ।

भाषा शैली—'प्रेम-विजय' की भाषा खडी बोली है जिसमे सस्कृत शब्दावली तथा तत्सम शब्दो की प्रधानता है । इसकी भाषा पर 'प्रिय प्रवास' की भाषा की स्पष्ट छाप दिखाई पडती है । प्रस्तुत काव्य की भाषा के सम्बन्ध मे लेखक का मत इस प्रकार है—

"मेरे इस काव्य की भाषा खडी बोली है । यद्यपि मैंने कुछ पद्य ब्रजभाषा मे भी लिखे है जो इस सग्रह की मेरी स्फुट कविताओ के साथ छपे है । वर्ण वृत्तो मे भाषा-विषयक कठिनाई अवश्य रहती है, इसीलिए अयोध्यासिह जी ने शब्दो के रूपो

1 प्रेम-विजय, द्वितीय सर्ग, पृ० 18 ।

में कुछ स्वतन्त्रता ली है। उन्होंने 'प्रिय प्रवास' में अनेक स्थलों पर 'पर' के स्थान पर 'पै', समय के स्थान पर 'समै', पवन के स्थान पर 'पौन' इत्यादि का उपयोग किया है। मैं इस काव्य में इस प्रकार की स्वतन्त्रता लेने का साहस नहीं कर सका हूँ।[1] शब्दों के तोड़-मरोड़ के विषय में लेखक का कथन सत्य है। इस काव्य में शब्दों का तोड़-मरोड़ लगभग नहीं के बराबर है।

लेखक के भावों तथा विचारों से भाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। चिंतनशील, गम्भीर लेखक की भाषा में प्राय उस सरलता तथा कोमलता के दर्शन नहीं होते जो एक भावप्रवण साहित्यकार की भाषा में सहज में ही उपलब्ध रहते हैं।

'प्रेम-विजय' में सेठ गोविन्ददास के कवि रूप की अपेक्षा उनका चिन्तनशील विचारक रूप अधिक निखरा है, यही कारण है कि भाषा भी अधिक सयत तथा गभीर है। इस काव्य में सेठ जी की भाषा शैली के तीन रूप दिखाई पडते है—1 सस्कृतनिष्ठ शैली, 2 तत्सम प्रधान शैली, 3 सरल शब्द प्रधान शैली। शैली के इन विभिन्न रूपों का एक एक उदाहरण देखिए—

सस्कृतनिष्ठ शैली—

मार्तण्ड-उज्ज्वल तथापि शशाक का सा
सुस्निग्ध, शीतल, विलोचन शान्तिकारी,
उत्फुल्ल, श्वेत-शतपत्र विकास धारी
अद्भुत, अपूर्व शुचि विग्रह ईश का है।[2]

तत्सम प्रधान शैली—

गगन निर्मल और प्रशान्त हो
विमल मानस की करता हँसी।
पवन का मृदु गन्ध भरा हुआ
चल रहा अनुकूल प्रवाह है।[3]

सरल शब्द प्रधान शैली—

जब गोदी पर माँ की कन्या है चढती,
तब उनकी शोभा है और अधिक बढती,
ज्यों मालती लता है दिखती बहुत भली,
शरद समय में धरती जब वह शुभ्रकली।[4]

---

1 गोविन्ददास ग्रथावली, खड 8, निवेदन, पृ० 'ड'।
2 प्रेम-विजय, प्रथम सर्ग, पृ० 10।
3 वही, पचम सर्ग, पृ० 49।
4 वही, पचम सर्ग, पृ० 53।

शैली के तृतीय रूप (सरल हिन्दी शब्द प्रधान शैली) का दर्शन 'प्रेम-विजय' मे अपेक्षाकृत कम स्थलो पर होता है।

प्रस्तुत महाकाव्य की भाषा अभिधा प्रधान है, उसमे लक्षणा एव व्यजना का चमत्कार नही है। भाषा की अभिधात्मकता के कारण ही उसमे अलकारो का प्रचुर प्रयोग किया गया है, यदि भाषा को अलकारो से अलकृत न किया गया होता तो वह निष्प्राण होती। जहा तक भाषा मे काव्य गुणो का सम्बन्ध है, 'प्रेम-विजय' की भाषा मुख्यत प्रसाद गुण सम्पन्न है लेकिन माधुर्य और ओज गुण भी उसमे विद्यमान है। जहा वीर, रौद्र तथा भयानक रसो की व्यजना की गई है वहा ओजगुण की प्रधानता है और जहाँ शृगार तथा वात्सल्य आदि रसो का निरूपण है वहाँ प्रसाद तथा माधुर्य दोनो की छटा दिखाई पडती है। विभिन्न गुणो को प्रदर्शित करने वाले कतिपय पद देखिए—

माधुर्य गुण—

मृदुल नव लताएँ काँपती दीखती है,
यह सखि, मुझको ही देख के है दुखी क्या।
कलित कुसुम कुजे श्री विहीना सभी है।
ललित रव खगो का शान्त कैसा हुआ है।[1]

ओज गुण—

सच्छिद्र ईर्षामिय वेणुओ की
विघर्ष सञ्जात अधीरता से
हुआ समुत्पन्न प्रचण्ड दावा,
तुरन्त ही जो वन-मध्य फैला।[2]

प्रसाद गुण—

छायावत् चित्रा चली, प्यारी सखि के सग,
मृत्यु समय ही छोडते, प्राण सदा है अग।[3]

गोविन्ददास जी की भाषा मे चित्रात्मकता भी है। इस काव्य मे शब्द-विन्यास द्वारा प्रस्तुत स्थिर और गतिशील दोनो प्रकार के चित्र देखे जा सकते है—

स्थिर चित्र—

प्रवेश श्री श्रावण मास का है,
घनावली की अविराम धारा

---

1 प्रेम-विजय, एकादश सर्ग, पृ० 122।
2 वही, प्रथम सर्ग, पृ० 9।
3 वही, षष्ठ सर्ग, पृ० 69।

महीप का तप्त-सुगात्र धोती,
समाधि मे निश्चल किन्तु वे है ।[1]

गतिशील चित्र—

कभी मार्ग मे घन है आते
उसके पतले चीर भिगाते,
कभी पवन का झोका आता
पल मे गीले वस्त्र सुखाता ।
अमित वेग से उडती जाती
वह नभ मे इस भाँति सुहाती
मानो प्यारी चन्द्रकला हो,
अथवा गमनशील चपला हो ।[2]

इस प्रकार के अन्य अनेक चित्र 'प्रेम-विजय' मे उपलब्ध है ।

भाषा-शैली की इन कतिपय विशेषताओ का उल्लेख करने के पश्चात् उसकी कुछ सीमाओ का सकेत भी आवश्यक है। भाषा-शैली का सबसे वडा अभाव जो इस महाकाव्य मे परिलक्षित होता है, वह है खडित प्रवाहमयता । यह बात नही है कि भाषा मे प्रवाहमयता विल्कुल है ही नही परन्तु महाकाव्य के आकार के अनुरूप अपेक्षित प्रवाहमयता यहाँ नही है । भाषा को जानवूझ कर सभवतः विद्वत्ता प्रदर्शन के लिए क्लिष्ट वना दिया गया है जिससे प्रवाहमयता की क्षति हुई है। लक्षणा एव व्यजना का प्रचुर प्रयोग न होने के कारण भाषा के अर्थ-सौन्दर्य को आघात पहुँचा है । हाँ, अलकारो द्वारा उसमे वाह्य सौन्दर्य की योजना अवश्य प्रशसनीय है । यद्यपि शब्दो का तोड-मरोड लगभग नही के वरावर है फिर भी अम्वुधि के लिए 'अम्वोधि', असुरो के लिए 'सुरारियो' तथा सुरो के लिए 'असुरारियो' जैसे शब्दो का प्रयोग हुआ है । कही-कही शब्दो का प्रयोग व्याकरण-सम्मत भी नही है । कुछ उदाहरण देखिए—

(क) कोई को भी न निज मन की जानने दी अवस्था ।[3]
(ख) जाना सारा हृदय तल के भेद को कौन ने है ।[4]
(ग) है कौन का साहस जो हटा सके ।[5]

अनुरणन अथवा नाद-सौन्दर्य भी भाषा की एक विशेषता है । 'प्रेम-विजय' मे इसकी योजना न होने के कारण भाषा के सौन्दर्य तत्त्व को आघात पहुचा है ।

1. प्रेम-विजय, प्रथम सर्ग, पृ० 6 ।
2 वही, दशम सर्ग, पृ० 98 ।
3 वही, नवम सर्ग, पृ० 90 ।
4 वही, पृ० 91 ।
5 वही त्रयोदश सर्ग, पृ० 144 ।

अलंकार-विधान

अभिधा-प्रधान भाषा वाले काव्य मे अलकारो के समुचित समावेश की नितान्त आवश्यकता रहती है। अलकारो का महत्त्व भावोत्कर्ष के साधन बननें मे ही है, लेकिन जहाँ अलकारो का प्रयोग साधन के रूप मे न किया जाकर साध्य के रूप मे किया जाता है वहाँ रसात्मकता खडित होकर काव्य केवल चमत्कार प्रदर्शन तक ही सीमित रह जाता है। अलकारो के बोझ से लदी भाषा अपने स्वाभाविक सौन्दर्य को खो बैठती है, अत काव्य मे अलकारो का प्रयोग एक निश्चित सीमा तक ही उचित है।

'प्रेम-विजय' मे अलकारो के प्रयोग मे दोनो प्रकार की प्रवृत्तियाँ दिखाई पडती है। कुछ अलकार जैसे उपमा, रूपक, यमक, श्लेष, प्रतीप आदि भावोत्कर्ष के साधन के रूप मे प्रयुक्त हुए है लेकिन उत्प्रेक्षा का प्रयोग इतना अधिक किया गया है कि वह साधन न रहकर साध्य बन गया है।

प्रस्तुत महाकाव्य की वैविध्यपूर्ण अलकार-योजना का विवरण इस प्रकार है—

शब्दालकार—अर्थालकारो की तुलना मे शब्दालकारो का प्रयोग इस काव्य मे कम दिखाई पडता है। इस वर्ग के अन्तर्गत अनुप्रास, यमक, पुनरुक्तवदाभास, श्लेष, पुनरुक्तिप्रकाश तथा वीप्सा अलकारो का प्रयोग किया गया है। इन अलकारो के कुछ उदाहरण देखिए—

अनुप्रास—

(क) छेकानुप्रास—काली कुटिल मनोहर सौरभ से छायी।[1]

(ख) वृत्यनुप्रास—अति सघन सावन सी सजल युग पलक मे बरसात थी।[2]

यमक—

अब तक न जिनका शेष भी निश्शेष वर्णन कर सका।[3]

सुदूर का लोक विलोक आये।[4]

पुनरुक्तवदाभास—

ऊँचे शृंगो पर शिखरि के घूमते मेघ काले।[5]

श्लेष—

नव मास बीतने पर शिशु जन्म काल आया,

---

1 प्रेम-विजय, षष्ठ सर्ग, पृ० 62।

2 वही, द्वितीय सर्ग, पृ० 19।

3 वही, द्वितीय सर्ग, पृ० 21।

4 वही, तृतीय सर्ग, पृ० 22।

5 वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० 37।

उस समय प्रिय उषा का सुखमय स्वरूप छाया ।[1]

(यहाँ उषा के दो अर्थ है—प्रात काल की लालिमा तथा गर्भस्थ शिशु)

पुनरुक्तिप्रकाश—

सारा बहा बल ज्ञान, आये भाग्य पर तत्काल ही,
निज निज पुरी मे की उन्होने सूचना यह सब कही ।[2]

वीप्सा—

तब बाण बोले—चाहता मैं नही कुछ अन्याय हो,
परनाश हो अन्याय का, प्रभु, न्याय हो, बस न्याय हो ।[3]

अर्थालंकार—अर्थालकारो मे सर्वाधिक प्रयोग उत्प्रेक्षा का (वस्तुत वस्तूत्प्रेक्षा) हुआ है, सारा काव्य उत्प्रेक्षा अलकार से भरा पडा है । इसके अतिरिक्त उपमा, ललितोपमा, रूपक, प्रतीप, अपह्नुति, अनन्वय, सन्देह, दृष्टान्त तथा तद्गुण अलकारो का प्रयोग भी मिलता है । कुछ उद्धरण द्रष्टव्य है—

उत्प्रेक्षा—

(क) वस्तूत्प्रेक्षा—सोती है सित मृदु शैया पर बाण सुता सुकुमारी,
मानो सुधा सिन्धु फेनो पर चन्द्रकला हो प्यारी ।[4]

(ख) गम्योत्प्रेक्षा—अम्बोधि के सलिल मे प्रतिबिम्बिता हो
द्वारावती अनुपमेय विराजती यो
पादाब्ज युग्म हरि के अवलोकने को
पाताल से निकल ऊपर आ रही हो ।[5]

उपमा—

(क) सदा थे वहाँ छूटते जो फुहारे
रुके है, खडे, आज खो कान्ति सारे,
लजाते अनभ्यस्त वक्ता महा है
रटे भाषणो को कभी भूल जैसे ।[6]

(ख) सुवासित सरोज है वदन खोल यो डोलते—
यथैव पढते कई शिशु स्वपाठ है झूमते ।[7]

---

1 प्रेम-विजय, पचम सर्ग, पृ० 49 ।
2 वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० 41 ।
3 वही, प्रथम सर्ग, पृ० 13 ।
4 वही, सप्तम सर्ग, पृ० 79 ।
5 वही, द्वादश सर्ग, पृ० 133 ।
6 वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० 43 ।
7 वही, पृ० 38 ।

जैसाकि इन उद्धरणो से स्पष्ट है, प्राय कवि ने परपरागत उपमाओ का प्रयोग न करके, सर्वथा नवीन तथा मौलिक उपमानो के द्वारा उपमा अलकारो का वर्णन किया है ।

ललितोपमा—

हिमाद्रि सारा हिम पूर्ण ऐसा
दिया दिखायी शशि कौमुदी मे
सगर्व मानो धवलच्छटा से
कैलास की भी करता हसी हो ।[1]

रूपक—

सहमा दावानल बुझा, प्रकटे जब करुणेश,
दया-वारि वारीश पा रहता फिर क्यो शेष ।[2]

प्रतीप—

काली कुटिल मनोहर सौरभ से छायी
अलकावलि को लख अलि-अवलि लजायी ।[3]

अपह्नुति—

लख सौन्दर्य मदन ने मानो निज धनु को
भ्रू युग मिष भेट दिया, उसके मृदु तन को ।[4]

अनन्वय—

हे द्वारके, जगत मे तव तुल्य तू ही ।[5]

सन्देह—

सूने, घने कानन मे यहाँ कहाँ
आयी अकेली, तुम कौन हो, कहो,
क्या किन्नरी की तुम हो सुता, शुभे,
या अप्सरा की तनया अनूप हो ।[6]

दृष्टात—

उधर सूर्य-छवि जग आलोकित कर सन्ध्या को जाके,
पश्चिम सागर मध्य समायी मन मे अति सुख पाके,

---

1 प्रेम-विजय, दशम सर्ग, पृ० 98 ।
2 वही, प्रथम सर्ग, पृ० 10 ।
3 वही, षष्ठ सर्ग, पृ० 62 ।
4 वही, पृ० 63 ।
5 वही, दशम सर्ग, पृ० 105 ।
6 वही, अष्टम सर्ग, पृ० 86 ।

इधर उपाद्युति युक्त स्वान्त कर सीख सकल चतुराई,
वाणासुर के भवन सिन्धु मे परम हर्ष से आई ।[1]

तद्गुण—

तेरी हिरण्य छवि से प्रिय कान्ति धारे
अम्बोधि शोभित हुआ लहरा रहा है,
अम्बोधि के सलिल की कुछ नीलिमा से
तू भी स्वय हरि बनी छवि पा रही है ।[2]

इस काव्य मे मुख्यत अलकारो के ही कारण अभिधाप्रधान भाषा अपना सौन्दर्य बनाये रख सकने मे समर्थ है ।

छन्द-योजना

'प्रेम-विजय' मे मात्रिक और वर्णिक दोनो प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया गया है । मात्रिक छन्दो को तुकान्त तथा वर्णिक छन्दो को अतुकान्त रखा गया है । महाकाव्य मे प्रयुक्त विभिन्न छन्दो की नामावली इस प्रकार है—

मात्रिक छन्द—दोहा, सोरठा, चौपाई, हरिगीतिका, रोला, सुखदा, सार, कुकुम, सखी ।

वर्णिक छन्द—उपेन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, वशस्थ उपजाति (इन्द्रवज्रा-उपेन्द्रवज्रा), हरिणी, उपजाति (वशस्थ-इन्द्रवशा), पृथ्वी, स्रग्धरा, भुजगप्रयात, शार्दूलविक्रीडित, द्रुतविलबित, इन्द्रवशा, शिखरिणी, मालिनी प्रहर्षिणी ।

प्रस्तुत महाकाव्य मे प्रयुक्त समस्त छन्दो की सर्वांग शुद्धता का दावा तो नही किया जा सकता लेकिन अधिकाश छन्दो के शुद्ध प्रयोग के प्रति कवि सचेष्ट है । शुद्धता के प्रति अत्यधिक आग्रह ने ही कही-कही व्याकरण का गला घोटने के लिए कवि को विवश किया है । यथा—

कोई को भी न निज मन की जानने दी अवस्था ।[3]

मन्दाक्राता छन्द की यह पक्ति छन्दशास्त्र की दृष्टि से बिल्कुल शुद्ध है, क्योकि इसमे मन्दाक्राता के लक्षण के अनुसार एक मगण, एक भगण, एक नगण, दो तगण तथा अत मे दो गुरु का प्रयोग है । 'कोई' के स्थान पर 'किसी' का प्रयोग करने से छन्द अशुद्ध हो जाता था, अत कवि ने छन्द की शुद्धता के लिए ही 'कोई को' का प्रयोग किया है जो व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध नही है ।

---

1 प्रेम-विजय, सप्तम सर्ग, पृ० 70 ।
2 वही, दशम सर्ग, पृ० 105 ।
3 वही, नवम सर्ग, पृ० 90 ।

कही-कही छन्दो की शुद्धता बनाए रख सकने मे कवि असमर्थ प्रतीत होता है। कुछ उद्धरण देखिए—

(क) कहा पुन दैत्याधिराज ने उसे ।[1] (वशस्थ)

(ख) प्राची प्रकाशित प्रभा स्वर्णाभ ऊषा ।[2] (वसततिलका)

(ग) ले चित्रा को सग, चली उषा माता निकट,

उसकी प्रेम उमग, अब नभ लाली सदृश थी ।[3] (सोरठा)

उद्धरण (क) उपजाति (वशस्थ-इन्द्रवशा) छद के पद की प्रथम पक्ति है। नियमानुसार यहा वशस्थ का लक्षण (जगण, तगण, जगण तथा रगण) होना चाहिए किन्तु यहाँ जगण, मगण, जगण तथा रगण होने के कारण वशस्थ का पूरा लक्षण घटित नही होता। इसी प्रकार उद्धरण (ख) वसततिलका का उदाहरण है, यहाँ तगण, मगण, जगण, जगण तथा अत मे दो गुरु होना चाहिए था, किन्तु जैसा कि प्रकट है यहाँ तगण, भगण, यगण, रगण तथा अत मे एक गुरु है। उद्धरण (ग) सोरठा का उदाहरण है, यहाँ प्रथम पक्ति मे ग्यारह के स्थान पर केवल दस मात्राएँ ही है।

छन्द-प्रयोग की इन कतिपय सीमाओ के आधार पर 'प्रेम-विजय' की छन्द योजना को नितान्त अशुद्ध कह देना सर्वथा अन्यायपूर्ण होगा। प्रस्तुत महाकाव्य के लघुकाय शरीर मे इतने विविध छन्दो का समावेश तथा उनमे से अधिकाश का शुद्ध प्रयोग वास्तव मे प्रशसनीय है।

प्रेम-विजय में युग-चेतना

साहित्य समाज का दर्पण है इसलिए उसमे तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था और विचारधारा का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप अवश्य विद्यमान रहता है। साहित्यकार कोई अलौकिक प्राणी न होकर समाज के बीच रहने वाला एक सामाजिक प्राणी ही होता है, वह अपने साहित्य निर्माण के लिए सामग्री का चयन मुख्यत अपने चारो ओर फैले वातावरण मे करता है, अत उसके साहित्य का युग-चेतना से अछूता रह जाना असभव है। 'प्रेम-विजय' मे युग-चेतना का प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट है, उसे खोजने के लिए विशेष श्रम की आवश्यकता नही। प्रस्तुत महाकाव्य मे युग-चेतना अथवा सामयिक विचारधारा से प्रभावित कुछ स्थलो का विवरण इस प्रकार है—

(क) वर्णव्यवस्था, रंगभेद तथा साम्प्रदायिक भावना के प्रति घृणा—

यद्यपि स्पष्ट रूप से कही भी वर्णव्यवस्था, रगभेद तथा साम्प्रदायिकता के प्रति घृणा प्रदर्शित नही की गई है लेकिन महाकाव्य मे वर्णित एक घटना से इसका

---

1 प्रेम-विजय, सप्तम सर्ग, पृ० 72।

2 वही, प्रथम सर्ग, पृ० 11।

3 वही, एकादश सर्ग, पृ० 111।

दर्शन अवश्य मिलता है। सप्तम सर्ग मे वर्णित है कि एक दिन उषा अपनी प्रिय सखी चित्रा के साथ एक रोगी के घर जा रही थी। मार्ग मे उसने देखा कि कुछ सैनिक एक व्यक्ति को बाधकर ले जा रहे है। उसने कारण जानना चाहा—

पूछा उषा ने भट से तुरत यो—
क्या दोष से है यह बद्ध जा रहा ?
विनम्र हो सैनिक ने कहा उसे—
'हे श्री कुमारी, सुर दुष्ट क्रूर है ।[1]

सैनिक उत्तर मे छिपे व्यग्य को समझकर कि उस व्यक्ति का देवता होना ही उसकी दुष्टता तथा क्रूरता का प्रमाण है उषा को आश्चर्य हुआ और वह बोल पडी—

साश्चर्य बोली तब बाण नन्दिनी—
"क्या देव होना यह जन्म दोष है ?
है अग प्रत्यग अदेव देव के
समान ही तो दिखते मुझे सभी ।"[2]

असुर कुलोत्पन्न प्रमुख पात्र उषा के द्वारा सुरो के प्रति सहानुभूति, समता आदि का भाव प्रदर्शित कर कवि ने रगभेद, जातिभेद तथा साम्प्रदायिकता के प्रति अपनी घृणा प्रकट की है। वह इन बधनो को तोड कर केवल मानव का मानव के प्रति आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करने का इच्छुक प्रतीत होता है। उषा के द्वारा वह अपना मन्तव्य प्रकट करता है—

मनुष्य की ओर मनुष्य का, प्रिये,
है भाव ऐसा तब प्रेम राज्य का
सुस्वप्न ही है, अतएव सन्धि है
देवासुरो की, मम ध्येय आज से ।[3]

वास्तव मे महाकाव्यकार देवासुरो की सधि द्वारा वर्गभेद की नीति को समाप्त करना चाहता है।

(ख) प्रजातन्त्र की कल्पना तथा आधुनिक चिकित्सा सुविधा का सकेत—

महाकाव्य मे बाणासुर के राज्य को राजतत्र का प्रतीक न मानकर कवि ने उसके सम्बन्ध मे आधुनिक प्रजातत्र की कल्पना की है—

स्वतत्रता है हर भाँति की यहाँ,
न दासता का कटुक्लेश है कहीं ।

---

1 प्रेम-विजय, सप्तम सर्ग, पृ० 77 ।
2 वही, पृ० 77 ।
3 वही, पृ० 78 ।

प्रजाजनो के मत के बिना कभी
न कार्य कोई करते प्रजेश है ।[1]

इसी प्रसग मे आधुनिक चिकित्सा सुविधा का सकेत भी मिलता है—

तडित समा स्वच्छ पुरी समस्त है
न व्याधियो का उपसर्ग दीखता ।
कदापि होते जन रोग ग्रस्त जो
उन्हे चिकित्सा सुविधा विशेष है ।[2]

(ग) हिंसा, युद्ध, अनाचार आदि के प्रति घृणा—

उषा के द्वारा हिसा, युद्ध तथा अनाचार के प्रति विरोध प्रकट करने के मूल मे स्वत कवि की इन कार्यो के प्रति विरोधी भावनाएँ है। युद्ध से उत्पन्न होने वाले विनाश का दृश्याकन कर कवि मानव मात्र को उससे विमुख करना चाहता है—

न नष्ट हो उत्तर सपदा पुन,
न रक्त का सिन्धु बहे पुन यहाँ,
प्रलाप वैधव्य नही कदापि हो,
माता करे शोक न पुत्र का कभी ।[3]

शक्ति द्वारा देवताओ से प्राप्त की गई अपने पिता की अतुल सम्पत्ति को देखकर उषा कहती है—

कहा उषा ने उस काल बाण से—
तो, तात, कोई यदि आपसे बडा
सशक्त होगा, यह सपदा सभी
तुरन्त लेगा वह आपसे पुन ।"[4]

इसी प्रकार बाण के शस्त्रागार को देखकर उषा का कथन—

बोली उषा शस्त्र विलोक सैन्य के—
ये मारने के हित क्या मनुष्य को ।[5]

अन्त मे उषा का अहिंसात्मक दृष्टिकोण इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

निर्जीव जो वैभव ये समस्त है
जो जीव हत्या यदि, तात, चाहते,
तो त्याग देना अति श्रेष्ठ है इन्हे

---

1 प्रेम-विजय, द्वितीय सर्ग, पृ० 17 ।
2 वही, द्वितीय सर्ग, पृ० 17 ।
3 वही, त्रयोदश सर्ग, पृ० 150 ।
4 वही, सप्तम सर्ग, पृ० 72 ।
5 वही, पृ० 72 ।

पिये नरो का नर रक्त तो नही ।[1]

उपर्युक्त उद्धरणो से ज्ञात होता है कि उषा के माध्यम से कवि ने अपना ही सामयिक दृष्टिकोण प्रकट किया है ।

(घ) **गांधीवादी विचारधारा का व्यापक प्रसार—**

गाधी जी के निकट सम्पर्क मे रहने के कारण गोविन्ददास जी पर उनकी विचारधारा का व्यापक प्रभाव पडा । इस महाकाव्य के प्रमुख पात्र उषा मे अहिंसा, प्रेम, सेवा, उदारता, दया आदि जो उच्च मानवीय गुणो का समावेश दिखाई पडता है, वह स्पष्टत गाँधीवादी प्रभाव ही है । इस संसार मे प्रेम ही ईश्वर का रूप है, इस सिद्धान्त को उषा के क्रिया-कलाप द्वारा व्यावहारिक स्तर पर प्रतिष्ठित किया गया है—

लिया उषा ने अब कार्य हाथ मे
प्रचारने का निज-ध्येय राज्य मे
जाके अनेको स्थल यो स्वय कहा—
"है प्रेम ही ईश्वर रूप विश्व मे ।"[2]

उषा का यह कथन, मात्र आदर्श बनकर नही रह जाता अपितु अपनी सेवा द्वारा वह इस उक्ति को चरितार्थ करती है । उषा का सेविका के रूप मे एक चित्र देखिए—

प्रसूत पीडा, उपताप आदि मे,
कुटुम्ब जो दु खित मृत्यु से, उषा
जाती सखी के सग सर्वदा स्वय,
मानो अनेको उसके स्वरूप हो ।[3]

सतप्त जनो को उषा अपनी सेवा तथा सहानुभूति द्वारा अनेक प्रकार से सान्त्वना देती है—

अनाथ को मातृ समान हो गयी,
भर्तार-हीना-हित आत्मजा प्रिया,
महौषधी है वह रुग्ण के लिए
दुखी जनो हेतु सहानुभूति है ।[4]

उषा की अहिंसा विषयक भावनाएँ अनेक स्थलो पर अभिव्यक्त हुई है । एक उदाहरण देखिए—

---

1 प्रेम-विजय, सप्तम सर्ग, पृ० 72 ।
2 वही, पृ० 75 ।
3 वही, पृ० 76 ।
4 वही, पृ० 76 ।

हत्या बुरी है नर, जीव मात्र की,
है पुत्र ये ईश्वर के समस्त ही,
करो सभी से तुम प्रेम, बन्धुओ
सेनादि का कार्य अतीव नीच है।[1]

उषा की प्रेरणा से ही अनिरुद्ध अपनी हिंसा भावना को त्याग कर अहिंसक बनता है। अन्त मे बाणासुर को युद्ध से विमुख दिखाकर और हिंसामयी युद्ध के स्थान पर शान्तिदायिनी संधि की व्यवस्था कर, अन्तत लेखक अहिंसा के विजय का उद्घोष करता है।

उपर्युक्त तथ्यो के आधार पर हम कह सकते है कि 'प्रेम-विजय' का कवि अपने युग के सबसे प्रमुख चेतना बिन्दु (गाधीवाद) के प्रति अधिक सजग दिखाई पडता है।

महाकाव्यत्व

'प्रेम-विजय' की रचना महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणो को ध्यान मे रखकर की गई है। इस सम्बन्ध मे कवि की स्वीकारोक्ति है—सस्कृत के साहित्याचार्यो ने महाकाव्य, खड काव्य इत्यादि के लक्षणो का विवेचन किया है। उस विवेचन मे महाकाव्य के जो लक्षण है उन सभी को 'प्रेम-विजय' मे लाने का प्रयत्न किया गया है और इस प्रयत्न के बावजूद इस काव्य को छोटे से छोटा रखने का भी प्रयत्न किया गया है।[2]

संस्कृताचार्यो मे सर्वप्रथम आचार्य भामह ने अपने ग्रथ 'काव्यालकार' मे महाकाव्य के मूलभूत तत्त्वो का सूत्ररूप मे निर्देश किया। उनका महाकाव्य विवेचन अत्यन्त सक्षिप्त है, उसमे न तो महाकाव्य के लिए आवश्यक वर्ण्य विषयो की विस्तृत सूची है और न ही बाह्य रूढियां स्थिर करने का कोई प्रयास। उनकी महाकाव्य सम्बन्धी मान्यता इस प्रकार है—

सर्गबन्धो महाकाव्य महता च महच्चयत् ।
अग्राम्यशब्दमर्थ्य च सालकार सदाश्रयम् ॥
मन्त्रदूत प्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्चयत् ।
पचभि सन्धिभिर्युक्त नातिव्याख्येयमृद्धिमत् ॥[3]

भामह के उपरान्त छठी शताब्दी मे आचार्य दण्डी ने अपने 'काव्यादर्श' मे [illegible] (भामह) के महाकाव्य सम्बन्धी लक्षणो का समाहार करते हुए [illegible] प्रकट किया। उन्होने (महाकाव्य सम्बन्धी) अनेक बाह्य नियमो और वर्ण्य

1 प्रेम-विजय, सप्तम सर्ग पृ० 76।
2 [illegible] ग्रथावली खड 8 निवेदन, पृ० [illegible]।
3 काव्यालकार— भामह, पृ० 3।

विषय की विस्तृत सूची अपने पूर्ववर्ती आचार्य के लक्षणों मे जोड दी। आचार्य विश्वनाथ से पूर्व पन्द्रहवी शताब्दी तक मुख्यत दडी द्वारा निर्दिष्ट लक्षण ही मान्य रहे।

पन्द्रहवी शताब्दी मे पूर्ववर्ती आचार्यो के मतो का समाहार करते हुए आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण मे अपना महाकाव्य सम्बन्धी मत स्थापित किया। प्राचीन होते हुए भी आज तक महाकाव्य के विवेचन मे आचार्य विश्वनाथ द्वारा निरूपित लक्षणो को आधार के रूप मे ग्रहण किया जाता है। प्रस्तुत काव्य 'प्रेम-विजय' के महाकाव्य का विवेचन मुख्यत इसी आधार पर किया जाएगा।

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्यो के लक्षण इस प्रकार हैं—

सर्गबन्धो महाकाव्य तत्रैको नायक सुर।
सद्वश क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वित॥
एकवशभवा भूपा कुलजा बहवोऽपि वा।
शृगारवीर शान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते॥
अङ्गानि सर्वेऽपि रसा सर्वे नाटक सन्धय।
इतिहासोद्भव वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्॥
चत्वारस्तस्य वर्गा स्युस्तेष्वेक च फल भवेत्।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा॥
क्वचिन्निन्दा खलादीना सता च गुणकीर्तनम्।
एकवृत्तमयै पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकै॥
नातिस्वल्पा नातिदीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह।
नानावृत्तमय क्वापि सर्ग कश्चन दृश्यते॥
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथाया सूचन भवेत्।
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासरा॥
प्रातर्मध्याह्नमृगया शैलर्तुवनसागरा।
सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनि स्वर्ग पुराध्वरा॥
रणप्रयाणोपयम मन्त्र पुत्रोदयादय।
वर्णनीया यथायोग साङ्गोपाङ्गा अमी इह॥
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्ग नाम तु॥[1]

---

1 साहित्यदर्पण—आचार्य विश्वनाथ, षष्ठ परिच्छेद, ॥ 315-324 ॥ सस्करण 1957, व्याख्याकार डा० सत्यव्रतसिंह, पृ० 549-551।

अर्थात् महाकाव्य मे स्थूल रूप से निम्न बातो का होना आवश्यक है—

1. महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिए।
2. महाकाव्य का नायक देवता अथवा धीरोदात्त गुण से समन्वित उच्च कुलोत्पन्न क्षत्रिय होना चाहिए। किसी एक या अनेक वशो के राजाओ मे से भी किसी एक को नायक माना जा सकता है।
3. शृगार, वीर और शान्त रसो मे से कोई एक रस अगी बनकर आना चाहिए और शेष रसो का प्रयोग प्रधान रस के अग रूप मे होना चाहिए।
4. महाकाव्य मे सम्पूर्ण नाटकीय सधियो का प्रयोग भी अपेक्षित है।
5. महाकाव्य का कथानक इतिहाससम्मत अथवा सज्जनाश्रित होना चाहिए।
6. महाकाव्य का लक्ष्य चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की प्राप्ति हो।
7. महाकाव्य के प्रारभ मे मगलाचरण होना चाहिए जो नमस्कारात्मक आशीर्वादात्मक अथवा वस्तु निर्देशात्मक हो सकता है।
8. कही-कही पर खलो की निदा की गई हो और सज्जनो की प्रशसा हो।
9. एक सर्ग मे एक ही वृत्त हो, सर्गान्त मे वृत्त-परिवर्तन हो, किसी-किसी सर्ग मे अनेक प्रकार के वृत्त भी हो सकते है।
10. सर्ग न अधिक छोटे हो और न अधिक बडे, उनकी सख्या आठ से अधिक होनी चाहिए।
11. सर्ग के अन्त मे अग्रिम सर्ग की कथा की सूचना दे देनी चाहिए।
12. महाकाव्य मे सध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात, प्रदोषान्धकार, दिन, प्रात, मध्याह्न, आखेट, पर्वत, ऋतु, वन सागर, सयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, यज्ञ, रणप्रयाण, सग्राम तथा पुत्रजन्म आदि का वर्णन प्रसगवश होना चाहिए।
13. महाकाव्य का नामकरण कवि के नाम पर अथवा कथानक, नायक या अन्य किसी पात्र के नाम होना चाहिए।
14. प्रत्येक सर्ग का नाम उसके वर्ण्य विषय के आधार पर होना चाहिए।

आचार्य विश्वनाथ की महाकाव्य सम्बन्धी अधिकाश मान्यताएँ 'प्रेम-विजय' मे विद्यमान है। यथा—

1. यह सर्गबद्ध है।
2. इसका नायक बाणासुर धीरोदात्त गुण से समन्वित है।
3. इस काव्य का अगी रस विप्रलभ शृगार है, इसके अतिरिक्त सयोग शृगार, हास्य, वीर, रौद्र तथा भयानक आदि रसो का भी इसमे समावेश किया गया है।
4. महाकाव्य का कथानक पुराणसम्मत है, वास्तव मे देखा जाए, तो पुराण भी एक प्रकार से इतिहास ही है अत कथानक को इतिहाससम्मत माना जा सकता है।

5 महाकाव्य के प्रारम्भ मे मगलाचरण है जिसमे सरस्वती की वदना की गई है तथा ग्र थ के निर्विघ्न समाप्ति के हेतु शक्ति-याचना भी है ।

6 स्पष्ट रूप मे खल-निन्दा एव सज्जन-प्रशसा तो नही है, लेकिन उच्च मानवीय गुणो जैसे अहिंसा, सेवा, प्रेम, उदारता आदि की प्रशसा तथा युद्ध, आखेट, हिंसा आदि की निन्दा की गई है । प्रकारान्तर से इसे सज्जन-प्रशसा तथा खल-निन्दा माना जा सकता है ।

7 प्रत्येक सर्ग मे अनेक प्रकार के वृत्तो का प्रयोग किया गया है, सर्ग के अन्त मे वृत्त-परिवर्तन भी किया गया है ।

8 मगलाचरण और उपसहार को छोडकर सारा काव्य तेरह सर्गो मे विभाजित है । सर्गो के नाम इस प्रकार है—

प्रथम सर्ग	—	तपस्या
द्वितीय सर्ग	—	पुर-प्रवेश
तृतीय सर्ग	—	मत्रणा
चतुर्थ सर्ग	—	विजय
पचम सर्ग	--	उषा जन्म
षष्ठ सर्ग	—	उपनयन
सप्तम सर्ग	—	समावर्तन
अष्टम सर्ग	—	स्वप्न
नवम सर्ग	—	चित्र-दर्शन
दशम सर्ग	—	मिलन
एकादश सर्ग	—	कारावास
द्वादश सर्ग	—	कृष्ण दर्शन
त्रयोदश सर्ग	—	सन्धि

सर्ग न बहुत छोटे है और न अधिक बडे । सर्गो की सख्या भी उचित परिमाण मे ही है ।

9 सभी मे तो नही लेकिन अधिकाश सर्गो के अन्त मे भावी सर्ग की कथा की सूचना दे दी गई है ।

10 जहा तक वर्ण्य विषयो का सम्बन्ध है, प्रस्तुत काव्य मे सध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रात , मध्याह्न, मृगया, ऋतु, वन, पर्वत, आदि (प्राकृतिक उपकरण) सयोग, वियोग, कन्या जन्म, विवाहोत्सव, शुक्राचार्य का आश्रम, यादवो की सभा आदि (सामाजिक जीवन का वर्णन), मत्रणा, युद्ध की तैयारी, आक्रमण के लिए प्रस्थान, विजय आदि (जीवन के राजनीतिक पक्ष) का वर्णन मिलता है ।

11 काव्य की मूल कथा (प्रेम द्वारा विजय-प्राप्ति) के आधार पर प्रस्तुत काव्य का नाम 'प्रेम-विजय' रखा गया है ।

से होता है जिसका चरम बिंदु कोई महत्त्वपूर्ण कार्य और आश्रय कोई एक प्रधान पात्र होता है।[1]

4 सुसघटित जीवन्त कथानक—

महाकाव्य का कथानक बहुत बिखरा भी नहीं होना चाहिए और न उतना सीमित और जीवन के एक ही अग और एक ही घटना पर आधारित होना चाहिए कि उसे खड काव्य या एकार्थ काव्य की सीमा मे रखना पडे।[2]

कथानक मे घटना का प्रवाह होना आवश्यक है, इसके बिना महाकाव्य दोष-पूर्ण हो जाता है। घटना प्रवाह से सक्रियता का गुण उत्पन्न होता है जो महाकाव्य मे अवश्य होना चाहिए।[3]

5 महत्त्वपूर्ण नायक—

उसका चित्रण मानव के रूप मे हो। उसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण और सर्वप्रधान हो और उसका चित्रण ऐसा हो कि वह अपनी अच्छाइयो-बुराइयो तथा सदसद् प्रवृत्तियो के बावजूद महान् प्रतीत हो। वह महाकाव्य के महदुद्देश्य की सिद्धि का माध्यम और महत्कार्य का प्रधान आश्रय हो।[4]

6 गरिमामय उदात्त शैली—

महाकाव्य की शैली महाकाव्योचित होनी चाहिए अर्थात उसमे गभीरता, उदात्तता, गरिमता शक्तिमत्ता और प्राणवत्ता का होना आवश्यक है।[5]

7 तीव्र प्रभावान्विति और गभीर रस व्यजना—

प्रभावान्विति मे दर्शक, श्रोता या पाठक काव्य से प्रभावित होकर हमेशा आनन्दित, दुखी, दुखी या करुणा विगलित होकर कवि के उद्देश्य के प्रति परोक्ष रूप से अपनी सहमति और समर्थन प्रकट करता है।[6]

8 अनवरुद्ध जीवनी-शक्ति और सशक्त प्राणवत्ता—

महाकाव्य की जीवनी-शक्ति इस बात पर निर्भर करती है कि वह समाज को कितनी शक्ति, कितना साहस और जीवन को कितना उमग तथा आस्था प्रदान करता है। महाकवि जब अपनी सप्राणता को महाकाव्य मे जीवन्त रूप मे उतारता

---

1 हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास—डा० शभूनाथ सिंह, पृ० 111।
2 वही, पृ० 111।
3 वही, पृ० 112।
4 वही, पृ० 115।
5 वही, पृ० 117।
6 वही पृ० 117।

महत्कार्य और युग जीवन का समग्र चित्र—

'प्रेम-विजय' युग जीवन का समग्र चित्र तो नहीं प्रस्तुत करता लेकिन उसमें युग चेतना का प्रभाव अवश्य परिलक्षित होता है। 'प्रेम-विजय मे युग-चेतना' शीर्षक के अन्तर्गत इस विषय पर पहले विचार किया जा चुका है, अतः पुनः विवेचन अप्रासंगिक होगा।

'प्रेम-विजय' मे महत्कार्य श्रीकृष्ण द्वारा बाणासुर का हृदय-परिवर्तन है और उसका फल देवासुर की स्थायी सधि है। इसी के फलस्वरूप प्रेमपूर्ण साम्राज्य की स्थापना भी होती है।

सुसघटित जीवन्त कथानक—

महाकाव्य के लिए जिस सुसघटित जीवत कथानक की आवश्यकता होती है, 'प्रेम-विजय' मे उसका अभाव है। इसमे प्रासगिक कथाओ का समावेश नहीं है तथा नाट्य सधियों के निर्वाह की कोई समुचित योजना भी परिलक्षित नहीं होती। पुराणों की एक छोटी-सी प्रेम-कथा को महाकाव्य का कथानक बना देने के कारण उसमें घटना-विरलता स्पष्ट है तथा महाकाव्योचित गरिमा भी पूर्णत नहीं आ पाई है।

महत्त्वपूर्ण नायक—

'प्रेम-विजय' का नायक बाणासुर है और उसके चरित्र-चित्रण मे कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। देवों और दानवो के प्रति कवि की समान व्यवहार नीति ने बाणासुर के चरित्र को उच्चासन पर प्रतिष्ठित किया है। बाणासुर को महत्त्वाकांक्षी, भक्त, वीर, दृढनिश्चयी, अन्याय-विरोधी तथा आत्मसम्मानी व्यक्ति के रूप मे चित्रित किया गया है। राक्षसो को मानव जाति का ही अग मानने के कारण उसका चरित्र-चित्रण मानव के रूप मे किया गया है। महाकाव्य मे उसकी भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वह अपनी कुछ सीमाओ जैसे हिंसावादी होना, परिस्थितिजन्य दुर्बलताओं (क्रोध, उद्विग्नता) आदि के बावजूद महान् प्रतीत होता है। महाकाव्य के महदुद्देश्य की सिद्धि का माध्यम भी वही है क्योकि उसके हृदय-परिवर्तन द्वारा ही देवासुरो मे स्थायी सधि की योजना द्वारा शान्तिपूर्ण साम्राज्य की स्थापना हो सकी है।

गरिमामय उदात्त शैली—

महाकाव्य के लिए जिस उत्कृष्ट शैली की कल्पना डा० शभूनाथ सिंह ने की है, वह 'प्रेम-विजय' मे उपलब्ध नहीं है, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि 'प्रेम-विजय' की शैली नितान्त निम्न कोटि की अथवा सर्वथा उपेक्षणीय है। 'प्रेम-विजय' पर 'प्रिय-प्रवास' की शैली का व्यापक प्रभाव है, वैसी ही भाषा, छन्द-योजना, अभिव्यजना आदि यहा दिखाई पडेगी जैसी कि 'प्रियप्रवास' मे है। सेठ जी की प्रथम

रचना होने के कारण 'प्रेम-विजय' मे शैलीगत प्रौढता तथा उदारता के दर्शन नही होते। इस पर द्विवेदी कालीन इतिवृत्तात्मक शैली की स्पष्ट छाया है। इसके प्रकृति-चित्रण पर कही-कही छायावादी शैली का प्रभाव भी है।

तीव्र प्रभावान्विति और गंभीर रस व्यजना—

प्रभावान्विति की दृष्टि से 'प्रेम-विजय' का सफलता असदिग्ध है। आधुनिक युग के अशात और युद्ध की विभीषिका से त्रस्त मानव को गाधीवादी विचारधारा से जितना आत्म-तोष मिलता है उतना अन्य किसी से नही। प्रस्तुत काव्य मे गाधीवादी विचारधारा का व्यापक प्रसार है, जो अत्यन्त प्रभावोत्पादक है। जहा तक गभीर रस व्यजना का प्रश्न है 'प्रेम-विजय' की सफलता का दावा नही किया जा सकता। महाकाव्य मे शृगार, वीर, वात्सल्य, रौद्र तथा भयानक आदि रसो का वर्णन होते हुए भी इसकी रस-योजना उत्कृष्ट कोटि की नही है।

अनवरुद्ध जीवनी-शक्ति और सशक्त प्राणवत्ता—

यह सत्य है कि 'मानस' अथवा 'कामायनी' के सदृश अनवरुद्ध जीवनी-शक्ति 'प्रेम-विजय' मे नही है लेकिन यह नही कहा जा सकता कि उसमे जीवनी-शक्ति बिल्कुल है ही नही। जीवनावस्था तथा विश्वबन्धुत्व की भावना से पूर्ण भारतीय सस्कृति के उज्ज्वल पक्ष को प्रस्तुत करने वाली रचना कभी निष्प्राण नही हो सकती।

निष्कर्ष—

महाकाव्य सम्बन्धी प्राचीन और नवीन मान्यताओ के आधार पर 'प्रेम-विजय' के महाकाव्यत्व का परीक्षण करने के उपरात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि यह काव्य ग्रथ उत्कृष्ट महाकाव्यो की श्रेणी मे प्रतिष्ठित करने योग्य तो नही है लेकिन इसके अनेक काव्यगुणो के आधार पर इसे 'प्रिय-प्रवास' की परपरा का महाकाव्य अवश्य माना जा सकता है।

(ख) मुक्तक-काव्य

मुक्तक-काव्य के अन्तर्गत सेठ जी की दो रचनाए आती है—

(1) पत्र-पुष्प

(2) सवाद सप्तक

1 पत्र-पुष्प

'पत्र-पुष्प' सेठ जी की स्फुट कविताओ का सग्रह है। इस सग्रह की सभी कविताए सन् 1932 के पूर्व की है अत उनमे द्विवेदी कालीन काव्य प्रवृत्ति का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। सग्रहीत कविताओ का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है—

1 भारत दर्शन
2 जन्म-भूमि-प्रेम
3 प्रकृति-पूजा
4 प्रेम
5 दो प्रकार के प्रेमी
6 विप्रलभ
7 द्वन्द्व
8 विनोद
9 स्फुट

भारत-दर्शन—इस सग्रह की प्रथम कविता 'भारत-दर्शन' एक लम्बी कविता है जो पुस्तक के पन्द्रहवे पृष्ठ पर समाप्त होती है। इसमे इतिवृत्तात्मक शैली मे भारत की प्राचीन सस्कृति, उसके गौरवपूर्ण अतीत, प्राकृतिक सुषमा, राष्ट्रीय जागरण का सक्षिप्त इतिहास तथा सत्य-अहिंसा के विश्वव्यापी प्रभाव का चित्रण किया गया है।

राष्ट्रीय भावना से युक्त होने के कारण सन् 1921 और उसके बाद के स्वतन्त्रता आन्दोलनो के समय जबलपुर और उसके आसपास प्रस्तुत कविता का काफी प्रचार हुआ था।

इस कविता की अन्तिम दस पक्तियाँ स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् सन् 1959 मे इस उद्देश्य से लिखी गई कि इस युग के लिए भी इस कविता की उपादेयता बनी रहे और यह प्राचीन तथा नवीन भारत का एक सुसम्बद्ध चित्र प्रस्तुत कर सके। अन्तिम पक्तियो मे कवि ने गाधी जी के सत्य, अहिसा के महत्त्व का प्रतिपादन किया है—

गाँधी ने जिस सत्य, अहिंसा से यह देश स्वतन्त्र किया,
पाने त्राण जगत को इसने एक नया ही मन्त्र दिया।
चली यहाँ जो सत्याग्रह की सत्य, अहिंसा मयी बयार,
पहुँची वह ससार सकल मे, सव सीमाओ को कर पार।
उगा अहो! स्वातन्त्र्य सूर्य जो विना बहाए रक्त यहाँ,
उसके नव प्रकाश ने जग को दिया नया आलोक महा।[1]

भाव-सौन्दर्य की दृष्टि से तो कविता की सफलता का दावा नही किया जा सकता, लेकिन जहाँ तक विचार-सौन्दर्य का प्रश्न है उसकी उपेक्षा भी नही की जा सकती। प्रस्तुत कविता मे देश की सास्कृतिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक तथा साहित्यिक गरिमा का चित्र अकित हुआ है।

1 पत्र-पुष्प, पृ० 14-15।

जन्म-भूमि-प्रेम—प्रस्तुत कविता महाभारत की एक कथा पर आधारित है और उसका वर्ण्य विषय इस प्रकार है—नंदन वन के समान एक सुन्दर कानन में फूलों और फलों से सुशोभित एक रसाल वृक्ष पर अनेक पक्षियों के साथ एक तोता भी सपरिवार निवास करता है। एक निकृष्ट व्याध के विष बुझे बाणों के प्रभाव से समस्त वन प्रान्त सूख जाता है और वह रसाल वृक्ष भी फूल, फल विहीन होकर केवल ठूठ मात्र रह जाता है। वृक्ष के सूख जाने पर उस पर निवास करने वाले सब पक्षी गण उसे छोड़कर उड़ जाते हैं केवल तोता अपने परिवार के साथ रह जाता है। स्वार्थी पक्षियों के चले जाने के उपरान्त दृढ़-निश्चयी शुक उसी शुष्क वृक्ष पर निवास करता हुआ यह मन्त्र जपता है—

> 'जब तक है तन में प्राण शेष
> तब तक न तजूँगा मैं स्वदेश,
> तज अहं भाव का घृणित गर्व
> इस पर वारूँगा सब सगर्व।[1]

क्षुधा से पीड़ित होकर उसका शिशु अपना प्राण त्याग देता है और उसके (शिशु) वियोग में शुकी के भी प्राण पखेरू उड़ जाते हैं, लेकिन जन्म-भूमि-प्रेमी तोता विचलित नहीं होता। अन्त में इन्द्र ब्राह्मण के वेश में उस तोते के पास जाकर उसे वह निर्जन स्थान छोड़कर चले जाने का परामर्श देते हैं। इन्द्र की बातों को सुनकर तोता अत्यन्त विनीत भाव से उत्तर देता है—

> सुनिए, प्रभु! इसको त्याग आज
> यदि मिलता भी हो स्वर्ग राज
> तो समझ उसे भी तृण समान
> मैं दूँगा इस पर वार प्राण।[2]

इन्द्र के यह कहने पर कि तालाब का सूखा जानकर विवेकी हंस भी वहाँ से प्रस्थान कर देता है, तोता अत्यन्त मार्मिक उत्तर देता है—

> कहिए जग में क्या कभी मीन
> चल देती तज सर जल विहीन ?[3]

अन्तिम बार शुक अपना दृढ़ निश्चय प्रकट करता है—

> इसको तजना अति निद्यकर्म,
> इस पर मर-मिटना है स्वधर्म,

---

1 जन्म-भूमि पृ० 21।
2 वही पृ० 22।
3 वही पृ० 22।

मैं इसे न त्यागूँ, शुनासीर !
चाहे तन त्यागे असु अधीर ।[1]

धीर शुक के इस दृढ निश्चय से इन्द्र प्रसन्न हो उठते है और वे उसकी इच्छानुसार समस्त वन प्रान्त को फिर उसके पूर्व रूप मे परिवर्तित कर देते है। रसाल का वह वृक्ष पुन फूलो फलो से सुशोभित हो जाता है। शुक-शावक तथा शुकी पुन जीवित हो जाते है और वन को त्याग कर गए पशु पक्षी फिर वापस आ जाते हैं। वे सब उस देश-प्रेमी शुक की भूरि-भूरि प्रशसा करते है—

जय जन्म-भूमि-गौरव-निधान,
जय रूप त्याग के मूर्तिमान,
जय धर्म परायण महावीर,
प्रणवीर अलौकिक जयति कीर ।[2]

शुक के माध्यम से इस कविता मे उत्कट देश-प्रेम का मार्मिक चित्र अकित हुआ है जो सेठ जी की राष्ट्रीय भावनाओ का परिचायक है। भाषा की प्राजलता, भावोत्कर्ष, प्रवाहमयता आदि की दृष्टि से प्रस्तुत कविता काफी सुन्दर है। इस कविता के विषय मे श्री रामधारीसिह 'दिनकर' का कथन द्रष्टव्य है—

"जब हम लोग साहित्य का रस लेने की उमग मे पहुँचे तब तक हिन्दी मे छायावाद की स्थापना हो चुकी थी और युवक-सम्प्रदाय द्विवेदी काल की रचनाओ से मुँह मोडकर नयी कविता को अपनाने लगा था। ठीक उन्ही दिनो (कदाचित् 1924-25 के आसपास) सम्मेलन ने नवीन पद्य सग्रह के नाम से आधुनिक कविताओ का एक सकलन प्रकाशित किया जिसे अच्छी लोकप्रियता प्राप्त हुई थी। उसी सग्रह मे मैंने पहले-पहल सेठ गोविन्ददास जी की 'जन्म-भूमि का प्रेम' नामक वह कविता पढी जो इस सग्रह मे भी मौजूद है। सेठ जी की वह कविता उन दिनो काफी पसन्द की गई थी। कारण, एक तो उसमे देशभक्ति के भाव थे जिनके लिए जनता मे बहुत उत्साह था। दूसरे, उस कविता की भाषा भी काफी अच्छी और अभिव्यक्तियाँ बहुत साफ थी।'[3]

प्रकृति-पूजा—इसके अन्तर्गत षट् ऋतु (ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर तथा वसन्त-वर्णन), प्रभात. सन्ध्या, कृत्रिम और अकृत्रिम, रेवा, ऋषीकेश की गगा, दुआव, साभर की झील, वम्बई की चौपाटी, काले घन, प्रात की शोभा तथा ऋतुराज शीर्षक कविताएँ है। षट् ऋतु, प्रभात तथा सन्ध्या के वर्णन सेठ जी के 'प्रेम-विजय' महाकाव्य मे भी इसी रूप मे है और उनका विवेचन 'प्रेम-विजय मे प्रकृति-चित्रण'

---

1 पत्र-पुष्प पृ० 24।
2 वही, पृ० 25।
3 गोविन्ददास-ग्रथावली, आठवा खण्ड, भूमिका, पृ० क।

के अन्तर्गत किया जा चुका है। इस वर्ग के अन्तर्गत संग्रहीत कुछ कविताएँ ब्रजभाषा मे भी है, यथा काले घन, प्रात की शोभा तथा ऋतुराज। इन कविताओ मे कल्पना की लम्बी उड़ाने तो नहीं हैं लेकिन भाषा का माधुर्य अवश्य दर्शनीय है—

कैसो यह अहो ! ऋतुराज-राज छायो है,
नवता को वधू रूप सग निज लायो है।
तरुवर पर नए पत्र,
आम्र मौर यत्र-तत्र,
टेसू हू फूल फूल पीत रग पायो है।[1]

प्रकृति-पूजा की 'काले घन' शीर्षक कविता मे हमे अनगढ सौन्दर्य के दर्शन होते है—

काले घन गरजत घूम घूम।
दमकत दामिनि, टपकत बुँदियाँ, वहत पवन सीतल लूम लूम।[2]

प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से इस वर्ग की कविताएँ काफी अच्छी है। इन कविताओं मे कहीं-कही उत्कृष्ट कल्पना के दर्शन भी होते है। कुछ उद्धरण देखिए—

कुहरे से व्याप्त गगन को
लख, यही भासता मन को—
यह भी न शीत अति सहकर
क्या बैठा आच्छादन धर ?[3]

अथवा

दिनेश अस्ताचल के समीप है,
दिशा प्रतीची कुछ लाल वर्ण है,
[illegible]नाथ के आगम मे विलम्ब को
विलोक मानो वह क्रोध पूर्ण हो।[1]

प्रेम—इस वर्ग के अन्तर्गत 'अनजान प्रेम', 'प्रेम और लालसा', 'जगत का [illegible] मान 'प्रभात सम प्रेम' तथा 'रात्रि सम प्रेम' शीर्षक [illegible] है। इनमे अन्तिम तीन कविताएँ ब्रजभाषा मे है तथा शेष खडी बोली [illegible] छोटी है तथा एक पृष्ठ से अधिक कोई कविता नही है।

1 [illegible] 36।
2 [illegible] 37।
[3] [illegible] 34।
1 [illegible] 38।

'प्रेम और लालसा' शीर्षक कविता मे कवि ने प्रेम को उच्च मानवीय भाव के रूप मे तथा लालसा को एक अत्यन्त तुच्छ भाव के रूप मे चित्रित किया है—

है प्रेम लालसा मे अन्तर अतीव भारी,
दिन तुल्य यह सुखद, वह निशि तुल्य भीतिकारी,
पर्वत समान थिर यदि पीयूप पुँज यह है.
तो राशि रेणु मम वह, विप की बुझी कटारी।

•

यह रूप ईश का है स्वर्गीय सौख्य दाता,
माया समान वह है ससार मे विकारी।[1]

कल्पना की नवीनता तथा प्रवाहमयता के विचार से 'प्रेम का मान' शीर्षक कविता इस इस वर्ग की श्रेष्ठ कविताओ मे परिगणित की जा सकती है। इसकी कुछ पक्तियाँ द्रष्टव्य है—

सबै मिल प्रेमहि दीजै मान।
जो हिय प्रनय वारि सो वचिन सो मरु भूमि समान।
प्रेमहि सो खिच निज पथ पर रवि, ससि, ग्रह चलत महान्।
घन बरसावत जल अरु ऊर्वी करत सस्य वहु दान।
तरु सो पुहुप, पुहुप सो निकसत फल, यह प्रेमोद्यान।[2]

'रात्रि सम प्रेम' कविता पर भारतेन्दु की शैली शिल्प का स्पष्ट प्रभाव है—

उजियारी स्यामा सान्त लगत
है प्रेम भरे मन-सी याकी सोभा।
इस उज्ज्वल ससि को सुचि प्रकाश
जिमि करत सवै तम को विनास,
ज्यो चलत चारु सीतल समीर
वहि दमकत चम चम लहर नीर
अवलोक हरय मन दुख भगत।
उजियारी स्यामा सान्त लागत
उन नष्ट करत जब प्रनय ध्वान्त
द्युति युक्त होत यह हृदय सान्त,
कर्त्तव्य मयी भ्रमत बयार
उमगत पावत मन सुख अपार,
अरु मानत निज सम मङ्गल जगत।[3]

---

1 पत्र-पुष्प, पृ० 49-50।
2 वही, पृ० 51।
3 वही, पृ० 53।

प्रेम-पूर्ण मन का शुक्ल शर्वरी के साथ सावयव समानता दिखाना कवि की अद्भुत सूझ का परिचायक है।

दो प्रकार के प्रेमी—इस वर्ग में केवल दो कविताएँ हैं—'घन सम प्रेमी' तथा 'ठग प्रेमी'। दोनों कविताएँ ब्रजभाषा में हैं। प्रथम कविता में सच्चे प्रेमी तथा घन में समानता स्थापित की गई है। यथा—

> प्रेमी घन सम जगहित वारे।
> वे तज भेद नीर बरसावत,
> सस्य विविध विधि के उपजावत,
> त्यों सब पर ये प्रेम दिखावत,
> करत कार्य हितकारी सारे।
> सुरपति सर उन पर नित छोडत,
> तऊ कर्म ते मुख नहीं मोडत,
> नहीं प्रतिज्ञा ये हू तोडत
> कबहू दुख ते टरत न टारे।[1]

'ठग प्रेमी' में ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख है जिन्होंने किसी कारण वश अपनी प्रिया का परित्याग किया था। कवि का कथन है—

> सारी सृष्टि का ठगन भरी!
> ठग ही ठग उन हित का जिनकी दुष्ट प्रेम ने बुद्धि हरी?
> राम जदपि अवतार तदपि सिय उन ही हाथन गयी ठगी।
> चक्रवर्ति दुष्यन्त ठगी हा! सकुन्तला मृदु प्रेम पगी।

अत्याचार के प्रति असहिष्णु भावना के कारण ही परम वैष्णव कवि ने राम को दुष्यन्त को ठग की श्रेणी में परिगणित कर लिया है।

विप्रलम्भ—इस वर्ग के अन्तर्गत 'सुमनों का ससार', 'सोने का ससार', '[illegible]', 'नित-मिलाप', 'पत्र-मिलाप', 'अमिट चिन्ह', 'कलियों की गल बहियाँ', '[illegible] माला', 'मुक्ताहार', 'मेरा उच्छवास', 'आँसू', 'सच्चा रुदन' तथा 'विधि-हृद' [illegible] सम्मिलित है।

[illegible] की गल बहियाँ', 'सोने की माला' तथा 'मुक्ताहार' शीर्षक कविताओं में [illegible] शैली की एक प्रमुख विशेषता प्रतीकात्मकता की झलक दिखाई पड़ती है। [illegible]—

> भीनी-भीनी मधुर गंध युत चटकी-चटकी कुछ कलियाँ
> [illegible] नित तर से तोड़ी, सुन्दर गूथी गल बहियाँ।

1 [illegible] पृ० [illegible]।

प्रियतम ग्रीवा गयी सजाने ले अपनी वे गल बहियाँ
किन्तु न पाया अवसर ऐसा, हाय ! सभी सूखी कलियाँ ।[1]

यहाँ पर 'कलिया' मन की प्रेमपूर्ण कोमल भावनाओ की प्रतीक है। इस वर्ग की कुछ कविताओ जैसे 'सुमनो का ससार', 'सोने का ससार', 'चित्र-मिलाप' तथा 'पत्र-मिलाप' आदि का सम्बन्ध सेठ जी के प्रत्यक्ष जीवन से है। जेल मे रहने के कारण जिस विरह-व्यथा का अनुभव उन्होने किया था उसे इन कविताओ के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। सन् 1932 के जेल जीवन मे पत्नी की रुग्णावस्था का समाचार पाकर कवि अत्यन्त व्याकुल हो गया था, अपनी उस मनोदशा का चित्रण उसने 'सोने का ससार' शीर्षक कविता मे किया है—

मेरा सोने का ससार,
उसकी द्युति मे अधकार का कही न दिखता था अधिकार ।
आयी ऐसी पवन एक दिन भग्न हुआ वह स्वर्णागार,
फिर उसके ठडे झोको से गला अहो ! वह हेम अपार ।[2]

इस वर्ग की कुछ कविताएँ जैसे 'पत्र-मिलाप', 'चित्र-मिलाप', 'सच्चा रुदन आदि काव्य गुणो से रहित है। 'पत्र-मिलाप' की निम्न पक्तियाँ प्रमाण के रूप मे प्रस्तुत है—

प्रिय पत्र प्राप्त हो नही प्राचीन ।
यदि वह मिलता विप्रलभ मे होता दुख नवीन ।
एक एक हा ! अक्षर, मात्रा, शब्द, वाक्य लख याद
आती ऐसी ऐसी बाते, होता बस उन्माद ।[3]

भावमयता तथा प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से अन्तिम कविता 'विधि-हृद' को उच्च स्थान दिया जा सकता है—

नेत्रो का यह वाह !
द्रवीभूत कर सका न विधि-हृद यद्यपि अविरत वहा प्रवाह ।
कैसे करता ? क्या पानी है कभी गलाता लोहा घोर ?
फिर वह तो लोहे से भी है कही अधिकतर कठिन कठोर ।[4]

द्वन्द्व—इस वर्ग के अन्तर्गत केवल पाँच कविताएँ है—'मोदखेद', 'आँसू-मुस्कान', 'काक्षा-लालसा', 'पाप-पुण्य' तथा 'असन्तोष-सन्तोष' ।

---

1 पत्र-पुष्प, पृ० 64 ।
2 वही, पृ० 61 ।
3. वही, पृ० 63 ।
4 वही, पृ० 67 ।

नाना करे प्रयत्न,
दर्शन पथ विज्ञान मार्ग के होवे स्थिर सब यत्न ।[1]

इस वर्ग की सभी कविताओ मे कवि की प्रौढ चिन्तन शक्ति तथा उसके विचारो की मौलिकता के दर्शन होते है । चिन्तन-प्रधान होने के कारण इन कविताओ मे बुद्धि तत्त्व तो प्रबल है लेकिन भाव तत्त्व का अभाव है ।

विनोद—इस वर्ग मे 'देवालयो मे परिवर्तन' 'विकासवाद का फल', आत्मा का रूप' तथा 'यज्ञ' शीर्षक चार कविताए सग्रहीत है । इन कविताओ मे कवि ने शिष्ट हास्य के अच्छे उदाहरण प्रस्तुत किये है । 'यज्ञ' शीर्षक कविता मे वर्णित आधुनिक यज्ञ का रूप देखिए—

सिगरेट बीडी से घटो हम यज्ञ नित्य अब है करते ।
विविध कारखानो से भी हम धूम व्योम मे है भरते ।

. ..

वैयक्तिक यज्ञो का पहले उषा काल था समय नियुक्त
पर तम्बाखू-यज्ञ काल से रहते है सब भाति विमुक्त ।[2]

कारागृह—इसमे 'कारा के साथी' तथा 'कारा मे विगत जीवन' शीर्षक दो कविताए है । ये दोनो कविताएं जेल मे लिखी गई थी । कवि ने कीट, पतग तथा अनेक पक्षियो को कारा के साथी के रूप मे चितित्र किया है ।[3] जेल मे रहकर भी कवि अपने विगत राजनीतिक जीवन को भूल नही पाता । प्राकृतिक दृश्यो के अवलोकन द्वारा वह विगत जीवन का स्मरण करता है—

उदय उदीची से होते जब
दिनकर कर के निकर नित्य तब
स्वयसेवको के दल सम है दिखते, होता हर्ष हुलास
तारागण के सग तारापति,
होते है जब उदित महामति,
सभाध्यक्ष से युक्त सभा का होता है तब तो आभास ।[4]

---

1. पत्र-पुष्प, पृ० 73 ।
2 वही, पृ० 79 ।
3. चहक चहक कर बहु विहग,
गूंज गूज कर कभी भृग,
दिखला तितली विविध रग,
आते भृगो सम मम पास,
इनसे ही बाते होती है, होता है बहु हास विलास ।—वही, पृ० 83 ।
4 वही, पृ० 79 ।

स्फुट—इस वर्ग में कुल तेरह कविताएं हैं जो एक दूसरे से नितान्त असम्बद्ध हैं। कविताओं के नाम इस प्रकार हैं—भगवान का अटूट धन, बलिदान, अन्धा मनुष्य, गुन की खान, परिश्रम, निरुत्तर प्रश्न, ईश्वरी न्याय, बुरा क्या, संग, आशा, निर्झरी, अद्भुत मानव-मन तथा अद्भुत संसार।

उपर्युक्त कविताओं में 'भगवान का अटूट धन' तथा 'अन्धा मनुष्य' को छोड़ कर शेष सभी कविताएं सामान्य स्तर की हैं। उनमें न तो कल्पना की उत्कृष्टता है और न ही भावों का सौन्दर्य, हां कहीं-कहीं विरोधी भावों का एक साथ चित्रण कर देने के कारण कविता में कुछ अंश तक भावमयता अवश्य आ गई है, इसका प्रमाण 'अद्भुत संसार' है। इस कविता में अन्य किसी प्रकार की विशेषता न होते हुए भी केवल विपरीत स्थितियों के वर्णन द्वारा कवि एक सीमा तक इसे भावपूर्ण बनाने में सफल हो गया है—

> अहो ! यह अद्भुत अति संसार !
> कहूं महा आनन्द तथा कहूं होवत हा ! हा ! कार।
> कहूं जन्म अरु कहूं व्याह को होवै मंगल चार,
> कोलाहल युत कहूं हो रह्यो मृतक-अग्नि संस्कार।
> कहूं कर रही मुग्ध प्रेयनी निज प्रियतम सों प्यार,
> कहं महा वैधव्य व्यथा सों कहूं अश्रु की धार।[1]

'भगवान का अटूट धन' में कवि ने यह दिखाने की चेष्टा की है कि प्राकृतिक उपकरणों के रूप में भगवान ने अटूट धन इस पृथ्वी पर बिखेर रखा है लेकिन सोने चांदी के टुकड़ों का लोभी मनुष्य उस अक्षय संपदा के प्रति उदासीन है और वह धन संग्रह के लिए अत्यन्त व्यग्र दिखाई देता है। इसको (धन संग्रह) ही उसने अपना धर्म, कर्म सब कुछ मान रखा है तथा इसी के लिए वह अन्याय, लूटमार को भी प्रोत्साहित करता है। उसकी कुछ पंक्तियां देखिये—

> कितना द्रव्य दिया भगवान ?
> तुमने तो देने में रक्खा नहीं मितव्ययता का ध्यान।
> नित्य प्रति मैं कोसों तक तुम फैला देते कांचन पत्र
> शुभ्र शर्वरी मध्य सतत ही छिटकाते चांदी सर्वत्र।
> निशा में नित अगणित हीरक
> चमकते द्यौ में दमक दमक,
> पयोदों में पन्ने मानक
> चमकते नभ में चमक चमक

---

1 स्फुटकुसुम पृ० ११।

तृष्णा का तब भी अवसान
मानव मन में हुआ न तो तुम क्या कर सकते, कृत्ता निदान ?[1]

इस वर्ग की सर्वश्रेष्ठ कविता 'अन्धा मनुष्य' है। इसमें कवि ने सृष्टि के सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य को 'अन्धा' बताया है क्योंकि वह केवल अपना स्वार्थ देखता है, इसके अतिरिक्त उसे कुछ नहीं दिखाई देता। कविता के इस मूल विचार को अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है—

मधुप मुकुल का कैसा सग !
स्वार्थ परार्थ विरोधी जिसने रंगे एक ही रग।
ले मधु उड़-उड़ मधुप मुकुल कुल कर विस्तृत यह सिद्ध
गुंज गुंज करता—'जग में केवल स्वार्थ निषिद्ध'।
सतत विलोका जड़ कृमि तक का यद्यपि यों सम्बन्ध,
सकल सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ जो मानव तब भी अन्ध।[2]

मधुप की स्वार्थ और परार्थ भावना का एक साथ चित्रण करने की कवि-कल्पना अत्यन्त रमणीय है। प्रस्तुत कविता सेठ जी की उत्कृष्ट कविताओं में से एक है।

प्रस्तुत काव्य ग्रंथ का नाम पत्र-पुष्प सर्वथा न्यायसंगत है। इस संग्रह में जहाँ सौरभपूर्ण पुष्पों की मादकता है वहीं म्लान, शुष्क पत्रों की खड़खड़ाहट भी है। डा० बलदेवप्रसाद मिश्र का यह कथन कि "उत्तम रचनाओं के साथ इस संग्रह में ऐसी रचनाएं भी जोड़ दी गई हैं जिन्हें शायद सेठ जी ने एकदम आरम्भिक काल में कलम मांजने के लिए लिखा होगा।"[3] बिल्कुल उचित प्रतीत होता है। इसमें 'भारत दर्शन' 'जन्म-भूमि प्रेम' 'प्रकृति-पूजा' (षट् ऋतु, सन्ध्या आदि वर्णन), 'प्रेम और लालसा', 'प्रेम का मान', 'विधि हृद', 'आँसू मुस्कान', 'पाप-पुण्य', 'असन्तोष सन्तोष' भगवान का अदृष्ट वन तथा 'अन्धा मनुष्य' आदि सुन्दर रचनाएं हैं तो चित्र-मिलाप, 'पत्र-मिलाप', 'सच्चा रुदन', निरक्षर प्रश्न तथा 'बुरा क्या' आदि अत्यन्त सामान्य स्तर की रचनाएं भी हैं जो काव्य तत्त्वों से रहित प्रतीत होती हैं।

निष्कर्ष— प्रेम-विजय' महाकाव्य के निर्माता कवि की द्वितीय कृति पत्र-पुष्प' उनकी काव्य प्रतिभा के अनुकूल नहीं बन सकी। महाकाव्य के उपरान्त रचित यह ग्रंथ कवि के साहित्यिक विकास का परिचायक होना चाहिए था, परन्तु रसोत्कर्ष के अभाव में अधिकांश कविताओं के प्रभाव हीन हो जाने के कारण यह उस के (कवि) साहित्यिक ह्रास का परिचायक बन गया है। 'प्रेम-विजय' यदि कवि के निर्माण कौशल का प्रतीक है तो पत्र-पुष्प उसकी निर्माण-असमर्थता का।

1 पत्र-पुष्प, पृ० 87।
2 वही, पृ० 88।
3 सेठ गोविन्ददास व्यक्तित्व एवं साहित्य पृ० 212।

2 सवाद-सप्तक

'सवाद-सप्तक' सेठ जी के सात पद्यात्मक सवादों का सग्रह है। इस ग्रन्थ की रचना सन् 1932 में नागपुर जेल में की गई थी और इसका प्रकाशन सन् 1959 में हुआ। यह ग्रंथ 'गोविन्ददास-ग्रन्थावली', खड 8 में भी समाविष्ट किया गया है।

प्रस्तुत सग्रह के विविध सवाद इस प्रकार है—

1 जीव और देह का सवाद—इस सग्रह का प्रथम सवाद जीव और देह का है।

देह की नश्वरता को लक्ष्य बनाकर सबसे पहले जीव उस पर आक्षेप करता है—

> देह क्षण भगुर! अभी है तू अभी नहीं।
> देह, फिर गर्व करता है किस बात का?[1]

जीव के इस आक्षेप का करारा उत्तर देता हुआ देह कहता है—

> जीव! बिना मेरे तुम भी तो प्रेत मात्र हो।
> मानता हूँ, मेरा एक रूप नष्ट होता है,
> किन्तु तत्क्षण ही मैं रचता हूँ दूसरा।
> मैं नहीं तो विश्व में तुम्हारा क्या ठिकाना है?[2]
> इसके पश्चात् जीव कहता है—
> शक्ति हूँ मैं।[3]

और देह का उत्तर है—

> साधन हूँ किन्तु मैं ही शक्ति का,
> सर्वेन्द्रिया-सम्पन्न-हृदय अग मेरे ही।[4]

इस प्रकार दोनो का वार्तालाप चलता है और अन्त में ब्रह्म प्रकट होकर दोनो को एक दूसरे का पूरक बनाकर विवाद का निपटारा करते है—

> व्यर्थ इस विग्रह में सार क्या है, सोचो तो।
> एक दूसरे के तुम पूरक हो वस्तुत।[5]

जीव और देह के अभिन्न सम्बन्ध की पुष्टि करते हुए ब्रह्म का कथन है—

---

1 सवाद-सप्तक पृ० 1।
2 वही, पृ० 1।
3 वही, पृ० 1।
4 वही, पृ० 1।
5 वही, पृ० 3।

जीव ! सोच, देह विना तू है किस काम का ?
भूल मत, देह आदि साधन है धर्म का ।
देह ! तू भी जीव विना कर सकता है क्या ?[1]

और अत मे ब्रह्म दोनो का समन्वय करते हुए उनकी विश्व-व्याप्ति की आकाक्षा करते हैं—

तात ! तुम दोनो ही किसी न किसी रूप मे,
व्याप्त हो सदैव इस सारी विश्व सृष्टि मे ।[2]

2 **नारी और नर का सवाद**—नर के शासन से पोडित नारी उसकी सदियो की शासन-व्यवस्था को भग करके स्वय सत्ता सभालना चाहती है । उसकी असफलता का निर्देश करती हुई वह कहती है—

इतने दिनो तक तुम्हारा रहा लोक मे
आधिपत्य, तुमने परन्तु क्या प्रगति की ?
अशन-वसन और निवसन तीन जो
आवश्यक वस्तुए है, वे भी कहाँ प्राप्त है
कोटि कोटि मानवो को ?[3]

उसका विचार है कि जो अन्याय, शोषण, लूट-मार प्रारभ मे होते थे, आज भी वही हो रहे हैं, अत नर के आधिपत्य मे केवल दु ख का ही प्रसार हुआ है—

सदियो के यत्न के अनतर भी सुख का
नाम नही, चारो ओर फैला और दु ख ही ।[4]

नारी के इस आक्षेप का उत्तर देता हुआ नर कहता है—

और अब होते ही तुम्हारी प्रभुता यहाँ
सुख का साम्राज्य मानो स्थापित हो जायेगा ।
क्या यह यवनिका है कोई, किसी नाट्य की
ज्यो ही यह पलटी, नरक स्वर्ग हो गया ।[5]

नर की उपर्युक्त शका का समाधान करती हुई नारी कहती है—

यह तो भविष्य का है प्रश्न, नही भूत का,

---

1 सवाद-सप्तक, पृ० 3 ।
2 वही, पृ० 3 ।
3 वही, पृ० 4 ।
4 वही, पृ० 5 ।
5 वही, पृ० 5 ।

तुम से सुखी न हुआ विश्व यह तथ्य है ।[1]

इस विवाद में मूल में स्थित नारी की स्वार्थ भावना को स्पष्ट करता हुआ नर कहता है—

वस्तुतः तुम्हारा तो
एक मात्र लक्ष्य है हमारा स्थान लेना ही,
होना चाहती हो तुम उच्च अधिकारिणी
मिलों और उद्यमों की दीर्घ यन्त्र-तन्त्रों की ।[2]

इसके आगे वह नारी से प्रश्न करता है—

लेने जा रही हो न्याय-शासन को हाथ में
और उस सेना को, मनुष्य भक्षिणी है जो,
पक्षिणी के नाम पर विस्फोटक ढाने को
उड़ना तुम्हें है इष्ट ऊंचे अन्तरिक्ष में ।
सुख का साम्राज्य क्या इसी से बन जाएगा ?[3]

नर अपनी आशंका प्रकट करता है—

हां, यह अवश्य होगा, आज हम है जहाँ
तुम वहां होगी, किन्तु सहज तुम्हारे जो
गुण है, उन्हें भी तुम नष्ट कर बैठोगी ।
और जो घरों में अभी थोड़ी सुख-शान्ति है,
वह इस क्रान्ति में न जाने कहां डूबेगी ।[1]

नर की उपर्युक्त आशंका के प्रत्युत्तर में नारी का कथन है—

तो तुम्हारा कहना है कि हम वहीं रहें
सम्प्रति जहां हैं । अहा ! धन्य वह छलना ।
सुख की मरीचिका में हम मरती रहें ।
तुम तो स्वतन्त्र रहो, हम परतन्त्र ही ।[5]

इसके उपरान्त नारी, नर के द्वारा अपने ऊपर किए गये अत्याचारों का वर्णन करती है । उसके इस अभियोग को कुछ सीमा तक नर स्वीकार करता है,

---

1 [illegible] पृ० 5 ।
2 वही पृ० 6 ।
3 वही पृ० 6 ।
4 वही पृ० 6-7 ।
5 वही पृ० 7 ।

परन्तु उसका विचार है कि नारी ने जो प्रतिकार का ढग अपनाया है उससे सघर्ष के बढने की ही सभावना है—

कुछ अतिचार किया निश्चय ही हमने,
किन्तु प्रतिकार का जो यत्न सोचा तुमने
उससे सघर्ष ही बढेगा और उलटा ।[1]

नारी और नर के इस विवाद को निपटाने के हेतु शिवजी अर्द्धनारीश्वर रूप मे प्रकट होते है और वे दोनो को एक दूसरे का पूरक बताते हुए उनमे समन्वय स्थापित करते है—

स्रष्टा ने समान ही बनाया नर नारी को,
नर से न नारी न्यून नारी से न नर है ।
दोनो एक दूसरे के पूरक है सृष्टि मे,
दोनो के मिलन मे ही पूर्णता है दोनो की,
होकर अलग दोनो आधे रह जाते है ।[2]

3 **धर्म और विज्ञान का सवाद**—धर्म और विज्ञान का विवाद अत्यन्त प्राचीन है । वैज्ञानिक धर्म को अधविश्वास तथा रूढियो का प्रतीक मानते है जबकि धर्मवेता विज्ञान को मानव की सद्वृत्तियो का नाशक मानते है । इस सवाद मे लेखक ने धर्म और विज्ञान के पक्ष और विपक्ष मे अपने तर्क-वितर्क प्रस्तुत किये है और अ त मे ब्रह्मा के द्वारा दोनो का समन्वय कराया गया है—

सर्वप्रथम धर्म विज्ञान से प्रश्न करता है—

तूने समुत्पन्न किया है क्या नया विश्व मे ?
जो कुछ था सृष्टि मे दिखा भर दिया वही ।[3]

और इसके प्रत्युत्तर मे विज्ञान कहता है—

तो कह नवीनता दी कौन यहा तूने भी ?
डाल रक्खा उलटा सभी को भ्रम जाल मे ।[4]

विज्ञान धर्म का महत्त्व अस्वीकार करता है, उसे बिल्कुल व्यर्थ की वस्तु बताते हुए उसका (विज्ञान) कथन है—

मैने समुत्पन्न न भी की हो नयी वस्तुए
न्यूनाधिक पर जो रहा औ' जो अदृश्य था,

---

1 सवाद-सप्तक, पृ० 9 ।
2 वही, पृ० 10-11 ।
3. वही, पृ० 13 ।
4 वही, पृ० 13 ।

उसको प्रकट कर सबको दिखा दिया
इतना भी तुझ से बना कहा ? तू व्यर्थ है ।[1]

धर्म अपने को संसार में नीति का संस्थापक मानता है—

ब्रह्मा ने बनाया इस हेतु मुझे आप ही
जीती रहे जगती में नीति, जिसके विना
चल नही सकता समाज ठीक मार्ग से ।[2]

विज्ञान धर्म की इस बात का भी खंडन करता है—

कौन सी है नीति और कौन सी अनीति है
निर्णय अभी तक हुआ है कहाँ इसका ?[3]

इसके आगे वह कहता है—

शेष रहा और एक प्रश्न वह सुख का,
तुझ से अभी तक मिला क्या सुख विश्व को ?
सुख का तो एक मैं ही मूर्तिमान रूप हू ।[4]

इसके प्रत्युत्तर में धर्म का कथन है—

रहे, रहे, आविष्कार जो जो हुए तुझ से
मानव यथार्थ में क्या उनसे सुखी हुआ ?[5]

और आगे का कथन है—

मान लिया, तूने चमत्कार कुछ है किये
फिर भी शनैं शनैं भुलाई नीति रीतियां
जीवन के शुद्धादर्श भूल गये लोग है ।[6]

दोनों का विवाद जब अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है उसी समय ब्रह्मा [illegible] दोनों को विश्व के लिए कल्याणकारी बताकर उन्हे परस्पर सहयोग [illegible] कल्याणकारी कार्यों में प्रवृत्त होने का आदेश देते हैं—

[illegible], हे धर्म ! रुको, हे विज्ञान ! व्यर्थ ही,
[illegible] हो, दोनों तुम आवश्यक हो यहा ।[7]

1 [illegible], पृ० 13 ।
2 वही पृ० 14 ।
3 वही पृ० 14 ।
4 वही पृ० 14 ।
5 वही पृ० 15 ।
6 वही पृ० 15 ।
7 वही पृ० 18 ।

धर्म ! तेरा कार्य अन्त शुद्धि है मनुष्य की,
सदय, परोपकारी उसको बनाना है,
. मिल के विज्ञान से नवाविष्कार करके,
कर सके उन्नति सदैव वह विश्व की ।[1]
हे विज्ञान ! तू भी अब मिलकर धर्म से
कर इस भाति कर्म—जगती मे जिससे
नाश न हो तेरे उपयोग मे विकास हो ।[2]

4 **न्याय और प्रेम का संवाद**—प्रस्तुत सवाद मे न्याय और प्रेम के माध्यम मे यह समस्या उठाई गई है कि अपराधी का सुधार न्याय द्वारा निर्धारित कठोर दड-विधान से हो सकता है अथवा उसके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करने से ? समस्या का समाधान दोनो के समन्वय मे प्रस्तुत किया गया है। कवि का विचार है कि न्याय और प्रेम का सम्मिलित रूप ही समाज के लिए कल्याणकारी है ।

प्रेम को सम्बोधित करके न्याय कहता है—

करने चला तू अरे ! यह क्या अनर्थ है !
सारी जगती से प्रेम ! अद्भुत सिद्धान्त है !
मेरे विना क्यो कर समाज रह पायेगा ?
और उड जायेगा सुधर्म तो कपूर-सा ।[3]

और प्रेम इसका प्रत्युत्तर देता है—

विश्व की व्यवस्था स्थिर रखने को अन्तत
तेरी क्रूरता को रखना क्या अनिवार्य है ?[4]

इसके आगे उसी (प्रेम) का कथन है—

लोहे के करो से करने को धर्म स्थापन
करता रहा है तू प्रयत्न वहु भाति से
तो भी पाप अव भी जहा का तहा बैठा है ।[5]

पाप के विषय मे न्याय कहता है कि उसके राज्य मे पाप चोरी छिपे भले ही होते हो लेकिन स्वच्छन्द रूप से नही हो पाते और इसके उत्तर मे प्रेम का कहना है कि--

---

1 सवाद-सप्तक, पृ० 20-21 ।
2 वही, पृ० 21 ।
3 वही, पृ० 23 ।
4 वही, पृ० 23।
5 वही, पृ० 23 ।

मेरे राज्य में तो वह रह ही न पायगा।[1]

न्याय को सम्बोधित करते हुए प्रेम कहता है कि उसके (न्याय के) न्याय-विधान में अपराधी की परिस्थिति विशेष पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जाता—

बचते नहीं हैं और वे भी जो क्षुधार्त हैं
और जठराग्नि ने कराया पाप जिनसे
और वस्त्र चोर जिन्हें जाड़े ने बनाया है।[2]

विवाद की चरम परिणति पर विष्णु प्रकट होकर दोनों के महत्त्व का प्रतिपादन करते हैं और दोनों को मित्र-भाव से रहने का आदेश देते हैं। प्रेम को समझाते हुए कहते हैं—

प्रेम! तुझे योग्य नहीं ऐसा कुविचार है
न्याय नहीं तो अन्याय जग को सुधारेगा?[3]
. .. .
मैत्री बिना उनकी रहेगा अन्ध आप तू
और उचितानुचित कैसे देख पावेगा।[4]

इसी प्रकार वे न्याय से कहते हैं—

न्याय! यह तेरा कहना भी अनुचित है—
'धर्म लुप्त होगा, प्रेम, तुझ से कपूर सा।'[5]

और अन्त में प्रेम से मित्रता स्थापित करने के लिए न्याय को प्रेरित करते

अस्तु, यह मैत्री कर मिल के तू प्रेम से,
राजा या रंक जो भी ऐसा करे जिससे
हानि हो, उन्हें तू दण्ड दे, परन्तु प्रेम से
और सदुद्देश्य हो सुधार सच्चा उसका।[6]

5. शान्ति और समर का संवाद—इस संवाद में सरस्वती को मध्यस्थ बनाकर कवि ने यह दिखाने की चेष्टा की है कि विश्व-कल्याण के लिए शान्ति और समर दोनों आवश्यक हैं। सर्वप्रथम शान्ति समर से कहती है—

---

1. [illegible], पृ० 23।
2. वही पृ० 25।
3. वही पृ० 26।
4. वही पृ० 26।
5. वही पृ० 27।
6. वही पृ० 27।

सस्कृतियाँ, सभ्यताए विश्व की बडी-बडी
तूने भ्रष्ट कर दी है तो भी नही नष्ट तू ।[1]

और इसके प्रत्युत्तर मे समर का कथन है—

मैने नष्ट कर दी है ? क्या कह रही है तू ?
मुझसे तो उल्टा विकास हुआ उनका ।
जीवन है, मैं हूँ जहाँ, मृत्यु वहाँ तू जहाँ ।[2]

अपनी महत्ता का वर्णन करते हुए समर आगे कहता है—

पश्चिम मे जब लो मै जाग्रत बना रहा
रह सका अभ्युदय ग्रीस तथा रोम का ।
मेरे प्रतिपक्ष मे प्रचार हुआ जैसे ही
पूर्व और पश्चिम मे अवनति आ गयी ।[3]

समर के उपर्युक्त तर्क का खडन करती हुई शान्ति कहती है—

कैसी भ्रमपूर्ण बाते कहता है, युद्ध ! तू !
कारण क्या तू था उस काल के विकास का ?[4]
... .

बात कल की ही अरे ! पश्चिम मे फिर से
तूने भिडा मारा किस भाति भाई भाई को ।[5]

इसके बाद समर दर्पपूर्ण स्वर मे कहता है—

किन्तु यदि मै न होऊ, निर्णय हो कैसे तो
कौन जन सबसे बडा है इस विश्व मे ?[6]

और उसकी इस गर्वोक्ति का शान्ति शान्तपूर्ण ढग से खडन करती है—

ओ हो ! बडा ! किसमे नरत्व वा पशुत्व मे ?
और एक तू ही क्या प्रमाण बडप्पन का ?
और, क्या कसौटी एक क्रूरता ही तेरी है ?[7]

---

1 सवाद-सप्तक, पृ० 28 ।
2 वही, पृ० 28 ।
3 वही, पृ० 29 ।
4 वही, पृ० 29 ।
5 वही, पृ० 30 ।
6 वही, पृ० 31 ।
7. वही, पृ० 31 ।

काव्य

ःयाग्रह कहना ।

नम्रता ने प्रतिवा

ार किसी को म

पया न कीजि

निष्क्रिय के

है रहा ग

आप मे जो शूरता है, वह शरीर की
किन्तु मेरी वीरता है—भीतर की आत्मा की ।[1]

इस पर युद्ध प्रश्न करता है—

मेरी शूरता क्या बाह्य, केवल शरीर की ?[2]

और सत्याग्रह का उत्तर है—

एक मे शरीर मुख्य, दूसरे मे आत्मा है ।[3]

इसके आगे सत्याग्रह के यह कहने पर कि—

मारने की भावना ही रहती है आप मे
होता मुझ मे है भाव आप बलि होने का ।[4]

युद्ध अपनी तलवार खीच लेता है और सत्याग्रह की वाणी जब सत्य कहने से नही रुकती तो वह (युद्ध) उस पर (सत्याग्रह) वार करना चाहता है । उसी क्षण गाधीजी प्रकट हो जाते है तथा युद्ध का हाथ पकडकर उसे सम्बोधित करते हुए कहते है—

है ! है ! करते हो यह क्या, स्वय स्वपुत्र का
घात ! अरे ! ऐसा कौन करता है लोक मे ?[5]

इस पर युद्ध आश्चर्यचकित होकर वोल पडता है—

ऐं यह क्या ? कैसे हुआ पुत्र यह मेरा है ?[6]

और गाँधीजी का उत्तर है—

हाँ, हो तुम दोनो पिता-पुत्र, जैसे त्रेता मे
पुत्र हनुमान को हुआ था, किन्तु दोनो को
परिचय प्राप्त न था आपस मे, वैसे ही
दोनो तुम कलि मे जनक और जात हो ।[7]

गाधीजी का कथन है—

शौर्य-वीर्य साहसादि सद्गुण जो तेरे है
प्राप्त है सहज इसे, दुर्गुण है किन्तु जो

1 सवाद-सप्तक, पृ० 33 ।
2 वही, पृ० 34 ।
3 वही, पृ० 35 ।
4 वही, पृ० 35 ।
5 वही, पृ० 36 ।
6 वही, पृ० 36 ।
7 वही, पृ० 36-37 ।

इस पर सूर्य व्यग करता है—

ओहो ! बडा होने चला मुझसे भी अब तू ।
देख निज मुख तो तनिक, ओ कलकी ! तू ।[1]

और चन्द्रमा का उत्तर है—

मेरे मुख देखने की बात कहो विश्व से,
पूछ लो उसी से कौन सुन्दर है इतना ?
मेरे डिठौने को तो कलक बतलाते हो
देखते नही हो गर्त्त रूप छिद्र अपने ।[2]

सूर्य को स्वार्थी बताते हुए चन्द्रमा आगे कहता है—

उदय तुम्हारा अस्त करता है सबको,
स्वार्थी तुम चाहते हो अपना ही अपना
तारागण सग ले के मैं निज प्रकाश से
जी जुडाता हूँ सभी का धोकर तिमिर को ।[3]

अन्त मे दोनो का समन्वय कराती हुई पृथ्वी कहती है—

मेरे सिर छाँह रहे, देव ! आप दोनो की
अक्षय सुहाग रहे मेरा सदा आप से ।[4]

प्रस्तुत सग्रह के सवादो के विषय मे कविवर रामधारीसिह 'दिनकर' का मत है—'सवाद-सप्तक' नामक काव्य की बडी विशेषता यह है कि वह चिन्तन-प्रधान है। नारी-नर, धर्म-विज्ञान, न्याय और प्रेम—ये ऐसे द्वन्द्वात्मक विषय है जो बहुत से चिन्तको को झकझोरते रहे है। सेठ गोविन्ददास जी ने भी इन विषयो पर जो चिन्तन किया है, वह बहुत ही मनोरम और स्वच्छ है। स्पष्ट ही, उनके चिन्तन के परिणाम विप्लवी नही है। वे समन्वय के प्रेमी है और प्रत्येक द्वन्द्व का समाधान उन्होने किसी न किसी प्रकार के समन्वय मे ही प्राप्त कर लिया है ।[5]

'सवाद-सप्तक' की रचना बगला के पमार छन्द मे हुई है जो अधिक प्रवाहपूर्ण है। इन सवादो के विषय गूढ चिन्तन-प्रधान होने के कारण उनमे विचार-सौन्दर्य तो दिखाई पडता है परन्तु हृदय को आकर्षित करने वाली उत्कृष्ट कल्पना तथा भाव-सौन्दर्य का अभाव है। इस ग्रन्थ के उद्देश्य के विषय मे डा० बलदेवप्रसाद मिश्र ने लिखा है कि परस्पर विरुद्ध दिखाई देने वाली उपयोगी वस्तुओ मे गुण भी होते है

1 सवाद-सप्तक, पृ० 40 ।
2 वही, पृ० 40 ।
3 वही, पृ० 40 ।
4 वही, पृ० 43 ।
5 गोविन्ददास-ग्रन्थावली, खड 8, भूमिका, पृ० ग ।

अध्याय 5

यात्रा-साहित्य

बेरन के अनुसार, "To travel is a kind of Education" इस कथन का आशय है कि यात्रा या भ्रमण स्वय मे एक प्रकार की शिक्षा है। भ्रमण द्वारा जहाँ एक ओर मनुष्य का मनोरजन होता है वही दूसरी ओर उसके ज्ञान की अभिवृद्धि भी होती है। इसलिए भ्रमण को यदि ज्ञान का भडार कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। भ्रमण करने वाला व्यक्ति देश-विदेश के हजारो व्यक्तियो के सम्पर्क मे आता है, वह उनके रहन-सहन, भाषा सस्कृति, सभ्यता आदि से परिचित होता है, उसे प्राकृतिक सुषमा से मडित अनेक रमणीय स्थलो के देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है, विभिन्न देशो के नाना प्रकार के पशु-पक्षियो के अवलोकन का अवसर मिलता है तथा यात्रा किये गये देशो की राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओ को निकट से अध्ययन करने का अवसर भी उसे उपलब्ध हो जाता है। पर्यटक मे यदि सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति है और वह अपने मनोगत भावो को अभिव्यक्त करने मे पूर्ण समर्थ है, तो उसका यात्रा विवरण उसी रूप मे पाठक को आनन्दित कर सकेगा जिस रूप मे अपनी यात्रा द्वारा वह स्वय आनन्दित हो चुका है और यही उसकी (यात्रा-साहित्य के लेखक की) सबसे बडी सफलता है।

हिन्दी मे यात्रा सम्बन्धी पुस्तको की प्रचुरता होते हुए भी उत्कृष्ट यात्रा-साहित्य का अभाव है। इस अभाव का मूल कारण समर्थ लेखको की यात्रा विषयक उपेक्षावृत्ति तथा यात्रा के लिए अपेक्षित साधनो की असम्पन्नता है।

सेठ गोविन्ददास की यात्रा विषयक पाँच पुस्तके उपलब्ध है, इनमे से तीन विदेश-यात्रा से सम्बन्धित है तथा दो का सम्बन्ध भारत के तीर्थ स्थानो से है। विदेश-यात्रा पर आधारित पुस्तको के नाम इस प्रकार है—

1. हमारा प्रधान उपनिवेश
2 सुदूर दक्षिण पूर्व
3 पृथ्वी-परिक्रमा

और तीर्थ-स्थलो से सम्बन्धित यात्रा विषयक पुस्तके है—

1 उत्तराखड की यात्रा

श्री नाना तथा अन्य कुछ सज्जनो के साथ मै प्रिटोरिया गया । मिस्टर ग्राफ मेयर का दफ्तर स्टैंडर्ड बैंक की इमारत मे था । मैं इस इमारत मे पहुँच ज्योही लिफ्ट मे घुसने लगा कि एक गोरे डच लिफ्ट बाय ने मुझे लिफ्ट के अन्दर घुसने से रोक दिया ।[1]

प्रस्तुत पुस्तक का शीर्षक 'हमारा प्रधान उपनिवेश' कुछ असगत प्रतीत होता है क्योकि भारत का कही न तो कोई उपनिवेश है और न ही उसका उपनिवेशवाद मे विश्वास है । शीर्षक की उपर्युक्त असगति का अनुभव कदाचित् सेठ जी ने भी किया है तभी उन्होने लिखा है—"हिन्दुस्तानियो का यदि कोई देश उसका प्रधान उपनिवेश बन सकता है तो पूर्वी अफ्रीका । इसके कारण हैं—यह देश भारतवर्ष के बहुत नजदीक है, काफी जमीन यहाँ बसने और आबाद होने के लिए पडी हुई है तथा यहाँ की आबोहवा भारतीयो के लिए अनुकूल है ।"[2]

अफ्रीका की भौगोलिक तथा प्राकृतिक स्थिति का भी परिचय इस पुस्तक द्वारा मिल जाता है । यात्रा-विवरण मनोरजक तथा ज्ञानवर्द्धक है । सचित्र होने के कारण पुस्तक की उपयोगिता बढ गई है । पूर्वी तथा दक्षिणी अफ्रीका की यात्रा करने वालो के लिए पुस्तक गाइड का कार्य दे सकती है ।

सुदूर दक्षिण पूर्व—यह सेठ जी की दूसरी यात्रा-पुस्तक है । इसका रचनाकाल 1950 तथा प्रकाशन काल सन् 1951 है ।

सन् 1950 मे कामनवैल्थ पार्लियामेन्टरी कान्फ्रेन्स न्यूजीलैंड मे हुई थी । इस कान्फ्रेन्स मे भाग लेने के लिए सेठ गोविन्ददास के नेतृत्व मे पाच सदस्यो का एक प्रतिनिधिमडल भेजा गया था । इस प्रतिनिधि मडल के अन्य सदस्य थे—श्री आर० के० सिधवा, श्री देवकान्त बरुआ, श्री सी० सी० शाह तथा श्री आर० वेंकटरमन ।[3] सुदूर दक्षिण पूर्व की इस यात्रा मे सेठ जी को लगभग पाँच सप्ताह (कुल एक माह पाँच दिन) लगे और उन्होने इस बीच सिंगापुर, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड तथा फीजी का भ्रमण किया । न्यूजीलैंड के उत्तरीय द्वीप को देखने के लिए मोटर की कोई 600 मील की यात्रा को छोड शेष सारी यात्रा जो जाते-आते हुए लगभग बीस हजार मील की हुई हवाई जहाज द्वारा की गई थी ।

27 नवम्बर से प्रारभ होने वाली इस कान्फ्रेंस मे भाग लेने के लिए सेठ गोविन्ददास 11 नवम्बर सन् 1950 को कलकत्ते से रवाना हुए । 11 नवम्बर को कलकत्ते की रवानगी से लेकर परिषद् की समाप्ति तक की यात्रा तथा परिषद् की कार्यवाही का विस्तृत विवरण अत्यन्त रोचक तथा सुन्दर ढग से इस पुस्तक मे

---

1 हमारा प्रधान उपनिवेश, सेठ गोविन्ददास ।

2. वही, भूमिका ।

3 सुदूर दक्षिण पूर्व, परिशिष्ट 2, पृ० 169-70 ।

(घ) आबादी की कमी के कारण सुरक्षा की उचित व्यवस्था नही है।

(ङ) विदेशो के सम्बन्ध मे जानकारी कम है। परपरागत अध-विश्वास, रगभेद, वैमनस्य आदि को ज्ञान द्वारा दूर करने के लिए पर्याप्त उपाय नही हो रहे है।[1]

सुदूर दक्षिण पूर्व की इसी यात्रा पर लेखक ने 'आन विग्स टूदी ऐंजैक्स' नाम की एक यात्रा-पुस्तक अग्रेजी मे भी लिखी है। इस पुस्तक को विदेशो मे भी अच्छी प्रतिष्टा प्राप्त हुई है, जिसका प्रमाण श्री ए० डब्ल्यू० रोइबक, अध्यक्ष, कामनवैल्थ पार्लियामेटरी एसोसिएशन, का निम्न कथन है—

"I have found every word in this book most interesting and the volume is a valuable record of the notable gathering of the Commonwealth Parliamentary Association in Newzeland and Australia in 1950 I was particularly captivated with the glimpses the author gives of his own remarkable career and of how completely he has freed his mind of the psychology of the wealthy and has become in Truth one of the people"[2]

प्रस्तुत पुस्तक के सम्बन्ध मे 20 मार्च, 1954 की Thought नामक पत्रिका मे प्रकाशित श्री एस० एन० पाणिग्रही का मत इस प्रकार है—

In this well got up and profusely illustrated book, Seth Govind Das has surveyed the geographical, economic and social conditions of South East Asia from the stand point of the standard of living, Commonwealth relations and Indians abroad. Before starting on the tour he seems to have read a lot about the region[3]

सेठ जी की ये दोनो यात्रा-पुस्तके रोचक एव ज्ञानवर्द्धक है।

पृथ्वी-परिक्रमा—सेठ जी की विदेश-यात्रा पर यह उनकी तीसरी पुस्तक है। इसका रचनाकाल 1952 तथा प्रकाशन काल 1954 है। सन् 1952 मे 8 सितम्बर से 13 सितम्वर तक कामनवैल्थ पार्लियामेटरी कान्फ्रेस कैनेडा की राजधानी ओटावा मे हुई थी और इस काफ्रेस मे सेठ जी ने भारतीय ससदीय प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य के रूप मे भाग लिया था। इस प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व लोकसभा के तत्कालीन

---

1 सुदूर दक्षिण पूर्व, पृ० 156-57।

2. सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ, स० डा० नगेन्द्र, पृ० 309।

3 Thought, March 20, 1954

लेखक की शुद्ध साहित्यिक अनुभूति के कारण उसकी यात्रा पुस्तक भी साहित्यिकता से मडित हो गई है और वह नीरस होने से बच गई है। लेखक देखे गए देशो का केवल बाह्य वर्णन प्रस्तुत करके ही सतोष नही करता वरन् वह उस देश की आत्मा को भी चित्रित करता है। 'उस पुरातन भूमि मे जहाँ कभी पानी नही बरसता' शीर्षक के अन्तर्गत सेठ जी ने मिश्र के पिरामिडो, स्फिक्स, ममी आदि पर प्रकाश डाला है और उसके सग्रहालय का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। 'सुकरात की ज्ञान धरा पर' शीर्षक के अन्तर्गत उन्होने यूनान की प्राचीन सस्कृति के गौरव का उल्लेख किया है और इसके साथ ही कलक रूप सुकरात के प्राण दड की करुण कहानी भी कह दी है। 'पश्चिम के उस देश मे जो सदा कलाकारो को प्रिय रहा है' तथा 'यूरोप के उस देश मे जिसे प्रकृति ने सबसे अधिक रमणीयता दी है' इन शीर्षको से वे क्रमश इटली तथा स्विट्जरलैड का बोध कराते है। उनके अनुसार 'फ्रास विलासिता का वैभव है' तथा ब्रिटेन 'ससार के सबसे बडे शहर वाला' देश है। कैनेडा को उन्होने 'झीलो के देश' नाम से सम्बोधित किया है।[1]

सेठ जी की इस यात्रा-पुस्तक मे विभिन्न देशो के रात्रि-क्लबो का सजीव चित्र अकित हुआ है। रोम के एक रात्रि-क्लब का वर्णन सेठ जी के शब्दो मे देखिए—

"रात्रि-क्लब की लीला जीवन मे हमने सर्वप्रथम रोम मे ही देखी। यह रात्रि-क्लब हमे तो कामवासनाओ के उभारने तथा व्यभिचार करने का जीता-जागता स्थल दृष्टिगोचर हुआ। इस विशाल मडप मे सैकडो कुर्सियाँ पडी हुई थी। एक ओर था रगमच, जिस पर पियानो, वायलन आदि सारे पश्चिमी वाद्य यन्त्रो का एक अच्छा आरकैस्ट्रा वज रहा था। .. .. आरकैस्ट्रा के सामने कभी होता था नृत्य और कभी गान। . ये नृत्य कर रही थी रोम की कुछ तरुणियाँ जिनके शरीर केवल दो स्थानो पर ही ढके हुए थे वक्ष स्थल कोई चार-चार इच डायमीटर की चोलियो से और जाँघो के बीच कोई तीन-तीन इच चौडी पट्टियो से। शेष सारे अग खुले हुए थे।

"जब हम लोग यहाँ पहुँचे तो यह पौने सोलह आना नग्न शरीरो वाला कामुक नृत्य वहाँ की छै तरुणियाँ कर रही थी। इसके बाद हुआ एक गान और फिर एक पुरुप और एक स्त्री का नृत्य। यह पुरुष-स्त्री का नृत्य क्या एक बलशाली कामुक कुश्ती थी। कामलीला मे वल की पराकाष्ठा तक प्रयोग का प्रदर्शन इस नृत्य का उद्देश्य था।"[2]

इस पुस्तक मे सेठ जी ने जहाँ जो कुछ सराहनीय पाया उसकी भूरि-भूरि प्रशसा की है लेकिन जो उनकी दृष्टि से आपत्तिजनक प्रतीत हुआ उसकी उन्होने

1 पृथ्वी परिक्रमा की भूमिका (श्री गणेश वासदेव मावलकर द्वारा लिखित), विषय सूची।

2 पृथ्वी-परिक्रमा, पृ० 58-59।

की यात्राओ से सम्बन्धित है। पुस्तको का सक्षिप्त परिचय तथा उनकी विशेषताएँ इस प्रकार है—

1 **उत्तराखण्ड की यात्रा**—सेठ गोविन्ददास अपनी पुत्री श्रीमती रत्नकुमारी देवी तथा व्यक्तिगत सचिव श्री गोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव के साथ उत्तराखण्ड के तीर्थ स्थानो की यात्रा के लिए गए थे। यद्यपि उनकी यह यात्रा-पुस्तक तीनो के सम्मिलित प्रयास का फल है, फिर भी इसके अधिकाश भाग को सेठ जी ने ही लिखा है। प्रस्तुत पुस्तक स० 2019 मे गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित हुई है। पुस्तक को हरिद्वार, ऋषिकेश और लक्ष्मण झूला, यमुनोत्तरी, गगोत्तरी, केदारनाथ और श्री वदरीनाथ शीर्षक विभिन्न अध्यायो मे विभाजित किया गया है। प्रत्येक अध्याय मे उस स्थल-विशेष के सास्कृतिक एव धार्मिक महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है तथा वहाँ की प्राकृतिक रमणीयता का सुन्दर चित्राकन भी हुआ है। वास्तविकता यह है कि सारी पुस्तक प्रकृति-चित्रण से भरी पडी है। यमुनोत्तरी से लौटते समय यमुना का चित्रण देखिए—

"समय सन्ध्या का था, कल-कल करती चचल यमुना यहाँ मथर गति से अपने पथ पर अग्रसर थी, रवि-रश्मियाँ रविनदिनी से अठखेलियाँ कर रही थी। कुछ देर तक सुनहली सन्ध्या के इस मनोरम दृश्य को हम मन्त्र मुग्ध से देखते रहे, हमारे देखते-देखते रवि ने अपनी रश्मियाँ समेट ली और यमुना हमारी आँखो से ओझल हो गई।"[1]

वदरीनाथ की प्राकृतिक सुन्दरता ने लेखक को अभिभूत कर दिया है। वहाँ के सन्ध्याकालीन दृश्य का एक मनोरम चित्र देखिए—

"स्वर्णिम सन्ध्या थी। पद-चुम्बन के अभिलाषी मेघ अन्तरिक्ष से उतर कर इन श्रृंगो का स्पर्श करते, फिर ऊपर उठते, जान पडता ये इनका पूजन कर रहे है और इस प्रभु पूजा से परम प्रसन्न हो आकाश से देवगण इन पर हिमरूपी श्वेत पुष्प वरसा रहे है।"[2]

वदरीनाथ के मन्दिर के विषय मे लेखक ने अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है—

"स्थापत्य कला और विशालता की दृष्टि से बदरीनाथ के मन्दिर मे कोई विशेषता नही है। विशेषता है, उत्तराखण्ड के इस प्रसिद्ध धाम मे और श्री वदरी विशाल की इस प्रतिमा मे। बदरीनाथ की यह प्रतिमा लगभग डेढ फुट ऊँची है। मूर्ति श्यामवर्ण के पाषाण की है। मूर्ति के पीछे प्रस्तर की ही पीठक है, मूर्ति और पीठक दोनो एक ही पाषाण खण्ड की है। प्रतिमा-दर्शन से ही ज्ञान हो जाता

---

1 उत्तराखण्ड की यात्रा, द्वितीय सस्करण, पृ० 76।

2 वही, पृ० 217।

है कि यह प्रतिमा मानव द्वारा निर्मित न होकर अन्य कुछ प्रतिमाओ के सदृश अनगढ है।"[1]

लेखक ने पुस्तक मे मन्दिरो की त्रुटियो, पुजारियो के भ्रष्ट आचरण, उनकी लोभ-वृत्ति तथा छल-कपट की भावना का चित्रण भी कही-कही कटु व्यग्य के रूप मे किया है।

उत्तराखण्ड की यात्रा सम्बन्धी विस्तृत सूचनाओ से पूर्ण होने के कारण यह पुस्तक वहाँ (उत्तराखण्ड) की यात्रा करने वाले अथवा घर मे बैठकर वहाँ की यात्रा का आनन्द प्राप्त करने वाले व्यक्तियो के लिए समान रूप से उपयोगी है। इसकी भाषा सरल एव सुबोध तथा वर्णन सजीवता लिए हुए है।

2 **दक्षिण भारत की तीर्थ यात्रा**—सेठजी की यह पुस्तक अभी तक अप्रकाशित है। इस पुस्तक मे दक्षिण भारत के प्रसिद्ध तीर्थ स्थल रामेश्वरम् की यात्रा का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमे सेठ जी ने रामेश्वरम् के धार्मिक एव सास्कृतिक महत्त्व पर प्रकाश डाला है तथा इसके साथ ही प्राकृतिक सौन्दर्य का सहज उद्घाटन भी किया है। धार्मिक दृष्टि से रामेश्वरम् की यात्रा करने वालो के लिए पुस्तक काफी उपयोगी सिद्ध होगी।

सेठ जी के यात्रा-साहित्य का साहित्यिक मूल्यांकन

यात्रा-साहित्य के साहित्यिक मूल्याकन के लिए निम्नलिखित मान-दण्ड निर्धारित किए गए है—[2]

(1) प्रकृति-सौन्दर्य
(2) दार्शनिक भावना
(3) मनोरजन वृत्ति

सेठ जी के यात्रा-साहित्य का मूल्याकन उपर्युक्त मान-दण्डो के आधार पर किया जाएगा—

1 **प्रकृति-सौन्दर्य**—सेठ जी की समग्र यात्रा-पुस्तको मे प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण हुआ है, यह बात दूसरी है कि किसी मे यह चित्रण अधिक है और किसी मे न्यून। 'उत्तराखण्ड की यात्रा' मे प्राकृतिक दृश्यो की रमणीयता के सर्वाधिक चित्र प्रस्तुत किए गए है जबकि 'हमारा प्रधान उपनिवेश' मे ऐसे चित्रण अपेक्षाकृत कम है। इन पुस्तको के प्रकृति-चित्रण की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि इसमे प्रकृति का केवल सौम्य रूप ही चित्रित हुआ है उसका भयकर रूप नही।

---

1 उत्तराखण्ड की यात्रा, द्वितीय सस्करण, पृ० 223।
2 यात्रा-साहित्य का उद्भव एव विकास—डा० सुरेन्द्र माथुर, पृ० 239। (शोध प्रबन्ध)

सेठ जी ने अपनी अधिकाँश विदेश-यात्रा वायुयान द्वारा की है। किसी स्थान को जाते समय मार्ग मे वायुयान की खिडकी से देखने पर यदि रमणीय दृश्य दिखाई पड गया है तो उसका चित्रण बडे मनोयोग से उन्होने किया है। सिडनी से आकलैंड की यात्रा करते समय ऐसे अनेक दृश्यो का वायुयान से अवलोकन कर सेठ जी ने उनका सजीव वर्णन किया है। कुछ पक्तियाँ द्रष्टव्य है—

"जब मैंने खिडकी से बाहर की ओर देखा तो एक अद्‌भुत दृश्य था। ऊपर बादल का एक भी टुकडा नही था। भगवान सहस्राँशु अपनी समस्त अशुओ को निर्मल नीलाकाश मे फैलाये हुए चमक रहे थे, परन्तु नीचे घने बादल थे। इन बादलो का एक वृहत् शामियाना-सा पृथ्वी पर तना हुआ था और ऐसा शामियाना जिसमे एक भी सिकुडन, एक भी शल, कही भी दृष्टिगोचर न होता था। शामियाने के रूप मे पृथ्वी पर तने हुए बादलो की एक सी सतह थी, कही भी ऊ ची-नीची नही, इस सतह के बाहर बादल का एक छोटे से छोटा टुकडा भी तो इधर-उधर कही भी नजर नही पड रहा था। हवाई जहाज को बादलो पर से उडते तो मैं कई बार देख चुका था, परन्तु ऊपर सर्वथा निर्मल नीलाकाश मे भगवान भास्कर का पूर्णालोक तथा नीचे ऐसे बादलो की सतह इसके पहले मैने कभी नही देखी थी।"[1]

ऐसे अनेक प्राकृतिक दृश्यो के चित्राकन 'सुदूर दक्षिण पूर्व' तथा 'पृथ्वी परिक्रमा' मे हुए है। 'उत्तराखड की यात्रा' मे पर्वतीय प्रदेश की प्राकृतिक सुषमा का अत्यन्त सजीव तथा मनोहारी वर्णन किया गया है।

2 **दार्शनिक भावना**—सेठ जी की यात्रा-पुस्तको मे दार्शनिक विवेचन भी कही-कही दृष्टिगोचर होता है। यात्रा के मध्य किसी वस्तु या दृश्य-विशेष को देखकर लेखक जब गूढ चिन्तन मे निमग्न हो जाता है तो उसके वर्णन मे स्वत दार्शनिकता का समावेश हो जाता है लेकिन ऐसे अवसरो पर उसका उद्देश्य दर्शन की गुत्थियो को सुलझाना नही होता। 'पृथ्वी परिक्रमा' मे मिश्र के अजायबघर को देखने के पश्चात् सेठ जी ने जो अपनी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त की है उसमे हमे दार्शनिकता के सहज दर्शन होते हैं। देखिए—

"मुझे मृतको की बडी-बडी समाधियाँ, मकबरे आदि कभी भी अच्छे नही लगते, फिर मिश्र के इस अजायबघर मे तो मुरदाबाद की पराकाष्ठा है। इन समाधियो, मकबरो, मुरदो से सम्बन्ध रखने वाली सभी प्रकार की वस्तुओ मे मुझे आसक्ति-भावना परमोत्कृष्ट रूप मे दिखाई पडती है और जब मैं इन वस्तुओ को देखता हू तब मुझे सदा हिन्दुओ का दर्शन स्मरण हो आता है। हमारे धर्म, हमारी सस्कृति मे मृत्यु का महत्त्व है, बडा भारी महत्त्व है, पर मृतक का नही। हर आर्य उत्कृष्ट से उत्कृष्ट भावनाओ को लेकर मरना चाहता है या तो इस आवागमन से छुटकारा और मोक्षपद

---

1 सुदूर दक्षिण पूर्व, अध्याय 11, पृ० 41।

प्राप्त करने के लिए या फिर से अच्छा जन्म पाने को।. हमारे यहाँ जीवन का परमोत्कृष्ट लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है और उस लक्ष्य को पहुँचने की पहली सीढी अनासक्ति है।"[1]

'उत्तराखड की यात्रा' तथा 'दक्षिण भारत की तीर्थ यात्रा' नामक पुस्तको मे भी दार्शनिकता के पुट दिखाई पडते है। इन दो पुस्तको मे अन्य तीन पुस्तको की अपेक्षा दार्शनिक तत्त्वो के समावेश का अधिक प्रयत्न दिखाई पडता है।

3 **मनोरंजन वृत्ति**—यात्रा का तथ्यपरक नीरस वर्णन ज्ञानवर्द्धन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने पर भी साहित्य के अन्तर्गत परिगणित नही किया जा सकता। किसी भी यात्रा-वर्णन को यात्रा-साहित्य का अग बनने के लिए उसे साहित्यिक गुणो से पूर्ण होना चाहिए और कोई रचना जब साहित्यिकता से मडित होगी तो जन-मनोरजन का गुण उसमे अपने आप ही आ जाएगा।

सेठ गोविन्ददास साहित्यिक व्यक्ति है। उनके यात्रा-वर्णनो पर उनका अपना साहित्यिक एव भावप्रवण व्यक्तित्व छाया हुआ है। उनके वर्णन नीरस तथ्य चित्रण मात्र नही है अपितु उनमे अवसरानुकूल रसात्मकता के दर्शन भी होते है। पाठक उनके यात्रा-वर्णनो को पढते हुए ऊबता नही है अपितु कही-कही तो उसे उपन्यास पढने जैसा आनन्द प्राप्त होता है। 'सुदूर दक्षिण पूर्व' मे माओरियो के लोक नृत्य तथा सगीत के चित्रण अधिक मनोरजक है। 'पृथ्वी परिक्रमा' मे रोम तथा पेरिस के रात्रि-क्लबो के चित्रण अधिक सजीव बन पडे है। इन वर्णनो को पढते हुए पाठक वहाँ की रगीनियो मे डूब जाता है। पेरिस के रात्रि-क्लब का एक दृश्य देखिए—

"जब रात हो जाती है तो पेरिस की बत्तियाँ हीरे जवाहरात सी चमकने लगती है। उस समय या तो आप कोई थियेटर देखने जा सकते हैं या आपेरा हाउस या नाइट क्लब। हमने यहाँ के नाटको और नाइट-क्लबो को भी देखा प्रधानतया 'फालीज बैरजेरि' (Folies Bergere) और कैसीनो (Casino) को। जो अश्लीलता हम रोम मे देख चुके थे, वह यहाँ और बढ गई थी। स्त्रियो के वक्ष स्थल पर रोम मे जो चार इच चौडी चोली थी, वह भी यहाँ गायब हो गयी थी और स्त्रियो के वक्ष सर्वथा नग्न थे। जाँघो के बीच केवल सामने की ओर तीन इच की एक पट्टी थी, पर वह भी पीछे की ओर नही। इस छोटी-सी पट्टी को छोड स्त्रियाँ सर्वथा नग्न थी।"[2]

सेठ जी की सर्वश्रेष्ठ यात्रा पुस्तक 'पृथ्वी परिक्रमा' मे ऐसे रसात्मक स्थलो का अभाव नही है। कई शहरो (जैसे लन्दन, न्यूयार्क आदि) मे सेठ जी वहा के नाइट क्लबो मे तो नही जा सके लेकिन वहाँ की नाट्यशालाओ मे अवश्य गये है और उनका

---

1 पृथ्वी-परिक्रमा, पृ० 36-37।

2 वही, पृ० 101।

वर्णन भी किया है। जापान के रात्रि-क्लब का यथातथ्य चित्रण भी कम मनोरंजक नही है—

"यहा के रात्रि-क्लबो को देखने एव वहाँ नाचने आदि के लिए पुरुष सपत्नीक या अन्य गार्हस्थ महिलाओ के साथ नही जाते। यहाँ जाते है पुरुष अकेले, क्योकि उनकी खातिर-तसल्ली के लिए यहाँ की स्त्रियो का एक समूह रहता है, जो किसी पुरुष के जाते ही उनके पास आ जाती है। यहाँ जाने वाले पुरुषो को यहाँ की अर्द्ध-नग्न रमणियाँ खिलाती पिलाती है और फिर इनके साथ नाचती है। प्रेक्षको के इस नृत्य के अतिरिक्त नृत्य और गीतो के कुछ प्रदर्शन भी होते है। इनमे कुछ प्रदर्शनो की नर्तकियाँ नृत्य करते-करते अपने शरीर पर के कपडे उतार-उतार कर फेकती जाती है और अन्त मे अगो मे पैरिस के सदृश यहा की नर्तकियो के शरीर पर भी कोई वस्त्र नही रहता।[1]

प्राकृतिक सौन्दर्य, दार्शनिक भावना तथा मनोरजकता से युक्त सेठ जी का यात्रा-साहित्य पर्याप्त समृद्ध है और उसका हिन्दी के यात्रा-साहित्य मे महत्त्वपूर्ण स्थान है।

---

1 पृथ्वी-परिक्रमा, पृ० 243-44।

अध्याय 6

आत्मकथा, संस्मरण और जीवनी

सेठ गोविन्ददास द्वारा विरचित आत्मकथा, सस्मरण एव जीवनी के विषय में कुछ लिखने से पूर्व इन साहित्यिक विधाओ पर सक्षिप्त प्रकाश डालना अप्रासगिक न होगा।

आत्म-कथा—आत्म-कथा जीवन की व्यक्तिगत अनुभूतियो का स्वलिखित विवेचन है। इस सम्बन्ध मे बाबू गुलाब राय का कथन है कि आत्मकथा-लेखक जितना अपने बारे मे जान सकता है उतना लाख प्रयत्न करने पर भी कोई दूसरा नही जान सकता किंतु इसमे कही तो स्वाभाविक आत्मश्लाघा की प्रवृत्ति बाधक होती है और किसी के साथ शील-सकोच आत्म-प्रकाश मे रुकावट डालता है। यद्यपि सत्य के आदर्श से तो दोनो ही प्रवृत्तिया भिन्न हैं तथापि अनावश्यक आत्मविस्तार कुछ अधिक अवाछनीय है। शील-सकोच के कारण पाठक को सत्य और उसके अनुकरण के लाभ से वचित रखना भी वाछनीय नही कहा जा सकता। साधारण जीवन-लेखक की अपेक्षा आत्म-कथा-लेखक को ऊब से बचाने और अनुपात का अधिक ध्यान रखना पडता है। उसे अपने गुणो के उद्घाटन मे आत्मश्लाघा या अपने मुँह मिया मिट्ठू बनने की दूषित प्रवृत्ति से बचना चाहिए। जीवनी लिखने वाले को दूसरे के दोष और आत्मकथा लिखने वाले को अपने गुण कहने मे सचेत रहने की आवश्यकता है।[1]

"आत्मचरित किसी व्यक्ति के दैनन्दिन का लेखा भर न होना चाहिए। वह जितना अधिक निर्वैयक्तिक हो, उतना ही उत्तम है। उसमे यदि आत्म-निरीक्षण तथा आत्म-विश्लेषण के तत्त्व है, तो वे जनसाधारण के तत्त्व बन सकते है। सत्य पर पूरी तरह आश्रित रहते हुए भी उसका दृष्टिकोण होना चाहिए—लोक-कल्याण। वह अपने देश-काल का एक यथार्थ चित्र देता हुआ भी उस शैली मे व्यक्त हो जिसमे कहानी, नाटक अथवा काव्य का सा आनन्द आ जाए।"[2]

सस्मरण—"सस्मरण जीवनी-साहित्य के अन्तर्गत आते है। वे प्राय घटनात्मक

---

1 काव्य के रूप—बाबू गुलाब राय, पृ० 232।

2 'नवभारत', 2 अगस्त, 1959, डा० बलदेवप्रसाद मिश्र का कथन।

होते है किंतु वे घटनाएँ सत्य होती है और साथ ही चरित्र की परिचायक भी। उनमे थोडा चटपटेपन का भी आकर्षण रहता है।"[1]

सस्मरण मे व्यक्ति के व्यापक व्यक्तित्व पर प्रकाश नही डाला जाता अपितु उसके चरित्र के किसी एक पहलू की झाकी प्रस्तुत की जाती है।

जीवनी—"जीवनी घटनाओ का अकन नही वरन् चित्रण है। यह साहित्य की विधा है और उसमे साहित्य और काव्य के सभी गुण है वह एक मनुष्य के अन्तर और बाह्य स्वरूप का (अर्थात् आपा या पर्सनैलिटी का) कलात्मक निरूपण है। जिस प्रकार चित्रकार अपने विषय का एक ऐसा पक्ष पहचान लेता है जो उससे विभिन्न पक्षो मे ओत-प्रोत रहता है और जिसमे नायक की सभी कलाए और छटाए समन्वित हो जाती है उसी प्रकार जीवनीकार अपने नायक के आपे की कु जी समझ कर उसके आलोक मे सभी घटनाओ का चित्रण करता है। जीवनी की कृति मे उसके चरित्र-नायक का 'आपा' या उसकी स्वरूपता (personality) उभर आती है। वह न भलाइयो को राजदरबार के कवीन्द्रो की भाँति राई को सुमेरु करके दिखाता है और न बुराइयो को चवाई लोगो की भाँति तिल का ताड रूप देता है। वह अनुपात का सदा ध्यान रखता है।"[2]

आत्म-कथा

'आत्म-निरीक्षण' सेठ गोविन्ददास की आत्मकथा है जिसका प्रकाशन तीन भागो मे भारतीय विश्व प्रकाशन, फव्वारा-दिल्ली से 1958 मे हुआ है। सम्पूर्ण ग्र थ (आत्मनिरीक्षण तीनो भाग) की पृष्ठ सख्या 1020 है जिसमे भूमिका, विषय-सूची तथा तीसरे भाग के अत मे दिए गए 92 पृष्ठो के पाच परिशिष्ट सम्मिलित नही है। हिन्दी मे अभी तक लिखी गई आत्मकथाओ मे यह सबसे बडी है।

महात्मा गाँधी की आत्मकथा यद्यपि असहयोग आन्दोलन के पश्चात् लिखी गई थी लेकिन उसमे असहयोग आन्दोलन का वर्णन नही है। वह सत्याग्रह आन्दोलन के आरभ पर ही समाप्त हो जाती है और 1919 के बाद की घटनाओ को उसमे समाविष्ट नही किया गया है। पडित जवाहरलाल नेहरू की आत्म-कथा मे सन् 1936 तक की घटनाओ का समावेश है और डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद की आत्मकथा मे उसके भी 10 वर्ष बाद अर्थात् सन् 1946 तक की घटनाओ का वर्णन है। सेठ गोविन्ददास की आत्म-कथा सन् 1952 के अत तक की है और उसमे प्रथम आम चुनाव, मध्य प्रदेश मे काग्रेसी मन्त्रिमडल का निर्माण तथा भू-दान आन्दोलन मे सेठ जी के सम्मिलित होने तक की घटनाओ को समाविष्ट किया गया है।

---

1 काव्य के रूप—बाबू गुलाब राय, पृ० 240।

2 वही, पृ० 230।

विषय-विवेचन—'आत्म-निरीक्षण' के तीन भाग हैं और उनके नाम सस्कृत नाट्य शास्त्र की तीन प्रधान सधियो के अनुसार रखे गए है। इसका पहला भाग 'प्रयत्न', दूसरा भाग 'प्राप्त्याशा' और तीसरा भाग 'नियताप्ति' है। नामकरण की सार्थकता के विषय मे लेखक का अभिमत इस प्रकार है—

"यह ससार एक प्रकार का रगमच ही है और जीवन एक प्रकार का नाटक। मेरे जीवन रूपी नाटक की जो प्रधान सन्धिया रही है उन्ही के अनुसार इस जीवन-गाथा का भी विभाजन किया गया है। पहले भाग का नाम 'प्रयत्न' इसलिए रखा गया है कि मैने प्रयत्न कर अपने जीवन को एक विशिष्ट दिशा मे मोडा। दूसरे भाग को 'प्राप्त्याशा' नाम इसलिए दिया गया कि जीवन जिस दिशा मे मोडा गया था उस दिशा मे जो कुछ प्राप्त करने की आशा थी उसे प्राप्त करने मे जीवन का वह भाग व्यतीत हुआ। और तीसरे भाग का नाम 'नियताप्ति' इसलिए है कि जीवन के इस हिस्से मे स्वराज्य और स्वराज्य के बाद जो कुछ प्राप्त करने की इच्छा थी वह प्राप्त हुआ।"[1]

'आत्म-निरीक्षण' का प्रथम भाग मुख्यत सेठ जी के पारिवारिक जीवन से सम्बन्ध रखता है, इसमे उनके पूर्वज, वश-परम्परा, जन्म, शैशव, शिक्षा, विवाह और आर्थिक सकट आदि का विस्तृत विवेचन है। लेखक ने अपने परिवार तथा प्रारभिक जीवन की सभी अच्छी-बुरी बातो का इसमे समावेश कर दिया है। पारिवारिक जीवन की घटनाओ के अतिरिक्त इसमे लेखक के सार्वजनिक जीवन मे प्रवेश, उसकी सामाजिक सेवाओ तथा असहयोग आन्दोलन मे दीक्षा लेने की घटनाओ का भी विस्तृत विवरण मिलता है। इस भाग मे कुल 294 पृष्ठ है।

'आत्म-निरीक्षण' का द्वितीय भाग 494 पृष्ठो का है और यही सबसे बडा भाग है। इस भाग मे सेठ जी की जीवनी उनके अकेले के व्यक्तित्व से ही सम्बन्धित नही रह गई है अपितु देश की तत्कालीन राजनीतिक गतिविधियो के चित्रण के कारण वह ऐतिहासिक महत्व की वस्तु बन गई है। सेठजी राष्ट्रीय आन्दोलनो के मात्र द्रष्टा न रहकर उनमे प्रत्यक्ष भाग लेने वाले कार्यकर्ता थे अत उन आन्दोलनो का विवरण अधिक प्रामाणिक माना जा सकता है। असहयोग आन्दोलन के साथ सेठ जी के राजनीतिक व्यक्तित्व का विकास हुआ है और यही से भारत की राजनीतिक गाथा का नवीन अध्याय प्रारभ होता है। इस भाग की अधिकाश घटनाए तत्कालीन राजनीतिक आन्दोलनो से सम्बन्धित है। इसमे प्रतिपादित कुछ महत्त्वपूर्ण विषयो की सूची इस प्रकार है—

'असहयोगी मै, असहयोग आन्दोलन और हमारे प्रान्त मे उसकी स्थिति, असहयोग की देन, हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त मे पहला राजनीतिक झगडा, सत्याग्रह-जाच कमेटी

---

1 आत्म-निरीक्षण, भाग 1, निवेदन, पृ० 'घ'।

और उनका जबलपुर आगमन, कांग्रेसियो मे तू-तू मै-मै, इसका मुझ पर प्रभाव, सन् 1923 के चुनाव, केन्द्रीय असेम्बली का जीवन और कार्य, सन् 24 और 25 की महत्त्वपूर्ण घटनाए, स्वराज्य पार्टी मे फूट, कौसिल आफ स्टेट मे मेरा काम, सन् 26 के आम चुनाव और हमारे प्रान्त की स्थिति, साइमन कमीशन, मै प्रान्तीय काग्रेस का सभापति, सन् 1930 का सत्याग्रह, गाधी-अर्विन समझौता, काग्रेस का कराची अधिवेशन, सन् 32 के सत्याग्रह का हमारे प्रान्त मे अद्भुत आरभ, सन् 32 का जेल-जीवन और रिहाई, सन् 34 के केन्द्रीय धारा सभा के चुनाव और केन्द्रीय धारा सभा, सन् 37 का चुनाव, सन् 1934 से 39 तक की राजनीतिक घटनाओ पर एक विहगम दृष्टि, सन् 42 के स्वतन्त्रता-युद्ध की भूमिका और वह युद्ध, वैलोर जेल का जीवन, दमोह जेल का जीवन, लगभग तीन वर्ष बाद जेल से रिहाई आदि।"[1] इनके अतिरिक्त अन्य पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक गतिविधियो का उल्लेख भी इस खड मे हुआ है।

'आत्म-निरीक्षण' के तृतीय भाग मे सन् 1942 के बाद की घटनाओ का समावेश है। इस भाग की अधिकाश घटनाए स्वातन्त्र्योत्तर भारत से सम्बन्धित है। इसमे पिता की मृत्यु, प्रान्तीय काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष के रूप मे किये गये कार्य, गाधी जी की हत्या, सविधान सभा का निर्माण और उसके सदस्य के रूप मे कार्य, हिंदी साहित्य सम्मेलन का मेरठ अधिवेशन और उसके सभापति, सविधान सभा मे हिन्दी का प्रश्न, हिन्दी आन्दोलन, सविधान सभा के कार्य पर एक दृष्टि, स्वतत्र भारत की प्रथम ससद, नासिक काग्रेस, न्यूजीलैंड मे हुई कामनवैल्थ पार्लियामैंटरी कान्फ्रेन्स के भारतीय प्रतिनिधिमडल के नेता के रूप मे किये गये कार्य, स्वतत्र भारत के प्रथम आम चुनाव, पृथ्वी परिक्रमा, गोरक्षा आन्दोलन तथा भूदान मे उनके योगदान आदि के विस्तृत वर्णन हैं। इसी भाग मे 'सन् '39 के युद्ध से स्वतत्रता की घटनाओ पर एक दृष्टि' शीर्षक के अन्तर्गत देश-विदेश मे होनी वाली नाना घटनाओ के विषय मे सेठ जी ने महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत की है। 'सिंहावलोकन' के 24 पृष्ठो मे उन्होने अपने जीवन के विगत साठ वर्षो को सामने रख कर उसका विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इसी सन्दर्भ मे उन्होने वर्तमान राजनीति की दलगत भावना, कलह, सघर्ष तथा इन सबके कारण उत्पन्न क्षुद्रता पर भी प्रकाश डाला है।

अत मे 92 पृष्ठो के पाच परिशिष्ट है जिनमे सेठ जी के महत्त्वपूर्ण पत्र-व्यवहार, उनके ग्र थो की सूची, उनकी वैदेशिक यात्राओ की सूची, समय और भ्रमण किये गये देशो के नाम तथा अन्य ज्ञातव्य विवरण है।

आत्मकथा की कसौटियाँ—आत्मकथा के निष्पक्ष परीक्षण के हेतु स्वय लेखक ने 'आत्म-निरीक्षण' के प्रथम भाग मे 'निवेदन' के अन्तर्गत छ कसौटिया निर्धारित की

---

1 आत्म-निरीक्षण, भाग 2, पृ० क, ख, ग।

है। इस सम्बन्ध मे उसका कथन इस प्रकार है—

1 इस कथा का आधार सत्य केवल सत्य हो। मिथ्या से यह दूर, अधिक से अधिक दूर रह सके और अपने स्वय के तथा अन्यो के सम्बन्ध मे सत्य को व्यक्त करने के लिए जिस निर्भयता और साहस की आवश्यकता है, वह मुझ मे रहे।

2 आत्म-श्लाघा के दोष से सर्वथा मुक्त आत्म-चरित असम्भव कल्पना है। अत इस चरित मे आत्म-श्लाघा का न्यून से न्यून स्थान रहे।

3. यह कथा लेखक से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियो और समय का छोटा-मोटा चित्र बन सके।

4 लेखक के जीवन की नाटकीय परिस्थितियो और कहानी का इस चरित्र मे ऐसा विवरण हो जिससे इसकी शुष्कता कम से कम की जा सके।

5 मैं अपने अनुभवो का इस चरित मे अधिक से अधिक समावेश कर सकू।

6 इस कथा मे सच्चा आत्म-निरीक्षण हो।[1]

उपर्युक्त कसौटियो पर पूर्णतया खरा उतरने वाला कोई भी आत्मचरित निश्चित रूप से उत्तम कोटि मे आयेगा। देखना यह है कि सेठ जी का अपना 'आत्म-निरीक्षण' इन कसौटियो पर कहा तक खरा उतरता है।

कसौटियो के आधार पर 'आत्म-निरीक्षण' का परीक्षण

आत्मचरित की सबसे पहली कसौटी है कि वह मिथ्या से दूर रह कर केवल सत्य पर आधारित हो तथा सत्य को अभिव्यक्त करने के लिए जिस निर्भयता और साहस की आवश्यकता होती है, वह आत्मचरित के लेखक मे रहे।

'आत्म-निरीक्षण' के तीनो भागो का अध्ययन करने के उपरात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि इसके लेखक ने अत तक ईमानदार रहने का प्रयत्न किया है। सत्य के प्रति अत्यधिक आग्रह ने ही उसे अपनी दुर्बलताओ तक को प्रकट करने के लिए बाध्य कर दिया है। अब तक जितनी आत्मकथाए लिखी गई है उनमे महात्मा गाधी की आत्मकथा सर्वाधिक सत्य पर आधारित है। लेकिन 'आत्म-निरीक्षण' मे भी कुछ ऐसी घटनाओ का समावेश है जिससे ज्ञात होता है कि इसका लेखक भी सत्य से दूर नही गया। कुछ उद्धरण देखिए—

"काम-चेतना की स्पष्ट भावनाए मेरे मन मे लगभग पन्द्रह वर्ष की अवस्था से उठने लगी और ये उठी ललित कला से सम्बन्ध रखने वाले कुछ गन्दे साहित्य को पढने, उस समय की पारसी नाटक कम्पनियो के कुछ अश्लील नाटक देखने तथा एक महिला के कारण, जो हमारे कुल की एक निकट की रिश्तेदार थी।"[2]

---

1 आत्म-निरीक्षण, भाग 1, निवेदन, पृ० ख-ग।

2 वही, पृ० 101।

ऊपर जिस महिला का जिक्र आया है बचपन मे सेठ जी उसके प्रति आकृष्ट हुए थे। अपने इस आकर्षण और लुक छिप कर की जाने वाली प्रेम लीला को 'आत्म-निरीक्षण' मे उन्होने बिल्कुल नही छुपाया है बल्कि उसका सजीव चित्र अकित कर दिया है।

"जिन मेरी नातेदार महिला के प्रति मैं बहुत आकृष्ट हुआ, उनका नाम और परिचय देना किसी प्रकार भी उचित न होगा। ये विवाहिता थी, कुमारी या विधवा नहीं। इनकी अवस्था मुझ से कुछ अधिक थी, देखने मे ये अत्यत सुन्दर थी, वर्ण मे गौर, सारे अग-प्रत्यग ढले हुए से, नेत्र सबसे अधिक आकर्षक। मेरा इनके प्रति जितना आकर्षण था उनका मेरे प्रति उससे अधिक ही होगा, कम नही।[1] वे आगे लिखते है—

"मेरी इन प्रेयसी का और मेरा सम्बन्ध धीरे-धीरे बढ चला। उन दिनो घूंघट रखने का रिवाज था। मैने यो तो उनका मुख कई बार देखा था और वे यह जानती भी थी, परन्तु धीरे-धीरे मैने उनके सौन्दर्य की प्रशसा करते हुए उनके मुख के दर्शन के लिए प्रार्थना की। प्रथम प्रार्थना के पश्चात् ये प्रार्थनाए बढ चली। उस समय जिनका रिश्ता घूघट रखने का रहता उनसे इस प्रकार की प्रार्थना भी एक अनुचित बात मानी जाती। कई प्रार्थनाओ के पश्चात् भी जब घूंघट न खुला तब एक दिन जबर्दस्ती मैने घूँघट खोल दिया।[2] इसके आगे का चित्र देखिए—

"एक दिन यो ही उनकी ओर देखते-देखते एकाएक मैने उनकी आखो को चूम लिया। इस कृति से मेरे सारे शरीर मे एक ऐसी बिजली दौडी जैसा इसके पहले कभी न हुआ था। मेरा यह अनुभव मेरे लिए एक दम नवीन था। मेरी इस कृति का मेरी उन प्रेयसी ने कोई विरोध न किया। हा, जिन आँखो को मैने चूमा था वे नीचे अवश्य झुक गयी। कुछ दिनो या घटो के बाद नही, पर अब तो कुछ क्षणो के बाद ही मेरे इन चुम्बनो की शृखला-सी बध गयी और इसके बाद की सीढी आलिगन पर भी चढने मे मुझे अब देर न लगी।"[3]

ऐसी दुर्बलताओ का चित्रण करने के लिए जिस नैतिक साहस की आवश्यकता है, लेखक मे उससे कही अधिक साहस है इसीलिए आलिगन तक का, और वह भी अपनी रिश्तेदार महिला के साथ, उल्लेख कर देने मे उसे किसी प्रकार का सकोच नहीं होता। यही नही, सत्य का आधार ग्रहण करने के ही कारण, लेखक अपने पिता के वेश्यागामी होने का भी वर्णन कर देता है। महात्मा गाधी के प्रति भी अपनी विपरीत भावनाओ को प्रकट करने से वह नही चूकता।

1 आत्म-निरीक्षण, भाग 1, पृ० 103-104।

2 वही, पृ० 105।

3 वही, पृ० 106।

'आत्म-निरीक्षण' को अधिक प्रामाणिक बनाने के लिए लेखक ने इसके तृतीय भाग मे, प्रथम और द्वितीय परिशिष्ट के अन्तर्गत कुछ महत्त्वपूर्ण पत्रो को उद्धृत कर दिया है। ये पत्र वास्तव मे एक प्रकार से लिखित साक्ष्य है और इनसे सम्बन्धित घटनाओ की सत्यता मे किसी प्रकार की आशका नही की जा सकती।

'आत्म-श्लाघा की न्यूनता' उत्तम आत्मचरित का दूसरा महत्त्वपूर्ण गुण है। 'आत्म-निरीक्षण' मे केवल लेखक की दुर्बलताओ का ही चित्रण नही है अपितु इसमे उसकी विशेषताओ का स्थान-स्थान पर उल्लेख है। यह कहना अधिक उचित होगा कि विशेषताओ का उल्लेख अपेक्षाकृत अधिक है। प्रश्न यह उठता है कि आत्मचरित मे वर्णित लेखक की विशेषताओ को आत्म-श्लाघा दोष के अन्तर्गत परिगणित किया जाय अथवा नही। जीवन की जिस वास्तविक स्थिति का उसने यथातथ्य चित्रण किया है, क्या वह चित्रण आत्म-श्लाघा है? आत्मकथा लेखक यदि आत्मकथा मे केवल अपनी दुर्बलताएँ ही चित्रित करता है तो क्या वह सत्य से दूर नही जाता? जीवन मे क्या केवल दुर्बलताएँ ही है? इन प्रश्नो के सन्दर्भ मे यदि आत्मकथा मे वर्णित विशेषताओ पर विचार किया जाय, तो लेखक को आत्मश्लाघा दोष से कुछ हद तक मुक्त किया जा सकता है। 'आत्म-निरीक्षण' के लेखक की स्थिति भी यही है, यदि विशेषताओ का चित्रण मात्र आत्मश्लाघा है तब तो निश्चित रूप से वह दोषी है, लेकिन विशेषताओ के उल्लेख को यदि तथ्य-चित्रण के रूप मे स्वीकार करे तो एक सीमा तक वह इस दोष से मुक्त माना जा सकता है।

आत्मकथा की तीसरी कसौटी है—यह कथा लेखक से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियो और समय का छोटा-मोटा चित्र बना सके।

'आत्म-निरीक्षण' मे न केवल सेठ जी का जीवन-वृत्त है अपितु इसमे राष्ट्रीय आन्दोलनो का इतिहास भी चित्रित हुआ है। इसका प्रथम भाग तो मुख्यत लेखक की अपनी आत्मकथा है लेकिन अन्य दो भागो मे विगत तीस वर्षों से भी अधिक की प्रमुख घटनाओ और लेखक के सम्पर्क मे आये प्रमुख व्यक्तियो के सस्मरण है। इसमे लेखक के समय की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक गतिविधियो का विवरण भी है। अपनी इन विशेषताओ के कारण यह लेखक से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियो और समय का एक अविस्मरणीय चित्र बन गया है।

लेखक के जीवन की नाटकीय परिस्थितियो और कहानी का इस चित्र मे ऐसा विवरण हो जिससे इसकी शुष्कता कम से कम की जा सके। यह आत्मकथा की चौथी कसौटी है।

'आत्म-निरीक्षण' मे उपर्युक्त तत्त्वो के समावेश का प्रयास दृष्टिगोचर होता है। इसके कारण शुष्कता कुछ कम अवश्य हुई है लेकिन रचना को आद्यत सरस नही कहा जा सकता।

आत्मचरित की पाचवी कसौटी है— मैं अपने अनुभवो का इस चरित मे अधिक से अधिक समावेश कर सकूं ।

लेखक ने 'आत्म-निरीक्षण' मे अपने प्रिय और कटु सभी प्रकार के अनुभवो का समावेश किया है । पारिवारिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक क्षेत्रो मे जो भी महत्त्वपूर्ण अनुभव उन्हे हुए है, उसका स्पष्ट उल्लेख उन्होने 'आत्म-निरीक्षण' मे किया है । सेठ जी के अनुभवो के स्पष्टोल्लेख का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

मैंने त्रिपुरी काग्रेस मे जो कुछ देखा, सुना और भोगा था उससे मेरा मन अत्यधिक ग्लानि मे भर गया था। प्रजातत्र की दुहाई देने वाले नेताओ का सुभाष बाबू के चुनाव पर इस प्रकार का रोष तथा आपसी झगडा मेरी समझ न आता था । सुभाष बाबू की जीत पर गान्धी जी के सदृश महापुरुष का तिलमिला कर यह कहना कि यह मेरी हार है, मुझे किसी प्रकार युक्तिसगत न दिखाई पडता था । गान्धी जी का त्रिपुरी न आकर उसी समय राजकोट जा उपवास करने मे चाहे उनके द्वारा कहे गये अन्य कारण ही सर्वथा सत्य हो, पर बार-बार बरजने पर भी मेरा मन न जाने क्यो यही सोचता था कि वे सुभाष बाबू के सभापति चुने जाने के कारण ही त्रिपुरी नही आये ।[1]

इसी प्रकार के अनेक अनुभवो का समावेश 'आत्म-निरीक्षण' मे है । आत्म-कथा की अतिम कसौटी है—इस कथा मे सच्चा आत्म-निरीक्षण हो ।

'आत्म-निरीक्षण' के अत मे सिंहावलोकन शीर्षक के अन्तर्गत लेखक ने आत्म-निरीक्षण का प्रयास किया है । अपने जीवन के विगत साठ वर्षो को सामने रखकर उनने उनका विश्लेषण किया है और भविष्य जीवन के विषय मे भी कुछ विचार प्रस्तुत किये है । इसी सन्दर्भ मे उन्होने कॉग्रेस दल मे व्याप्त अवसरवादिता, भ्रष्टाचार, पदलोलुपता, व्यक्तिगत कलह आदि का उल्लेख भी किया है । वर्तमान राजनीति पर उनकी टिप्पणी देखिए—

"इस देश का आज राजनीतिक क्षेत्र सम्मान की अपेक्षा पग-पग पर असम्मानित होने का क्षेत्र हो गया है । सर्वत्र पद-लोलुपता और ये पद नाना प्रकार के स्वार्थो के साधन दिखाई पडते है । व्यक्तिगत दलगत कलह-सघर्ष, राग-द्वेष पराकाष्ठा को पहुँच गया है । इसके कारण जो तू-तू, मैं-मैं, गाली-गलौज हो रही है उसकी सीमा नही रह गई है । इसका अवलम्ब असत्य और कुत्सित से कुत्सित साधन है । न साध्य नही है और न साधन ।[2]

---

1 आत्म-निरीक्षण, भाग 2, पृ० 410 ।
2 वही, भाग 3, पृ० 323 ।

वर्तमान राजनीति की बुराइयो से परिचित होकर भी सेठ जी उसका अभी तक परित्याग नही कर पाये, यह एक आश्चर्य का विषय है।

सिंहावलोकन मे प्रस्तुत समग्र विचारो से सहमति प्रकट करना कठिन है। एक स्थान पर सेठ जी ने लिखा है—

"कुछ वर्ष पूर्व मेरे मन मे उठा करता था जो कुछ मैंने किया क्या उसके बदले मे जो मुझे पाना चाहिए था वह मैं पा सका ? और जब मैं यह सोचता तब मुझे अनेक ऐसे व्यक्ति दीखते जिन्होने मुझ से न जाने कितना कम किया था और मुझ से न जाने कितना अधिक पाया था। यह प्रेक्षण मुझे क्लेश देता। गीता का भक्त रहते हुए, उसका नित्य पाठ करते हुए और उसकी 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' उक्ति को निरन्तर स्मरण रखते हुए भी मेरा यह क्लेश न मिटता। परन्तु पिता जी की मृत्यु के पश्चात् एकाएक न जाने कैसे इस लोकैषणा से मेरे मन को छुटकारा सा मिल गया। अब अनेक बार मुझे निम्नांकित दोहा याद आ जाता है—

चाह गयी चिन्ता मिटी, मनुआ बेपरवाह।
जाको कछू न चाहिए, सोई शाहशाह॥[1]

सेठ जी के पिता की मृत्यु 11 मई सन् 1946 मे हुई थी। सन् 1946 से लेकर अब तक क्या वे सच्चे अर्थो मे लोकैषणा से मुक्त हैं ? मेरा संशयशील मन इस बात को अस्वीकार करता है। इसी प्रकार की कुछ घटनाएँ और हे जहाँ मतैक्य संभव नही है।

आत्म-निरीक्षण की सीमाएँ

'आत्म-निरीक्षण' का अत्यन्त विशालकाय होना ही इसका सबसे बडा दोष है। सम्पूर्ण ग्रंथ मे परिशिष्ट समेत 1112 पृष्ठ है। लेखक ने अपने जीवन और युग की घटनाओ को कहीं बहुत अधिक तूल दे दिया है, ऐसे अवसरो पर संक्षिप्त वर्णन अधिक प्रभावोत्पादक हो सकता था। कितनी ही अत्यन्त साधारण बातो का वर्णन बहुत अधिक विस्तार से किया गया है। इस ग्रंथ मे सेठ जी ने स्थान-स्थान पर विद्वानो के मत उद्धृत किये है, जिनकी संख्या भी बहुत अधिक हो गई है। इन उद्धरणो की उपयोगिता से तो इन्कार नही किया जा सकता लेकिन यह तथ्य है कि यदि इनको सीमित कर दिया जाता तो ये अधिक प्रभावी सिद्ध हो सकते थे।

सेठ जी के पास प्रेषित अपने 26-2-59 के पत्र मे डा० बाबूराम सक्सेना ने लिखा था—

"'उपन्यास' या 'आत्मकथा' के माध्यम से उस कोटि के ललित साहित्य से नितान्त असम्बद्ध सामग्री देना कहाँ तक उचित है, यह आज विवाद का विषय बना

1 आत्म-निरीक्षण, भाग 3, पृ० 319।

है। इसी प्रकार मानुष जीवन की ऐसी कमजोरियो का उल्लेख, जिनका न कहना ही श्रेयस्कर है, किया जाय या न किया जाय यह भी प्रश्न है? महात्मा गांधी ने ऐसा किया था। श्री० क० मा० मुशी ने भी कर दिया और आपने भी। सोचने की बात है? आपकी रिश्तेदार महिला जीवित होगी तो क्या कहेगी, या उसका पति या उसके कुटुम्बी।"

इसी प्रकार की एक आशका श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने भी व्यक्त की है—"सत्य का मैं उतना ही कायल हू जितना सेठ जी। पर एक बात विचारणीय है—वह यह है कि क्या हमे ऐसे तथाकथित सत्य का उद्घाटन करना चाहिए, जिससे अपने साथी सगियो के चरित्र पर आशका उत्पन्न हो जाय? इस ग्रथ मे एकाध काड ऐसे है जिन्हे छोड देने से ग्रथ की उपयोगिता मे कोई बाधा न आती।"[1]

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के उपर्युक्त कथन मे पर्याप्त सत्यता है और इसकी उपेक्षा नही की जा सकती।

'आत्म-निरीक्षण' का हिन्दी साहित्य में स्थान

'आत्म-निरीक्षण' की विशेषताओ एव उसकी कतिपय सीमाओ का उल्लेख करने के उपरात उसके सापेक्षिक मूल्य पर विचार करना आवश्यक है। इस सम्बन्ध मे कुछ सम्मतियाँ उल्लेखनीय है—

"'आत्म-निरीक्षण' मे नाटक, कहानी, इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र, राजनीति, आदि-आदि अनेक विषयो के तत्त्व पाठको को अनायास उपलब्ध हो सकेंगे। पुस्तक साफ सुथरे ढग पर छापी गई है। मुझे विश्वास है कि इसका यथेष्ट प्रचार होगा और हिन्दी साहित्य मे इसका विशिष्ट स्थान होगा।"[2]

डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है—प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति शीर्षक से तीन भागो मे सम्पन्न 'आत्म-निरीक्षण' या आत्मकथा प्राप्त हुई। इसकी सीधी, सरल भाषा, शैली, तथ्यात्मक सामग्री, समसामयिक व्यक्तियो का चरित्र-चित्रण, राष्ट्रीय और सामाजिक घटनाओ की पृष्ठभूमि मे आत्मविकास की कहानी—इन गुणो से मडित यह श्रेष्ठ ग्रथ स्वागत के योग्य है। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि आपने परिश्रम और मानसिक एकाग्रता से अपने जीवन के साठ वर्षो की गाथा को साहित्यिक चोला पहना दिया है। यह ऐसा शुद्ध दर्पण है जिसमे कर्म और ज्ञान के तपश्चरण का आपका दीर्घ मत्र प्रतिबिम्बित है।"[3]

---

1 श्री बनारसीदास के 20 मार्च, सन् 1960 के पत्र से उद्धृत।

2 डाक्टर बलदेवप्रसाद मिश्र, दिनाक 15-5-59 के पत्र से।

3 सेठ गोविन्ददास व्यक्ति एव साहित्य—पृ० 275, डा० वासुदेवशरण का मत।

"गत चालीस वर्षो के सार्वजनिक जीवन मे देश के जिन राजनीतिक, साहित्यिक तथा अन्य क्षेत्रो मे कार्य करने वाले महानुभावो से मेरा थोडा बहुत सम्पर्क आया उन्ही की स्मृतियाँ इस 'स्मृति-कण' पुस्तक मे सग्रहीत है। ये स्मृतिया मात्र हैं, मेरे मन पर इन महानुभावो के व्यक्तित्व और कार्यो का जो प्रभाव पडा उनकी स्मृतियाँ मात्र, उनकी समस्त जीवनी नही और न उनके सपूर्ण जीवन का सिहावलोकन।"[1]

सेठ जी ने लिखा है—मैंने इन स्मृतियो मे जिन व्यक्तियो को लिया है उनके यदि कोई दोप अथवा उनमे कुछ कमियाँ भी मेरे देखने मे आयी है तो उनका भी इन स्मृतियो मे उल्लेख कर दिया गया है।[2]

स्मृति-कण' मे सग्रहीत समग्र सस्मरणो को 6 भागो मे विभाजित किया गया है। विभिन्न भागो मे रखे गये सस्मरणो की तालिका इस प्रकार है—

प्रथम भाग मे 23 व्यक्तियो के सस्मरण है। इसमे मुख्यत ऐसे राजनीतिक व्यक्तियो को स्थान दिया गया है जिनका सेठ जी से सम्पर्क रहा किन्तु अब वे दिवगत हो चुके हैं। इस भाग मे लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी, महामना मालवीय, पजाब-केसरी लाला लाजपत राय, श्रीमती एनी बिसेण्ट, देशबन्धुदास, प० मोतीलाल नेहरू, स्वामी श्रद्धानन्द, श्रीमती सरोजनी नायडू, श्री अलीबन्धु और बी अम्मा, श्री विट्ठल भाई पटेल, कायदे आजम जिन्ना, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, सरदार वल्लभभाई पटेल, मौलाना आजाद, सेठ जमनालाल बजाज, श्री भूलाभाई देसाई, श्री मावलकर, सर तेज बहादुर सप्रू, बाबू शिवप्रसाद गुप्त, प० विष्णुदत्त शुक्ल, श्री अभ्यकर तथा प० रवि-शकर शुक्ल के सस्मरण प्रस्तुत किये गये है।

दूसरे भाग मे डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद, डाक्टर राधाकृष्णन, पं० जवाहरलाल नेहरू, आचार्य विनोबा भावे, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य और राजर्षि टडन के सम्बन्ध मे स्मृतियो का उल्लेख है।

तीसरे भाग मे मुख्यत स्वर्गवासी साहित्यकारो की स्मृतिया प्रस्तुत की गई है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर, डाक्टर भगवानदास, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, प० माधवराव सप्रे, महाकवि 'हरिऔध' तथा उपन्यास-सम्राट् मुशी प्रेमचन्द को इस भाग मे स्थान दिया गया है।

चौथे भाग मे राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त और 'एक युग्म' शीर्षक से श्री कन्हैया लाल माणिक लाल मुशी एव उनकी धर्मपत्नी लीलावती मुंशी के सम्बन्ध मे लेखक की स्मृतियो का उल्लेख हैं।

पाँचवे भाग मे श्री पृथ्वीराज कपूर और घनश्यामदास बिडला तथा छठे भाग मे दरभगा के महाराज रामेश्वरसिंह के सस्मरण हैं।

---

1 स्मृति-कण, निवेदन, पृ० क।
2. वही, पृ० क।

चेहरे जाने पहचाने—प्रस्तुत पुस्तक सन् 1966 मे भारतीय विश्व प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित हुई है। इसमे मुख्यत लेखक के पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित उन सामान्य व्यक्तियो के सस्मरण है जिनका उसके साथ घनिष्ठ सम्पर्क रहा।

प्रस्तुत सग्रह मे कुल 23 व्यक्तियो के सस्मरण है। समग्र सस्मरणो को तीन भागो मे वाटा जा सकता है—

1 लेखक के सार्वजनिक जीवन से घनिष्ठ सम्पर्क रखने वाले व्यक्तियो के सस्मरण, जैसे प० माधवराव सप्रे।

2 पारिवारिक सदस्यो के सस्मरण, इसके अतर्गत सेठ जी के पितामह, पिता, माता, पत्नी तथा स्वर्गीय पुत्र (श्री जगमोहनदास) आदि के सस्मरण आयेगे।

3 परिवार के निम्न वर्ग के कर्मचारियो के सस्मरण जिसमे नौकर, मुनीम, रसोइया, कोचवान आदि विशेप रूप से उल्लेखनीय है।

सेठ जी के अनुसार इस पुस्तक मे "व्यक्तिगत जीवन मे घनिष्ठ सम्पर्क मे आने वाले कुछ व्यक्तियो के रेखा-चित्र है" तात्पर्य यह कि सेठ जी इसे रेखा-चित्रो का सग्रह मानते है। वास्तव मे "रेखा-चित्र व्यक्ति के व्यापक व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते है। उनमे व्यक्ति का भीतरी और वाहरी आपा या स्वरूपता कुछ स्पष्ट रेखाओ मे व्यक्त हो जाती है।"[1] इस दृष्टिकोण से देखने पर 'चेहरे जाने-पहचाने' को रेखाचित्रो के सग्रह कहने की अपेक्षा सस्मरणो का सग्रह कहना अधिक उचित प्रतीत होता है। इसमे व्यक्तियो के व्यापक व्यक्तित्व पर प्रकाश न डाला जाकर उनके चरित्र के कुछ पहलुओ की झाकी ही प्रस्तुत की गई है।

सेठ जी के सस्मरणात्मक साहित्य की विशेषताए—सेठ जी की सस्मरण सम्बन्धी दो रचनाए—'स्मृति-कण' और 'चेहरे जाने-पहचाने' के आधार पर उनके सस्मरणात्मक साहित्य की विशेपताओ का उल्लेख निम्न शीर्षको के अन्तर्गत इस प्रकार किया जा सकता है—

1 **यथार्थवादी दृष्टिकोण**—सेठ जी की दोनो सस्मरणपरक रचनाओ मे हमे उनका यथार्थवादी दृष्टिकोण दिखाई पडता है। सस्मरणो को अधिकाधिक तथ्यपरक बनाने के लिए लेखक ने पूरा प्रयत्न किया है और यही कारण है कि हमे समग्र चित्रण मे कही भी कल्पना की रगीनियाँ एव अतिरजकता दिखाई नही पडती। लेखक के मन पर जिस व्यक्ति का जैसा प्रभाव पडा है उसने चित्रित कर दिया है, यहाँ तक कि यदि किसी मे उसे कुछ कमी दृष्टिगोचर हुई है तो उसका भी स्पष्ट उल्लेख उसने किया है। एक उदाहरण देखिए—

"पडित मोतीलाल नेहरू और श्री भूलाभाई देसाई का मिलान किया जाता है। दोनो के चेहरो मे जरूर कुछ साम्य था, विशेषकर दोनो की नाक मे। फिर

1 काव्य के रूप—बाबू गुलाबराय, पचम सस्करण, पृ० 241।

दोनो बहुत बडे वकील थे, एक इलाहाबाद हाईकोर्ट के और दूसरे बम्बई हाईकोर्ट के। दोनो शौकीन भी थे और अधिक शौकीनी मे जो दोष आ जाते है, विलासिता के, उस मे भी सर्वथा युक्त। पर मोतीलाल जी की शौकीनी मे शान थी, महानता थी और उसके कण-कण मे था स्वाभिमान। इसके विपरीत भूलाभाई मे था एक तरह का हलकापन, जिसे हम हमारी प्रचलित जनभाषा मे ओछापन भी कह देते है।[1] अपने पिता का चित्रण करते हुए लेखक ने लिखा है—

उनके पास अच्छी-से-अच्छी वेश्याए भी रही। लखनऊ की माहेमुनीर अद्धा विग्गन आदि, बम्बई की चन्दा वाई वेलिकर आदि। इन वेश्याओ पर हजारो नही लाखो खर्च होता।[2]

इसी प्रकार के अनेक उदाहरण दोनो पुस्तको से उद्धृत किये जा सकते है।

2 **काव्यात्मक चित्रण**—सेठ जी की दोनो पुस्तके पर्याप्त रोचक है। अधिकाश सस्मरणो के प्रारभिक अश अत्यन्त आकर्षक है, कही-कही तो वर्णन इतना सजीव है कि वह काव्यात्मक हो गया है। काव्यात्मक शैली का एक उद्धरण देखिए—

"गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस के अपने वर्षा-वर्णन मे लिखा है—'हरित भूमि तृन सकुल समुझि परइ नहिं पथ।' और मेघो से आच्छादित आकाश की यदि अधेरी रात हो तब तो जब यह हरित भूमि ही दिख न पडे तब पथ दिखने का तो प्रश्न ही कहा? परन्तु, यदि ऐसे अवसर पर कुछ सैकिड विजली की चमक कौध उठे तो फिर उस चमक मे क्षण मात्र के लिए वह हरित भूमि दिख जाती है और यदि उसमे तृन सकुल से ढकी हुई कुछ पगडडियाँ हो तो वे भी झलक जाती है। युवावस्था मे सम्पन्नता की वर्षा के कारण खूब हरा-भरा था मेरा जीवन। परन्तु, विलास-रूपी काले-काले मेघो से मेरे जीवन का निर्मल आकाश आच्छादित था। जीवन किस प्रकार चलाया जाए, उसका पथ मुझे नही सूझ रहा था। ऐसे ही समय विजली की कौध की चमक के सदृश सन् 1916 मे कुछ ही समय के लिए मुझे लोकमान्य के दर्शन हुए।"[3]

3 **सूक्ष्म-पर्यवेक्षण**—सस्मरणो मे व्यक्तियो की वेश-भूषा, उनके वाह्य तथा आन्तरिक रूप को प्रदर्शित करने वाले जो चित्र प्रस्तुत किए गए है उनसे लेखक की सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति का परिचय मिलता है। छोटी से छोटी बात भी लेखक की दृष्टि से ओझल नही होती। जैसे—मैथिलीशरण जी पहले मूछें रखते, रामानदी तिलक लगाते और बुन्देलखडी पगडी बाधते थे, लेकिन बाद मे इन सब को छोड दिया और पगडी के स्थान पर गाधी टोपी पहनने लगे। इसी प्रकार जवाहरलाल

1 स्मृति-कण, पृ० 91।

2 चेहरे जाने-पहचाने, पृ० 9।

3 स्मृति-कण, पृष्ठ 3।

नेहरू के विषय मे लिखा है—

"गोरे से गोरा रंग, जिसमे गुलाबी छाया आख, नाक, ओठ, आनन के सब अवयव निसर्ग द्वारा ही ठीक ढग से कटे-छटे और मस्तक के बीच के भाग मे एक भी वाल न रहने के कारण अत्यधिक विशाल दीखने वाला ललाट, ऐसा है नेहरू जी का चेहरा। बीते हुए ये 70 वर्ष उनके आनन मे न तो विशेष झुर्रिया ला पाये है और न किसी प्रकार का झुलाव जैसा वृद्धावस्था मे प्राय ठुड्डी के नीचे ग्रीवा मे हो जाता है। आखो के चारो ओर कुछ शिकन अवश्य आ गयी है। परन्तु यह तो अनेक युवको की आँखो के आस-पास भी रहती है।"[1]

सेठ जी के अधिकाश बाह्य वर्णन मे उनकी (इसी प्रकार की) सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय मिलता है।

4 **कारुण्य-धारा**—सेठ जी के अधिकाश सस्मरण सुखद है लेकिन कही-कही उन्होने करुणा की अजस्र धारा भी प्रवाहित की है। ऐसे स्थल 'चेहरे जाने-पहचाने' मे अपेक्षाकृत अधिक है। एक करुण-प्रसग देखिए—

"काल का कराल प्रहार जगमोहनदास पर असमय हुआ। विकसित होती हुई कली प्रफुल्ल पुष्प न बन सकी। 16 जुलाई उसका जन्मदिन था। अपना इकतालीसवा वर्ष पूर्ण कर वह बयालीसवे वर्ष मे प्रवेश कर रहा था और उसी जन्मदिन को प्रातः काल ही वह एकाएक चल बसा। इतिहास मे हुमायूँ पर वावर के सदके होने की बात मैने पढी थी। मै उसकी परिक्रमा कर सदके हुआ। उसकी मा और पत्नी ने अपना तमाम आयुष्य उसे अर्पित किया, पर कुछ न हुआ। दो वार 'गोपाल' नाम का उच्चारण कर वह सदा के लिए चल दिया।"[2]

उपर्युक्त पक्तियो मे सेठ जी के छोटे पुत्र जगमोहनदास की मृत्यु का कैसा करुण दृश्य उपस्थित किया गया है। 'चेहरे जाने-पहचाने' पुस्तक का 'हम दो' शीर्षक यह सारा सस्मरण अत्यन्त करुणाजनक है। 'स्मृति-कण' मे ऐसे करुण प्रसगो का अभाव है।

5 **हास्य-व्यंग्य**—रचना की सरसता एव मनोरजकता के लिए कभी-कभी गम्भीर लेखक भी हास्य-व्यग्य का समावेश अपनी रचनाओ मे कर देते है। सेठ जी के सस्मरण भी इस तत्त्व से सर्वथा शून्य नही है, एक-दो स्थलो पर हास्य-व्यग्य का पुट मिलता है। दरभगा के महाराज रामेश्वर सिंह के वाह्य-चित्रण मे यह तत्त्व (हास्य-व्यग्य) स्वत उभर आया है—

"बूढे होने पर भी उस बुढापे को छिपाने के लिए ऐसा कोई प्रयत्न नही जो उन्होने न किया हो। सिर के वाल, बडी-बडी मूँछे और गलमुच्छे खिजाव से ही

1 स्मृति-कण, पृ० 132।

2 चेहरे जाने-पहचाने, पृ० 104।

काले न किए गये थे पर जहा बाल उड गये थे वहा काजल लगाया गया था। चेहरे की झुर्रियो को ढाकने के लिए लाल सिंदूर के रग को हलका कर उन झुर्रियो पर उसे मला गया था। सिर की चौडी शिखा जरीदार टोपी के बाहर गाठ लगी हुई दिख पडती थी। ललाट पर भस्म का त्रिपु ड था और उसके बीच मे दो बडी-बडी सिंदूर की बिंदिया। नीले मखमल का अ गरखा था और उस पर बडे-बडे गेंदे के फूल की पीली मालाए।"[1]

'स्मृतिकण' अपनी विशेषताओ के कारण उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है। सामान्य व्यक्तियो के रोचक सस्मरणो को प्रस्तुत करने वाली पुस्तक 'चेहरे जाने-पहचाने' भी काफी महत्त्वपूर्ण है।

जीवनी

जीवनी साहित्य के अन्तर्गत सेठ गोविन्ददास की दो पुस्तके आती है—

1 मोतीलाल नेहरू (एक जीवनी)

2 युग-पुरुष नेहरू

उपर्युक्त दो पुस्तको के अतिरिक्त 'देशरत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद' तथा 'लौह पुरुष सरदार पटेल' प्रकाशित हो रही है।

मोतीलाल नेहरू (एक जीवनी)—प्रस्तुत पुस्तक की रचना स्वर्गीय मोतीलाल नेहरू की जन्म-शताब्दी के अवसर पर की गई है और इसे मध्यप्रदेश की प० मोतीलाल नेहरू जन्म-शताब्दी-समारोह-समिति ने प्रकाशित किया है।

प्रस्तुत जीवनी मे लेखक ने मोतीलाल नेहरू की व्यक्तिगत विशेषताओ एव उनकी चारित्रिक सीमाओ का स्पष्ट उल्लेख किया है। नेहरू परिवार से सेठ जी के कुटुम्ब का घनिष्ठ सम्पर्क रहा है। प० मोतीलाल जी स्वय उनके वकील रह चुके थे, इस घनिष्ठता तथा सार्वजनिक जीवन मे भी मोतीलाल जी के साथ कुछ समय तक कार्य करने के कारण उनके व्यक्तित्व एव कार्यो का लेखक पर गहरा प्रभाव पडा है, इस जीवनी मे इसी व्यक्तिगत परिचय के कारण लेखक गहरी जानकारी दे सकने मे समर्थ हुआ है और स्थान-स्थान पर सस्मरणो का उल्लेख कर पुस्तक को नीरस होने से बचा लिया है।

प्रस्तुत पुस्तक मे असहयोग आन्दोलन मे उनकी देन, स्वराज्य पार्टी का निर्माण, सन् 1926 के चुनाव की फूट, साइमन कमीशन और नेहरू-कमेटी, सन् '24 से 1929 तक के कौंसिल मोर्चे, और भारत की राजनीति, सन् 1930 का सत्याग्रह और उनकी तथा उनके परिवार की देन, महाप्रयाण आदि पर प्रकाश डाला गया है।

युग-पुरुष नेहरू—प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन, सन् 1964 मे, प० जवाहर लाल

1 स्मृति-कण, पृ० 132।

जी नेहरू के देहावसान के पश्चात्, हिन्द पाकेट बुक्स, शाहदरा से हुआ है। यह पाकेट बुक साइज के एक सौ बीस पृष्ठो मे नेहरू जी की सक्षिप्त जीवनी है।

पुस्तक की निर्माणकालीन परिस्थितियो एव उससे उत्पन्न कठिनाइयो का जिक्र करते हुए लेखक ने लिखा है—

"श्री जवाहरलाल नेहरू के देहावसान के दो-तीन दिन बाद ही दिल्ली मे 'हिन्द पाकेट बुक्स' के सचालक श्री विश्वनाथ जी ने मुझे कहा कि मै पडित जी की एक सक्षिप्त जीवनी हिन्द पाकेट बुक्स साइज के एक सौ बीस पृष्ठ मे लिखकर 15 जुलाई, सन् 1964 तक उन्हे दे दू। उस समय तो मुझे मालूम हुआ कि यह बडा सरल कार्य होगा, परन्तु जब मै यह कार्य करने बैठा तब मुझे जो कठिनाइया दिख पडी, वे अपने साहित्य-मृजन मे विरल वार ही आई होगी। जैसे-जैसे मै यह कार्य करता गया मुझे भास होता गया कि यदि मुझसे जवाहरलाल जी की जीवनी हजार या पाच सौ पृष्ठो मे लिखने के लिए कहा गया होता तो वह कार्य मै कही अधिक सरलता से कर सकता था। कहॉ जवाहरलाल जी का महान् व्यक्तित्व और उनके कार्य और कहॉ छोटे-छोटे एक सौ पृष्ठो मे उनका विवरण। यह मुझे गागर मे सागर भरने के सदृश जान पडा।"[1]

प्रस्तुत पुस्तक मे नेहरू जी के व्यक्तित्व, जीवन-दर्शन, जन्म, बाल्यकाल, शिक्षा, राजनीतिक जीवन, प्रधान मत्री के रूप मे कार्य, उनकी सौन्दर्योपासना, साहित्यिक वृत्ति तथा महाप्रयाण आदि पर प्रकाश डाला गया है। 'सिहावलोकन' के अन्तर्गत नेहरू जी की महानता का उल्लेख किया गया है। अत मे दो परिशिष्ट भी है जिनमे पहले के अन्तर्गत देश-विदेश के महान् व्यक्तियो के नेहरू जी से सबधित कथनो को उद्धृत किया गया है और दूसरे परिशिष्ट मे नेहरू जी के जीवन एव कार्यो से सम्बन्धित विशेष तिथियो तथा वर्षो का उल्लेख है।

इस सक्षिप्त जीवनी मे सचमुच सेठ जी ने गागर मे सागर भरने का प्रयास किया है। नेहरू की के जीवन की बडी घटनाओ को तो इसमे स्थान दिया ही गया है लेकिन उनसे सम्बन्धित छोटी-छोटी बातो का उल्लेख करने से भी लेखक नही चूका है। यथा—

"चाय के साथ या तो दो बिस्कुट अथवा दो सैण्डविच खाते। कभी-कभी इनके साथ कुछ नमकीन काजू भी रहते। चाय के प्याले मे एक तराशा हुआ नीबू अवश्य रहता है। यह नीबू चाय मे निचोडा न जाता केवल सुगन्ध (फ्लेवर) के लिए पडा रहता।"[2]

---

1 युग-पुरुष नेहरू—निवेदन, पृ० 5।

2 युग-पुरुष नेहरू, पृ० 13।

इसी प्रकार नेहरू जी की कार्य-पद्धति का उल्लेख करते हुए लेखक ने लिखा है—

जवाहरलाल जी बडे जिम्मेदार व्यक्ति थे। जो काम वे हाथ मे लेते उसे पूरा करने के लिए तन और मन से जुट जाते, और अधिकतर अपने हाथ मे लिए हुए कार्यों को दूसरो पर न टाल स्वय करते। यदि किसी को कोई काम सौंपते तो उस काम को पूरा करने के लिए उसका समय भी निश्चित कर देते। उस समय के भीतर उसके काम के बीच दखल न देते। यदि उस काम के सम्बन्ध मे उन्हे उससे और कुछ कहना होता अथवा उसी व्यक्ति से सम्बन्धित कोई काम आ जाता तो उसे अपने दफ्तर मे न बुला स्वय उसके मेज के पास जाते।[1]

जवाहरलाल जी एव लेखक का घनिष्ठ सम्पर्क रहा है। इसी सम्पर्क के कारण वह नेहरू जी के जीवन की गतिविधियो को अत्यन्त निकट से देख सका है और इस पुस्तक मे अनेक स्थलो पर रोचक सस्मरणो को प्रस्तुत कर सकने मे भी सफल हुआ है।

'महाप्रयाण' शीर्षक के अन्तर्गत लेखक का समग्र वर्णन बडा ही हृदयग्राही है। इसी प्रसग मे नेहरू जी की विशेषताओ का उल्लेख आलकारिक शैली मे किया गया है। देखिये—

प० जवाहरलाल जी का सारा जीवन सरिता की तरह सतत सक्रिय रहा। उनके जीवन-प्रवाह से अगणितो ने जीवन पाया। छोटी-बडी अगणित सरिताओ की तरह अनेकानेक व्यक्ति और महत् शक्तिशाली व्यक्तित्व जवाहरलाल जी के तपोपूत गगा के व्यक्तित्व मे समाहित हुए। देश की स्वाधीनता के समर मे, गाँधी की गगा के प्रवाह मे जवाहरलाल जी सरस्वती और कर्मकन्या कालिन्दी दोनो रूप से समाहित हुए और इस प्रकार स्वाधीनता के समुद्र का साक्षात् कर अपने जीवन मे ही गाँधी के गगा-रूप से अपने को उसमे समर्पित कर उसके प्रवाह को गगा की तरह अन्तर्मुखी न कर उसे बहिर्मुखी बना गगा सागर रूपी भारत के विशाल अतराल और विश्व के इस विराट् आँगन मे अपने को बहाते गगा की उस धारा को जो स्वाधीनता के गगा सागर रूपी सिन्धु मे समाहित हुई थी, मानवता के महासिंधु तक बहा ले गए।"[2]

एक सीमा तक जीवनी साहित्य मे विशेषताओ का उल्लेख क्षम्य है, लेकिन विशेषताओ से अत्यधिक अभिभूत हो जब लेखक का वर्णन अतिशयोक्ति की सीमा का स्पर्श करने लगता है तो यह (जीवनी साहित्य के लिए) दोष बन जाता है। जीवनी मे गुण-दोष विवेचन का समुचित अनुपात बनाए रखना अत्यन्त आवश्यक है। अनेक स्थानो पर सेठ जी का वर्णन कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण हो गया है—

---

1 युग-पुरुष नेहरू, पृ० 15।

2 वही, पृ० 103।

. जवाहरलाल जी का अवसान, उनका भौतिक देहत्याग, उनका मरण उन साधारण मानवो की तरह नही है, जो छुट-पुट तारागणो की भाति आते-जाते, छिटकते और लुप्त होते है। अपितु उस प्रकाश-पुंज सूर्य की भाँति है जिसके उदय से धरती और आकाश और समस्त जगती जगमग हो आलोकित और प्रकाशित होती है तथा अस्त होते ही समस्त सृष्टि गहन अंधकार, निराशा, नैराश्य और नीरवता के निस्तब्ध तथा नीरस घटाटोप मे निद्रा-निमग्न हो जाती है। इसी प्रकार जवाहरलाल जी का महाप्रयाण हुआ जिसके होते ही समस्त अवनि और अंबर आभाहीन हो अंधकार से घिर गये।[1] वाक्य-रचना भी लडखडाती हुई प्रतीत होती है।

प्रस्तुत पुस्तक मे नेहरू जी की विशेषताओ के साथ उनके दोषो का उल्लेख भी किया गया है। सेठ जी लिखते है—

"उनका सबसे बडा दोष था उत्तेजनामय क्रोध। यह उन्हे अपने पिता से उनके अनेक सद्गुणो के साथ एक दुर्गुण भी प्राप्त हुआ था। इस क्रोध के साथ एक बात और जुड गई थी। वह थी जल्दबाजी, जो मोतीलाल जी मे नही थी। · उनके इस प्रखर स्वभाव के कारण अनेक बार अनेक अशोभनीय बाते भी हो जाया करती थी।"[2]

1 युग-पुरुष नेहरू, पृ० 104।
2 वही, पृ० 21-22।

अध्याय 7

निबन्ध

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'—गद्य को कवियों की कसौटी कहा गया है। इस सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि 'यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबन्धों में ही सबसे अधिक सम्भव होता है।'[1]

वास्तव में गद्य का पूर्ण विकसित रूप निबन्ध में ही प्राप्त होता है और उसमें लेखक की शैली का पूर्ण विकास भी दिखाई पड़ता है। साहित्य की इस विधा में ही 'शैली ही व्यक्ति है' की उक्ति पूर्ण रूप से लागू होती है।

हिन्दी में निबन्ध शब्द 'ऐस्से' (Essay) के लिए प्रयुक्त होता है किन्तु दोनों शब्दों की व्युत्पत्ति में पूर्व-पश्चिम का भेद है। संस्कृत शब्द 'निबन्ध' का अर्थ है जिसमें विशेष रूप से बन्ध या संगठन हो। 'बन्ध' शब्द का निबन्ध में भी वही अर्थ है जो काव्य का प्रबन्ध काव्य में है (अर्थात् तारतम्य और संगठन)। इसके विपरीत अंग्रेजी शब्द 'ऐस्से' (Essay) का अर्थ है प्रयत्न। यूरोप में इस विधा के जन्मदाता फ्रांसीसी लेखक मौन्तेन (Montaigne) ने इस शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया है। उनके निबन्धों में संगठन का अभाव सा है। उन्होंने अपनी कल्पना की लगाम ढीली कर रखी थी और उनके निबन्ध स्वाभाविक विचार-शृंखला का अनुसरण करते थे। उनके निबन्ध उनके कल्पनाशील मन के विचरण मात्र हैं।[2]

अंग्रेजी के प्रसिद्ध आलोचक डा० जानसन के अनुसार—

'Essay is a loose sally of mind, an irregular, undigested piece, not a regular and orderly performance.'[3]

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सं० 2012 का संस्करण, पृ० 505।
2. काव्य के रूप—बाबू गुलाब राय, पृ० 211-12।
3. An Introduction to the Study of Literature—Hudson, p. 332 से उद्धृत।

अर्थात् "निबन्ध उन्मुक्त मन की तरग, अनियमित, अपक्व-सी रचना है, न कि नियमबद्ध और व्यवस्थित कृति। हिन्दी मे निबन्ध शब्द का प्रयोग उपर्युक्त अर्थ मे कदापि नही होता। बाबू गुलाब राय ने निबन्ध की परिभाषा करते हुए लिखा है—

"निबन्ध उस गद्य-रचना को कहते है जिसमे एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक सगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो।"[1]

गुलाबराय जी की उपर्युक्त परिभाषा मे निबन्ध की व्यापकता का समावेश दृष्टिगोचर होता है।

नाटककार गोविन्ददास का निबन्धकार रूप भी कम आकर्षक नही है। पत्र-पत्रिकाओ मे तो विविध विषयो पर उनके लेख प्रकाशित होते ही रहते है, परन्तु इनके अतिरिक्त भी उनके आठ महत्त्वपूर्ण निबन्धो का सग्रह दो पुस्तको मे (प्रत्येक मे चार-चार) प्रकाशित हुआ है। ये पुस्तके है—

1 नाट्य कला मीमासा
2 मेरे जीवन के विचार-स्तम्भ

इस अध्याय मे इन्ही दो पुस्तको के आधार पर उनकी निबन्ध कला का विवेचन प्रस्तुत किया जायेगा।

नाट्यकला मीमासा

प्रस्तुत पुस्तक सन् 1961 मे मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिषद्, भोपाल द्वारा प्रकाशित हुई है। इसमे उनके चार भाषण प्रकाशित हुए है जो उन्होने मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद् के निमत्रण पर विक्रम विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित उज्जैन के माधव कालेज मे दिनांक 25, 26, 27 और 28 जुलाई, 1960 को दिये थे।

पुस्तक के नामकरण के विषय मे लेखक का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

"भाषणो की इस पुस्तक का नाम मैने 'नाट्य कला मीमासा' इसलिए रखा कि इसी विषय पर इसी नाम की लगभग 25 वर्ष पूर्व मैने एक पुस्तिका लिखी थी। पच्चीस वर्ष के दीर्घकालीन अध्ययन, चिन्तन, मनन और अनुभव के पश्चात् भी इस सम्बन्ध मे 25 वर्ष पूर्व जो मेरी मान्यताए थी, उनमे कोई अन्तर नही पडा है। जिन मान्यताओ पर मैने उस समय एक सक्षिप्त पुस्तिका लिखी थी, उन्ही पर इन भाषणो की सृष्टि हुई है। अत मैने इस पुस्तक का नाम 'नाट्य कला मीमासा' रखना ही उचित समझा।"[2]

---

1 काव्य के रूप—बाबू गुलाबराय, पृ० 213।
2 नाट्य कला मीमासा—निवेदन।

प्रस्तुत पुस्तक का पहला भाषण 'नाट्य-कला' से सम्बद्ध है। मूल विषय पर विचार करने से पूर्व विज्ञान और कला, उपयोगी कलाए तथा ललित कलाए, ललित कलाओं का उद्देश्य, विज्ञान और ललित कला का अन्तर, ललित कला सम्बन्धी विभिन्न धारणाए ललित कला मे काव्य और काव्य मे दृश्य काव्य का स्थान आदि विषयो पर सक्षेप मे प्रकाश डाला गया है। इसके उपरात नाट्य-कला सम्बन्धी भारतीय एव पाश्चात्य दृष्टिकोण प्रस्तुत किये गये है। इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से आद्याचार्य भरत एव अरस्तू के सिद्धान्तो का ही उल्लेख हुआ है और उनके विचार प्रस्तुत किये गये है। भारतीय दृष्टिकोण से नाटक के प्रधान तीन तत्त्व—कथावस्तु, नेता और रस पर विचार किया गया है तथा पाश्चात्य दृष्टिकोण से नाटक की कथावस्तु, पात्र, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, सगीत और नृत्य आदि पर प्रकाश डाला गया है। इसी भाग मे नाटक मे त्रासद-तत्त्वो के समावेश, सकलनत्रय, आदर्श नाटक के तत्त्व, सफल नाटक का साहित्य मे स्थान तथा आदर्शवाद, यथार्थवाद और स्वाभाविकवाद आदि की चर्चा की गई है।

नाट्यकला के विभिन्न पक्षो एव अन्य समाविष्ट विषयो पर मान्य विद्वानो के मतो का उल्लेख करने के पश्चात् लेखक ने तद्विषयक अपना निजी मत भी प्रकट कर दिया है।

उत्तम और सफल नाटक के सम्बन्ध मे लेखक की मान्यता है कि "जिस नाटक मे जितना महान् विचार होगा, जितना तीव्र सघर्ष होगा, जितनी सगठित एव मनोरजक कथा होगी, जितना विशद चरित्र-चित्रण होगा और जितनी स्वाभाविक कृति एव कथोपकथन होगे, वह उतना ही उत्तम तथा सफल होगा।"[1]

"आदर्शवाद, यथार्थवाद, स्वाभाविकवाद" उपशीर्षक के अन्तर्गत लेखक ने इनसे सम्बन्धित अपने मत का उल्लेख इस प्रकार किया है—

"इस विषय मे मेरा विनम्र मत यह है कि कला मे आदर्शवाद ही नीव के रूप मे रहना चाहिए। बिना आदर्शवाद के रचनाए प्राय साधारण कोटि की हो जाती है। परन्तु आदर्शवाद की नीव पर जो भवन खडा किया जाय, वह यथार्थवादी हो।"[2]

इस पुस्तक का दूसरा भाषण 'नाट्य साहित्य' से सम्बद्ध है। इसमे नाटक की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे भारतीय तथा पाश्चात्य सिद्धान्तो की चर्चा की गई है। इस सन्दर्भ मे नाट्योत्पत्ति के लिए दैवी सिद्धान्त, वेदो के आधार, धार्मिक भावनाओ, वीर पूजा, पुत्तलिका, छाया नाटक तथा प्रकृति परिवर्तन आदि का उल्लेख करने के पश्चात् इसकी उत्पत्ति के लिए समन्वित विकासवाद के सिद्धान्त को मान्य ठहराया गया है।

1 नाट्यकला मीमासा, पृ० 33।
2 वही, पृ० 37।

नाट्योत्पत्ति की चर्चा के उपरान्त सस्कृत नाटको की परम्परा, सस्कृत के प्रधान नाटक, प्राकृत के नाटक तथा अपभ्र श मे नाट्य साहित्य पर सक्षेप मे प्रकाश डाला गया है। इस भाग मे हिन्दी और उर्दू के नाटको के अतिरिक्त भारत की अन्य प्रादेशिक भाषाओ (बगला, असमिया, उडिया, मराठी, गुजराती, पजावी, कश्मीरी, तमिल, मलयालम, कन्नड तथा तेलुगु) के नाटको का उल्लेख भी किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक की यह एक नवीन विशेषता है। अन्त मे भारतीय नाट्य साहित्य पर विदेशी नाट्य साहित्य का प्रभाव तथा भारतीय नाट्य साहित्य का विश्व नाट्य साहित्य मे स्थान की चर्चा की गई है।

यह भाग विवेचनात्मक तथा गवेषणापूर्ण अधिक है। इसमे लेखक की निजी मान्यताएँ बहुत कम स्थनो पर दिखाई पडती है, अपने मत को प्रकट करने की अपेक्षा वह दूसरो की मान्यताओ का ही अधिक उल्लेख करता है। निजी मान्यताओ का सीमा क्षेत्र सकुचित होते हुए भी एक दो स्थलो पर उनकी बडी सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। भारतीय नाटको पर पाश्चात्य प्रभाव के प्रसग मे उसकी अपनी मान्यताओ का उल्लेख इस प्रकार है—

"यहाँ एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठता है। पश्चिम के इस प्रभाव को हमारी साहित्यिक मान्यताओ मे, जिनका सम्बन्ध हमारी सस्कृति से है, हम कितनी दूर तक आत्मसात् और समरस कर सके है, और कितनी दूर तक इस प्रभाव ने हमारी साहित्यिक मान्यताओ मे विस्फोट किया है। जहाँ तक आधुनिक टैकनीक का सम्बन्ध है, विस्फोट का प्रश्न नही उठता, परन्तु जहाँ तक आदर्शो का एव समस्याओ का सम्बन्ध है यह प्रश्न अवश्य उठता है। भारतीय जीवन के आदर्शो और पश्चिमी जीवन के आदर्शो मे महान् अन्तर है। हमारे आदर्श अध्यात्म की नीव पर अवलम्बित है। जो लोग यह समझते है कि अधिभूत की हमने अवहेलना की है, उनसे मैं सहमत नही हू, परन्तु हमारे आधिभौतिक जीवन की नीव अध्यात्म रहा है। पश्चिमी जीवन की नीव और उस नीव पर बना हुआ भवन दोनो ही अधिभूतमय है। आधुनिक भारतीय नाटक मे आध्यात्मिक आदर्श छूटते जा रहे है। सब कुछ अधिभूतमय होता जा रहा है। यह बडा भारी विस्फोट है जिसे पश्चिम के प्रभाव ने हमारे नाटक मे किया है।"[1]

पश्चिम के अधिभूतमय प्रभाव के कारण आदर्शवादी कलाकार का चिंतित होना स्वाभाविक ही है और उसकी यह चिन्ता उसके उपर्युक्त कथन मे पूर्णरूपेण अभिव्यक्त हुई है।

पुस्तक का तीसरा भाषण 'नाट्य शास्त्र' से सम्बन्ध रखता है। इसमे भारतीय तथा पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के प्राचीन और नवीन विधानो पर सक्षेप मे प्रकाश डाला गया है। इस प्रसग मे यह उल्लेखनीय है कि इसमे सस्कृत, हिन्दी तथा उर्दू नाट्य

1 नाट्य कला मीमासा, पृ० 91।

शास्त्र के अतिरिक्त भारत की अन्य प्रादेशिक भाषाओ के नाट्य-शास्त्र का सक्षिप्त विवेचन भी किया गया है। इसी भाग मे 'एकाकी नाटक' के स्वरूप एव उसकी कला पर भी विचार किया गया है तथा इसके सन्दर्भ मे 'सकलनत्रय' से सम्बन्धित कुछ मौलिक सुझाव लेखक द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं। इस सम्बन्ध मे उसका अभिमत इस प्रकार है—

पूरे नाटक के लिए 'सकलनत्रय' जो नाट्य कला के विकास की दृष्टि से बडा भारी अवरोध है, वही 'सकलनत्रय' कुछ फेरफार के साथ एकाकी नाटक के लिए मैं जरूरी मानता हू। 'सकलनत्रय' म 'सकलनद्वय' अर्थात् नाटक का एक ही समय की घटना तक परिमित रहना तथा एक ही कृत्य के सम्बन्ध मे होना तो एकाकी नाटक के लिए मेरे मतानुसार अनिवार्य है।[1] काल सकलन के अवरोध से बचने के लिए और कभी-कभी काल सकलन के होते हुए भी सौन्दर्य की वृद्धि के लिए लेखक ने एकाकी नाटक मे 'उपक्रम' और 'उपसहार' रखने का सुझाव दिया है। 'उपक्रम' नाटक के प्रारम्भ मे और 'उपसहार' अत मे ही हो सकता है। इन दोनो ('उपक्रम' तथा 'उपसहार') का प्रयोग सेठ जी के अधिकाश नाटको मे हुआ है। इसी प्रसग मे रेडियो नाटक तथा फिल्मी नाटक की कला पर भी सक्षिप्त प्रकाश डाला गया है।

पुस्तक का चौथा और अन्तिम भाषण 'रगमच' शीर्षक के अन्तर्गत उद्धृत किया गया है। सेठ गोविन्ददास जी को देश और विदेश के अनेक भूभागो की नाट्य शालाओ मे बैठकर रगमचो पर अनेकानेक नाटक, नौटकी, रास आदि देखने का अवसर मिलता है, इसके साथ ही नाटककार होने के कारण वे रगमच की सूक्ष्मता तथा उसकी अपेक्षित आवश्यकताओ से परिचित है, अत इस प्रसग मे उनके रगमचीय सुझाव ठोस वास्तविकता पर आधृत होने के कारण काफी उपयोगी है।

इस भाग मे विभिन्न भाषाओ के अद्यतन रगमचो का उल्लेख करने के पश्चात् लेखक ने विकसित रगमचो की स्थापना का सुझाव दिया है तथा इसके लिए आवश्यक व्यवस्था के स्वरूप पर भी प्रकाश डाला है। इसी प्रसग मे उसने देहाती रगमच तथा बाल रगमच की स्थापना पर भी बल दिया है।

सन् 1961 मे लेखक के सक्रिय सहयोग तथा उसके अमूल्य सुझावो के अनुसार जबलपुर विश्वविद्यालय मे आधुनिक ढग के विकसित रगमच की स्थापना हुई है, इसमे लेखक की विकसित रगमच सम्बन्धी मान्यताओ (घूमने वाला रगमच, ध्वनि-विस्तारक यत्र मे युक्त, रोशनी की समुचित व्यवस्था, दो यवनिकाओ तथा उपक्रम और उपसहार के लिए पटो की योजना) को क्रियात्मक रूप प्रदान किया गया है।

पुस्तक के अत मे सहायक ग्रन्थो की लम्बी सूची है जिसमे सस्कृत, हिन्दी, अग्रेजी, उडिया, असमिया, मराठी, गुजराती, मलयालम, कन्नड तथा तेलुगु भाषा के

1 नाट्य कला मीमासा, 122।

नाटको, नाट्य शास्त्रो और नाटक सम्बन्धी आलोचनात्मक ग्रन्थो का उल्लेख हुआ है। इससे पुस्तक की उपयोगिता बढ गई है।

सन्दर्भ-सूची मे उल्लिखित सभी पुस्तको का इस ग्रन्थ (नाट्यकला मीमासा) के प्रणयन मे उपयोग किया गया है ऐसा नही कहा जा सकता। ग्रन्थ के अन्दर बहुत कम पुस्तको का सन्दर्भ के रूप मे उल्लेख हुआ है।

प्रस्तुत पुस्तक मे सग्रहीत चार भाषणो (नाट्यकला, नाट्य साहित्य, नाट्य शास्त्र तथा रगमच) मे नाटक से सम्बद्ध विभिन्न विषयो पर प्रसन्न शैली मे शोधपूर्ण व्यवस्थित सामग्री प्रस्तुत की गई है। इसमे उल्लिखित लेखक की निजी मान्यताएँ केवल कपोल कल्पना पर आधृत न होकर तथ्यपरक होने के कारण सहज रूप से पाठको को ग्राह्य है।

मेरे जीवन के विचार-स्तम्भ—प्रस्तुत पुस्तक सन् 1962 मे भारतीय विश्व प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुई। इसमे सेठ गोविन्ददास के चार निबन्ध—भारतीय सस्कृति, भारतीय सस्कृति मे अहिंसा, भारत की राज भाषा और भारत मे गाय सग्रहीत है। इन निबन्धो के विषय मे लेखक ने लिखा है—इस सग्रह के ये चार निबन्ध उन विचारो से सम्बन्ध रखते है जो विचार स्वराज्य के सिवाय मेरे जीवन के स्तम्भ रहे है।[1]

'भारतीय सस्कृति' शीर्षक प्रथम निबन्ध मे लेखक ने गहराई मे प्रवेश कर भारतीय सस्कृति के मूलभूत गुणो तथा उसके कतिपय दोषो का उल्लेख किया है। 65 पृष्ठ के विस्तृत निबन्ध में सस्कृति (मूलत भारतीय सस्कृति) से सम्बन्धित अनेकानेक विषयो को समाविष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। सम्पूर्ण निबन्ध को छोटे-छोटे शीर्षको मे विभाजित करके उससे सम्बन्धित तथ्यो को उस शीर्षक के अन्तर्गत रखा गया है जिससे निबन्ध अधिक व्यवस्थित प्रतीत होता है। निबन्ध के कुछ प्रमुख शीर्षक इस प्रकार है—सस्कृति की परिभाषा, सस्कृति और सभ्यता का अन्तर, सस्कृत देश और उनकी भिन्न-भिन्न सस्कृतियाँ, सबसे प्राचीन सस्कृत देश, भारतीय सस्कृति पर भारतीय भौगोलिक स्थिति का प्रभाव, भारतीय सस्कृति के प्रधान तत्त्व, भारतीय सस्कृति का व्यावहारिक पक्ष, ससार पर भारतीय सम्कृति का प्रभाव, भारत पर अन्य सस्कृतियो का प्रभाव, भारतीय सस्कृति मे जो दोष आ गए तथा भारतीय सस्कृति और ससार का भविष्य।

प्रस्तुत निबन्ध मे लेखक का सस्कृति विषयक गहन अध्ययन झलकता है वह सस्कृति सम्बन्धी विभिन्न विचारो तथा मतो का उल्लेख करने के उपरान्त तद्विषयक अपना दृष्टिकोण भी प्रकट कर देता है। सस्कृति और सभ्यता का अन्तर स्पष्ट करते हुए उसका कथन है—'प्रकृति ने हमे जो कुछ दिया है उसे काम मे लेकर मनुष्य ने

1. मेरे जीवन के विचार-स्तम्भ, निवेदन।

जो ग्राधिभौतिक प्रगति की है उसको हम सभ्यता (सिविलाइजेशन) कहते है तथा बुद्धि का सेवन कर मानव जो सृजन करता है वह सस्कृति (कलचर) है। सस्कृति का सम्बन्ध ग्रन्तरग से है ग्रौर सभ्यता का बहिरग से। सस्कृति ग्रात्मा है ग्रौर सभ्यता देह। सस्कृति ग्राध्यात्मिक स्तर है ग्रौर सभ्यता ग्राधिभौतिक।"[1]

इसमे लेखक के मौलिक चिन्तन का रूप दिखाई पडता है।

कही-कही लेखक द्वारा प्राचीन ऐतिहासिक मान्यता से भिन्न दृष्टिकोग प्रस्तुत किया गया है ग्रौर इस मत-वैभिन्न्य के लिए उसने प्रमाग भी दिये है। सिन्धु घाटी की सभ्यता जो इतिहासकारो द्वारा भारत की प्राचीनतम सभ्यता मानी गई है, लेखक उसका खडन करता है। इस सम्बन्ध मे उसका मत है—

"ग्राधुनिक पुरातत्त्ववेता ग्रपनी ऐतिहासिक खोजो के लिए खडहर, शिलालेख ग्रौर सिक्के इन तीन चीजो को ही प्रामाणिक मानते है, परन्तु साहित्य को भी एक प्रमाण क्यो न माना जाय? सिन्धु घाटी के भग्नावशेष ही इस देश की सबसे पुरानी सामग्री क्यो मानी जानी चाहिए?[2].. साहित्य को मै सबसे पुरानी सामग्री मानता हूँ। ग्रत: श्रुति, स्मृति ग्रौर पुराणो का काल सिन्धु घाटी की सभ्यता से कही पुराना है, चाहे उस समय की वस्तुएँ हमे ग्रब तक उपलब्ध न हुई हो।"[3]

भारतीय सस्कृति की प्रमुख विशेषताग्रो का वर्णन करने के उपरात लेखक ने उसमे व्याप्त कतिपय त्रुटियो की ग्रोर सकेत भी किया है। हमारी सस्कृति मे जो सकीर्णता ग्रा गई है, उसे उसने सबसे बडा दोष बताया है। सकीर्णता के ग्रतिरिक्त ग्रन्य त्रुटियो का उल्लेख करते हुए उसने लिखा है—

"भारतीय सस्कृति मे प्रत्येक व्यक्ति को ऋषि-ऋण, देव-ऋण ग्रौर पितृ-ऋण से मुक्त होना ग्रावश्यक माना जाता था। ऋषि-ऋण से मोक्ष पाने के लिए शिक्षा ग्रावश्यक थी। ग्रत उपनयन ग्रौर समावर्तन दो सस्कार महत्त्वपूर्ण थे। शिक्षा की ग्रवहेलना हुई। उपनयन सस्कार का ग्रर्थ केवल एक सूत की माला को गले मे डाल लेना माना जाने लगा। उपनयन व समावर्तन दो सस्कारो के बीच विद्याध्ययन के लिए 12 वर्ष गुरुकुल मे निवास ग्रावश्यक था। उस 12 वर्ष के समय का लोप हो उपनयन ग्रौर समावर्तन सस्कार एक ही दिन होने लगे। देव-ऋण से मुक्ति पाने के लिए जो यज्ञ ग्रावश्यक थे ग्रौर जिन यज्ञो की भगवान कृष्ण ने एक नवीन व्याख्या की थी, उसकी ग्रोर कोई ध्यान नही रहा। केवल एक पितृ-ऋण से लोग मुक्ति पाने के लिए देश की जनसख्या को बढाने लगे। दूसरे शब्दो मे सन्तानोत्पत्ति पितृ-ऋण से मुक्ति प्राप्त

1 मेरे जीवन के विचार-स्तम्भ, पृ० 3-4।

2 वही, पृ० 13।

3 वही, पृ० 15।

करने का साधन न माना जाकर विषय-वासना की पूर्ति का साधन मात्र रह गई।"[1]

सेठ जी के इस गवेषणात्मक निबन्ध मे हमे सतुलित दृष्टिकोण दिखाई पडता है। विषय का गहन अध्ययन, तर्कपूर्ण शैली तथा नवीन मौलिक स्थापनाएँ प्रस्तुत निबन्ध की कुछ प्रमुख विशेषताएँ है।

'भारतीय सस्कृति मे अहिसा' इस सग्रह का दूसरा गवेषणात्मक निबन्ध है। इसमे अहिंसा की महत्ता का प्रतिपादन वैदिक तथा जैन धर्म के ग्रन्थो के आधार पर किया गया है। इसी सन्दर्भ मे लेखक ने हिसा के स्तर, हिसा के भेद, हिसा के आधार, अहिसा के रूप, हिसा के उपभेद, हिसक के रूप, व्यक्तिगत आचरण मे अहिसा, व्यक्तिगत और सामूहिक हिसा आदि पर भी प्रकाश डाला है। लेखक का यह दृढ विश्वास है कि ससार का अस्तित्व सामूहिक अहिसा पर ही निर्भर है।

अहिसा सम्बन्धी विभिन्न सिद्धान्तो का विवेचन करने के उपरान्त अन्त मे लेखक ने इस सम्बन्ध म अपनी मान्यताओ का वर्णन इस प्रकार किया है—

(1) व्यक्तिगत रूप से मनुष्य पशुत्व का सहार कर पूर्ण देवत्व प्राप्त कर सकता है।
(2) आवश्यक हिसा का जीवित रहते हुए निवारण असभव है।
(3) समस्त सृष्टि के मानव व्यक्तिगत रूप से देवता नही बन सकते। अत व्यक्तिगत झगडे, रक्तपात इत्यादि सदा रहेगे।
(4) सामूहिक हिसा, युद्ध इत्यादि की समाप्ति अवश्यम्भावी है।[2]

लेखक की उपर्युक्त मान्यताओ मे उसका आशावादी दृष्टिकोण दिखाई पड रहा है, उसे पूर्ण विश्वास है कि ससार की जघन्य हिंसात्मक वृत्ति का अन्त सम्भव है।

प्रस्तुत सग्रह का तृतीय निबन्ध 'भारत की राजभाषा' लेखक के मौलिक चिन्तन का परिचायक है। इस निबन्ध में अन्य निबन्धो की अपेक्षा उसके निजी अनुभवों की अभिव्यक्ति अधिक हुई है। हिन्दी भाषा के प्रति लेखक का ममत्व प्रारम्भ से ही रहा है, सविधान सभा के सदस्य के रूप मे हिन्दी को राजभाषा के सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित कराने के लिए स्वर्गीय टडन जी के साथ उन्होने अथक परिश्रम किया था और आज भी वे हिन्दी के प्रबल समर्थक के रूप मे हिन्दी जगत् मे विख्यात है।

प्रस्तुत निबन्ध मे राजभाषा के रूप मे हिन्दी के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है तथा उससे सम्बन्धित सभी प्रश्नो, समस्याओ, उसके प्रसार के मार्ग मे आने वाले

1 मेरे जीवन के विचार-स्तम्भ, पृ० 55-56।
2 वही, पृ० 83।

व्यवधानों, उसके विकास के लिए भावी योजनाओं तथा अन्य महत्त्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डाला गया है। केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों की हिन्दी के प्रति उपेक्षा वृत्ति पर लेखक ने गहरा क्षोभ प्रकट किया है तथा इसके साथ ही देशवासियों की हिन्दी विषयक उदासीनता से भी वह कम दुखी नही है।

अंग्रेजी को भारत की एकता का आधार मानने का बहाना करने वाले व्यक्तियों की मनोवृत्ति का यथार्थ चित्रण करते हुए लेखक ने लिखा है—

"यह बात आज भी है कि जो लोग अंग्रेजी की हिमायत करते है उनमे से निन्यानवे प्रतिशत भारत की एकता की बात मन मे नही रखते, वे केवल इस एकता की दुहाई अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए देते है। नही तो क्या यह प्रश्न उनके मन मे नही उठता कि आज अंग्रेजी के कारण भारत की निन्यानवे प्रतिशत जनता और राज्य के बीच खाई पैदा हो गई है और बढती जा रही है। क्या उनको यह सोचने का समय नही मिलता कि अंग्रेजी के कारण आज भारत के निन्यानवे प्रतिशत नागरिक राज-दरबार मे प्रवेश नही कर पाते। उनकी संतान को कही कोई राज्य-पद नही मिलता। वे मूक, निरीह असहाय रहे आते है।"[1]

सेठ जी का यह कथन सर्वथा सत्य है कि "हमारे देश मे भी कांग्रेस का आन्दोलन तब तक निष्प्राण था जब तक वह केवल अंग्रेजी जानने वाले वर्ग तक सीमित था और उसमे जीवन-ज्योति उसी समय जगी, जब पूज्य बापू ने हिन्दी को और भारतीय भाषाओं को उस आन्दोलन का आधार बनाया और ग्राम-ग्राम मे, नगर-नगर मे भारतीय भाषाओं के माध्यम द्वारा स्वाधीनता की अलख जगा दी। भारतीय राष्ट्रीयता का इतिहास भारतीय जन-साधारण का इतिहास है।"[2]

आशावादी स्वर मे निबन्ध की समाप्ति लेखक के निजी आशावाद की सूचक है। हिन्दी के विकास के लिए लेखक जनता का आह्वान करता है—

"मै इस देश की जनता का आह्वान करता हूँ कि वह इस ज्योति-शिखा को लेकर, इस भाषा की अपार शक्ति को लेकर ग्राम-ग्राम और नगर-नगर मे अलख जगाए। हमारे जन-मानस को आन्दोलित करे, जिससे कि हम सब बाधाओं को हटाकर, सब विदेशी जंजीरो को तोड कर, अपना भाग्य-निर्माण करने के लिए और संसार की जातियो मे अपना उचित स्थान प्राप्त करने के लिए द्रुत गति से अग्रसर हो सके।"[3]

'भारत मे गाय' इस संग्रह का चतुर्थ और अन्तिम निबन्ध है। लेखक का भारतीय संस्कृति से अनुराग रहने के कारण उसके अभिन्न अंग गौ के प्रति प्रारम्भ से

---

1 मेरे जीवन के विचार-स्तम्भ, पृ० 119।

2 वही, पृ० 120-21।

3 वही, पृ० 146।

ही उसे सहज श्रद्धा रही है और आज भी वह गायो के प्रति अत्यन्त श्रद्धावान है तथा गोवध का तीव्र विरोधी है।

प्रस्तुत निबन्ध मे भारत की धर्म-प्राण संस्कृति मे गाय का स्थान, आर्थिक दृष्टि से गाय का महत्त्व, गोशालाओ की भूमि एव उनकी वित्तीय स्थिति, गोशालाओ का पारस्परिक सहयोग तथा गायो के प्रति हमारा कर्त्तव्य आदि विषय से सम्बन्धित अनेक बातो पर प्रकाश डाला गया है।

निबन्ध का स्वरूप गवेषणात्मक अधिक है। वेद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थो तथा तुलसी, सूर, कबीर आदि की रचनाओ मे उपलब्ध गाय के प्रति पूज्य भावनाओ के आधार पर उसकी सास्कृतिक महत्ता प्रतिपादित की गई है। लेखक के अनुसार, "गाय का धार्मिक दृष्टि से, दूसरे शब्दो मे सॉस्कृतिक दृष्टि से, इस देश मे हजारो या लाखो वर्षो से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।"[1] उसका कथन है कि "वेदो मे एक सौ इकत्तीस स्थलो पर गाय को अवध्य कहा गया है।"[2] इसी प्रसग मे लोकमान्य तिलक, महामना प० मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय तथा महात्मा गाँधी के गो रक्षा सम्बन्धी मतो को उद्धृत किया गया है। लेखक का कथन है कि केवल हिन्दू ही नही, स्वराज्य आन्दोलन काल के श्री मजरुल हक, हकीम अजमल खॉ, डाक्टर अन्सारी आदि मुस्लिम नेताओ ने भी गोवध बन्द करने का समर्थन किया था। इस्लाम के कट्टर अनुयायी ख्वाजा हसन निजामी एव अन्य प्रभावशाली मुस्लिम विद्वानो ने गोहत्या निषेध करने के लिए कुरान शरीफ तथा दूसरे इस्लामी साहित्य की बिना पर न जाने क्या-क्या और कितना लिखा था।[3]

आर्थिक दृष्टि से गाय का महत्त्व प्रकट करने एव उसके दूध की सापेक्षिक उपयोगिता सिद्ध करने के प्रसग मे प्रामाणिक ऑकडो का प्रयोग किया गया है। अन्त मे लेखक ने अपनी आशका निम्न शब्दो मे व्यक्त की है—

"यदि जनता और सरकार ने गोरक्षण और गोसम्वर्धन पर ध्यान नही दिया तो देश का आर्थिक ढॉचा नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा। सॉस्कृतिक और धार्मिक भावना को ऐसी ठेस पहुँचेगी जो कल्पना से भी परे है।"[4]

सेठ जी के निबंध साहित्य की विशेषताएँ

'नाट्य कला मीमासा' तथा 'मेरे जीवन के विचार-स्तम्भ' पुस्तक मे सग्रहीत सभी निबन्ध विचारात्मक है। इनमे भावुकता, कल्पना तथा रागात्मकता के स्थान

1 मेरे जीवन के विचार-स्तम्भ, पृ० 147।
2 वही, पृ० 147।
3 वही, पृ० 153।
4 वही, पृ० 181।

पर बौद्धिकता का प्राधान्य है। केवल एक निवन्ध 'भारत की राजभाषा' को छोड़कर शेष सभी गवेषणात्मक वर्ग के अन्तर्गत आएँगे। इन निवन्धो मे लेखक विभिन्न मान्यताओ का उल्लेख करने के पश्चात् अपनी निजी मान्यता का प्रतिपादन तर्कपूर्ण शैली के आधार पर करता है।

दोनो सग्रह के सभी निवन्ध विषयनिष्ठ है अत लेखक का व्यक्तित्व प्रत्यक्ष न प्रकट होकर परोक्ष ही रहा है। शैली की दृष्टि से लेखक ने व्यास शैली को अपनाया है और जहाँ तक सम्भव हो सका है भाषा की प्राजलता को बनाए रखने का पूरा प्रयास किया है। सम्पूर्ण वर्णन अभिधात्मक है, लक्षणा एव व्यजना का चमत्कार ढूँढने वाले सज्जनो को निराश ही होना पडेगा। कही-कही वाक्य-रचना भी लड-खडाती प्रतीत होती है। परन्तु इन कतिपय सीमाओ के कारण निबन्धो के समसाम-यिक महत्त्व मे किसी प्रकार का अन्तर नही पडा है। सेठ जी के सभी निबन्ध गहन अध्ययन, मनन, चिन्तन के उपरान्त लिखे गए प्रतीत होते है, अत उनमे बौद्धिक परितोष के लिए पर्याप्त नूतन सामग्री उपलब्ध है।

अध्याय 8

उपन्यास

तिलिस्मी एव ऐयारी उपन्यासो की कला से प्रभावित होकर इसी की परम्परा मे सेठ गोविन्ददास ने अपना पहला उपन्यास 'चम्पावती' केवल 12 वर्ष की अल्प आयु मे लिखा था। उसके बाद उन्होने दो और उसी प्रकार के उपन्यास 'कृष्णलता' तथा 'सोमलता' का निर्माण किया। 'सोमलता' उपन्यास कई भागो मे लिखा गया था। जिस समय गोविन्ददास जी मैट्रिक स्तर की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे उस समय उन्होने शेक्सपियर के चार नाटको के आधार पर चार उपन्यास लिखे। उनके चार उपन्यास 'सुरेन्द्र सुन्दरी', 'कृष्णकामिनी', 'होनहार' तथा 'व्यर्थ सदेह' क्रमशः 'रोम्यो जूलियट', 'एज यू लाइक इट', 'पेरेक्लीज प्रिंस ऑफ टायर' तथा 'विटर्स टेल' के आधार पर निर्मित हुए थे। उपर्युक्त उपन्यासो मे से शेक्सपियर के नाटको पर लिखे गए उपन्यास तथा 'सोमलता' के तीन भाग उस समय प्रकाशित भी हुए थे।[1]

सेठ जी का यह समग्र साहित्य अनुपलब्ध है। स्वय लेखक (सेठ जी) के पास इनमे से किसी की न तो पाडुलिपि है और न कोई प्रकाशित प्रति ही। रचनाओ की अनुपलब्धि के कारण उनके गुण-दोष का विवेचन असम्भव है।

उपन्यास के क्षेत्र मे सेठ जी की महत्त्वपूर्ण देन उनका विशालकाय 'इन्दुमती' उपन्यास है। जिस प्रकार चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की एक ही कहानी 'उसने कहा था' ने उन्हे कहानीकारो की पक्ति मे लाकर बिठा दिया और बिठा ही नही दिया अपितु एक महत्त्वपूर्ण स्थान का अधिकारी भी बना दिया, उसी प्रकार सेठ जी का एक ही उपन्यास (इन्दुमती) उन्हे औपन्यासिक क्षेत्र मे प्रतिष्ठित कराने मे समर्थ है।

इन्दुमती

छोटे टाइप के अक्षरो मे 933 पृष्ठ का विशालकाय उपन्यास 'इन्दुमती' सन् 1952 मे प्रभात प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। प्रकाशन के कुछ वर्ष बाद पाठको की सुविधा के लिए इसके आकार मे कतिपय परिवर्तन किया गया है और

1 सेठ गोविन्ददास जी से प्राप्त सूचना के आधार पर।

इस समय यह तीन रूपो मे उपलब्ध है—

1 **बृहद् संस्करण**—यह उपन्यास का मूल रूप है और इसमे प्रकाशन के उपरान्त अब तक कोई परिवर्तन नही हुआ है। इसका द्वितीय सस्करण भी अब तक प्रकाशित नही हो सका है। इसकी पृष्ठ सख्या 933 है।

2 **सक्षिप्त सस्करण**—मूल उपन्यास से ऐतिहासिक विवरणो और आधुनिक भारतीय समाज के विभिन्न चित्रो को निकाल कर इसका सक्षिप्त सस्करण श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' ने तैयार किया है। इसकी पृष्ठ सख्या 429 है और यह 1959 मे भारतीय विश्व प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है।

3 **पाकेट बुक संस्करण**—यह उपन्यास का सबसे सक्षिप्त रूप है। पाकेट बुक के आकार के 120 पृष्ठो मे उपन्यास की केवल मूल कथा को ही स्थान दिया है। इस सस्करण मे ऐतिहासिक विवरणो तथा अन्य आनुषगिक घटनाओ को समाविष्ट नही किया गया है।

रचनाकाल एवं निर्माण की पृष्ठभूमि—सन् 1944 मे सेठ जी राजनीतिक बन्दी की हैसियत से दमोह जेल मे रखे गए थे। यहाँ आने से पूर्व उनके पिता की दशा अत्यन्त चिन्ताजनक थी और वे स्वय उन्हे इस स्थिति मे छोड़ आए थे। इस पारिवारिक सकट के कारण उनका मन अशान्त था और मन की इसी उद्विग्नावस्था मे 'इन्दुमती' का निर्माण हुआ। उपन्यास की नायिका इन्दुमती की मानसिक अशान्ति के मूल मे सभवत लेखक की अपनी अशान्ति ही है।

उपन्यास की निर्माणकालीन परिस्थितियो के सम्बन्ध मे सेठ जी का कथन इस प्रकार है—

"चित्त को शान्त करने के लिए मैंने फिर से कुछ लिखने का विचार किया। पहले किसी नाटक लिखने की बात सोची, पर इस बार नाटक लिखने मे मन नही जमा। अत नाटक के अपने दायरे के बाहर जा मैं एक उपन्यास लिखने की बात सोचने लगा। वैलोर जेल से ही एक ऐसी कथा मेरे मन मे उठ रही थी, जो काफी दीर्घकाय थी और जिसका नाटक मे समावेश न हो सकता था। . उपन्यास की कथा थी एक स्त्री की मनोवैज्ञानिक जीवनी, जिसकी पृष्ठभूमि मे सन् 1916 से अब तक का भारत का इतिहास भी आ जाता था। मेरा अन्दाज था कि उपन्यास ढाई-तीन सौ पृष्ठो मे समाप्त हो जाएगा और यह अन्दाज मेरा इसलिए था कि सदा योजना बना कर उस योजना के अनुसार 'सिनापसेस' लिखकर मैं कोई रचना करना आरम्भ करता था। पर इस उपन्यास को लिखते-लिखते मैंने देखा कि इस उपन्यास के सम्बन्ध मे मैंने जो योजना और सिनापसेस बनाया था उसमे न जाने कितनी नयी-नयी चीजे जोडी जा रही है। नाटको मे एक सीमा तक ही पृष्ठ सख्या रह सकती है, क्योकि उपन्यास मे ऐसी कोई कैद नही रहती इसलिए कदाचित् यह हो रहा था। जो कुछ हो, दमोह जेल तथा जेल से छूटने के बाद भी इस योजना मे कुछ न कुछ जुड़ता

ही रहा और अन्त मे जब यह उपन्यास छपा तब यह छपे हुए 933 पृष्ठो मे समाप्त हो सका।"[1]

सेठजी ने लिखा है कि इस उपन्यास के लिखने मे मेरा कुछ ऐसा मन लगा कि कई बार तो एक-एक दिन और रात मे मैंने इसे सोलह-सोलह घटे तक लिखा। प्राय रात्रि को मे नही लिखा करता, पर इस उपन्यास के कुछ अश रात को दो-दो बजे एकाएक नीद टूटकर लिखे गए। इतना बडा उपन्यास पूरा करने मे दमोह जेल मे मुझे केवल पौने दो महीने लगे।[2]

यद्यपि यह उपन्यास 1944 मे पूर्ण हो गया था किन्तु 1952 मे प्रकाशन से पूर्व तक इसका परिमार्जन होता रहा और इसमे कुछ न कुछ जुडता रहा इसीलिए प्रकाशित होते-होते यह एक विशालकाय ग्रन्थ बन गया।

इन्दुमती में औपन्यासिक तत्त्व—हिन्दी उपन्यास का आधुनिक रूप पश्चिम की देन है। पाश्चात्य कथा-साहित्य (Novel) के तत्त्व हिन्दी के उपन्यास तत्त्व के रूप मे भी मान्यता प्राप्त कर चुके है। उपन्यास के निम्न 6 तत्त्व माने गए है—

1 कथावस्तु
2 पात्र और चरित्र-चित्रण
3 कथोपकथन
4 देश-काल
5 भाषा-शैली
6 उद्देश्य

उपर्युक्त 6 तत्त्वो के आधार पर हम 'इन्दुमती' का निरीक्षण-परीक्षण करेंगे।

कथावस्तु—'इन्दुमती' का कथानक लखनऊ के प्रसिद्ध वकील अवध बिहारीलाल और उनकी पत्नी सुलक्षणा के सरस वार्तालाप से प्रारम्भ होता है। वार्तालाप के खास स्थल पर वकील साहब कहते है—

"विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है। जो अपने को ही केन्द्र मान, सब कुछ अपने लिए करता है, ससार की समस्त वस्तुओ को अपने आनन्द के लिए साधन मानता है, उसी का जीवन सुखी और सफल होता है।"[3] इसके प्रत्युत्तर मे सुलक्षणा कहती है—"नारी विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ नही मान सकती। ससार की समस्त वस्तुओ को अपने आनन्द के लिए साधन मानने से उसका जीवन सुखी और सफल नही हो सकता।"[4]

---

1 आत्म-निरीक्षण, भाग 2, पृ० 477।
2 वही, पृ० 479।
3 इन्दुमती, वृहद् सस्करण, पृ० 1।
4 वही, पृ० 5।

वार्तालाप का क्रम जारी रहता है और वकील साहब विवाह को नारी की आर्थिक पराधीनता का फल बताकर इस संस्था (विवाह) की त्रुटियो का उल्लेख करते हैं एव इनके साथ ही यह विश्वास भी व्यक्त करते है कि "वह वक्त बहुत दूर नही जब शादी का रिवाज ही खत्म हो जायेगा। स्त्री फिर से स्वतन्त्र हो जायेगी, पर यह होगा तब, जब औरत आर्थिक दृष्टि से स्वाधीन होगी, उसकी स्वय की सपत्ति होगी, वह खुद कमाना शुरू करेगी।"[1]

अवध बिहारी की उपर्युक्त धारणा की अभिव्यक्ति के अनन्तर सुलक्षणा अपनी मान्यता को इस प्रकार प्रकट करती है—

"नारी का विकास तो पत्नीत्व और मातृत्व मे है। विवाह उसे क्रीत दासी के रूप मे रखने का सबसे बडा विधान नही, वह उसके कल्याण का महान् अनुष्ठान है। अर्थ ही विश्व मे सब कुछ नही, उससे बडी भी कोई चीज है।"[2]

वकील साहब अपनी एक मात्र सन्तान इन्दुमती को अपनी मान्यताओ के अनुरूप विकसित करना चाहते है, अत अपने जीते जी पत्नी के निर्वाह के लिए यथेष्ट धन छोडकर शेष सारी सम्पत्ति का वसीयतनामा उसके नाम कर देते है ताकि वह आर्थिक दृष्टि से किसी के पराधीन न रहे। इन्दुमती के विवाह के विषय मे जब सुलक्षणा वकील साहब से कहती है कि "चाहे तुम उसके विवाह के खिलाफ न हो, पर तुम्हारे उपदेशो के कारण वह अपने विवाह के खिलाफ हो गयी है।"[3] तो इस पर वकील साहब अपना मत व्यक्त करते हुए कहते है—"शादी कर खाविन्द की गुलाम होने से कुमारी रहना कही अच्छा है।"[4]

इन्दुमती का मानसिक विकास पिता के सिद्धान्तो के अनुरूप होता है। जीवन के विशिष्ट अवसरो (दाम्पत्य सुख, पुत्रोत्पत्ति की कामना आदि के समय) पर वह माता की मान्यताओ के प्रति भी आकृष्ट हुई है लेकिन पूर्ण व्यापकता पिता के सिद्धान्तो की ही है।

इन्दुमती अपने व्यक्तित्व को प्रमुख मानकर शेष सृष्टि को अपने आनन्द का साधन समझती है। उसकी यह भावना कालेज जीवन से प्रारम्भ होती है और वहा वह अपने सहपाठी छात्र-छात्राओ को भुनगे के समान समझती है। परम्पराओ के पालन की अपेक्षा उन्हे तोडने मे उसे अधिक आनन्द आता है।

कालेज जीवन मे इन्दुमती त्रिलोकीनाथ, वजीर अली तथा कुछ अन्य छात्रो के प्रति आकृष्ट होती दिखाई पडती है। इन सबकी उसके प्रति क्या भावनाएँ है, इसका

1 इन्दुमती, वृहद् सस्करण, पृ० 6।
2 वही, पृ० 8।
3 वही, पृ० 9।
4 वही, पृ० 9।

पता लगाने के लिए वह रक्षाबन्धन के दिन राखी बाधने का उपक्रम करती है। सर्वप्रथम वह त्रिलोकीनाथ के हाथ मे राखी बॉधने के लिए आगे बढती है लेकिन त्रिलोकीनाथ यह कहकर कि 'यह बडी भारी जिम्मेदारी है, श्रीमती जी' अपना हाथ समेट लेता है। वजीरअली को छोडकर शेष सभी निमन्त्रित छात्र त्रिलोकीनाथ का अनुसरण करते है। उस छात्र-समुदाय मे से केवल वजीरअली आगे बढकर यह कहते हुए 'मै इस जिम्मेदारी को उठाने के लिए तैयार हूँ, बहन जी, आप मुझे राखी बॉध दे' इन्दुमती से राखी बँधवाता है। वजीर अली, जो आगे चलकर प्रोफेसर वन जाता है, आजीवन इस उत्तरदायित्व को निभाता है।

त्रिलोकीनाथ के राखी न बधवाने पर भी इन्दु का आकर्षण उसके प्रति कम नही होता। वह समाजसेवी व्यक्ति होने के कारण अवकाश के दिनो मे निकट के गॉव मे लोगो की सेवा के लिए भी जाता रहता है, दो बार इन्दु भी उसके साथ गॉव जा चुकी थी। लेकिन उसे गॉव का जीवन अत्यन्त घृणास्पद प्रतीत हुआ था। ग्रामीण बच्चो के स्पर्श से उसे घृणा हुई थी और यही नही घर आकर उसने केवल इसलिए स्नान किया था कि वह ग्रामीण बच्चो से छू गई थी।

अवध बिहारीलाल के जीवन के पचास वर्ष पूर्ण होने पर उनका जन्म-दिन (20 अप्रैल) उनके परिवार तथा मित्रो द्वारा उनकी 'स्वर्ण जयन्ती' के रूप मे मनाया जाता है। इस आयोजन की एक विशेषता यह होती है कि इसमे इन्दुमती 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक के अभिनय की योजना बनाती है तथा उसमे स्वय सुभद्रा का अभिनय करने का निश्चय करली है। उस जमाने मे किसी सम्भ्रात कुल की लडकी का नाटक मे अभिनय एक अभूतपूर्व घटना ही थी। लेकिन इन्दुमती जिस बात का निश्चय कर लेती थी उससे पीछे हटना उसने कभी सीखा ही नही था।

इस 'स्वर्ण जयन्ती' समारोह मे सम्मिलित होने के लिए कानपुर से मारवाडी सेठ रामस्वरूप का पुत्र ललितमोहन आता है। वह इन्दु को नाचते देखता है, वह भी उसे देखती है और दृष्टि-विनिमय के साथ दोनो प्रेम की डोर मे उलझ जाते है क्योकि दोनो ही शिष्टता एव सौन्दर्य की मूर्ति है। ललित के लखनऊ से चले जाने के बाद दोनो के मध्य प्रेम-पत्रो का आदान-प्रदान होता है। जो इन्दु विवाह के सर्वथा विरुद्ध होती है वही ललित के साथ दाम्पत्य-सूत्र मे बँध जाने की इच्छुक दिखाई देती है। ललित मोहन भी इन्दुमती से विवाह का इच्छुक है लेकिन दोनो के विवाह मार्ग मे सबसे वडी बाधा अन्तर्जातीयता है—सेठ रामस्वरूप सनातनी मारवाडी है और अवध बिहारीलाल कायस्थ।

ललित पिता को पत्र लिखकर इन्दुमती से विवाह की इच्छा व्यक्त करता है और साथ ही उनकी अनुमति भी चाहता है। पत्र पाकर रामस्वरूप के क्रोध की सीमा नही रहती और अनुमति प्रदान करने की बात तो दूर रही वे इस प्रस्ताव का घोर विरोध करते है। इस सम्बन्ध मे उनका कथन द्रष्टव्य है—

" पण सुन ले तु कान खोल के सुन ले ! दोनो कान सुन्यो, दोनो कान ! म्हारो घर मे यो अवरम को काम नही होसी कदेही नही ! . बाणियारी बेटी घर आनी, बाणियारी धरम-करम वाली कायथ की बेटी म्हारे घर आवे ! . नाटक करवा वाली नाटक नाटक नाटक ।"[1]

पिता के स्पष्ट विरोध के बावजूद ललित अपने निश्चय पर अडिग रहता है। उधर इन्दुमती वजीरअली के सहयोग से ललित के साथ गुप्त रूप से विवाह करने की योजना बनाती है। जयन्ती के एक मास के भीतर (18 मई को) गुप्त रूप से हिन्दू रीति के अनुसार दोनो दाम्पत्य-सूत्र मे बँध जाते है। विवाह कराने के लिए वजीरअली एक ब्राह्मण को पकड लाता है जो लम्बी दक्षिणा प्राप्त कर 'शास्त्रोक्त विधि' से दोनो का विवाह करा देता है।

विवाह की सूचना रामस्वरूप तथा अवध बिहारीलाल को क्रमश ललित तथा इन्दु के पत्रो द्वारा उस समय मिलती है जब दोनो की भाँवरे पड रही होती है। रामस्वरूप को इस सूचना से इतना बडा आघात पहुँचता है कि वे ललित से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर देते है और उसको सारी पैतृक सम्पत्ति से भी वञ्चित कर देते है। अवध बिहारी एव सुलक्षणा भी इस सूचना से आश्चर्यचकित हो जाते है लेकिन उन्हे रामस्वरूप के समान आघात नही पहुँचता अपितु सुलक्षणा तो इन्दु के विवाह कर लेने पर प्रसन्न ही होती है।

विवाह के पश्चात् ललित अपनी पत्नी इन्दु के साथ ससुर के घर मेहमान के रूप मे कुछ दिन रहता है। दोनो का प्रारम्भिक वैवाहिक जीवन बडा ही सुखी चित्रित हुआ है। वैवाहिक जीवन का आनन्द प्राप्त करने के लिए दोनो बम्बई, चेरापूजी आदि स्थानो का भ्रमण भी करते है और भ्रमण उनके दाम्पत्य सुख की वृद्धि का साधन बनता है। इस अवस्था मे इन्दुमती कभी-कभी सोचती है कि नारी का पूर्ण विकास तो पत्नीत्व मे ही है।

ललित प्रथम श्रेणी मे बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करता है। वह कानपुर मे रहकर वही से एम० ए० करने का निश्चय करता है। पहले तो इन्दु लखनऊ छोडने का विरोध प्रकट करती है लेकिन बाद मे पति की अनुगामिनी बनकर वह भी कानपुर मे रहकर पढने का निश्चय करती है। ललित एम० ए० प्रथम वर्ष और इन्दु बी० ए० के प्रथम वर्ष मे दाखिला लेते है। राजनीतिक कार्यो के प्रति रुचि रखने के कारण ललित सन् 1920 के महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन मे दीक्षित होकर असहयोगी बन जाता है और उसी के साथ इन्दुमती भी असहयोग की दीक्षा लेती है।

अपने पिता रामस्वरूप, जिन्हे राजभक्ति के कारण 'सर' की उपाधि मिलती है, के सम्मान मे आयोजित पार्टी के लिये पिकेटिंग करने के आरोप मे ललित गिरफ्तार

1 इन्दुमती, बृहद् सस्करण, पृ० 191।

होकर जेल जाता है। जेल मे उसका स्वास्थ्य बिगडने लगता है और वह वहा से तब छूटता है जब उसका रोग असाध्य बन गया होता है।

ललित के जेल से मुक्त होने पर उसके पिता उसे तथा उसकी पत्नी इन्दुमती को अपने घर ले जाते है। स्नेहाभिभूत पिता पुत्र से लिपट जाता है और पुत्रवधू के प्रति भी सच्चा स्नेह प्रदर्शित करता है।

जीवन के अन्तिम दिनो मे ललित इन्दु से कहता है—"मेरे जितने अधूरे काम है उनको पूरे करना। तुम मे वह क्षमता है। तुम वह कर सकती हो।"[1]

कुछ दिन पश्चात् ललित की मृत्यु हो जाती है।

ललित का देहावसान इन्दुमती के लिए बडा भारी आघात सिद्ध होता है, वह विक्षिप्त हो जाती है और उसकी यह दशा छ महीने तक रहती है।

पति की मृत्यु के छ मास बाद इन्दु लखनऊ लौट जाती है। ललित की अंतिम इच्छानुसार वह राजनीतिक क्षेत्र मे कार्य करने का निश्चय करती है और कुछ दिन पश्चात् प्रान्तीय असेम्बली की सदस्या चुन ली जाती है।

पुत्र की मृत्यु के छ मास बाद रामस्वरूप इन्दु को कानपुर बुलाते है और उससे एक बालक को गोद लेने का आग्रह करते है जिससे उनकी अतुल सम्पत्ति की रक्षा हो सके। इन्दु के द्वारा रामस्वरूप के प्रस्ताव का तुरन्त समर्थन न होने पर वे उसे सोचकर उत्तर देने का अवसर देते है और वह लखनऊ चली आती है।

रामस्वरूप के प्रस्ताव का समर्थन कर पाने मे वह अपने आपको असफल पाती है लेकिन उसकी सुप्त मातृत्व भावना प्रबल हो उठती है और वह पुत्र की कामना करने लगती है। ललित के प्रगाढ आलिगनो के बाद किसी अन्य पुरुष की पर्यंक शायिनी बनना उसे कदापि स्वीकार नही है, लेकिन पुत्र वह अवश्य चाहती है और वह भी ललित के अनुरूप। इसी बीच वह एक अग्रेजी पत्रिका मे 'कृत्रिम गर्भाधान' पर लेख पढती है और इस लेख से वह ऐसा अनुभव करने लगती है कि उसकी इच्छा पूर्ति अब असम्भव नही है।

इन्दु अपने सहपाठी त्रिलोकीनाथ, जो अब डाक्टर बन गया होता है, के पास जाती है और उसे वह लेख दिखाकर इच्छा व्यक्त करती है कि वह उसी ढग से सन्तान चाहती है। इन्दुमती डाक्टर त्रिलोकीनाथ से 'कृत्रिम गर्भाधान' के लिए आवश्यक इजेक्शन करने के लिए कहती है। त्रिलोकीनाथ को इन्दु के इस निश्चय से आश्चर्य होता है और वह नैतिकता की दुहाई देकर ऐसा करने से इन्कार कर देता है लेकिन उसके यह कहने पर कि यदि वह ऐसा नही करेगा तो वह अन्य किसी डाक्टर के पास चली जायेगी जो उससे बुरा ही होगा, त्रिलोकीनाथ 'कृत्रिम गर्भाधान' के लिए आवश्यक इजेक्शन कर देता है।

---

1 इन्दुमती, वृहद् सस्करण पृ० 451।

कृत्रिम गर्भाधान की क्रिया सफल होती है और इन्दु गर्भवती हो जाती है, समाज मे चारो तरफ उसकी बदनामी होने लगती है और लोग उसे व्यभिचारिणी समझने लगते हे। उसके पिता का तो देहावसान हो चुका होता है लेकिन मा सुलक्षणा भी उसके इस कार्य का समर्थन नही करती। इन्दु इस सामाजिक प्रकोप की रचमात्र भी परवाह नही करती, वह सभी सार्वजनिक सस्थाओ, समाजवादी सघ, क्लब तथा प्रान्तीय असेम्बली की सदस्यता से त्यागपत्र दे देती है। उसकी मातृत्व भावना इतनी प्रबल रहती है कि उसे इन सभी सस्थाओ से त्यागपत्र दे देने पर भी किसी प्रकार की पीडा का अनुभव नही होता। समाज के आक्षेपो की वह चिन्ता नही करती। वजीर अली लेख लिखकर, समाज मे भाषण देकर उसके कार्य का समर्थन करता है। डा० त्रिलोकीनाथ भी इस गर्भाधान की सभाव्यता पर अपना मत प्रकट कर देता है।

रामस्वरूप इन्दु के इस कार्य की सार्वजनिक निदा करके उससे अपना सबध विच्छेद कर लेता है और स्वय एक लडके को गोद ले लेता है।

बसत पचमी के दिन इन्दु को पुत्र होता है और उसका नाम मयकमोहन रखा जाता है। पाच छ साल तक तो इन्दु इस पुत्र-पालन मे इतनी व्यस्त रहती है कि वह सब कुछ भूल जाती है।

इसके बाद वजीर अली की प्रेरणा से इन्दुमती सार्वजनिक सेवा कार्य प्रारभ करती है। एक दिन वजीर अली के साथ वह लखनऊ की मजदूर बस्ती मे जाती है और वहा एक मजदूर मेट वीरभद्र के प्रति आकृष्ट हो जाती है। उसका यह आकर्षण निरतर बढता जाता है और उसकी वासना की उद्दाम धारा प्रवाहित हो उठती हे। जो इन्दु पति की मधुर भावनाओ को सजोये रखकर, कृत्रिम गर्भाधान द्वारा उसी का प्रतिरूप चाहती थी, वही वीरभद्र को अपनी शारीरिक भूख शान्त करने का साधन बनाने पर तत्पर दिखाई पडती है। वह वीरभद्र को इसी उद्देश्य से एकात मे बुलाती भी है लेकिन वीरभद्र की उसके प्रति बहन की भावना है। विशेष परिस्थिति वश वह उसकी इच्छापूर्ति के लिए तैयार भी हो जाता है, लेकिन इसी बीच उसे रामस्वरूप के पुत्र का घर जला देने के अपराध मे (जिसमे रामस्वरूप का पुत्र तथा उसकी पत्नी जलकर मर जाते है) आजीवन कारावास का दड मिलता है और इस प्रकार इन्दु का नैतिक पतन होने से बच जाता है।

वीरभद्र के जेल जाने के पश्चात् इन्दु अपने पुत्र मयक के प्रति आकृष्ट होती हे, लेकिन मयक उससे उदासीन रहता है क्योकि समाज मे उसे मा के कारण तिरस्कार का सामना करना पड रहा होता है और वह भी माँ को व्यभिचारिणी समझने लगता है। इन्दु उसके जीवन का वास्तविक रहस्य (कृत्रिम गर्भाधान सबधी फाइल) गुप्त रूप से उस तक पहुचा देती हे और मयक यह जानकार कि उसकी मा निष्कलक है, उसके प्रति आकृष्ट होता है और सच्चे हृदय से उसे प्यार करने लगता है।

इसी बीच मयक अपने एक हितैषी अध्यापक से कृत्रिम गर्भाधान के सम्बन्ध मे बातचीत करता है और उससे मा के कार्यो का समर्थन कराना चाहता है। अध्यापक मयक की माँ के कार्यो का समर्थन न कर अपितु उसे प्रकृति के विरुद्ध पाप सिद्ध करता है। इसके बाद मयक मा को फिर घृणा की दृष्टि से देखने लगता है और वह उससे छुटकारा पाने को लालायित प्रतीत होता है।

मयक की भावना से परिचित हो जाने पर इन्दु अपने जीवन की धारा को सर्वथा नवीन दिशा मे मोडने का निश्चय करती है। उसकी अहमन्यता फिर लौट आती है। वह अचल सम्पत्ति का वसीयतनामा मयक के नाम कर और चल सम्पत्ति साथ लेकर 'शशिबाला' नाम से देश-विदेश भ्रमण की योजना बनाती है। भारत के प्रमुख नगरो का भ्रमण करने के उपरात वह अमरीका जाकर अपनी नृत्य-गान कला से अमरीका वासियो को मुग्ध कर ख्याति प्राप्त करती है। यहा उसका सपर्क 18-19 वर्षीय छात्र मुरलीधर से होता है। इन्दुमती के साथ 'कृष्णलीला' मे मुरलीधर को कई बार कृष्ण बनने का अवसर मिलने के कारण वह इन्दु से प्रेम करने लगता है। इन्दु के जीवन मे सभवत प्रथम बार लेने के स्थान पर देने की भावना जाग्रत होती है और वह इस विद्यार्थी के हित की दृष्टि से बिना उसको सूचित किये भारत लौट आती है।

भारत आने पर वह सीधे डाक्टर त्रिलोकीनाथ के पास लखनऊ जाती है और अपने जीवन का सारा मर्म उसके सामने रखकर स्पष्ट रूप से स्वीकार करती है कि वह अब तक विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ मानती रही है, लेकिन इस मान्यता से उसको आत्मिक शान्ति नही मिली। वह त्रिलोकीनाथ से सुखी, शान्तिमय जीवन का रहस्य जानने को इच्छुक है। डा० त्रिलोकीनाथ उसी (इन्दु) के सिद्धान्त 'विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है' की वेदान्तवादी व्याख्या करके उसे बताता है कि "विश्व मे निज का व्यक्तित्व तो सब कुछ है ही, क्योकि बिना निज को जाने कोई भी व्यक्ति विश्व को नही जान सकता। और जहा एक बार वह अपने व्यक्तित्व को समझ लेता है, वहा उसमे और विश्व मे कोई भेद नही रह जाता। ससार की समस्त वस्तुए अपने आप उसके आनन्द का साधन बन जाती है। जब दूसरे वही है जो आप स्वय, जब सारा विश्व वही जो आप खुद, तब अपने को श्रेष्ठ तथा अन्य को हीन समझने का प्रश्न कहा उठता है ? अहमन्यता के वशीभूत हो जो आचरण आपने किया वह हो कैसे सकता है ?"[1]

व्यक्तित्व सम्बन्धी त्रिलोकीनाथ की नवीन व्याख्या के उपरात इन्दु का जीवन परिवर्तित हो जाता है, वह लखनऊ के निकट एक गाव मे अपनी सम्पत्ति से 'मातृगृह' का निर्माण कराती है और वही रहकर सार्वजनिक सेवा का जीवन

1 इन्दुमती, बृहद् सस्करण, पृ० 922।

अंगीकार करती है। उसको इस नवीन जीवन से पूर्ण सन्तोष मिलता है तथा वह इसमे शान्ति का अनुभव करती है।

मूल कथा के अतिरिक्त इसमे सन् 1916 से 1942 तक के राष्ट्रीय आदोलन का इतिहास भी पृष्ठभूमि के रूप मे आ गया है। इसमे भारतीय राजनीतिक सघर्ष के उतार-चढाव की कहानी समस्त विश्व की हलचलो के साथ चित्रित की गई है। इस चित्रण के साथ समाजवाद, साम्यवाद, गाधीवाद, दर्शनशास्त्र, अध्यात्मवाद, धर्मशास्त्र, समाजशास्त्र, विज्ञान, फ्रायड का मनोविज्ञान, नृत्य, शिल्प, शिशु मनोविज्ञान आदि अनेक विषयो की चर्चा भी इसमे की गई है। इसमे पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानो, लेखको की कृतियो से पर्याप्त उद्धरण भी दिये गये है। भारतीय जीवन की समग्रता के चित्रण के लोभ मे लेखक ने शहरी और ग्रामीण जीवन के विस्तृत चित्र अ कित किये है और इसके साथ ही वनिताश्रम, वेश्यालय, कचहरी, क्लब, सार्वजनिक सस्था, मजदूर बस्ती, तीर्थस्थल आदि के विवरण भी प्रस्तुत किये गये है। इसमे कही-कही लेखक ने अपने विचारात्मक निबन्धो के कुछ अ श (विवाह सस्था का विवेचन) भी समाविष्ट कर दिया। ग्र थ को सर्वागपूर्ण बनाने की इच्छा ने ही इसका कलेवर इतना बढा दिया।

कथावस्तु की विशेषताएं

'इन्दुमती' मे प्रासगिक कथाओ का सर्वथा अभाव होने के कारण इसकी कथावस्तु गुम्फित न होकर सरल है। सम्पूर्ण कथानक का ताना-बाना उपन्यास की नायिका इन्दुमती के चारो ओर बुना गया है अथवा यह कहना अधिक उचित होगा कि इन्दुमती के अतिरिक्त उपन्यास के अन्य पात्र उसकी चारित्रिक विशेषताओ एव सीमाओ को उद्घाटित करने के लिए ही निर्मित किये गये है। घटना-प्रधान उपन्यासो की भाति इन्दुमती का कथानक सुशृ खलाबद्ध नही है, बाबू गुलाबराय का यह कथन उचित प्रतीत होता है कि "इस उपन्यास के कथानक मे तारतम्य तो है किन्तु वह तारतम्य टूट-टूट कर जुडता हुआ दिखाई पडता है।"[1]

जहा तक रोचकता का प्रश्न है, मूल कथा की रोचकता मे सन्देह नही हो सकता लेकिन मूल कथा के अतिरिक्त अन्य विवरणो के कारण कथावस्तु की रोचकता एव उसके स्वाभाविक विकास मे बाधा अवश्य पहुँची है। उपन्यास की विशालता एव उसके अन्तर्गत अनेकानेक विषयो की चर्चा के मध्य मूल कथा कही-कही दब गई है और खोजने के लिए पाठक को प्रयास करना पडता है। अत्यन्त दीर्घकाय होते हुए भी उपन्यास मे वर्णित मूल कहानी के प्रति पाठक की जिज्ञासा बनी रहती है और इस दृष्टि से उपन्यास की कथावस्तु के निर्माण मे लेखक की सफलता असदिग्ध है।

---

1 सेठ गोविन्ददास व्यक्तित्व एव साहित्य, पृ० 190।

नहीं है, लेकिन नारी की प्यास अपने तीव्रतम रूप मे विद्यमान है। ललित के द्वारा उसकी शारीरिक प्यास कुछ सीमा तक शात हो जाती है लेकिन सर्वथा नही मिटती। उसकी यह अतृप्त भावना कु ठा का रूप ले लेती है और जब वह वीरभद्र नामक वलिष्ठ मजदूर युवक के ससर्ग मे आती है तो उसकी उद्दाम काम वृत्ति जाग्रत हो जाती है और वह पात्र-कुपात्र का ध्यान न रखकर उस पर बुरी तरह टूट पडती है। उसकी अग्नि इतनी प्रज्वलित रहती है कि वह वीरभद्र के बार-बार बहन कहने पर भी उससे अपनी ज्वाला शात करने का निवेदन करती है। वीरभद्र से निराश होने पर वह समस्त विश्व का भ्रमण कर मानसिक शाति प्राप्त करने का प्रयास करती है लेकिन उसका यह सारा प्रयास व्यर्थ सिद्ध होता है क्योकि उसे इन सब कार्यों के पश्चात् शाति की प्राप्ति नही होती। अत मे डा० त्रिलोकीनाथ के परामर्श और उसके द्वारा प्रस्तुत 'व्यक्तित्व' की वेदान्तवादी व्याख्या से प्रभावित होकर जब वह अपने व्यक्तित्व का उदात्तीकरण करती है, अपने को विश्व रूप बना कर सार्वजनिक सेवा का जीवन अगीकार करती है तब उसे पूर्ण शान्ति प्राप्त होती है।

इन्दुमती के चरित्र द्वारा लेखक ने अति बुद्धिवाद से अभिभूत भोगमय जीवन की तुलना मे त्याग, सेवा, उदारता से पूर्ण जीवन की श्रेष्ठता प्रदर्शित की है। वह इन्दु के पूर्व असतोष द्वारा भोगमय जीवन की निस्सारता सिद्ध करना चाहता है और इसमे उसे पर्याप्त सफलता मिली है।

इन्दुमती कम से कम भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व तो बिल्कुल नही करती। आज की सर्वाधिक प्रगतिशील आधुनिका भी अपने आचार-व्यवहार मे इन्दुमती का मुकावला नही कर सकती। डा० बलदेव प्रसाद मिश्र के इन शब्दो मे तथ्य है कि "इन्दुमती लोगो के हृदय की सहानुभूति भले ही न खीच पावे, परन्तु पाठको के मस्तिष्क का मथन तो वह कर ही देती है।"[1]

ललित मोहन—ललित मोहन सेठ रामस्वरूप का इकलौता पुत्र है जिसका लालन-पालन पश्चिमी सभ्यता के अनुरूप अत्यन्त धनाढ्य परिवार मे हुआ है। मा के वाल्यकाल मे ही चल बसने के कारण वह पिता के सरक्षण मे ही प्रारभ से रहा है और पिता ने उच्च से उच्च शिक्षको द्वारा उसे अग्रेजी ढग की शिक्षा दिलाई है तथा अग्रेजो के रहन-सहन के अनुसार ही उसे ढालने का प्रयास किया है। इसका परिचय सेठ जी ने 'इन्दुमती' मे इस प्रकार दिया है—

"सेठ रामस्वरूप के पुत्र का नाम ललित मोहन था। इसमे सन्देह नही कि जैसा नाम था वैसा ही उसका रूप था। गोरा रग, गुलाबी झाई लिए हुए। कद

1 जनतत्र, 13 सितम्बर, 1952, डा० बलदेव प्रसाद मिश्र का 'इन्दुमती' शीर्षक लेख।

ऊँचा, मुख तथा शरीर भरा हुआ, पर कुछ दुबलेपन की ओर झुका हुआ। सिर के बाल गहरे काले और बहुत ही पतले, बालो मे घूघर नही, पर सवारने मे लहरे पडी हुई। ललाट न बहुत चौडा और न सकरा। भवे कुछ चौडी और बीच मे मिली हुई। नेत्र महाकवि बिहारी (वास्तव मे रसलीन होना चाहिए—शोध-कर्त्ता) के निम्न-लिखित दोहे की प्रथम पक्ति के अनुसार—अमिय हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार।"[1]

ललित सिद्धान्तवादी युवक है जो अपने सिद्धान्त के सामने पिता की भी परवाह नही करता, लेकिन उसका सिद्धान्त प्रेम उसे अशिष्ट या उच्छृखल नही बनाता, वह वास्तव मे शिष्टता एव सौम्यता की प्रतिमूर्ति है। उसमे आत्म-सम्मान की भावना प्रबल है, लेकिन वह आत्म-सम्मान की रक्षा इन्दुमती के समान दूसरो को ठोकर मार कर नही करता अपितु अधिक से अधिक दूसरो का सम्मान करने का प्रयास करता है, उसकी यह सम्मान भावना उसके रूढिवादी पिता रामस्वरूप तथा पत्नी इन्दु के प्रति दिखाई पडती है। वह हर ऐसी कटु स्थिति को बचाता है जिससे पिता या पत्नी से सघर्ष न हो लेकिन किसी भी दशा मे सिद्धान्त नही छोडता। पिता के घोर विरोध करने पर भी इन्दु से अन्तर्जातीय विवाह करता है और पत्नी के विरोध करने पर भी कानपुर मे रहकर पढने का निश्चय नही त्यागता। सेठ जी ने लिखा है कि "मन की सब से निकृष्ट वस्तु भय का उसमे लवलेश न था। उसमे विचार और कृति का अद्भुत सामजस्य था। .कृति मे साहस, कर्मण्यता, आत्म-सयम और व्यवहार-कुशलता, जिन चार गुणो की सबसे अधिक आवश्यकता है, वे चारो उसमे थे। सौन्दर्य का वह उपासक था—हर वस्तु के सौन्दर्य का।"[2]

अपनी सौन्दर्य भावना के ही कारण वह अनिन्द्य सुन्दरी इन्दु पर मुग्ध हो जाता है और एक बार मुग्ध होने के बाद उससे दाम्पत्य-सूत्र मे बध जाना चाहता है, उसका यह निर्णय अटल होता है, पिता के द्वारा इसी कारण वह करोडो की सम्पत्ति के उत्तराधिकार से वचित कर दिया जाता है लेकिन प्रणय के समक्ष वह सम्पत्ति को लात मार देता है। उसकी चारित्रिक दृढता का प्रमाण अनेक स्थलो पर मिलता है, जैसे असहयोगी बनना, जेल जाना आदि।

उसका चरित्र-चित्रण एक आस्तिक हिन्दू के रूप मे हुआ है और इस दृष्टि से उस पर पारिवारिक वातावरण का अत्यधिक प्रभाव है। वह अत्यन्त मेधावी भी है इसीलिए सभी परीक्षाओ मे प्रथम आता है।

ललित के अन्दर राष्ट्र-प्रेम की भव्य भावनाए भी है, उसका पिता रामस्वरूप अग्रेज और अग्रेजी राज्य का भक्त है लेकिन वह अग्रेजो का कट्टर विरोधी है। ललित के माध्यम से लेखक ने अपने अनुभवो को चित्रित किया है। वह देश की स्वतन्त्रता के

1. इन्दुमती, बृहद् सस्करण, पृ० 133-34।
2 वही, पृ० 134।

लिए राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेता है और इसी कारण उसे जेल यातना भी भुगतनी पड़ती है। नाटककार ने स्वयं ललित के लिए जेल-जीवन अत्यन्त कष्टप्रद सिद्ध होता है लेकिन उसके हृदय में देश-प्रेम की भावना इतनी प्रबल है कि वह इन सब कष्टों को बड़े साहस के साथ सह लेता है। उसका असली साहस जेल जीवन में ही दिखाई पड़ता है।

ललित के चरित्र-चित्रण में उपन्यासकार की पर्याप्त निजी तल्लीनता है। उसके जीवन की अनेक बातें सेठ जी के जीवन से साम्य रखती हैं।

त्रिलोकीनाथ—त्रिलोकीनाथ इन्दुमती का सहपाठी है जो आगे चलकर डाक्टर बन जाता है। वह सेठ जी के आदर्शवाद का प्रतिनिधित्व करता है। उसमें लेखक ने उन सभी गुणों के समावेश का प्रयास किया है जिसे वह मानव जीवन के लिए आदर्श मानता है। छात्र जीवन में वह 'मिस्टर प्योरिटन' कहलाता है। वह अत्यन्त मेधावी भी है इसीलिए स्कूल में हर परीक्षा में प्रथम आता है तथा मैट्रिक परीक्षा में प्रथम श्रेणी प्राप्त कर छात्र-वृत्ति भी पाता है।

त्रिलोकीनाथ का चरित्र इन्दु के बिल्कुल विपरीत है। दोनों की चारित्रिक भिन्नता का वर्णन सेठ जी ने इस प्रकार किया है—

'दोनों का स्वभाव तथा आचरण एक दूसरे के ठीक विरुद्ध थे—एक में जितनी अकड़ दूसरे में उतनी ही विनम्रता। एक संसार की समस्त वस्तुओं को अपने आनन्द के लिए साधन मानती दूसरा संसार की हर वस्तु के आनन्द के लिए अपने को साधन। एक धनवान वैभवयुक्त जीवन बिताने वाली, दूसरा निर्धन, सीधा-सादा किसी तरह अपना निर्वाह करने वाला।[1] वह सेवा वृत्ति को अपने जीवन का आदर्श मानता है और जीवन-पर्यन्त इस आदर्श का पालन करता है।

छात्र-जीवन में वह अवकाश के दिनों में निकटस्थ गांव के ग्रामीणों की सेवा के लिए जाता है और डाक्टर बनकर भी वह अपनी शक्ति भर सेवा करने से नहीं चूकता।

इन्दु के प्रति वह आकृष्ट होता है, लेकिन अपनी भावना का उदात्तीकरण करके वह उसे विश्वजनीन बना देता है वह विश्व के समस्त प्राणियों को इन्दु का रूप मानने लगता है। उसकी यह उदात्त भावना उसके वेदान्तवाद में पूर्ण आस्था के कारण उत्पन्न प्रतीत होती है। उसकी मृत्यु सम्बन्धी वेदान्तवादी व्याख्या से ललित को मरते समय पूर्ण शान्ति प्राप्त होती है और वही इन्दुमती के लिए 'व्यक्तित्व का नया स्वरूप प्रकट करता है जिसे अपनाने पर इन्दु को जीवन में पूर्ण शान्ति प्राप्त होती है और उसका जीवन सुखी बन जाता है। वास्तव में त्रिलोकीनाथ सेठ जी के जीवन-

---

1 इन्दुमती, वृहद् संस्करण, पृ० 60-61।

दर्शन का व्याख्याता है, उसी के माध्यम से उन्होने अपना जीवन-दर्शन अभिव्यक्त किया है। वही उपन्यास के नायक पद का अधिकारी है।

वजीर अली—वजीर अली इन्दु का राखी-बध भाई है, रक्षा-बधन के अवसर पर त्रिलोकीनाथ सहित जब अन्य सभी छात्र राखी बधवाने से कतराते है तो वही वीर (वजीर अली) आगे बढकर स्वय इन्दु से राखी बधवाता है और घोषणा करता है कि वह बहन के प्रति अपना उत्तरदायित्व निभायेगा। वजीर अली इन्दु के प्रति भाई के कर्तव्य का निर्वाह सारे जीवन करता है, उपन्यास मे एक भी स्थल ऐसा नही है जहा उसे भाई के कर्त्तव्य से च्युत दिखाया गया हो। वही इन्दु और ललित के गुप्त विवाह की व्यवस्था करता है, इन्दुमती के गर्भवती होने पर समाज के आक्षेपो का करारा उत्तर भी वही देता है।

आगे चलकर वह कालेज मे प्रोफेसर बन जाता है लेकिन साम्यवाद का समर्थक होने के कारण पार्टी के कामो मे अडचन पडने से प्रोफेसर के पद से त्यागपत्र दे देता है और पूरे समय मजदूरो के कल्याण के लिए कार्य करता है। मिल के मजदूरो की हडताल मे उसका काफी हाथ रहता है और उनकी सारी योजनाए उसी के परामर्श से बनाई जाती है।

वजीर अली मे देश-प्रेम की भावना भी है, वह सन् '42 के 'भारत छोडो' आन्दोलन मे गिरफ्तार होता है और उसे अत्यधिक कष्ट पहुँचाया जाता है। जेल मे आने से पूर्व पुलिस द्वारा अत्यधिक प्रताडित होने पर भी वह कोई गुप्त रहस्य नही प्रकट करता, यहा उसकी चारित्रिक दृढता का प्रमाण मिलता है।

वास्तव मे वजीर अली सेठ गोविन्ददास की हिन्दू-मुसलमान ऐक्य भावना का प्रतिनिधि कहा जा सकता है।

वीरभद्र—वीरभद्र 30 वर्ष की आयु के निकट पहुँचने पर इन्दु के ससर्ग मे तब आता है जब वह मजदूर बस्ती मे जनसेवा के लिए आती है। इससे पूर्व वीरभद्र का कोई परिचय नही प्राप्त है। वीरभद्र का चित्रण सेठ जी ने इस प्रकार किया है—

उम्र लगभग 30 वर्ष, ऊँचाई छ फुट से भी अधिक। शरीर न मोटा न दुबला गठा हुआ। रग कोयले के सदृश नितान्त काला, परन्तु काले के साथ ही शीशे के समान चमकदार। आखे बडी-बडी जिनमे लाल डोरे। बाल रग के समान ही काले, पर उतने घुघर। जितना रग काला उतने ही सफेद दात और हसते समय लाल मसूडो के दर्शन। मूछे छोटी-छोटी पर उनके केश सीधे खडे हुए।"[1] "वीरभद्र मजदूरो का नेता था। हिन्दी की चौथी पुस्तक तक शिक्षा प्राप्त की थी। जैसा ऊँचा और तगडा उसका शरीर था वैसा ही मन भी। उसे ऊँचे दर्जे की शिक्षा प्राप्त हुई थी।

---

1 इन्दुमती, बृहद् सस्करण, पृ० 622।

वह सुसंस्कृत भी नही कहा जा सकता था, पर वीर वह अवश्य था। वीरभद्र की नैर्सगिक वीरता खुरदरी थी। शिक्षा और संस्कृति का उस पर पालिश न चढा था। अत वह ऐसी वीरता थी जहा फिसलने का मौका ही नही रहता। वीरता के सिवा वीरभद्र मे दो सद्गुण और थे। उसमे कट्टर ईमानदारी और हाथ मे लिए काम को पूरी-पूरी करने की क्षमता थी। परन्तु इन सद्गुणो के साथ-साथ उसमे कई दुर्गुण भी मौजूद थे। वह शराब पीता था। जुआ भी खेलता था। अपनी औरत को अनेक बार पीटता था और वेश्याओं के यहा भी जाता था।"[1]

वीरभद्र को देखकर इन्दु अपनी शारीरिक प्यास बुझाने के लिए उस पर टूट पडती है, वह इतनी कामान्ध होती है कि उसे पात्र-कुपात्र का ध्यान नही रहता। वीरभद्र उसे अपनी बहन के समान समझता है इसीलिए वह इन्दु की इच्छापूर्ति तुरत नही कर पाता और इस विषय पर गहराई से विचार करने के लिए इन्दु से समय मागता है। अन्त मे परिस्थितिवश (उसके द्वारा फेके बोतल से इन्दु के घायल होने पर) वह इन्दु को उसकी इच्छा पूर्ण करने का आश्वासन देता है और तीन दिन का समय मागता है कि कानपुर से वापस आकर वह सब कुछ उसकी इच्छानुसार करेगा। वहाँ रामस्वरूप के पुत्र का घर जलाने के आरोप मे उसे आजीवन कारावास का दड मिलता है और उससे सम्बन्धित प्रकरण वही समाप्त हो जाता है।

वीरभद्र के चरित्र द्वारा लेखक यह दिखाना चाहता है कि दुश्चरित्र व्यक्ति मे भी सद्प्रवृत्तियाँ विद्यमान रहती है, जो वीरभद्र वेश्याओ के पास जाने मे तनिक भी नही हिचकिचाता, वही इन्दु के स्पष्ट निमन्त्रण को स्वीकार करने मे असमर्थता प्रकट करता है।

गौण पात्र और उनके चरित्र-चित्रण

सेठ रामस्वरूप—सेठ रामस्वरूप का चित्रण रूढिवादी मारवाडी के रूप मे हुआ है जो प्राचीन परपराओ तथा जातिगत सकीर्णता पर अटल विश्वास करता है। वह अन्तर्जातीय विवाह को स्वीकार नही कर पाता, इसीलिए अपने पुत्र ललित को घर मे निष्कासित कर उसे उत्तराधिकार से वचित कर देता है। वह पक्का व्यवसायी है और उसके लिए यह बात प्रचलित हो गई है कि यदि वह मिट्टी को छू ले तो सोना बन जाती है। वह वेश्यावृत्ति को समाज के माथे पर कलक नही मानता अपितु वेश्याओ को मगलमुखी मानकर उनका अपने घर मे निवास भी बुरा नही मानता। वह राजभक्त है इसीलिए भारत-स्थित ब्रिटिश राज्य से उसे 'सर' की उपाधि मिलती है। उसके हृदय मे वात्सल्य-भाव भी है और उसका पुत्र-प्रेम ललित के जेल से छूटने पर प्रकट होता है, वह स्वय ललित के निवास-स्थान पर जाता है और उसे वहाँ से अपने घर ले आता है। उस समय वह अन्तर्जातीय विवाह की बात को महत्त्व

1 इन्दुमती, बृहद् सस्करण, पृ० 622।

नही देता, इस कारण मारवाडी समाज मे उसकी निंदा भी होती है लेकिन पुत्र-प्रेम के वशीभूत होने के कारण वह किसी की चिंता नही करता। भाषा वह अपनी ही ठेठ मारवाडी बोलता है। रामस्वरूप के चरित्र-चित्रण मे पर्याप्त रंगीनी है।

अवध बिहारी लाल—अवध बिहारी लाल लखनऊ के प्रतिष्ठित नागरिक, ख्यातिप्राप्त वकील है। वकील के रूप मे उनकी सफलता के तीन कारण है—उनकी ईमानदारी, उनकी मनोविज्ञान की दक्षता और अपने मुकदमे के विषय मे पूरा अध्ययन। उन्हे आत्म-सम्मान का बहुत अधिक ध्यान रहता है और वे अपने व्यक्तित्व को प्रमुखता देने वाले व्यक्ति है। इन्दु का मानसिक विकास उन्ही के आदर्शो के अनुकूल हुआ है। नारी के प्रति उनकी दृष्टि उदार है। वे झूठे मुकदमे नही लडते, हा ऐसे लोगो की सहायता अवश्य करते है (उनके मुकदमे लेकर) जिनके मुकदमे कानून की दृष्टि से सही हो। अवध बिहारी लाल के चरित्र का अधिक विकास नही हो पाया है।

सुलक्षणा—सुलक्षणा भारतीय संस्कृति मे आस्था रखने वाली आदर्श गृहिणी है। वह प्राचीन भारतीय नारी (सीता, सावित्री आदि) का प्रतिनिधित्व करती है। वह नारी का विकास पत्नीत्व एव मातृत्व मे मानती है। उसका चरित्र-चित्रण पति-परायणा, धार्मिक वृत्ति से युक्त, आस्तिक हिन्दू नारी के रूप मे हुआ है। पति की मृत्यु के बाद वह अपना सारा समय पूजा-पाठ मे लगाती है। इन्दु को वह अपने आदर्शो के अनुरूप बनाना चाहती है लेकिन इसमे उसे अधिक सफलता नही मिलती।

मयक—मयक कृत्रिम गर्भाधान से उत्पन्न इन्दु का पुत्र है। समाज मे मा के कारण उसे तिरस्कार मिलता है और इसीलिए वह मा से उदासीन रहता है, वह भी मा को व्यभिचारिणी समझने लगता है। अपने जन्म के रहस्य से परिचित होकर और यह जान लेने पर कि उसकी मा सर्वथा निष्कलक है, वह मा को सच्चे हृदय से प्यार करने लगता है। उसके बाद जब उसका हितैषी अध्यापक उसके मा के कार्य को प्रकृति के विरुद्ध पाप ठहराता है तब मा के प्रति उसकी पूर्व भावनाए फिर लौट आती है और वह मा से छुटकारा पाने का उपाय सोचने लगता है। मयक के चरित्र का पूर्ण विकास नही हो पाया है।

पार्वती—पार्वती चिर प्रताडित वीरभद्र की पत्नी है जिसे शराबी पति के अत्याचारो का प्रतिदिन शिकार होना पडता है, वह नशे मे चूर होकर उसे गाली देता है और पीटता भी है। उसका पति वेश्यागामी है लेकिन उसका प्रारंभिक रूप पति-परायणा का ही है। वीरभद्र के जेल जाने के बाद इन्दु इसे वनिताश्रम मे भेज देती है, वनिताश्रम का मैनेजर उसे अपने कुचक्र मे फसाने का प्रयास करता है, कुछ दिन तक तो वह अपनी रक्षा करती रहती है लेकिन बाद मे वह उसके कुचक्र मे फस जाती है। मैनेजर उसे लाहौर के एक मुसलमान ठेकेदार के हाथ बेच देता है और वह ठेकेदार उसे पुन बेचने की सोचता है। पार्वती वहा से भागकर बनारस आ जाती है

और परिस्थितिवश वेश्या का जीवन बिताना प्रारभ कर देती है। धीरे-धीरे उसे इस जीवन मे इतना अनुराग हो जाता है कि वह इसे त्यागना नही चाहती, इन्दुमती के अनुरोध पर भी वह इसे छोड़ने के लिए तैयार नही होती। इस पात्र के द्वारा उपन्यासकार यह दिखाना चाहता है कि मनुष्य के पतन मे परिस्थितियो का बहुत बड़ा योग रहता है।

चरित्र-चित्रण की विशेषताए

'इन्दुमती' घटना-प्रधान उपन्यास न होकर चरित्र-प्रधान उपन्यास है, इसमे कथावस्तु की अपेक्षा चरित्र-चित्रण को प्रमुखता प्रदान की गई है। चरित्र-चित्रण के सम्बन्ध मे डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है—"इन्दुमती के पात्र भारतीय आदर्शों के सजीव रूप है, किन्तु उनमे विचारो का स्वातन्त्र्य है, नव-निर्माण की शक्ति है और अर्वाचीन भारत के पथ-प्रदर्शन की प्राणवन्त योग्यता है।"[1]

इस कथन से सर्वाशत सहमत होना तो कठिन है, लेकिन इसमे काफी सच्चाई है, इसमे इन्कार नही किया जा सकता। इन्दुमती भारतीय आदर्शो का सजीव रूप बिल्कुल नही है लेकिन सुलक्षणा सच्चे अर्थो मे भारतीय आदर्शो की प्रतीक है।

'इन्दुमती' मे चरित्र-चित्रण की दोनो प्रणालिया—प्रत्यक्ष अथवा विश्लेषणात्मक प्रणाली, अप्रत्यक्ष अथवा नाटकीय प्रणाली—अपनाई गई है। विश्लेषणात्मक प्रणाली के कई उद्धरण पीछे चरित्र-चित्रण के प्रसग मे दिये जा चुके है।[2] यहा नाटकीय प्रणाली का एक उद्धरण प्रस्तुत है—

इन्दुमती—'मर्द कुछ भी कर सकते है—शराब पी सकते है, जुआ खेल सकते है, दिन और रात वेश्याओ के घरो मे पडे रह सकते है, पर औरत औरत कुछ नही कर सकती। मर्द औरत के पति है न? पृथ्वीपति, नरपति, गजपति, अश्वपति के समान नारीपति भी।"[3]

इसमे इन्दुमती का सामाजिक विद्रोह प्रकट हुआ है, उसका उपर्युक्त कथन उसे विद्रोहिणी के रूप मे चित्रित करता है।

'इन्दुमती' मे व्यक्तिवादी (Individual) तथा प्रतिनिधि (Type) दोनो प्रकार के पात्र है। इसकी नायिका इन्दुमती शुद्ध व्यक्तिवादी पात्र है और सेठ रामस्वरूप शुद्ध प्रतिनिधि, जो सामन्तवादी वर्ग की प्राचीन सभ्यता का प्रतिनिधित्व करता है। सुलक्षणा आदर्श भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है। अवध बिहारी लाल के चरित्र मे व्यक्तिवादी तथा वर्गगत दोनो विशेषताए सन्निहित है, वे एक ओर

---

1 काशी विश्वविद्यालय से दिनाक 26-7-52 को लिखा डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का पत्र।

2 देखिए ललित, वीरभद्र के चरित्र-चित्रण मे सेठ जी का कथन।

3 इन्दुमती, बृहद् सस्करण, पृ० 643।

व्यक्तित्व को अत्यधिक प्रमुखता देने वाले व्यक्तिवादी पात्र हैं तो दूसरी ओर आधुनिक वकील वर्ग के प्रतिनिधि भी कहे जा सकते है । ललित की कुछ चारित्रिक विशिष्टताए सेठ जी की अपनी चारित्रिक विशेषताए है ।

सेठ जी के चरित्र-चित्रण मे नवीनता, मौलिकता तथा सजीवता के गुण विद्यमान है । स्वाभाविकता का गुण सर्वत्र न होने पर भी अधिकाश स्थलो पर है । यह तथ्य है कि 'इन्दुमती' के पात्र हृदय रस से आप्लावित नही है लेकिन उनमे कल्पना की रगीनिया अवश्य विद्यमान है ।

कथोपकथन—उपन्यास मे चरित्र-चित्रण की विश्लेषणात्मक प्रणाली अपनाने पर कथोपकथन के बिना भी काम चल जाता है लेकिन नाटकीय अथवा अभिनयात्मक प्रणाली के लिए कथोपकथन एक अनिवार्य तत्त्व है, नाटक मे तो इसके बिना काम ही नही चल सकता ।

कथोपकथन का प्रयोग मुख्यत कथानक के विकास, पात्रो का चरित्र-चित्रण तथा उपन्यासकार के उद्देश्य की सिद्धि के लिए किया जाता है । कथोपकथन मे "पात्रानुकूल वैचित्र्य के साथ ही उसमे स्वाभाविकता, सार्थकता, सजीवता और लाघव (सक्षिप्तता) के गुण होना वाछनीय है ।"[1]

'इन्दुमती' मे उपन्यास का यह तत्त्व (कथोपकथन) उचित परिमाण मे विद्यमान है । उपन्यास का प्रारभ ही कथोपकथन से होता है और इसका प्रारभिक कथन "विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है । जो अपने को ही केन्द्र मान, सब कुछ अपने लिए करता है, ससार की समस्त वस्तुओ को अपने आनन्द के लिए साधन मानता है, उसी का जीवन सुखी और सफल होता है ।"[2] सारे उपन्यास की 'थीम लाइन' है ।

अवध बिहारी लाल एव उनकी पत्नी सुलक्षणा के प्रारम्भिक कथोपकथन उपन्यास की कथावस्तु के विकास मे सहायक है, इसी प्रकार विभिन्न अवसरो पर ललीत, इन्दु, वजीर अली तथा त्रिलोकीनाथ द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलनो का इतिहास प्रस्तुत करा कर भी कथावस्तु का विकास किया गया है ।

प्रस्तुत उपन्यास मे कथोपकथन का प्रयोग मूलत पात्रो के मनोविश्लेषणात्मक चरित्र-चित्रण के लिए किया गया है, इन्दुमती की चारित्रिक विशेषताओ को प्रकट करने के लिए ये कथोपकथन बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए है । कुछ उद्धरण देखिए—

इन्दु एक मजदूर मेट वीरभद्र के प्रति काम भावना से प्रेरित होती है, वीरभद्र उसे बहन मानता है, दोनो मे वार्तालाप का क्रम जारी है, वीरभद्र की भावनाओ के

1 काव्य के रूप—बाबू गुलाब राय, पचम सस्करण, पृ० 168 ।

2 इन्दुमती, बृहद् सस्करण, पृ० 1 ।

विरुद्ध इन्दु कहती है—

"पहले भाई-बहन और माँ-बेटो मे भी पति-पत्नी के सदृश सम्बन्ध होते थे।"[1]

इन्दु के उपर्युक्त कथन से उनकी काम चेतना परिलक्षित होती है और यह कथन उसकी वाक्-पटुता का द्योतक भी माना जा सकता है।

इसी प्रकार सुलक्षणा के निम्न कथन से उसका पुत्री इन्दु के प्रति सहज वात्सल्य तथा भारतीय सस्कृति मे आस्था रखने वाली नारी का आदर्श रूप प्रकट होता है—

'मेरी बेटी का जीवन भी मेरे समान ही सुखी रहे। वह तभी हो सकता है जब वह पिता के उपदेश पर न चल मेरे अनुभव पर चले, विवाह करे, पति को सर्वस्व माने, सतान होने पर उसे पति का प्रसाद, अपने सारे जीवन को अपने लिए नही, पर अपने पति और सतान के लिए व्यतीत करे और सब कुछ, भगवन्, आपकी देन मानकर।"[2]

सेठ रामस्वरूप का कथन उनकी रूढिवादिता, नवीन युग-चेतना से अनभिज्ञता आदि को ही प्रकाश मे लाता है।

'इन्दुमती' के कथोपकथनो मे पात्रानुकूल वैचित्र्य है और यह भाषा के माध्यम से उत्पन्न किया गया है। उपन्यास के मुसलमान पात्र (वजीर अली) उर्दू भाषा बोलते है, सभ्य सुसस्कृत हिन्दू पात्र (इन्दु, त्रिलोकीनाथ, अवध बिहारी, सुलक्षणा) शुद्ध हिन्दी बोलते है, सेठ रामस्वरूप मारवाडी भाषा का प्रयोग करता है और मजदूर वर्ग (वीरभद्र) की भाषा मे अशुद्ध हिन्दी का प्रयोग किया जाता है। (इसमे शब्दो को भी प्राय अशुद्ध रूप मे ही लिखा गया है)। वीरभद्र तथा सेठ रामस्वरूप के कारण कथोपकथनो मे काफी रगीनी का समावेश हो गया है। सेठ रामस्वरूप का एक कथन देखिये—

"आज सूँ तू म्हारो बेटो नही और मै थारो बाप नही। सौगन्द है तूने और बी नाटक करबा वाली छोरी ने इणे घर मे पाँव धरवानी।"[3]

प्रस्तुत उपन्यास के कथोपकथनो मे स्वाभाविकता तथा सजीवता तो है लेकिन सक्षिप्तता का प्राय अभाव है, कुछ स्थलो पर कई-कई पृष्ठो के लम्बे वक्तव्य[4] तथा स्वगत कथन[5] भी मिलते है। इन वक्तव्यो एव स्वगत कथनो के मूल मे सेठ जी की

---

1 इन्दुमती, वृहद् सस्करण, पृ० 724।
2 वही, पृ० 115।
3 वही, पृ० 228।
4 वही, पृ० 455-459, 589-596।
5 वही, पृ० 303-304।

अपनी भाषण की प्रवृत्ति ही ज्ञात होती है, अपनी इस सहज वृत्ति के कारण सेठ जी पात्रो से भाषण दिलाये बिना नही रह सकते ।

देश-काल—देश-काल के अन्तर्गत किसी भी देश या समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सास्कृतिक परिस्थितियाँ, रहन-सहन, आचार-विचार, आदि आते है ।

अपने नाटको मे वातावरण निर्माण करने मे सेठ जी सिद्धहस्त है, उनका यह निर्माण-कौशल 'इन्दुमती' मे भी परिलक्षित होता है । उपन्यास की पृष्ठभूमि मे सन् 1916 से 1942 तक के राष्ट्रीय आन्दोलन का विस्तृत इतिहास भी प्रस्तुत किया गया है, इसमे कॉग्रेस के अधिवेशनो, उनमे पास हुए प्रस्तावो तथा अन्य ऐतिहासिक घटनाओ (जलियाँ वाले बाग की शर्मनाक घटना, रौलट ऐक्ट, आदि) का विवरण प्रस्तुत किया गया है । इसमे इस समय की केवल देश मे घटित घटनाओं का भी सक्षिप्त परिचय किसी न किसी पात्र द्वारा दिलाया गया है और विशेषता यह है कि ये सब घटनाएँ इस प्रकार गुम्फित है कि ये कथावस्तु का अग प्रतीत होती है । कही-कही विस्तार अधिक हो गया है जिससे मूल कथा के विकास मे कुछ व्यवधान उपस्थित हुआ है ।

अवध बिहारी लाल, सेठ रामस्वरूप की सामाजिक स्थिति, उनकी प्रतिष्ठा, रहन-सहन आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है जो समुचित वातावरण के निर्माण मे सहायक ही सिद्ध हुआ है ।

वीरभद्र का प्रसग समाविष्ट करने के उद्देश्य से उपन्यास मे मजदूर बस्ती का यथातथ्य चित्रण हुआ है, लेखक उस बस्ती की छोटी से छोटी चीज का वर्णन करने से भी नही चूकता—

"सडक के आस-पास कच्चे-पक्के मकानो का एक सिलसिला था जिनमे से कुछ खपरैले थी और कुछ कोठे । इनमे से गिनती के दो-मजिला थे और बाकी केवल एक-मजिला । मकानो के सामने लकडी के मोढे, कही स्टूल या तिपाइयाँ, कही लोहे की कुर्सियाँ डाले कुछ लोग बैठे बाते कर रहे थे । बातो के साथ ही कही हुक्का गुडगुडाया जा रहा था और कही ताश खेली जा रही थी । निर्बल और अधमरे से कुत्ते नालियो मे लेटे थे और दो तीन आबादी के गधे अपने लम्बे-लम्बे कान हिलाते हुक्को की गुड-गुडाहट पर ध्यान जमाये चले जा रहे थे ।"[1]

वातावरण के निर्माण के लिए प्राकृतिक दृश्यो का चित्राकन भी हुआ है जो काफी सुन्दर बन पडा है । इन्दु और ललित के प्रणय-सूत्र मे बँध जाने के बाद, 'हनीमून' मनाने के उद्देश्य से उनका चेरापूँजी मे स्वल्पकालिक वास होता है, वहाँ की प्राकृतिक सुषमा का एक दृश्य देखिए—

---

1 इन्दुमती, बृहद् सस्करण, पृ० 614-15 ।

"आकाश सदा ढका रहता था बादलो से, और बादल ऐसे वैसे नही, घनघोर घटाएँ, निरन्तर दौडने वाली, गरजने वाली, चमकने वाली, बरसने वाली। फिर ये बादल आकाश मे ही नही, पहाडो, वृक्षो, मकानो, यहाँ तक कि चलते-फिरते प्राणियो के सिरो पर भी छा जाते। दौडते-दौडते ये बादल पहाडो पर ही नही, घरो तक मे, यदि उनकी खिडकियाँ खुली रह जाएँ तो, घुस आते, कमरो के अन्दर बरस कर वहा की सब वस्तुओ को भी गीला कर जाते। कभी-कभी घूमते हुए दम्पति के बीच मे भी ये मेघ आ जाते और कुछ क्षण दोनो को एक दूसरे से अदृश्य कर देते।"[1]

उपन्यास मे केवल बाह्य वातावरण का चित्रण ही नही हुआ अपितु इसमे मानसिक उथल-पुथल मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुत किया गया है। इन्दुमती की मानसिक अवस्था का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण काफी आकर्षक है।

'इन्दुमती' मे देश-काल अथवा वातावरण का विशद चित्रण किया गया है। अनेक स्थलो पर यह वर्णन सीमा का अतिक्रमण भी कर गया है और वहाँ यह साधन न रह कर साध्य बन गया है। जहाँ सेठ जी कॉग्रेस, कॉग्रेस के अधिवेशन, अधिवेशन मे पास प्रस्तावो तथा आन्दोलनो आदि की चर्चा प्रारम्भ करते है तो पाँच-पाँच, दस-दस और कही-कही इससे भी अधिक पृष्ठ रग डालते है।[2] यदि इन घटनाओ के वर्णन मे सक्षिप्तता बरती जाती तो वातावरण चित्रण निश्चित रूप से अधिक प्रभावी हो सकता था।

भाषा-शैली—'इन्दुमती' की भाषा उपन्यास के सर्वथा उपयुक्त सरल एव प्रसाद गुण सम्पन्न है। इसकी भाषा न तो प्रेमचन्द के समान चलती हुई मुहावरेदार है और न ही प्रसाद के समान सस्कृतनिष्ठ, अपितु यह दोनो की मध्यवर्तिनी है। भाषा को बोझिलता से दूर रखने के लिये लेखक ने क्लिष्ट एव अप्रचलित शब्दो के समावेश को बचाया है, लेकिन जहाँ पात्र प्रादेशिक भाषाओ या उपभाषाओ का प्रयोग करते हैं वहाँ उनके कथन मे उस भाषा विशेष के ही शब्द रहते है, सेठ रामस्वरूप द्वारा प्रयुक्त भाषा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग उपन्यास की एक अन्य विशेषता है। वजीर अली के कथन मे उर्दू का पुट मिलता है तो इन्दुमती, त्रिलोकीनाथ, अवध बिहारी, सुलक्षणा आदि की भाषा मे हिन्दी का शुद्ध रूप दिखाई पडता है। भाषा की दृष्टि से रामस्वरूप का कथन उपन्यास मे रगीनी लाने मे समर्थ है, वह ठेठ मारवाडी भाषा का प्रयोग करता है। उसकी भाषा का एक नमूना देखिए—

"तूने तूने मने या चिट्ठी भेजी है, तूने तूने! ...... या चिट्ठी मने। सरम नही आई। तूने मने इसी चिट्ठी लिखवा मे अरे

1 इन्दुमती, बृहद् सस्करण, पृ० 241।

2 वही, पृ० 136-141, 255-264, 832-838 आदि।

बेसरम, थोडो थोडो तो लिहाज राखतो ! फूट गया म्हारा करम !
• धूल पड गयी सारी सपेती मे ।'[1]

इसी प्रकार वजीर अली की भाषा का भी एक नमूना प्रस्तुत है—

"मुहब्बत उस दूध के मुआफिक है जो गरम करते वक्त पहले धीरे-धीरे उछलता है, फिर खौलता है और फिर उफन कर बहता है ।"[2]

'इन्दुमती' की भाषा मूलत प्रसादमयी है लेकिन कही-कही माधुर्य गुण भी विद्यमान है पर ओजगुण का सर्वथा अभाव है ।

प्रस्तुत उपन्यास की भाषा अभिधात्मक है, लक्षणा एव व्यजना के चमत्कार से चमत्कृत होने की इच्छा रखने वाले पाठको को निराश ही होना पडेगा । उपन्यास मे कुछ स्थलो पर आलकारिक भाषा का सुन्दर प्रयोग हुआ है—

"प्रेमियो के हृदय-क्षेत्र का प्रेमरूपी तरु सदा हरा-भरा रहता है । कुछ वृक्ष जिस प्रकार सभी ऋतुओ मे हरे रहते है, वह ऋतु चाहे गरमी की हो, या जाडे की, उसी तरह यह तरु भी वियोग और सयोग सभी अवस्थाओ मे हरा रहता है ।"[3]

उपन्यास के लिए अनेक शैलियाँ प्रचलित है, इनमे से कुछ प्रमुख शैलियाँ इस प्रकार है—

1 ऐतिहासिक या वर्णनात्मक शैली
2 आत्मकथात्मक शैली
3 पत्रात्मक शैली
4 डायरी शैली
5 मिश्रित शैली

'इन्दुमती' की रचना के किए ऐतिहासिक अर्थात् वर्णनात्मक शैली को अपनाया गया है । इसमे आत्मकथात्मक वर्णन भी है, पत्रो का समावेश भी है, लेकिन इनके कारण इसकी शैली को आत्म-कथात्मक या पत्रात्मक नही कह सकते ।

'इन्दुमती' की शैली के सम्बन्ध मे प० रामनरेश त्रिपाठी का यह कथन 'लेखन शैली रोचक और साद्यत आकर्पक है"[4] उचित प्रतीत होता है ।

उद्देश्य या जीवन-दर्शन—सेठ गोविन्ददास 'कला कला के लिए' सिद्धान्त के समर्थक नही है । इस सम्बन्ध मे उनका कथन है—

---

1 इन्दुमती, बृहद् सस्करण, पृ० 190 ।
2 वही, पृ० 216 ।
3. वही, पृ० 168 ।
4 सेठ गोविन्ददास : व्यक्तित्व एव साहित्य, पृ० 152 ।

"कला के सम्बन्ध मे दो मत है, एक स्कूल कहता है कला कला के लिए है—आर्ट फार आर्ट सेक्। और दूसरा स्कूल कला को जीवन के लिए मानता है। मैं दूसरे मत का अनुयायी हूँ।"[1]

उपयोगितावादी कलाकार की रचना निरुद्देश्य कदापि नही हो सकती।

'इन्दुमती' का उद्देश्य सेठ जी के जीवन-दर्शन की व्याख्या करना है। इस विशालकाय उपन्यास की रचना के समय प्रारम्भ से अन्त तक लेखक अपना उद्देश्य नही भूलता। उसका जीवन-दर्शन वेदान्तवादी है और इस उपन्यास मे उसने दिखाया है कि जब व्यक्ति वेदान्त के अद्वैतवाद को जीवन-सिद्धान्त के रूप मे मानकर व्यवहार करता है तभी उसका जीवन सुखी और समृद्ध बनता है और तभी उसे सच्ची शान्ति मिलती है।

उपन्यास के निर्माण की मूल प्रेरणा के विषय मे लेखक का कथन है—

"इन्दुमती की मूल प्रेरणा उपन्यास का पहला वाक्य है—विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है। यह प्रेरणा उसे अपने पिता से मिली, परन्तु अन्त मे जब तक इसका एक दूसरी प्रकार से समाधान नही हो गया तब तक उसे सुख नही मिला। यह समाधान वेदान्त का मूल विचार है कि यथार्थ मे यह सब सृष्टि एक ही तत्त्व है। इस विचार के अन्तर्गत व्यक्ति भी आ जाता है। मैं वेदान्त के इस विचार को मानने वाला हूँ, अत यही इन्दुमती उपन्यास की मूल प्रेरणा है।"[2]

उपन्यास की नायिका इन्दुमती के अशान्त, दुखी जीवन का मूल कारण यह है कि वह "निज के व्यक्तित्व को ही सब कुछ समझती है, वह अपने को ही केन्द्र मानकर ससार की वस्तुओ को अपने आनन्द का साधन मानती है।" अपने व्यक्तित्व को ही प्रमुखता देने के कारण वह अन्य लोगो को तुच्छ भुनगे के समान समझती है। इस उपन्यास का अन्तिम वाक्य है "ठीक तो है—विश्व मे निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है।"[3] लेकिन यहाँ पहुँच कर 'व्यक्तित्व' प्रारम्भिक 'व्यक्तित्व' से बिल्कुल अलग हो गया है। उपन्यास के प्रारम्भ का 'व्यक्तित्व' जहाँ अपने आप मे ही ससार को निहित कर लेना चाहता था वही उपन्यास के अन्त का 'व्यक्तित्व' स्वय फैलकर विश्व रूप बन गया है। 'निज के व्यक्तित्व' की डा० त्रिलोकीनाथ द्वारा वेदान्तवादी व्याख्या का प्रस्तुतीकरण ही उपन्यास का मूल उद्देश्य है।

जब इन्दुमती अपना व्यक्तित्व डा० त्रिलोकीनाथ द्वारा प्रस्तुत व्यक्तित्व की

---

1 राष्ट्र और राष्ट्र भाषा के अनन्य सेवक—पृ० 148 सेठ जी का लेख—मेरी सृजन साधना।

2 वही, पृ० 97।

3. इन्दुमती, वृहद् सस्करण, प० 933।

नई व्याख्या के अनुसार बना लेती है (सार्वजनिक सेवा का जीवन अंगीकार कर लेती है) तो उसका जीवन सुखी हो जाता है, उसे मानसिक शान्ति प्राप्त होती है, जिसके लिए वह समग्र जीवन प्रयास करती रही है। मानव जीवन की सुख-शान्ति के लिए लेखक यही (सार्वजनिक सेवा, व्यक्तित्व का सम्मान) उपदेश देना चाहता है और इस मूल उद्देश्य के प्रस्तुतीकरण में उसको पर्याप्त सफलता मिली है।

उपन्यास के इस मूल उद्देश्य के अतिरिक्त इसके कुछ अन्य उद्देश्य भी है। राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास का प्रस्तुतीकरण, प्रेम के विविध रूपो का चित्रण, नारी जीवन के लिये पत्नीत्व एव मातृत्व का आदर्श आदि इसके कुछ अन्य उद्देश्य माने जा सकते हैं। पाठको पर पड़ने वाले उद्देश्य सम्बन्धी प्रभाव की दृष्टि मे उपन्यास की सफलता असदिग्ध है।

'इन्दुमती' की सीमाएँ—'इन्दुमती' सर्वथा निर्दोष कृति नही है। इस प्रसग मे 'इन्दुमती' की कतिपय सीमाओ का उल्लेख किया जाएगा। प० रामनरेश त्रिपाठी का कथन है, "उपन्यास का अत्यत दीर्घकाय होना इसकी पहली त्रुटि है। छोटे टाइप के अक्षरो मे 933 पृष्ठ के इस विशाल उपन्यास को पूरा पढ़ने मे पाठको को कई दिन लग सकते है और इससे इसकी रोचकता मे व्यवधान भी पड सकता है। मूल्य भी 15 रु० है जो सामान्य पाठक की क्रय शक्ति से अधिक ही कहा जाएगा। सम्पूर्ण उपन्यास को दो भागो मे प्रकाशित करके इसकी कलेवर सम्बन्धी त्रुटि का निराकरण किया जा सकता है।"

"दूसरी त्रुटि मेरी राय मे यह है कि कथानक मे वीरभद्र का प्रसग अस्वाभाविक सा हो गया है। वीरभद्र जैसे कुत्सित, खाऊ, शराबी, विवेकहीन, दुर्गन्धयुक्त गुण्डा टाइप के कुली पर इन्दुमती का रीझना उसकी शिक्षा-दीक्षा, रहन-सहन और बेचारे कामदेव का भी उपहास-सा लगता है। उसे न इन्दुमती की आँख ही पसद कर सकती है, न नाक ही। आजकल के शिक्षित और सभ्य समाज मे काम-वासना की तृप्ति के लिये इन्दुमती को कितने ही पतलूनधारी मिल सकते थे। लेखक को कई मालूम है, उन्ही मे से किसी को पकड लेना चाहिये था। वीरभद्र के साथ इन्दुमती अपने स्थान से बहुत नीचे गिरी हुई दिखाई पड रही है।"[1]

प० रामनरेश त्रिपाठी का उपर्युक्त आक्षेप केवल आक्षेप के लिए ही प्रतीत होता है उसमे अधिक तथ्य नही है। वास्तव मे जब नारी की कामवासना उद्दीप्त हो उठती है तब वह पात्र-कुपात्र का ध्यान नही रखती और विशेष रूप से वह नारी जिसे नैतिकता का तनिक भी विचार नही है। इन्दुमती की दमित कामवृत्ति वीरभद्र जैसे स्वस्थ, बलिष्ठ युवक को देखकर जाग्रत हो तो इसमे कोई अस्वाभाविकता नही है। नारी केवल सौन्दर्य का आकर्षण नही चाहती, वह पौरुष का अजस्र स्रोत पसन्द

1 प० रामनरेश त्रिपाठी, 25-3-52 को बसत निवास, सुल्तानपुर से लिखा पत्र।

करती है। इन्दुमती का स्पष्ट कथन है "वीरभद्र के समान व्यक्ति तो नारी पति सच्चा नारी पति हो सकता है। . कैसा ऊँचा-पूरा, गठा हुआ शरीर है उसका।"[1] वीरभद्र के प्रसंग में तो अस्वाभाविकता बिल्कुल नहीं है लेकिन वीरभद्र से बच जाने के बाद इन्दु की उद्दाम कामवासना कहीं शान्त होनी चाहिए थी, उसकी यौन नदी का वेग किसी तट से टकराना चाहिए था, लेकिन सेठ जी के आदर्शवाद ने उसकी इस स्वाभाविक वृत्ति को शान्त करने का अवसर नहीं प्रदान किया अपितु उसे सती-साध्वी के रूप में चित्रित करके कुछ अस्वाभाविकता का समावेश अवश्य कर दिया है।

उपन्यास में नायिका इन्दुमती के चरित्र का विकास सर्वत्र स्वाभाविक नहीं है। जिस रूप में उसका प्रारम्भिक चरित्र अंकित हुआ है उसको देखते हुए पुत्रोत्पत्ति के लिए कृत्रिम गर्भाधान सर्वथा अस्वाभाविक प्रतीत होता है। ललित की मृत्यु के बाद उसकी पूर्व भावना 'विश्व में निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है' पुन वापस लौट आती है और इस परिस्थिति में उसका ललित की स्मृति बनाये रखना भी कुछ स्वाभाविक नहीं प्रतीत होता। उपन्यास के अन्त में उसे सार्वजनिक सेवा का जीवन बिताते हुए चित्रित किया गया है, यह समस्या का लेखक द्वारा प्रस्तुत आदर्शवादी समाधान है।

आधुनिक जीवन की बहुमुखी परिस्थितियों को निरूपित करने के उद्देश्य से लेखक ने उपन्यास में अनेकानेक विषयों को समाविष्ट कर दिया है, उचित सीमा तक इनका समावेश क्षम्य है लेकिन 'इन्दुमती' में यह सीमा का अतिक्रमण करता प्रतीत होता है। उपन्यास के लिए वातावरण चित्रण अनिवार्य है किन्तु वातावरण स्वयं साध्य न होकर केवल साधन रूप में होना चाहिए। प्रस्तुत उपन्यास में वातावरण कथावस्तु के लिए साधन न रह कर स्वयं साध्य बन गया है, अत यह एक प्रकार से दोष ही माना जायेगा।

'इन्दुमती' का साहित्यिक मूल्यांकन

'इन्दुमती' का साहित्यिक मूल्यांकन करते समय इसके सम्बन्ध में मान्य विद्वानों, आलोचकों एवं पाठकों की सम्मतियों में से कुछ का उदाहरण अप्रासंगिक न होगा।

डाक्टर भगवानदास—मैंने श्री प्रेमचन्द की (जिनको साहित्यिक समाज ने 'उपन्यास-सम्राट्' की पदवी दी है) प्राय सभी छोटी-बडी कहानियों और कथाओं को पढ़ा है। किन्तु बहुविध विविधता और मनोविश्लेषण की दृष्टि से उनका कोई भी आख्यानक 'सेवा-सदन', या 'कर्म भूमि', या 'रंगभूमि' जो उनके सबसे बृहद् ग्रन्थ हैं इन्दुमती की स्पर्द्धा नहीं कर सकता।[2]

---

1 इन्दुमती, बृहद् संस्करण, पृ० 643।
2 इन्दुमती, संक्षिप्त संस्करण, भूमिका, पृ० 'उ'।

डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल—'इन्दुमती' उपन्यास सेठ गोविन्ददास जी की साहित्यिक प्रतिभा का नया फल है। सेठ जी हिन्दी जगत् के प्रख्यात सिद्धहस्त लेखक है जिन्होने कितने ही नाटको से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। 'इन्दुमती' का पद उस साहित्य-माला मे सुमेरु के समान है। कथा विकास भाषा, वस्तु चित्रण, तीनो का सफल सामजस्य इस उपन्यास मे है।[1]

डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी—'इन्दुमती' उपन्यास अनेक सामाजिक समस्याओ के मूल उत्स को समझने की ऐतिहासिक दृष्टि देता है। आज के जटिल सामाजिक जीवन को जो प्रश्न निरन्तर चुनौती दे रहे है उनके वास्तव रूप को स्पष्ट भाव से समझाने मे यह पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।[2]

डा० देवराज उपाध्याय—कई दृष्टियो से इन्दुमती हिन्दी साहित्य का अद्वितीय उपन्यास है। हिन्दी मे यदि और कोई उपन्यास हो जिसमे कथा की लपेट मे लाकर ज्ञान, विज्ञान, धर्मशास्त्र, नीति, समाज, अर्थशास्त्र (और क्या नही) के ऊपर ग्राह्य और मधुर रूप से एक स्थान पर उपयोगी बाते इस पैमाने पर एकत्रित कर ली गई हो, तो कम से कम मैने नही देखा है।[3]

डा० कमलकात पाठक—'इन्दुमती' एक जीवन-गाथा है। इस कारण इसमे किसी सुसगठित कथावस्तु की अपेक्षा नही की जा सकती। वस्तु-वर्णना की गति मथर है और घटनाओ की स्थितिया दूरस्थ। वस्तुत जीवन-गाथा उपन्यास और जीवनी की मध्यवर्तिनी वस्तु है।[4]

उपर्युक्त मन्तव्यो के प्रथम और अन्तिम मन्तव्य उपन्यास की दो सीमाए प्रकट करते है। प्रथम मत के सस्थापक डा० भगवानदास यदि वस्तुस्थिति का अतिशयोक्ति-पूर्ण मूल्याकन करते है तो अन्तिम सज्जन (डा० पाठक) उसका यथार्थ मूल्य भी नही आकते।

वास्तविकता यह है कि 'इन्दुमती' न तो प्रेमचन्द के उपन्यासो से बढकर है और न ही यह जीवन-गाथा है। डा० देवराज उपाध्याय ने भी जिन विशेषताओ के कारण इसे अद्वितीय उपन्यास कहा है, वास्तव मे इसकी महत्ता उन विशेषताओ के कारण नही है क्योकि पाठक विज्ञान, धर्मशास्त्र, समाज शास्त्र, नीति शास्त्र, अर्थ-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उपन्यास नही पढता, अगर इन विषयो का ज्ञान प्राप्त करना अपेक्षित हो तो इन पर अधिकारी विद्वानो के ग्र थ पढे जा सकते है। उपाध्याय जी ने जिनको गुण माना है, मेरे विचार से तो उन्ही गुणो के कारण इसकी मूल

1 काशी विश्वविद्यालय से 26-7-52 का लिखा पत्र।

2 सेठ गोविन्ददास व्यक्तित्व एव साहित्य, पृ० 173।

3 वही, पृ० 191।

4 वही, पृ० 175।

कथा अतिग्रस्त हुई है, अत वे गुण न होकर एक प्रकार से दोष बन गये है। मेरे कथन का आशय यह कदापि नही है कि 'इन्दुमती' बिल्कुल व्यर्थ रचना है और डा० उपाध्याय का कथन नितान्त भ्रामक है, अपितु मेरे मतानुसार 'इन्दुमती' के महत्त्व का कारण कुछ और ही है।

'इन्दुमती' कथावस्तु की मौलिकता, नवीन चरित्र-कल्पना, रोचक शैली तथा महत् उद्देश्य के कारण हिन्दी उपन्यास साहित्य मे महत्त्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है।

कहानियाँ

सेठ गोविन्ददास ने रूस की घटनाओ के आधार पर दो कहानियो का निर्माण भी किया है। ये कहानिया है—

(1) लिजा या पिछले महायुद्ध का रूस

(2) कौमट्या अथवा रूस की होनहार पीढी

दोनो कहानियाँ अभी तक अप्रकाशित है।

लिजा या पिछले महायुद्ध का रूस—प्रस्तुत कहानी मे लिजा नामक 22-वर्षीया युवती का देश-प्रेम और उसके साहसपूर्ण बलिदान का चित्रण किया गया है। इसका कथानक इस प्रकार है—

लिजा चाइकिन नामक किसान की पुत्री है जिसका जन्म सन् 1919 मे हुआ है, उसके जन्म के समय रूस की परिस्थितियाँ नितान्त भिन्न है, कृषको मे यह आतक छाया है कि लेनिन के द्वारा उनकी ज़मीने छीन ली जायेगी, इसीलिए चाइकिन लेनिन को मार डालने की प्रतिज्ञा करता है। लेनिन द्वारा चाइकिन की जमीन नही छीनी जाती और उसकी आशका निराधार सिद्ध होती है।

रूस मे द्वितीय पचवर्षीय योजना प्रारभ होती है, लिजा की प्रेरणा से उसके पिता तथा समस्त गाँव के किसान 'कोलखोज' (सामुदायिक कृषि योजना) मे सम्मिलित हो जाते है। पचवर्षीय योजना सफल होती है और रूस के ग्राम समृद्ध हो जाते है। लिजा भी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए शहर मे जाती है, वहाँ उसका फोकिन नामक युवक से सपर्क होता है और यह सपर्क बाद मे प्रणय मे बदल जाता है तथा दोनो दाम्पत्य-सूत्र मे बध जाते है।

उसी समय जर्मनी का रूस पर आक्रमण होता है, लिजा अपना अध्ययन छोड कर फोकिन के साथ अपने गाँव आती है और गोरिल्ला बन जाती है। वह कई जर्मनो को मौत के घाट उतार देती है। अन्त मे धोखे से उसे गिरफ्तार कर लिया जाता है। जर्मनी के शासक उससे उसके दल का रहस्य जानने के लिए साम, दाम, दड, भेद की नीति अपनाते है, लेकिन वह चट्टान की तरह अपने प्रण पर अटल रहकर कुछ भी बताने से इन्कार कर देती है और अत मे उसे गोली से उडा दिया जाता है।

कौसट्या अथवा रूस की होनहार पीढ़ी—कौसट्या एक साहसी वालिका है जो रूस की नई पीढी का प्रतिनिधित्व करती है। उसका जन्म उस समय हुआ है जब रूस से जारशाही समाप्त होकर सुधारो की विस्तृत योजना भी कार्यान्वित हो चुकी है। इस योजना के फलस्वरूप रूस मे मातृगृह, वालगृह, शिशु मन्दिर आदि स्थापित हो चुके है। निर्धन परिवार मे जन्म लेने पर भी कौसट्या को इन नवीन सुविधाओ के कारण कोई कष्ट नही होता और वह अच्छी से अच्छी शिक्षा भी प्राप्त कर लेती है। एक दिन उसका पिता उसे एक थप्पड मार देता है, कौसट्या इसकी रिपोर्ट पुलिस मे कर देती है क्योंकि उसे ज्ञात है कि रूस के नियमो के अनुसार थप्पड मारना दडनीय अपराध है। उसके पिता उसकी इस कृति की भर्त्सना करने के वजाय उसके साहसिक कदम की सराहना करते है और आशा व्यक्त करते है कि रूस की नई पीढी साहसी तथा निर्भीक होगी।

दोनो कहानियाँ सामान्य स्तर की है। दूसरे देश (रूस) की घटनाओ को कथा वस्तु के रूप मे प्रस्तुत करने के कारण कथानक मे पाठको को कुछ रोचकता अवश्य प्रतीत होगी, लेकिन यह रोचकता एक सफल कहानी की रोचकता के स्तर की नहीं है। इनमे कथावस्तु के अतिरिक्त कहानी के अन्य तत्त्वो (चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, वातावरण, उद्देश्य आदि) का भी समुचित समावेश नही हो पाया है।

अध्याय 9

नाटक

हिन्दी साहित्य मे सेठ जी की प्रतिष्ठा का मूलाधार उनके नाटक है। यह सत्य है कि नाटक के अतिरिक्त उन्होने साहित्य की अन्य विधाओ—कविता, उपन्यास, कहानी, आत्मकथा, जीवनी, सस्मरण तथा निवन्ध आदि मे भी सृजन कार्य किया है, परन्तु जितनी तन्मयता उनकी नाट्य-रचना मे परिलक्षित होती है उतनी अन्य किसी विधा मे नही। नाट्य-सृजन के सम्बन्ध मे स्वय नाटककार की स्वीकारोक्ति है—मैने उपन्यास से साहित्य-निर्माण आरम्भ किया, महाकाव्य और कविताएँ लिखी, भ्रमण सम्बन्धी तीन मोटे ग्रथ लिखे, आत्म-चरित लिखा, पर, सच बात तो यह है कि नाटक का माध्यम ही मुझे अपने व्यक्तित्व के अनुकूल जान पडा, यद्यपि कुछ लोगो को नाटक लिखने मे कठिनाई पडती है। स्वभाव ही से मेरा झुकाव इधर है। नाटक लिखने मे चाहे वह वडा पाँच अको का नाटक हो या एकाकी हो, मुझे कोई कठिनाई नही होती। वडे-से-वडा नाटक मै 10-15 दिन मे लिख लेता हू। कुछ वडे-वडे नाटक तो मैने जेल मे तीन-तीन दिन मे लिखे है। मैने एकाकी तो दो-दो घटो तक मे लिखे है। मेरे एकाकी वडे और छोटे दोनो प्रकार के है। 'चौवीस घटे' मेरा सवसे छोटा एकाकी है, जो शायद 15 मिनिट मे लिखा गया था।[1]

विषय-वस्तु की दृष्टि से सेठ जी के नाटको का क्षेत्र विस्तृत है और परिमाण मे भी उनके नाटक सेन्चुयरी (100) पार कर चुके है। उन्होने पौराणिक, ऐतिहासिक, जीवनी, सामाजिक, समस्या, प्रतीक, दार्शनिक एव पद्यात्मक नाटको का निर्माण किया है। सम्पूर्ण नाटको के अतिरिक्त उन्होने विपुल सख्या (75) मे पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एकाकियो का सृजन भी किया है। उनकी सशक्त लेखनी से हास्य व्यग्य प्रधान प्रहसनो का निर्माण भी हुआ है। हिन्दी मे एकपात्री (मोनोड्रामा) नाटको के तो वे प्रवर्तक ही है।

पौराणिक नाटक

सेठ जी के पौराणिक नाटको ('कर्तव्य' और 'कर्ण') को कुछ आलोचक जैसे डा० देवर्षि सनाढ्य डा० रामचरण महेन्द्र आदि ऐतिहासिक नाटको के अन्तर्गत

1 सेठ गोविन्ददास नाट्य कला तथा कृतियाँ, पृ० 214।

परिगणित करते है ।[1] इन महानुभावो की यह मान्यता कदाचित् पुराणो को भी इतिहास मान लेने के कारण है । डा० सनाढ्य ने तो स्पष्ट लिखा है—"पुराण भी—भले ही आज वे इतिहास न हो—कभी इतिहास थे । महाभारत, छान्दोग्य उपनिषद् आदि प्राचीन ग्र थो मे पुराण और इतिहास शब्द अनेक वार 'पुराणेतिहास' रूप मे प्रयुक्त हुए है ।[2] अत सेठ जी के पौराणिक नाटको का विवेचन करने स पूर्व पौराणिक और ऐतिहासिक नाटको के अतर को स्पष्ट कर लेना अधिक समीचीन होगा ।

पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों में अंतर

पुराण तथा इतिहास की सीमा रेखाएँ परस्पर एक दूसरी का स्पर्श करती है परन्तु दोनो को एकाकार नही माना जा सकता । वास्तव मे पुराणो मे कुछ ऐतिहासिक तत्त्वो की विद्यमानता से इन्कार नही किया जा सकता, लेकिन इस विद्यमानता के कारण ही उसे पूर्णतया इतिहास की सज्ञा से अभिहित कर देना, मैं समझता हू, नितान्त भ्रामक है । इतिहास का मूलाधार सत्यता है, उसमे कल्पना की रगीनियो से आबद्ध अति मानवीय तत्त्वो को अभिव्यक्त होने का अवसर नही रहता । पुराणो मे इतिहास, कल्पना तथा पौराणिकता का समावेश रहता है । अब प्रश्न उठता है कि पौराणिकता क्या है ? श्री बलदेव उपाध्याय ने अतिशयोक्तिपूर्ण रचना शैली को पौराणिकता की सज्ञा प्रदान की है ।[3] इतिहास के पात्र मानवीय भूमि पर प्रतिष्ठित होते है किन्तु पुराण के पात्र अलौकिक तत्त्वो से समन्वित होने के कारण मानवीय भूमि से ऊपर उठे प्रतीत होते है । पुराण का पात्र सव कुछ कर सकता है । उसके लिए कुछ भी अशक्य नही । इसीलिए पुराणो मे राक्षस और देवताओ का राज्य होता है । वहाँ पात्र ऐसे काम कर बैठते है जो ससार मे होते नही दिखलाई देते । एक उदाहरण राम का ले लें । वे चित्रकूट मे अयोध्यावासियो मे उच्चाटन फैला देते है । वे काकभुशुडी को पेट मे रखकर उसे ब्रह्माडो मे घुमा देते है । वे सीता को अग्नि मे रखकर एक और कृत्रिम सीता को साथ ले घूमते है । देव सदा उन पर पुष्प बरसाते है । जहा राम बसते है, छओ ऋतुएँ वहाँ स्थायी रूप मे रहने लगती है । यही अलौकिकता है । इसे ही पौराणिकता कहते है । यदि कोई लेखक ऐतिहासिक नाटक के पात्र मे भी पौराणिकता भर देता है तो वह नाटक या उपन्यास इतिहास का शिविर छोडकर पौराणिकता से संधि कर लेता है ।[4]

---

1 सेठ गोविन्ददास अभिनदन ग्र थ—पृ० 152, डा० देवर्षि सनाढ्य का लेख' सेठ गोविन्ददास नाट्य कला तथा कृतियाँ—डा० रामचरण महेन्द्र, पृ० 48 ।

2 सेठ गोविन्ददास अभिनदन ग्र थ, पृ० 153 ।

3 आर्य सस्कृति का मूलाधार— श्री बलदेव उपाध्याय, पृ० 168 ।

4 भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य—डा० गोपीनाथ तिवारी, प्र० स०, 1959, पृ० 136-37 ।

अस्तु, जिन नाटको मे अलौकिकता, अति मानवीयता एव लोकोत्तर बातो का समावेश हो उन्हे पौराणिक नाटक मानना युक्तिसगत प्रतीत होता है।

सेठ जी के पौराणिक नाटक

कर्तव्य—'कर्तव्य' सेठ जी का प्रथम पौराणिक नाटक है। इसका प्रथम सस्करण 1935, द्वितीय 1964 तथा तृतीय 1967 मे प्रकाशित हुआ है। इसके दो भाग है—पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध मे राम की तथा उत्तरार्द्ध मे कृष्ण की कथा वर्णित है। प्रत्येक भाग मे पाच-पाँच अक है और प्रत्येक अक कई-कई दृश्यो मे विभाजित है। दोनो भागो की अक योजना समान होने पर भी दृश्य-योजना समान नही है।

कर्तव्य (पूर्वार्द्ध)—इस भाग की कथावस्तु इस प्रकार है—राम का राज्याभिषेक होने वाला है। इस गुरुतर दायित्व को ग्रहण करने से पूर्व वे अपने मन की दुविधा मिथिलेश नन्दिनी के समक्ष व्यक्त करते हुए कहते है—देखना है, प्रिये, इस भारी उत्तरदायित्व को सभालने और अपने कर्तव्य को पूर्ण करने मे मै कहाँ तक कृतकृत्य होता हू। दायित्व ग्रहण करने के लिए एक पहर ही तो शेष है, मैथिली।[1]

प्रत्युत्तर मे सीता का कथन है— हाँ, नाथ, केवल एक पहर। सफलता के सम्बन्ध मे प्रश्न ही निरर्थक है, आर्यपुत्र। यदि ससार मे आपको ही अपने कर्तव्य मे सफलता न मिली तो अन्य को मिलना तो असभव है।[2]

इसके बाद राम द्वारा राजा के कर्तव्य और उच्च जीवनादर्श का उल्लेख किया जाता है। राम की मान्यता है—

"अपने कर्तव्य की पूर्ति के लिए राजा को अपने सर्वस्व की आहुति देनी पडे तो भी वह पीछे न हटे, राजा के लिए कही भी किसी प्रकार की भी, बुरी आलोचना, और अपवाद न सुन पडे।"[3]

राज्याभिषेक के स्थान पर राम को वनवास मिलता है और वे सीता, लक्ष्मण के साथ वन-गमन करते है। उनका पचवटी मे निवास होता है और यही रावण द्वारा सीता का हरण किया जाता है। राम और सुग्रीव की मित्रता होती है, मित्र के कर्तव्य का पालन करने के लिए राम वृक्ष की ओट से वालि का वध करने के लिए तत्पर है। इस अवसर पर उनका अन्तर्द्वन्द्व चित्रण द्रष्टव्य है—

1. कर्तव्य, तृ० स०, पृ० 4, अक 1, दृश्य 1।
2 वही, पृ० 4।
3 वही, पृ० 6-7।

"पर लक्ष्मण, ताडका को मारते समय जैसे भाव उठे थे आज फिर वैसे ही मेरे हृदय मे उठ रहे है। वह स्त्री हत्या थी, यह युद्ध मे अधर्म है।[1] सुग्रीव और बालि का मल्ल-युद्ध हो रहा है, सुग्रीव के प्राण कठगत है, लक्ष्मण द्वारा बार-बार बाण छोडने का आग्रह किये जाने पर भी राम के हाथ से बाण नही छूटता, अत मे उनकी विवशता इस प्रकार प्रकट होती है —

"सचमुच ही अब तो उसके प्राण कठगत ही है। अच्छी बात है, लक्ष्मण, यही हो, अपने कर्तव्य की ओर इतना लक्ष्य रखते हुए भी यदि राम के हाथ से पाप ही होना है तो वही हो, लक्ष्मण, वही हो।[2]

राम के उपर्युक्त कथन के साथ ही उनके हाथ से बाण छूटता है और बालि-वध का प्रकरण समाप्त होता है।

इसके बाद बानर-भालु की सेना के साथ राम का लका-प्रवेश तथा रावणवध का वर्णन किया गया है। रावण की मृत्यु के पश्चात् राम सीता को ग्रहण करने मे अपनी असमर्थता प्रकट करते है। उनका कथन है—

"पर-गृह मे रही हुई स्त्री का, चाहे वह मुझे प्राणो से प्रिय क्यो न हो, ग्रहण करना मेरे लिए सम्भव नही है, यह धर्म की मर्यादा और नीति की सत्ता का उल्लघन होगा।"[3]

सीता अग्नि-परीक्षा के लिए प्रस्तुत होती है। इस प्रसग मे अग्नि-परीक्षा सम्बन्धी सेठ जी की मौलिक उद्भावना बुद्धि-ग्राह्य होने के कारण अत्यन्त रमणीय बन गई है। सेठ जी सीता को चिता मे प्रवेश नही कराते अपितु वे एक नये पात्र सरमा (विभीषण की पत्नी) को भी सीता के साथ चितारोहण के लिए प्रस्तुत दिखाकर उसके द्वारा इस रहस्य का उद्घाटन कराते है कि "अग्नि का धर्म दग्ध करना है। वह पवित्र और अपवित्र दोनो को समान रूप से दग्ध करेगी।"[4] वह सीता को सम्बोधित करते हुए कहती है—तुम्हारा शरीर नष्ट होते ही ससार कहेगा तुम अपनी परीक्षा मे अनुत्तीर्ण हो गयी अत तुम सती न थी। मैं किसी पर-पुरुष के गृह मे नही रही हू। मैं तुम्हारे सग चितारोहण कर ससार को इस बात का प्रमाण देना चाहती हू कि अग्नि का धर्म ही जलाना है, अत उसने सीता सती के सग ही सती सरमा के शरीर को जला दिया। सीता इसलिए भस्म हो गयी कि अग्नि का धर्म भस्म करना है न कि इसलिए कि वे असती थी।[5]

---

1 कर्तव्य, तृ० स०, पृ० 30, अक 2, दृश्य 5।
2 वही, पृ० 44, अक 3, दृश्य 5।
3 वही, पृ० 44, अक 3, दृश्य 5।
4 वही, पृ० 48, अंक 3, दृश्य 5।
5 वही, पृ० 48, अक 3, दृश्य 5।

इसके अनन्तर जन-समुदाय द्वारा सीता की शुद्धता प्रमाणित किये जाने पर राम उन्हे ग्रहण करते है। सीता, लक्ष्मण के साथ राम का अयोध्या पुनरागमन होता है।

अयोध्या मे राम के सिहासनारूढ होने के 8 मास पश्चात्, सीता के गर्भवती होने के समाचार से उनके सम्बन्ध मे लोकापवाद फैलता है। राम इस लोकापवाद के कारण सीता का परित्याग कर देते है और लक्ष्मण के द्वारा उन्हे बाल्मीकि के आश्रम मे भिजवा देते है। सीता-परित्याग से राम को असह्य पीडा होती है लेकिन कर्तव्य के नाम पर सब कुछ वे सहन करते जाते है।

गुरु वशिष्ठ की आज्ञा से, प्रचलित धर्म के विरुद्ध तप करने वाला निर्दोष शूद्र शम्बूक, अपना तप न छोडने पर, राम द्वारा वध किया जाता है। यहा भी राम के मानसिक सघर्ष का अच्छा चित्रण हुआ है। इस अवसर पर शम्बूक का यह कथन— मैं योग-वल के कारण जानता हू कि तुमसे इस जन्म मे समाज की अनुचित मर्यादाएँ भी न टूटेगी। तुम्हारा यह जन्म मर्यादाओ की रक्षा के निमित्त हुआ है, तोडने के निमित्त नही।[1] राम के समग्र जीवनादर्श का परिचय करा देता है।

अतिम अक मे अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर सीता पुन बाल्मीकि आश्रम से बुलाई जाती है, राम द्वारा शुद्धता की परीक्षा का प्रस्ताव फिर सामने आने पर वे अत्यन्त दुखी होकर पृथ्वी से फट जाने की प्रार्थना करती है, उसी क्षण भूकप आता है, पृथ्वी फटती है और वे उसमे समा जाती है।

अतिम दृश्य मे लक्ष्मण योग बल से शरीर त्याग देते है, उर्मिला सती होने को प्रस्तुत है, राम इस करुण दृश्य से अत्यन्त व्याकुल है, अयोध्या के अधिकाश निवासी सरयूतट पर स्थित श्मशान के निकट एकत्रित है, उसी समय भयानक भूकप होता है, उस भूकप के कारण स्थान-स्थान पर पृथ्वी फट जाती है और वशिष्ठ, राम तथा सभी अयोध्यावासी उसमे समा जाते है। अतिम दृश्य बडा ही कारुणिक है।

कर्तव्य (उत्तरार्द्ध)

कथानक का प्रारभ कृष्ण और राधा के यमुना-तट पर सवाद से होता है। कृष्ण उसी दिन मथुरा जाने वाले है, इस समाचार से राधा अत्यन्त व्यथित है, लेकिन कृष्ण निरासक्ति के कारण प्रसन्न प्रतीत होते है। राधा को सुखी जीवन का रहस्य वताते हुए कृष्ण कहते है—

"तुम अपने को ही कृष्ण क्यो नही मान लेती ? पहले अपने को ही कृष्ण मानने का प्रयत्न करो, फिर अपने समान ही सारे विश्व को मानने लगो तथा भेद-भाव से रहित हो उसी की सेवा मे दत्त-चित हो जाओ।"[2]

1 कर्तव्य, पृ० 64, अक 4, दृश्य 5।

2 वही, पृ० 90, अक 1, दृश्य 1।

इसके बाद अंतिम बार वशी बजाकर कृष्ण बलराम के साथ मथुरा चले जाते है। वहाँ कस का वध होता है तथा उग्रसेन को पुन सिंहासनारूढ किया जाता है। जरासध मथुरा पर 17 बार आक्रमण करता है और कृष्ण द्वारा हर बार पराजित होकर वापस जाता है। जब वह 18 वी बार आक्रमण करता है तो अपने साथ ही कालयवन को भी आक्रमण के लिए उकसाकर ले आता है, इस बार कृष्ण इन दोनो की सेनाओ के बीच से भागकर द्वारिकापुरी चले जाते है और जरासध तथा कालयवन यह सोचकर कि कृष्ण डर कर भाग गये है बिना युद्ध किये वापस आ जाते है।

कृष्ण के भागने का बडा मनोवैज्ञानिक कारण नाटककार ने प्रस्तुत किया है। उसने दिखाया है कि कृष्ण जरासध से डर कर नही भागे थे, अपितु उन्हे यह विश्वास हो गया था कि जरासध का उनसे व्यक्तिगत विद्वेष है और इसी विद्वेष के कारण ही वह उन्हे नीचा दिखाने के लिए बार-बार आक्रमण करता है जिससे जन-धन की हानि होती है। इस जन-धन की हानि को रोकने के लिए समाज की प्रचलित मर्यादा (रणक्षेत्र से न भागना) का उन्होने उल्लघन किया। इसके बाद जब जरासध को विश्वास हो गया कि कृष्ण डर कर भाग गये है तो उसने फिर कभी मथुरा पर आक्रमण न किया।

इसके बाद की प्रमुख घटनाएँ है—कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का हरण, अर्जुन द्वारा सुभद्रा के हरण मे उनका सहयोग, अत्याचारी भौमासुर का वध कर 16,000 राजकुमारियो से विवाह, अर्जुन को गीता का उपदेश, महाभारत मे दुर्योधन-वध के लिए भीम को अनुचित सकेत, कुरुक्षेत्र मे गगा-तट पर सूर्यग्रहण के अवसर पर कृष्ण-रूपिणी राधा सहित व्रजवासियो से भेंट, प्रेम-विह्वल राधा का इसी अवसर पर शरीर-त्याग, यादवो का परस्पर सघर्ष, उनका विनाश तथा प्रभास-क्षेत्र मे वधिक के बाण से आहत होकर मद-मद वशी बजाते हुए कृष्ण का महाप्रयाण। अन्तिम दृश्य बडा ही मार्मिक है।

प्रमुख विशेषताएँ

वस्तु-कल्पना की दृष्टि से 'कर्त्तव्य' सेठ जी का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। सर्वथा दो भिन्न कथाओ को एक निश्चित उद्देश्य (कर्त्तव्य-पालन) से जिस प्रकार सुगुम्फित किया गया है वह वास्तव मे नाटककार के अद्भुत नाट्य-कौशल का परिचायक है।

साधारण रूप से 'कर्त्तव्य' के पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध अलग-अलग नाटक के रूप मे प्रतीत होते है, लेकिन नाटककार दोनो को एक विशेष प्रयोजन से एक ही नाटक का अग बनाता है। वह दोनो भागो द्वारा कर्त्तव्य की व्याख्या करना चाहता है। दोनो भागो का साध्य एक ही है—लोककल्याण के लिए कर्त्तव्यपालन, लेकिन साधन भिन्न-भिन्न है। "राम मर्यादा की रक्षा के लिए अपने को मिटा देते है, कृष्ण सत्य की रक्षा के लिए मर्यादा की श्रृखला चट से तोड देते है। अतएव राम के लिए कर्त्तव्य-पालन आत्मबलिदान है, आत्म-हनन है, कृष्ण के लिए स्वाभाविक क्रिया।

परिणामस्वरूप जहाँ राम सदैव आँसू बहाते है, वहाँ कृष्ण सर्वत्र हँसते रहते है।"[1]

नाटक मे वैषम्य चित्रण के कारण नाटकीयता की श्रीवृद्धि हुई है। उत्तरार्द्ध की लगभग सभी घटनाएँ पूर्वार्द्ध की घटनाओ के विपरीत दिशा मे पडती है। यथा—

पूर्वार्द्ध मे धर्म की मर्यादा बनाये रखने के लिए राम रावण के गृह मे रहकर आई अपनी पत्नी सीता तक को ग्रहण करने मे असमर्थता प्रकट करते है, लेकिन उत्तरार्द्ध मे कृष्ण भौमासुर के यहाँ रहने वाली 16,000 राजकुमारियो को सहर्ष ग्रहण कर उनसे विधिवत् विवाह करते है, समाज की अनुचित मर्यादा का पालन कर राम शम्बूक का वध कर देते है लेकिन प्रचलित सिद्धान्तो को तोडकर कृष्ण जरासध के सामने युद्धक्षेत्र से भाग जाते है। राम लोकापवाद के डर से गर्भवती सीता का परित्याग कर देते है, लेकिन कृष्ण लोकापवाद की चिंता न करके अपनी बहन सुभद्रा का अर्जुन द्वारा हरण करा देते है और स्वय रुक्मिणी का हरण कर लाते है। राम का समग्र चरित्र शम्बूक का एक वाक्य प्रकट कर देता है—मैं योग बल के कारण जानता हू कि तुम से इस जन्म मे समाज की अनुचित मर्यादाएँ भी न टूटेगी।[2] और कृष्ण का चरित्र स्वय उनका एक वाक्य—समाज की अन्यायपूर्ण मर्यादाओ से समाज को उल्टा क्लेश होता है अत इन्हे भग करना ही होगा।[3]

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से राम और कृष्ण के चरित्र काफी सफल कहे जा सकते है। "कृष्ण का चरित्र तो बहुत ही सजीव हुआ है। राम मर्यादा के रक्षक है, परन्तु मर्यादा और उनके व्यक्तित्व मे सघर्ष बराबर बना रहता है। इसी विरोध ने राम के चरित्र को प्रभावशाली बना दिया है। पाठक राम को श्रद्धा करता है और कृष्ण को प्यार करता है।"[1]

नाटक मे प्राचीन वातावरण के निर्माण मे लेखक को काफी सफलता मिली है। पात्रो की वेश-भूषा प्राचीन युग के अनुरूप रखने का प्रयास किया गया है। दोनो भागो के सभी पात्र बोलचाल मे हिन्दी का शुद्ध रूप (तत्सम) ही प्रयुक्त करते है। प्राचीन सम्बोधन यथा आर्यपुत्र, तात, वत्स आदि के समावेश से उपयुक्त वातावरण के निर्माण मे काफी सहायता मिली है।

राम और कृष्ण को आदर्श मानव के रूप मे चित्रित किया गया है, अत उनसे सम्बन्धित लोकोत्तर घटनाओ को बुद्धिग्राह्य बनाकर यथार्थ भूमि पर प्रतिष्ठित

---

1 आधुनिक हिन्दी नाटक—डा० नगेन्द्र, नवम सस्करण, पृ० 149।
2. कर्त्तव्य, अक 4, दृश्य 5, पृ० 64।
3 कर्त्तव्य (उत्तरार्द्ध), अक 3, दृश्य 4, पृ० 125।
4. सेठ गोविन्ददास व्यक्तित्व एव साहित्य, पृ० 62, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का लेख।

करने का सफल प्रयास परिलक्षित होता है। नाटक में वशिष्ठ और शम्बूक का योग बल द्वारा सब कुछ जान लेना अतिमानवीय घटना ही मानी जायेगी।

'कर्त्तव्य' सर्वथा निर्दोष कृति नहीं है। कथानक का विस्तार, पात्रों का बाहुल्य, भूकप, रथ, हाथी-घोड़े आदि का समावेश तथा सूच्यांशों की अधिकता के कारण नाटक का रंगमंच पर सफलतापूर्वक अभिनय असंभव है।

कर्ण—कर्ण सेठ जी का दूसरा पौराणिक नाटक है। इसका प्रथम संस्करण 1946 तथा द्वितीय 1964 में प्रकाशित हुआ है। सम्पूर्ण नाटक में पाँच अंक, 24 दृश्य हैं। प्रारम्भ में उपक्रम तथा अन्त में उपसंहार है।

प्रस्तुत नाटक की मूल प्रेरणा के सम्बन्ध में सेठ जी का कथन है—

महाभारत के इस पारायण में कर्ण के चरित्र की जिस बात ने मेरे मन पर सबसे अधिक असर डाला वह थी लगातार द्वन्द्वात्मक भावनाएँ तथा कृतियाँ। महाभारत में कर्ण द्वारा उच्च से उच्च कृतियाँ होती हैं और निकृष्ट से निकृष्ट भी। एक ही व्यक्ति एक दूसरे से ठीक विरोधी कृतियाँ इस प्रकार कैसे कर सकता है। महाभारत की इस द्वितीय आवृत्ति में यह मेरे चिन्तन का एक विषय हो गया।[1]

नाटक की कथावस्तु महाभारत में वर्णित परम्परागत कथा पर आधारित है। 'कर्ण' में वह कथा लगभग उसी रूप में ग्रहण की गई है, नाटककार ने उसमें कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं किया है, सम्भाषणों तक में महाभारत में वर्णित अनेक सम्भाषण मूल रूप में ही उद्धृत किये गये हैं।

कथानक—कथानक का प्रारम्भ हस्तिनापुर के राजप्रासाद की रंगशाला में गुरु द्रोणाचार्य द्वारा शस्त्र-विद्या से प्रशिक्षित कौरवों-पांडवों के युद्ध-कौशल की परीक्षा से होता है। जिस समय अर्जुन के सर्वश्रेष्ठ वीर होने की घोषणा की जाने वाली होती है, महातेजस्वी कर्ण का अचानक प्रवेश होता है। वह अर्जुन द्वारा प्रदर्शित सभी युद्ध-कलाओं को उनसे भी अधिक कौशल के साथ प्रदर्शित करता है। शस्त्र-विद्या में दोनों में से कौन श्रेष्ठ है, इसका निर्णय करने के लिए वह अर्जुन को द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकारता है, अर्जुन युद्ध के लिए प्रस्तुत है लेकिन उसी समय आचार्य कृप के ये शब्द सुनाई पड़ते हैं—

"वीरवर, द्वन्द्व युद्ध के कुछ निश्चित नियम हैं। वह केवल बराबरी वालों में हो सकता है। अर्जुन महाराजा पाडु और पृथा के तृतीय पुत्र हैं। उनका जन्म क्षत्रिय वर्ण के प्रख्यात कुरुवंश में हुआ है। तुम अपने माता-पिता का नाम बताओ। किस वर्ण में, किस वंश में तुम्हारी उत्पत्ति हुई है, यह कहो।"[2]

कृपाचार्य के उपर्युक्त कथन के अनन्तर कर्ण की गर्जना सुनाई पड़ती है—

---

1 कर्ण, द्वितीय संस्करण, निवेदन, पृ० 1।

2 कर्ण, उपक्रम, पृ० 8।

"वर्ण और वंश ! माता-पिता का नाम ! वर्णो तथा वंशो का द्वन्द्व होना है, या अर्जुन का और मेरा, आचार्य ? मेरी दृष्टि से तो आप अर्जुन के वर्ण, वंश और माता-पिता का विवरण कर, अर्जुन का उल्टा अपमान कर रहे है। उन्हे गर्व होना चाहिए अपना और अपने पौरुष का। जन्म तो दैवाधीन है, आचार्य, हाँ, पौरुष, स्वय के आधीन है। मुझे अपने कुल का परिचय देने की आवश्यकता नही, वह मेरे हाथ मे नही। मेरे हाथ मे है मेरा पौरुष, तथा मेरा पौरुष ही मेरा सच्चा परिचय है।"[1] कर्ण का पौरुष समग्र नाटक मे दिखाई पडता है।

कर्ण के युद्ध-कौशल तथा उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर दुर्योधन उसे अग देश का राजा बना देता है। दुर्योधन के इस उपकार के बदले मे कर्ण उसे वचन देता है—

"विश्व की कोई भी शक्ति आजन्म मुझे तुम से न विमुख कर सकेगी और न पृथक्, और मेरी सारी शक्ति सदा तुम्हारे काम आवेगी।"[2] कर्ण आजीवन इस वचन का पालन करता है, वचन का पालन उसके कर्त्तव्य की दृढता का परिचायक है। नाटक मे कर्ण की नीचता का बहुत-कुछ उत्तरदायित्व उसकी इस वचनबद्धता को ही है। वह इसी वचनबद्धता के कारण दुर्योधन के नीच से नीच कार्य का भी समर्थन कर देता है। सभवत नाटककार कर्ण की नीचता का औचित्य 'वचनबद्धता' के मनोवैज्ञानिक कारण द्वारा सिद्ध करना चाहता है।

रगशाला मे सूत अधिरथ के प्रवेश द्वारा कर्ण के सूत-पुत्र होने के रहस्य का उद्घाटन कराया गया है। इस अवसर पर भीम का कथन द्रष्टव्य है—

ओह ! तो यह सारथी अधिरथ का पुत्र। (कर्ण से) रे सूत, तू अर्जुन से द्वन्द्व युद्ध चाहता था ! यह महत्त्वाकाक्षा ! यह साहस ! अरे, तू तो अर्जुन के हाथ से मृत्यु और वह भी रण-मृत्यु के योग्य नही। जा, जा, अपने कुल-धर्म के अनुसार प्रतोद लेकर रथ पर बैठ सारथी-कर्म से जीविका चला।[3]

कर्ण के प्रति पाडवो की इस भावना ने उसे आजीवन पाडवो का घोर शत्रु बनाये रखा। सूर्यास्त के कारण अर्जुन और कर्ण का मल्ल-युद्ध नही होता। रगशाला सम्बन्धी सभी घटनाओ का समावेश नाटक के 'उपक्रम' मे किया गया है।

प्रथम अक के आरम्भ मे कर्ण के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण किया गया है। यह चित्रण बडा ही मनोरम है। नाटककार ने इस प्रसग मे एक मजूषा (काठ की पेटी) की कल्पना की है, वह यह सकेत करना नही भूलता कि मजूषा मे ही बद करके कुन्ती ने अपनी अवैध सन्तान कर्ण को नदी मे प्रवाहित किया था। काठ की इस

1 कर्ण, उपक्रम, पृ० 9।
2. वही, पृ० 10।
3. वही, पृ० 11।

मजूषा को जब जब कर्ण देखता है उसे अपने जीवन के वास्तविक रहस्य (सूर्य और कुन्ती का पुत्र होना) का स्मरण हो जाता है और वह कुलीनो द्वारा प्राप्त प्रताडना से और अधिक विक्षुब्ध हो उठता है।

इसी अक मे युधिष्ठिर की द्यूत-क्रीडा, द्रौपदी का अपमान, कुन्ती का मानसिक सघर्ष चित्रित किया गया है।

दूसरे अक मे पाडवो का वनवास, गधर्व चित्ररथ का वन मे दुर्योधन को वन्दी बनाना, पाडवो द्वारा उनकी मुक्ति, दुर्योधन का पश्चात्ताप तथा अनशन आदि घटनाएँ वर्णित है।

तीसरे अक की प्रमुख घटना यह है कि ब्राह्मण के वेश मे इन्द्र कर्ण का कवच-कुडल माँगने के लिए उसके पास जाते है। इन्द्र के आने की पूर्व सूचना तथा उनके आने का उद्देश्य स्वप्न मे सूर्य द्वारा कर्ण को पहले ही पता लग जाता है। इन्द्र की यथार्थ भावना से परिचित होकर भी कर्ण अपने दान की प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए कवच-कुडल उन्हे दे देता है।

चौथे अक मे कृष्ण द्वारा प्रस्तुत सधि-प्रस्ताव दुर्योधन द्वारा अस्वीकृत होने पर महाभारत के भीषण सग्राम का होना निश्चित हो जाता है। कर्ण को पाडवो के पक्ष मे लाने के लिए कृष्ण उसे अनेक प्रलोभन देते है लेकिन वह किसी भी दशा मे दुर्योधन को छोडने के लिए तैयार नही होता। कुन्ती भी इसी उद्देश्य से उसके पास जाती है लेकिन कर्ण दुर्योधन के साथ विश्वासघात करने के लिए तैयार नही होता।

पाँचवे अक मे महाभारत के युद्ध का वर्णन है और उपसहार मे अर्जुन द्वारा कर्ण-वध का करुण प्रसग उपस्थित हुआ है। नाटक का अन्त नाटकीय होने के कारण प्रभावोत्पादक है।

प्रमुख विशेषताएँ

प्रस्तुत नाटक का प्रमुख उद्देश्य नायक कर्ण की द्वन्द्वात्मक भावनाओ तथा उसकी कृतियो का निरूपण करना है। नाटककार ने कर्ण के चरित्र को उच्च से उच्च चित्रित करने का प्रयास किया है और जहाँ उसकी कृति से किसी प्रकार की नीचता प्रकट होती है वहाँ नाट्यकार ने उसका औचित्य सिद्ध करना चाहा है। उदाहरणार्थ—नाटक मे कर्ण दुर्योधन के षड्यन्त्र मे सम्मिलित रहता है, वह (कर्ण) उसकी नीच से नीच कृति का भी समर्थन करता है, लेकिन इसका कारण यह बताया गया है कि वह दुर्योधन की हर प्रकार से सहायता के लिए वचनबद्ध है। नाटक मे इस प्रकार कर्ण के चारित्रिक गौरव की रक्षा का विधान नाटककार की सर्वथा मौलिक देन है। उसकी महानता बनाये रखने के लिए नाटककार ने महाभारत की मूल कथा मे परिवर्तन करके वन मे गधर्व चित्ररथ और दुर्योधन के युद्ध के समय उसे अनुपस्थित दिखाया है।

नाटक में कर्ण का चरित्र बहुत उच्च अंकित हुआ है, उसमें साहस, निर्भयता, सत्यनिष्ठता, कर्तव्य-परायणता, कष्ट-सहिष्णुता, दानवीरता, मित्र-वत्सलता आदि गुणों का समन्वय हुआ है। उसके सामने कृष्ण का चरित्र भी फीका लगता है। स्वयं कृष्ण तथा भीष्म पितामह ने उसकी महानता स्वीकार की है। उसके विषय में भीष्म की उक्ति है—जिस एक व्यक्ति में अर्जुन और कृष्ण दोनों के गुण एक साथ हों, उससे महान् और कौन हो सकता है।[1]

कर्ण और कुन्ती की मनोदशा का सुन्दर चित्रण नाटककार ने किया है। कर्ण के चरित्र को प्रमुखता देने के कारण अन्य पात्रों के चरित्र का विकास नहीं हो पाया है।

इस नाटक में वर्तमान युग की दो समस्याओं—अवैध संतान तथा कुलीन-अकुलीन की भावना—का भी निरूपण किया गया है। समस्याएँ अपने ज्वलन्त रूप में प्रस्तुत की गई हैं, उनका कोई समाधान नहीं किया गया है। इसमें अलौकिक कवच-कुंडल तथा द्रौपदी के वस्त्र बढ़ने की घटना के कारण अति प्राकृतिक तत्त्वों का समावेश भी हो गया है।

नाटक की कथावस्तु सुशृंखलित है, प्रारम्भ और अन्त प्रभावपूर्ण है। अभिनय की दृष्टि से नाटक की असफलता का अनुभव कदाचित् सेठ जी ने भी किया है, इसी कारण नाटक के अनेक दृश्यों को सिनेमा द्वारा दिखाये जाने का सुझाव अनेक स्थलों पर दिया गया है।

ऐतिहासिक नाटक

सेठ गोविन्ददास ने कुल नौ ऐतिहासिक नाटकों का निर्माण किया है। इनमें से आठ प्रकाशित हो चुके हैं और एक अभी अप्रकाशित है। उनका प्रथम ऐतिहासिक नाटक 'हर्ष' 1935 में तथा अंतिम 'सिंहल द्वीप' 1966 में प्रकाशित हुआ है। प्रकाशन काल के अनुसार नाटकों का क्रम इस प्रकार है—

1 हर्ष (1935)
2 कुलीनता (1941)
3 शशिगुप्त (1942)
4 शेरशाह (1943)
5 अशोक (1957)
6 भिक्षु से गृहस्थ गृहस्थ से भिक्षु (1957)
7 विजय-बेलि अथवा कुरूप (1963)
8 सिंहल द्वीप (1966)
9 विश्वास-घात (अप्रकाशित)

---

1 कर्ण, अंक 5, दृश्य 5, पृ० 117।

उपर्युक्त नाटको मे उनके ऐतिहासिक एकाकी सम्मिलित नही है, उनका विवेचन एकाकी नाटको के अन्तर्गत किया जायेगा।

सेठ जी का दृष्टिकोण—ऐतिहासिक घटनाओ मे नाटक, उपन्यास या कहानी लेखक को कितनी स्वतन्त्रता लेने का अधिकार है, इस सम्बन्ध मे सेठ जी ने अपना मत प्रथम ऐतिहासिक नाटक 'हर्ष' की भूमिका मे इस प्रकार व्यक्त किया है—

"मेरा मत है कि नाटक, उपन्यास या कहानी-लेखक को यह अधिकार नही है कि वह किसी भी पुरानी कथा को तोड-मरोड कर उसे एक नयी कथा ही दना दे। हॉ, कथा का अर्थ (Interpretation) वह अवश्य अपने मतानुसार कर सकता है।"[1]

उनके ऐतिहासिक नाटको मे यही दृष्टिकोण प्रारभ से अन्त तक विद्यमान रहता है।

ऐतिहासिक नाटकों का विवेचन

हर्ष—प्रस्तुत नाटक सेठजी का प्रथम ऐतिहासिक नाटक है। यह प्रथम वार 1935 मे प्रकाशित हुआ था और अब तक इसके छ सस्करण निकल चुके है। इसमे कुल चार अक और 20 दृश्य है। दृश्यो का विभाजन इस प्रकार है—पहले और तीसरे अक मे छ-छ तथा दूसरे और चौथे अक मे चार-चार दृश्य है।

कथावस्तु—हर्ष के अग्रज, स्थाण्वीश्वर नरेश राज्य-वर्द्धन का गौडाधिपति शशॉक नरेन्द्र गुप्त छल से वध कर देता है, राज्यवर्द्धन की मृत्यु के पश्चात् स्थाण्वीश्वर का सिहासन रिक्त हो जाता है। हर्ष की छोटी बहिन राज्यश्री कान्यकुब्ज के बन्दीगृह मे होती है। शिलादित्य (हर्ष के बचपन का नाम) राज्य न ग्रहण करने की अपनी प्रतिज्ञा पर अटल दिखाई देता है, अपने अनन्य मित्र माधव गुप्त तथा राज्य-कर्मचारियो द्वारा विवश किये जाने पर वह राज्य ग्रहण करना स्वीकार तो कर लेता है लेकिन इसके साथ ही दो शर्तें रखता है—विवाह न करूगा और व्यर्थ का युद्ध न करूगा। राज्याभिषेक के साथ ही शिलादित्य हर्ष सज्ञा से अभिहित किया जाता है।

राज्य-ग्रहण के पश्चात् हर्ष अपने सेनापति भण्डि को शशॉक नरेन्द्र से भाई के वध का प्रतिशोध लेने के लिए भेजता है और स्वय कुछ सैनिक लेकर बहन राज्यश्री की खोज के लिए जाता है। शशाक नरेन्द्रगुप्त हर्ष की अधीनता स्वीकार कर उसका मॉडलिक वन जाता है और राज्यश्री, जो कान्यकुब्ज की कारा से मुक्त कर दी गई थी, नर्मदा के किनारे सती होने के लिए चिता मे प्रवेश से पूर्व ही हर्ष द्वारा रोक ली जाती है।

---

1 हर्ष, छठा सस्करण, निवेदन, पृ० 'ख'।

हर्ष अपनी विधवा बहन राज्यश्री को कान्यकुब्ज के सिहासन पर प्रतिष्ठित करता है और स्वय उसका माण्डलिक बन जाता है।

हर्ष समग्र भारत को एक साम्राज्य बनाने का इच्छुक है, इस इच्छापूर्ति के लिए वह अनेक राज्यो पर आक्रमण करता है और वहा के अधिपतियो को पराजित कर उन्हे मांडलिक बना लेता है। दक्षिण के पुलकेशी से पराजित होने पर वह आक्रमण बिल्कुल बन्द कर देता है और केवल हृदय-परिवर्तन से एक साम्राज्य की स्थापना का स्वप्न देखने लगता है।

हर्ष द्वारा राज्यश्री के राज्याभिषेक से चिढकर कुछ रूढिवादी ब्राह्मण शशाक से जा मिलते है और हर्ष के वध का षड्यत्र रचने का प्रयास करते है, शशॉक उन्हे उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करने के लिए कहता है।

माधवगुप्त का पुत्र आदित्य सेन अपने पिता की सेवा-वृत्ति से खीझ कर गुप्त वश की प्राचीन मर्यादा को बनाये रखने के उद्देश्य से पितृव्य शशाक नरेन्द्रगुप्त से जा मिलता है। नरेन्द्रगुप्त कट्टर आर्य धर्मावलबी होने के कारण आदित्य सेन द्वारा बोधि-वृक्ष को कटवा डालता है और दोनो मिलकर उपयुक्त अवसर पर हर्ष के वध की योजना भी बनाते है।

हर्ष आर्य और बौद्ध धर्म के एकीकरण के उद्देश्य से प्रयाग मे शिव, सूर्य और बुद्ध की प्रतिमा के सयुक्त पूजन तथा सर्वस्वदान का निश्चय करता है। इसके लिए तिथि निश्चित होती है और इसमे सम्मिलित होने के लिए सभी राजाओ को आमन्त्रित किया जाता है।

नरेन्द्रगुप्त तथा आदित्यसेन इस महोत्सव पर हर्ष के वध की योजना बनाते है। उनके षड्यत्र का पता माधवगुप्त को लग जाता है, वह सेनापति भडि के साथ मिलकर इस षड्यत्र को विफल कर देता है, शशॉक का वध होता है और माधवगुप्त आदित्यसेन को बन्दी बनाकर महोत्सव मे स्थित हर्ष के पास ले जाता है। हर्ष अपनी उदार वृत्ति के कारण आदित्यसेन को छोड देता है, उसके जाने के तुरन्त बाद मडप मे आग लग जाती है, माधवगुप्त आग बुझाने का प्रवन्ध करता है और यही नाटक समाप्त हो जाता है।

'हर्ष' मे इतिहास और कल्पना—प्रस्तुत नाटक मे ऐतिहासिक एव काल्पनिक तत्वो के विवेचन के प्रसग मे हम केवल राज्यवर्द्धन की हत्या के पश्चात् की घटनाओ को ही लेगे क्योंकि इससे पूर्व की घटनाओ का नाटक के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही है।

राज्यवर्द्धन की हत्या के पश्चात् स्थाण्वीश्वर का सिहासन रिक्त हो गया था, हर्ष राज्य-ग्रहण के लिए प्रस्तुत न था, उसकी इस उपेक्षा-नीति के कारणो का वर्णन इतिहासकारो ने अलग-अलग ढग से किया है। प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता डा० मजुमदार लिखते है—

स्पृहणीय पन्थानम् । अपहाय कुपुरुषोचिता शुच प्रतिपद्यस्व कुलक्रमागता केसरीव कुरगी राजलक्ष्मीम् । देव ! देवभूय गते नरेन्द्रे दुष्टगौडभुजगजग्धजीविते च राज्यवर्धने वृत्तेऽस्मिन्महाप्रलये धरणीधारणायाधुना त्व शेष । समाश्वासय अशरणा प्रजा ।[1]

अर्थात् जिस मार्ग मे तुम्हारे पिता, पितामह, प्रपितामह गए है त्रिभुवन मे श्लाघनीय उस मार्ग की हसी मत उडाओ । कुपुरुषो के लिए उचित शोक को छोड कुल परपरागत राजलक्ष्मी को उस प्रकार प्राप्त करो जैसे सिह हिरनी को, देव ! महाराज के देवत्व प्राप्त करने पर एव दुष्ट गौडाधिप रूपी सर्प द्वारा राज्यवर्धन के डस लिए जाने से इस महाप्रलय मे पृथ्वी के धारण के लिए अब तुम्ही शेष (अवशिष्ट अथवा सर्वस्व) हो । आश्रयहीन प्रजा को आश्वासन दो ।

राज्य-ग्रहण के प्रति हर्ष की अनिच्छा का कारण 'हर्ष' मे मुख्यत उस पर बौद्ध धर्म का व्यापक प्रभाव होना चित्रित किया गया है । इस सम्बन्ध मे राज-सभा के एक सदस्य का कथन विशेष रूप से उल्लेखनीय है—

"हा, अब तो राज-वशजो के सदृश वेश-भूषा तक उन्होने परित्याग कर दी है । बौद्ध-भिक्षुओ के सदृश पीत चीवर धारण किए हुए, बिना किसी आभूषण और आयुध के, बिना परिचारको और वाहन के, वे यत्र-तत्र घूमा करते है ।[2]

'हर्ष' मे सेठ जी ने दिखाया है कि राज्यवर्द्धन की मृत्यु के उपरात राज-सभा की मीटिग मे यह निर्णय किया जाता है कि हर्ष को इस बात की सूचना दी जाय कि यदि वे तुरत ही सिहासनासीन होने के लिए तैयार नही होते तो राज्य के सभी पदाधिकारी अपने-अपने पद मे त्यागपत्र दे देगे । इस निर्णय से हर्ष को अवगत कराने के लिए उसके पास महामत्री अवन्ति एव महा-सेनापति सिंहनाद जाते है । हर्ष की मन स्थिति उसके मित्र माधवगुप्त की सत्प्रेरणाओ के कारण पहले से ही बदल चुकी होती है और वह राज्य-ग्रहण के पक्ष मे दिखाई पडता है, दोनो पदाधिकारियो द्वारा राजसभा के अ तिम निर्णय की सूचना देने पर वह दो शर्तो पर सिहासनासीन होने की स्वीकृति दे देता है । उसकी दो शर्ते है—विवाह न करना और व्यर्थ का युद्ध न करना ।[3] सेठ जी की यह कल्पना सुन्दर है ।

हर्ष के विवाह के बारे मे इतिहास मे कही उल्लेख नही है, 'हर्ष-चरित्र' मे राज्यश्री के विवाह का विस्तार से वर्णन है लेकिन हर्ष के विवाह के बारे मे कुछ भी नही लिखा है । ऐतिहासिक पुस्तको मे यह अवश्य वर्णित है कि हर्ष की पुत्री का विवाह वल्लभी नरेश ध्रुवसेन से हुआ था, यथा—

1 हर्षचरितम्—बाणभट्ट, हिन्दी अनुवाद (प० जगन्नाथ पाठक), हि० स० 1964, पृ० 340-41 ।

2 हर्ष, छठा सस्करण, पृ० 4 ।

3 वही, पृ० 18 ।

The territory of Valabhi (Wala) in Eastern Kathiawar, which intervened between Mo-la-po and Saurashtra, had a king of its own, Dhruvabhata by name (Dhruvasena Baladitya of inscriptions), who was the son-in-law of Harsha (Siladitya), paramount sovereign of Northern India Dhruvabhata had been defeated by Harsha and the matrimonial alliance seems to have been one of the arrangements made when peace was declared [1]

सेठ जी ने हर्ष को अविवाहित माना है और उसकी पुत्री को उनकी पालित पुत्री।[2]

'हर्ष' के अनुसार राजपुत्र शिलादित्य प्रचलित प्रणाली के अनुसार हर्षवर्द्धन नाम धारण कर सिंहासनारूढ होता है, इतिहास के तथ्यों से यह प्रमाणित नहीं होता। इसके विपरीत ऐतिहासिक ग्रंथों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि कन्नौज का सिंहासन हर्ष ने 'राजपुत्र' की उपाधि ग्रहण कर एवं शिलादित्य नाम से ग्रहण किया था, यथा—

Harsavardhana became king of Kanauj with the title Rajaputra and the style 'Siladitya (ibid)[3]

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि हर्ष ने अपनी बहिन राज्यश्री के साथ आर्यावर्त का राज्य किया—

The Chinese work entitled 'Fang-chih' represents Harsha as 'administering the government in conjunction with his widowed sister' [4]

सेठ जी ने हर्ष द्वारा राज्यश्री का अभिषेक कराया है और वह स्वयं उसका माडलिक बनकर राज्य करता है।

हर्ष और गौडाधिपति शशांक नरेन्द्रगुप्त की शत्रुता एवं दोनों का संघर्ष ऐतिहासिक है, इतिहास ग्रंथों में उसे (शशांक) आर्य-धर्म का कट्टर अनुयायी और बौद्ध धर्म से घोर विद्वेष रखने वाला चित्रित किया गया है। उसका बोधि-वृक्ष को कटवाना भी ऐतिहासिक तथ्य है—

The king of Gauda was, according to the evidence of Yuan Chwang, Sasanka' the wicked king of Karnasuvarna in East

1 The Early History of India, p 342

2 हर्ष, निवेदन, पृ० 'क'।

3 Harsha—Dr Radhakumud Mookerjee, 3rd Edn 1965, p. 20

4 The Early History of India, p 351

India, a persecutor of Buddhism (Watters translation, i 343), who uprooted the Bodhi tree (Life p 171)[1]

'हर्ष' मे दिखलाया गया है कि शशाक नरेन्द्रगुप्त हर्ष का माडलिक बनना स्वीकार कर लेता है। इस सम्बन्ध मे सेनापति यशोधवल से उसका कथन है—

"यह तो सौभाग्य का विषय है कि वर्द्धन इस समय मुझे माडलिक बना लेना ही राज्य वर्द्धन की हत्या का समुचित दड मानते है और युद्ध अथवा मेरा निधन उन्हे इष्ट नही है।"[2]

'हर्ष' मे सेठ जी की उपर्युक्त मान्यता सर्वमान्य ऐतिहासिक तथ्य नही है इस विषय पर इतिहासकारो मे मतभेद है—

राज्यवर्धन के हत्यारे गौडाधिपति शशाक को हर्ष पूर्णतया हराकर उसका राज्य छीन सका या नही, इस विषय मे विद्वानो मे मतभेद है। युवान च्वाग केवल इतना लिखता है कि शशाक बौद्ध धर्म का शत्रु और शिव का उपासक था। उसने बौद्ध विहारो को नष्ट किया और गया के पास के बोधि-वृक्ष को कटवा डाला। गजाम जिले मे एक ताम्र-लेख अवश्य मिला है जिससे शशाक का 619 ई० तक जीवित रहना सिद्ध होता है। उस लेख मे उसको महाराजाधिराज कहा गया है। उपलब्ध साधनो की समीक्षा करने से तो यही परिणाम निकलता है कि शशाक दीर्घकाल तक स्वतत्रतापूर्वक शासन करता रहा और हर्ष उसको पराजित नही कर सका। सभवत उन दोनो मे युद्ध ही न हुआ हो। शशाक की मृत्यु के बाद गौड तथा उडीसा पर हर्ष का अधिकार हुआ।[3]

डा० मजुमदार का भी इस सम्बन्ध मे वही कथन है—

The chief object of his military campaign was not fulfilled. For Sasanka seems to have reigned in glory till at least 619 A D, as in an inscription, dated in that year, he is invoked, as the suzerain power by a feudatory chief in the Ganjam Ditstrict[4]

हर्ष द्वारा बुद्ध, सूर्य एव शिव का सयुक्त पूजन ऐतिहासिक तथ्य है—

The elder brother and sister of Harsha were convinced Buddhists, while Harsha himself distributed his devotions among

1 Harsha—Dr. R K Mookerjee, p 18

2 हर्ष, पृ० 38।

3. भारत का राजनैतिक तथा सास्कृतिक इतिहास—भाग 1, डा० आशीर्वादी लाल एव डा० सत्यनारायण दुबे, स० 1966, पृ० 184।

4 Ancient India—p 252

the three deities of the family, Siva, the Sun and Buddha, and erected costly temples for the service of all three [1]

इसी प्रकार हर पाचवें वर्ष प्रयाग मे मोक्ष-परिषद् के विख्यात समारोह मे हर्ष का सर्वस्व दान पूर्णत इतिहास-सम्मत है, इस अवसर पर हर्ष केवल घोडे, हाथी तथा सेना के लिए अत्यन्त आवश्यक सामानो को छोडकर शेष सब कुछ दान कर देता था। वह अपने पहने हुए राजसी वस्त्रो को भी दान मे दे देता था और बहन राज्यश्री से मागकर पुराने वस्त्र धारण करता था।[2]

इस सम्बन्ध मे स्वय नाट्यकार का कथन है—

"हर्ष का शिव, सूर्य, एव बुद्ध का सयुक्त पूजन, सर्वस्वदान तथा कुछ धर्मान्ध ब्राह्मणो द्वारा हर्ष की हत्या का यत्न एव इस सयुक्त पूजन के समय मडप मे अग्नि का लगाया जाना, ये सब ऐतिहासिक घटनाए है। हा, शिव, सूर्य एव बुद्ध का सयुक्त पूजन कान्यकुब्ज मे तथा सर्वस्व-दान प्रयाग मे होता था। सुविधा और सौदर्य-वृद्धि के विचार से मैने इन दोनो घटनाओ का एकीकरण कर दिया है।"[3]

राज्यश्री की सखी अलका को छोडकर नाटक के प्राय सभी पात्र ऐतिहासिक है। हर्ष की पालित पुत्री और माधवगुप्त की स्त्री के नाम जो क्रमश जयमाला और शैलबाला नाटक मे दिये गये है, सर्वथा काल्पनिक है। इनके नाम ज्ञात न हो सकने के कारण ही नाट्यकार ने ऐसा किया है।

विशेषताएं—

'हर्ष' मे इतिहास एव कल्पना का मणिकाचन सयोग है। हर्ष विषयक ऐतिहासिक मूल भावना को उसी रूप मे सुरक्षित रखते हुए, नाटककार ने अवसरानुकूल चरित्रनायक (हर्ष) को महिमा-मडित बनाने के उद्देश्य से तथा नाटकीय सौन्दर्य के लिए अनेक मौलिक उद्भावनाए की है। इस सम्बन्ध मे कुछ उद्धरण उल्लेखनीय है—

हर्ष विवाहित थे अथवा अविवाहित, इस विषय पर इतिहासकारो मे मतभेद है, प्रस्तुत नाटक मे हर्ष द्वारा राज्य-ग्रहण के अवसर पर विवाह न करने का निश्चय प्रकट करना और सेनापति के कारण पूछने पर यह कहना कि "मैं अपने को राज्य का सरक्षक मानना चाहता हूँ और राज्य को अपने पास प्रजा की धरोहर। मै अपने और अपने वश को राज्य का स्वामी और राज्य को अपनी सम्पत्ति नही मानना चाहता"[4] नाटककार की सुन्दर कल्पना है और इससे हर्ष की गरिमा प्रकट होती

1 The Early History of India, p 359
2 वही, पृ० 364-65।
3 हर्ष, निवेदन, पृ० क-ख।
4 हर्ष, पृ० 18।

है। इसी प्रकार यह ऐतिहासिक तथ्य है कि हर्ष ने अपनी बहिन राज्यश्री के साथ आर्यावर्त का राज्य किया, इस नाटक मे हर्ष द्वारा उसका राज्याभिषेक तथा स्वय उसका माडलिक बनना, नई कल्पना है। इससे हर्ष की उदारता, महानता और त्याग भावना तो प्रकट होती ही है नाटक मे भी पर्याप्त सौन्दर्य का समावेश हो गया है।

"हर्ष मे सातवी सदी का ऐतिहासिक वातावरण बडी अच्छी तरह समाविष्ट है। उस समय की धार्मिक और राजनीतिक अवस्था का दिग्दर्शन इतिहास तथा साहित्य-प्रेमियो के लिए उपयोगी है।"[1]

हर्ष, माधव गुप्त तथा आदित्य सेन का चरित्र-चित्रण बहुत सुन्दर है, राज्यश्री को भी ऊँचा उठाने का प्रयास किया गया है। शेष पात्र सामान्य स्तर के है। हर्ष की महानता से अभिभूत हो उसे देवतुल्य चित्रित करने का पूर्ण प्रयत्न नाटककार ने किया है लेकिन प्रयत्नानुसार वह उन्हे बहुत ऊँचाई पर नहीं प्रतिष्ठित कर सका। उसके जीवन की 'ट्रेजेडी' यह है कि उसे सफलता किसी मे नही मिलती। आदित्यसेन को क्षमा कर, जहां नाटकीय स्थल परम विकास (Climax) प्रदर्शित करता है, हर्ष जिस भावोदात्तता को प्रकट करता है—उसका भी वैफल्य तुरन्त ही मडप मे लग जाने वाली आग से प्रत्यक्ष हो उठता है।[2]

'हर्ष' का कथोपकथन पात्रानुकूल, ओजपूर्ण तथा प्राचीन ऐतिहासिक वातावरण के अनुरूप है। वास्तविक वातावरण के लिए उस युग के सम्बोधनो—राजा के लिए परम भट्टारक, प्रधानमत्री के लिए महामात्य, सेनापति के लिए बलाधिकृत आदि का प्रयोग किया गया है। रगमच की दृष्टि से भी नाटक की सफलता असदिग्ध है। डा० नगेन्द्र के अनुसार, "हर्ष का वस्तु-विधान सगत है। कथा गरिमा विशिष्ट है और कलाकार ने सर्वत्र ही वाछित गौरव के साथ उसका विधान किया है, उसमे कही भी लघुता नही आने पाई।"[3]

कथानक की विशिष्टता, पात्रो की चारित्रिक उदात्तता, ऐतिहासिक वातावरण की यथार्थता, सवादो की उपयुक्तता तथा उद्देश्य की महानता (सास्कृतिक चेतना का समावेश) के कारण 'हर्ष' श्रेष्ठ नाट्य-कृतियो मे स्थान पाने योग्य है।

कुलीनता

'कुलीनता' त्रिपुरी राज्य की एक विशेष ऐतिहासिक घटना पर लिखा गया है। यह घटना उस काल की है जब त्रिपुरी पर प्रसिद्ध कलचुरि वश के अन्तिम राजा

---

1 डा० वेनीप्रसाद का 7-5-36 का पत्र।

2 साहित्य-सदेश, अप्रैल 1940, सेठ गोविन्द दास के तीन नाटक, डा० सत्येन्द्र, पृ० 313।

3 आधुनिक हिन्दी नाटक, डा० नगेन्द्र, पृ० 26।

विजय सिह देव का राज्य था और जब कलचुरि वश का अत और राज-गोड वश का आरभ हुआ। इसका प्रथम सस्करण 1941 मे तथा छठा 1966 मे प्रकाशित हुआ है। प्रथम सस्करण के प्रकाशन मे पूर्व सन् 1935 मे इसकी कथा पर 'धुआँधार' नामक फिल्म भी बनी थी लेकिन फिल्म का रूप प्रस्तुत नाटक की कथा से नितान्त भिन्न हो गया था।

कथानक

विजयादशमी के अवसर पर युद्ध-कला-प्रदर्शन का सर्वश्रेष्ठ वीर यदुराय गोड (विजयसिंह देव की सेना का सैनिक) घोषित किया जाता है। अगले दिन प्रात काल पारितोषिक वितरण के अवसर पर उसे सम्मानित करने की योजना बनती है। विजयसिह देव की पुत्री रेवासुन्दरी इस अवसर पर उसके मस्तक पर कुकुम लगाने का प्रस्ताव अपने पिता के समक्ष रखती है। सरल-हृदय विजयसिंह देव पहले तो इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेते है लेकिन उनका धूर्त, स्वार्थी महासेनापति चडपीड (जो रेवासुन्दरी के प्रति आकृष्ट होता है) कुलीन-अकुलीन का प्रश्न उठाकर उन्हे अपना विचार बदलने के लिए विवश कर देता है। चण्डपीड राजा को यह भी बता देता है कि रेवासुन्दरी का यदुराय (अकुलीन) के प्रति सहज आकर्षण है और यह कुलीन कलचुरि वश के लिए अत्यन्त लज्जा का विषय है। राजा पर महासेनापति के सुझाव का इतना अधिक प्रभाव पडता है कि वे न केवल गोड यदुराय को भरी सभा मे अकुलीन कहकर तिरस्कृत करते है अपितु उसे अपने राज्य की सीमा से बाहर निकल जाने का आदेश भी दे देते है। स्वाभिमानी यदुराय इस अपमान से तिलमिला उठता है। उसके कानो मे महासेनापति द्वारा उच्चरित 'निकृष्ट गोड' 'पामर गोड' वाक्य गूजता रहता है।

यदुराय के निष्कासन के पश्चात् रेवासुन्दरी प्रण करती है कि वह केवल यदुराय से विवाह करेगी अन्यथा आजीवन अविवाहित रहेगी।

त्रिपुरी राज्य को सुरक्षित रखने के लिए महासेनापति के परामर्श को मानकर विजयसिंह देव कुतुबुद्दीन का माडलिक बनना स्वीकार कर लेते है। महामत्री सुरभी पाठक इस प्रस्ताव का विरोध करता है और साथ ही राजा के समक्ष यह प्रस्ताव भी रखता है कि महासेनापति चण्डपीड अयोग्य है अत उसके स्थान पर यदुराय को महासेनापति बनाया जाय। राजा सुरभी पाठक का प्रस्ताव अस्वीकार कर देता है और उसे महामत्री के पद से च्युत करके बदी बनाने का आदेश देता है। सुरभी पाठक सबके सामने से निकल जाता है और महासेनापति उसे बन्दी नही बना पाता।

त्रिपुरी से निकलने के बाद सुरभी पाठक मडला के गोड राजा नागदेव के आश्रय मे चला जाता है और वही रहकर मातृभूमि को स्वतन्त्र करने की योजना

बनाता है। यदुराय को भी जब यह समाचार ज्ञात होता है कि त्रिपुरी राज्य विदेशियो के अधिकार मे चला गया तो वह भी मातृभूमि की रक्षा के लिए जगल मे रहकर साधनहीन गोंडो की सेना तैयार करता है और उन्हे युद्धकला मे प्रशिक्षित करता है।

सुरभी पाठक की योजना से यदुराय को धर्मशास्त्र के अनुसार पवित्र करके द्विज वर्ण मे सम्मिलित किया जाता है और मडला मे एक समारोह मे उसे 'महाकोशल के महासेनापति' पद से विभूषित किया जाता है। अब यदुराय, सुरभी पाठक तथा नागदेव की सम्मलित शक्ति देश की रक्षा के लिए सन्नद्ध हो जाती है।

त्रिपुरी राज्य की सेना मडला पर आक्रमण करती है और उसे पराजित होना पडता है। चण्डपीड सुरभी पाठक के बाद महामत्री पद पर और देवदत्त महासेनापति पद पर प्रतिष्ठित होते है, ये दोनो अधिकारी इस युद्ध मे काम आते है। रेवासुन्दरी और सुरभी पाठक के कारण यदुराय विजयसिंह देव का वध नही करता।

यदुराय की सेना का कुतुबुद्दीन की सेना से सग्राम होता है जिसमे नागदेव की मृत्यु हो जाती है। नागदेव की मृत्यु का यदुराय को बहुत दुख होता है और उसमे एक अपूर्व शक्ति आ जाती है। उसकी सेना के आगे कुतुबुद्दीन की सेना ठहर नही पाती और वापस दिल्ली चली जाती है। इसके बाद फिर त्रिपुरी पर मुसलमानो का आक्रमण नही होता।

धुआधार नामक स्थान पर यदुराय का रेवासुन्दरी से विवाह होता है और वही उनका राज्याभिषेक। इसी स्थान पर विजयसिंह देव अपने पाप कर्मो का प्रायश्चित्त करने के लिए धुआधार के जल-प्रपात मे कूद पडता है और विन्ध्यबाला अपने मृतक पति की तलवार से स्वय अपनी आत्महत्या कर लेती है।

'कुलीनता' मे इतिहास और कल्पना

मध्यकाल के भारतीय इतिहास मे त्रिपुरी और उसके शासक कलचुरि क्षत्रियो का बडा गौरवपूर्ण स्थान है। कलचुरि क्षत्रिय अपने को हैहय वश की एक शाखा मानते है। हैहय वश के प्रसिद्ध राजा सहस्त्रार्जुन का नाम रामायण, महाभारत और अनेक पुराणो मे आया है। हैहय वश की कलचुरि शाखा का आरभ कब हुआ, इसका ठीक पता नही लगता।[1]

The Early History of India मे श्री विन्सेन्ट स्मिथ ने इस वश से सम्बन्धित कुछ तथ्यो पर प्रकाश डाला है—

The Kalachuri or Haihaya Rajas of Chedi are last men-

---

1 कुलीनता, निवेदन, पृ० 3।

tioned in an inscription of the year A D 1181, and the manner of their disappearance is not exactly known, but there is reason to believe that they were supplanted by the Baghels of Rewa The Hayobans Rajputs of the Baliya district in the east of the United Provinces claim descent from the Rajas of Ratanpur in the Central Provinces, and probably are really an offshoot of the ancient Haihaya race [1]

'त्रिपुरी के कलचुरि वश का अन्तिम राजा विजयसिह हुआ है, इसके समय के शिलालेख मिलते है। विजयसिह देव के उपरात हमे कोई ऐसा प्रमाण नही मिलता जिससे त्रिपुरी के कलचुरि वश के समय मे कुछ कहा जा सके।"[2]

राजा विजयसिह देव के समय मे "देश की स्थिति वडी ही विचित्र थी। चारो ओर युद्ध की ज्वाला जल रही थी। चडिका का नग्न ताण्डव रातदिन वरावर हो रहा था। वगाल की खाडी से लेकर अरब समुद्र-पर्यन्त और कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक युद्ध की भयानक विभीषिका फैली हुई थी। नित्य नये राज्य स्थापित हो रहे थे और पुराने टूट रहे थे।"[3]

ई० सन् 1200 के लगभग त्रिपुरी का कलचुरि वश लुप्त हो गया और उसके स्थान मे गोड वश का उदय हुआ। इनका आदि पुरुष जादोराय (या यदुराय) माना जाता है। रामनगर के शिलालेख मे भी वश-परम्परा यदुराय से ही आरम्भ की गई है।[4] इस शिलालेख के द्वितीय श्लोक मे यादवराय का उल्लेख इस प्रकार है—

यादवराय क्षितिभृद्बभूव गुणनीरधिर्गढा देशे।
सूनुर्माधवसिहस्तस्य यतोऽभूज्जगन्नाथ ॥[5]

अर्थात् गढा देश मे गुणो के समुद्र यादवराय राजा हुए। उनका पुत्र माधवसिह और माधवसिह का पुत्र जगन्नाथ था। यादवराय के दो विवाह हुए, यह ऐतिहासिक तथ्य है। उसकी पहली पत्नी गोड जाति की थी और दूसरी क्षत्रिया। उसका वश इस क्षत्रिया पत्नी से ही चला। वैवाहिक घटना का उल्लेख 'त्रिपुरी का इतिहास' मे इस प्रकार है—

' रत्नावली गोड वश की होने के कारण यादवराय उससे विवाह नही करना चाहता था। अत सुरभी पाठक ने उसे सलाह दी कि विवाह करने मे कोई

1 The Early History of India, p 409
2 त्रिपुरी का इतिहास—व्यौहार राजेन्द्रसिह, प्र० स० 1939, पृ० 131-32।
3 त्रिपुरी का कलचुरि वश—चिन्तामणि हट्टेला 'मणि', प्र०स० 1950, पृ० 68।
4 त्रिपुरी का इतिहास, पृ० 178।
5 गढ मडला के गोड राजा—रामभरोसे अग्रवाल, प्र० स० 2018, पृ० 129।

हानि नहीं, केवल रत्नावली के हाथ का भोजन ग्रहण न किया जावे। यादवराय ने आजीवन ऐसा ही किया। साथ ही यह भी कहा है कि रत्नावली से कोई सन्तान नहीं हुई इस कारण यादवराय को दूसरी शादी करनी पडी, यह स्त्री क्षत्रिय वश की थी। उस स्त्री से यादवराय की सन्तति चली।[1]

'कुलीनता' मे विजयसिंह देव की कन्या रेवासुन्दरी से चडपीड का प्रेम-प्रसग नितान्त काल्पनिक है, देवदत्त और उसकी पत्नी विन्ध्यवाला का समस्त क्रिया-कलाप नाट्यकार की मानसी सृष्टि है। नाटक मे चित्रित आधुनिक समस्या (अस्पृश्यता, कुलीन-अकुलीन की भावना) सेठ जी की कल्पना शक्ति का परिचायक है।

विशेषताएँ

नाटक मे ऐतिहासिक तथ्यो के निर्वाह का पूर्ण प्रयास किया गया है। नाटककार ने कुछ मौलिक उद्भावनाएँ भी की है, जिससे कथानक शुष्क इतिहास वर्णन मात्र न रहकर रसमय साहित्य की कोटि मे आ गया है। इस नाटक के मुख्य पात्र विजयसिह देव, सुरभी पाठक, यदुराय और नागदेव ऐतिहासिक व्यक्ति है। चडपीड, देवदत्त और विन्ध्यवाला काल्पनिक पात्र है। विन्ध्यबाला का समावेश भारतीय नारी के आदर्श रूप को दिखाने के लिए ही किया गया है। इतिहास मे गोड यदुराय की एक क्षत्रिया पत्नी होने का वर्णन मिलता है, सेठ जी ने उसे विजयसिह देव की कन्या माना है और क्षत्रिय-गोड का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित कर राज-गोड वश की ऐतिहासिकता का निर्वाह किया है।

प्रस्तुत नाटक का विधान पाश्चात्य क्लासिकल नाटको के समान है। इसमे नायक और खलनायक की योजना है, नायिका के प्रति दोनो का आकर्षण है। प्रारभ मे परिस्थितियाँ खलनायक के अनुकूल है, नायिका का पिता उसके (खलनायक) पक्ष मे है लेकिन नायिका उसके सर्वथा प्रतिकूल। नायिका का प्रेम प्रारम्भ से नायक के लिए है और यह अन्त तक रहता है, नायक अपने पौरुष से खलनायक का वध करके नायिका को प्राप्त करता है।

'कुलीनता' मे नाटककार ने प्राचीन ऐतिहासिक कथानको के माध्यम से वर्तमान युग की प्रमुख समस्या कुलीनता-अकुलीनता का यथार्थ चित्रण किया है। 'कुलीनता जन्मजात है या कर्म द्वारा कुलीन अकुलीन बनते है।' इस समस्या पर नाटककार की निजी मान्यता भी नाटक मे अभिव्यक्त हुई है। वह अस्पृश्यता को अभिशाप मानता है इसीलिए नाटक मे अकुलीन यदुराय के द्वारा उसने कुलीनता पर कठोर प्रहार कराया है। यदुराय का एक कथन देखिए—

"जन्म के अनुसार वर्ण नही, मै कर्म के अनुसार वर्ण मानता हूँ। राठौरो के

1 त्रिपुरी का इतिहास, पृ० 181।

क्षत्रिय कुल मे जन्म लेने वाले जयचन्द को, जिसने विदेशियो को जन्मभूमि पद-दलित करने के लिए निमन्त्रित किया, मै क्षत्रिय नही मानता ।"[1]

चरित्र-चित्रण मे नाटककार ने नीच जातीय पात्रो के साथ पक्षपात से काम लिया जान पडता है । उसने नीच पात्रो का आदर्श रगो मे चित्रण किया है । यदुराय तथा नागदेव आदर्श मित्र, आदर्श वीर तथा आदर्श देशभक्त के रूप मे प्रस्तुत किये गए है । दूसरी ओर कुछेक कुलीन पात्रो का (विशेषत चडपीड का) चरित्र बहुत नीचे गिरा दिया गया है । विन्ध्यबाला, रेवासुन्दरी तथा सुरभी पाठक के चरित्र भी कुशलतापूर्वक अकित किये गए है ।[2]

नाटक का वस्तु-विधान स्वच्छ और निर्दोष है, मुख्य और अनुरूप वस्तु का सघटन, और घटनाओ के क्रम का निर्वाह कुशलता से हुआ है । दृश्यो का अकन अत्यन्त सूक्ष्म विस्तार के साथ किया गया है—जिनमे प्राचीन वैभव के सुन्दर चित्र है, और यही इस नाटक की नवीनता है ।[3]

प्रसादोत्तर ऐतिहासिक नाटको की शृ खला मे 'कुलीनता' एक महत्त्वपूर्ण कडी है ।

शशिगुप्त—'शशिगुप्त' सेठजी का तृतीय ऐतिहासिक नाटक है । इसकी रचना चन्द्रगुप्त मौर्य सम्बन्धी ऐतिहासिक अनुसधान से प्राप्त नवीन सामग्री के आधार पर की गई है । नाटक के सम्बन्ध मे स्वय नाट्यकार का कथन है—

"जिस कथा पर श्री द्विजेन्द्रलाल राय और श्री जयशकर 'प्रसाद' सदृश कुशल कलाकार नाटको की रचना कर चुके है उस पर मेरा लिखना धृष्टता के सिवाय और क्या हो सकता है ? परन्तु श्री डाक्टर हरिश्चन्द्र सेठ की इस काल की नई खोजो ने मुझे कुछ ऐसा आकर्षित किया कि मैं इस रचना के लोभ का सवरण न कर सका । डाक्टर साहब की इन नई खोजो का विवरण स्वय उन्होने इस नाटक की ऐतिहासिक प्रस्तावना मे दिया है ।"[4]

इसका प्रथम सस्करण 1942 मे प्रकाशित हुआ था जिसमे पाँच अक, प्रत्येक अक मे पाँच दृश्य (कुल पच्चीस दृश्य) और अत मे उपसहार की योजना थी । नाटक की उपर्युक्त दृश्य योजना तथा कथावस्तु मे कोई उल्लेखनीय परिवर्तन अब तक नही हुआ है ।

---

1. कुलीनता, छठा संस्करण, पृ० 45 ।
2. हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन—डा० वेदपाल खन्ना, नवम स० 1958, पृ० 235 ।
3. आधुनिक हिन्दी नाटक—पृ० 40 ।
4. शशिगुप्त—निवेदन, पृ० 29 ।

कथानक

'शशिगुप्त' का कथानक यवन सम्राट् सिकन्दर के भारत पर आक्रमण से प्रारंभ होता है। पचनद नरेश पर्वतक से अपमान का प्रतिशोध, क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति तथा अतुलनीय वैभव की प्राप्ति की आकाक्षा से तक्षशिला नरेश आभीक सिकन्दर का क्षत्रप होना स्वीकार कर लेता है। पश्चिमोत्तर भारत के मोर प्रदेश का निवासी, अश्वक जाति का सरदार शशिगुप्त सिकन्दर से युद्ध के लिए सन्नद्ध दिखाई देता है लेकिन चाणक्य के अनुरोध पर अपनी इच्छा के विरुद्ध सिकन्दर का क्षत्रप बनना स्वीकार कर लेता है। सिकन्दर का पर्वतक से युद्ध होता है जिसमे उसकी (सिकन्दर) पराजय की आशका सधि के लिए उसे विवश करती है और वह पर्वतक से सधि कर लेता है।

पर्वतक अपनी अहमन्यता तथा भारत-सम्राट् बनने की लालसा से सिकन्दर के साथ मिलकर मगध-विजय (जहाँ नद का आधिपत्य होता है) की योजना बनाता है। उसकी तथा सिकन्दर की सेना आक्रमण के लिये प्रस्थान कर देती है।

चाणक्य गुप्त रूप मे पर्वतक के सैनिको से मिलकर सिकन्दर के सैनिको मे विद्रोह करा देता है, वे आगे बढने से इन्कार कर देते है। इधर चाणक्य का सकेत पाकर शशिगुप्त विद्रोह कर देता है।

चाणक्य स्वय पर्वतक से मिलकर उसकी देश-प्रेम की भावनाओ को जाग्रत करता है, परिणामस्वरूप वह सिकन्दर को यूनान लौट जाने पर विवश कर देता है।

सिकन्दर अपने उद्देश्य मे पूर्णतया असफल होकर सिन्ध मकराना के रेगिस्तान से होकर यूनान के लिए प्रस्थान करता है। शशिगुप्त तथा अन्य गणराज्यो के विद्रोह के कारण वह सिन्ध नदी के रास्ते से नही लौट सकता था। चाणक्य सिकदर के मार्ग मे पडने वाली ब्राह्मण गण शक्ति को उत्तेजित करता है तथा वे उसके सैनिको का वध करते है। शशिगुप्त भी लौटती हुई यवन सेना का पीछा करके उन्हे भारत से बाहर निकाल देता है।

चाणक्य पर्वतक से मिलकर उसे शशिगुप्त के साथ मगध पर आक्रमण के लिए प्रेरित करता है। पर्वतक को सम्राट् बनाने का आश्वासन दिया जाता है। वह चाणक्य की प्रेरणा से शशिगुप्त का सार्वजनिक सम्मान भी करता है।

चाणक्य कूटनीति से शकटार द्वारा नन्द का वध करा देता है तथा शशिगुप्त का चन्द्रगुप्त नाम से राज्याभिषेक होता है। चाणक्य राक्षस को चन्द्रगुप्त का मत्री बनाकर निश्चिन्त हो जाता है। चाणक्य के ही षड्यन्त्र से विषकन्या द्वारा पर्वतक का वध होता है।

चन्द्रगुप्त के सिंहासनासीन हो जाने के बाद सिकन्दर के सेनापति सेल्यूकस का भारत पर आक्रमण होता है, चन्द्रगुप्त अपनी सेना को सगठित करके उसका

मुकाबला करता है और अन्त मे सेल्यूकस की पराजय होती है। सेल्यूकस की पुत्री हेलन और चन्द्रगुप्त के विवाह की घटना पर नाटक का अन्त इसे सुखान्त नाटक बना देता है।

'शशिगुप्त' मे इतिहास और कल्पना—प्रस्तुत नाटक डाक्टर हरिश्चन्द्र सेठ के चन्द्रगुप्त एव यवन सम्राट् सिकन्दर के भारत पर आक्रमण सम्बन्धी नवीन अनुसधानो के आधार पर लिखा गया है। पुस्तक के प्रारम्भ मे डाक्टर सेठ द्वारा लिखित 29 पृष्ठो की 'ऐतिहासिक प्रस्तावना' मे नवीन अनुसधानो पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। प्राचीन मान्यताओ के विरुद्ध अनुसधान सस्थापक (डाक्टर सेठ) की कुछ महत्त्वपूर्ण स्थापनाएँ ये हैं—

1 सिकन्दर सम्बन्धी पुराने योरोपीय वृत्तान्तो मे झेलम के युद्ध की सिकन्दर की केवल हानियो को ही नही छिपाया गया है, प्रत्युत् युद्ध के अन्तिम निर्णय का भी ठीक-ठीक उल्लेख नही किया गया है। कहा गया है कि झेलम के युद्ध मे पोरस की हार हुई, क्योकि जब उसके हाथियो पर आक्रमण हुआ तो वे घायल होकर अपनी सेना पर ही टूट पडे और अपने ही सैनिको को अपने पैरो तले रौदते हुए अन्त मे वे भेडो के झुड के समान रणस्थल से भाग उठे। यह बात मनगढन्त प्रतीत होती है। यदि इस बात को सच मान ले तो उसके अनुसार हाथियो की सेना युद्ध के लिये बिल्कुल अनुपयुक्त सिद्ध हुई, क्योकि उसकी सहारकारी प्रवृत्तियो और उनके सहसा भाग उठने से उनके ही पक्ष वालो को हानियाँ उठानी पडी। यदि ऐसा था तो सेल्यूकस तथा उसके अन्य समकालीन मेसेडोनियन और यवन सरदार, जो सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् एशिया मे अपनी राज्य-स्थापना के लिए आपस मे लडे, इन हाथियो की सेना के लिए इतने लालायित न होते। इसका स्पष्ट प्रमाण मौजूद है कि हाथियो की सेना ने झेलम के युद्ध मे सफलतापूर्वक युद्ध किया।[1] इस प्रकार हमे झेलम के युद्ध का निर्णय, जोकि योरोपीय एकपक्षीय पाठो मे दिया गया है, ठीक प्रतीत नही होता। यह सभव हो सकता है कि पोरस उस युद्ध का यथार्थ विजेता रहा हो और जैसा कि ऊपर जिक्र हो चुका है सिकन्दर ही सन्धि का प्रार्थी रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि कदाचित् युद्ध के पूर्णरूपेण समाप्त होने से पूर्व ही सिकन्दर को सन्धि सम्बन्धी चर्चा आरम्भ कर देनी पडी थी, क्योकि वह यह जान गया होगा कि यदि युद्ध जारी रहा और वह उसमे हार गया तो उसका सर्वनाश ही हो जायेगा। प्राचीन क्षात्र परम्परा पर अटल रहने वाले पोरस ने प्रार्थी शत्रु पर आघात नही किया। इस प्रकार दोनो मे सन्धि हो गई। इस युद्ध के पश्चात् सिकदर पोरस को उसके राज्य के पास के पूर्वी प्रदेशो पर विजय प्राप्त करने मे सहायता देने के लिए सहमत हो गया।[2]

---

1. शशिगुप्त—ऐतिहासिक प्रस्तावना, पृ० 5।
2 वही, पृ० 7।

2 चन्द्रगुप्त मौर्य नन्दवशीय नही था और न मगध ही उसका मूल जन्म स्थान था। नन्द-मुरा की कहानी तो अठारहवी शताब्दी मे गढी गई है। वास्तव मे वह पश्चिमोत्तर भारत का निवासी था। उसका जन्म-स्थान सिन्धु और कुमार नदियो के मध्य कोहमोर नाम का प्रदेश था जिसके ही कारण सभवत इसके वश का नाम मौर्य पडा। चन्द्रगुप्त और शशिगुप्त एक ही व्यक्ति थे। शशिगुप्त उसका जन्म नाम था और सभवत भारत के सम्राट् पद ग्रहण करने पर उसने चन्द्रगुप्त नाम धारण किया।[1]

3 चाणक्य अथवा विष्णुगुप्त कौटिल्य भी पश्चिमोत्तर भारत मे विख्यात तक्षशिला देश का निवासी था। शुरू से ही चन्द्रगुप्त और चाणक्य मे घनिष्ठ सबध था।[2]

4 चन्द्रगुप्त और शशिगुप्त मे एकता स्थापित होने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि चन्द्रगुप्त ने पहले तो सिकन्दर से मेल कर लिया, पुन अवसर पाने पर चन्द्रगुप्त पश्चिमोत्तर भारत मे सिकन्दर के विरुद्ध उठ खडा हुआ, जिसके कारण उसको अपनी जान बचाकर सिंध और मकरान के मरुस्थल से होकर भागना पडा। सिंध और मकरान मे भी चाणक्य ने सिकन्दर के विरुद्ध वहाँ के लोगो, विशेषकर ब्राह्मणो को उत्तेजित कर दिया था और स्वय चन्द्रगुप्त ने यहाँ आकर भी सिकन्दर का विरोध किया था।[3]

5 ग्रीक इतिहासकारो का पोरस और मुद्राराक्षस नाटक का पर्वतक एक ही व्यक्ति थे। सिकन्दर को भारत से भगाने के बाद चन्द्रगुप्त और चाणक्य ने पोरस अथवा पर्वतक से मिलकर नन्दो के मगध राज पर विजय प्राप्त की थी। इस विजय के साथ ही पर्वतक का वध किया गया था, जिसके साथ-साथ चन्द्रगुप्त का समस्त उत्तरीय भारत पर साम्राज्य फैल गया था।[4]

डा० सेठ की उपर्युक्त प्राय. सभी मान्यताओ को 'शशिगुप्त' के नाटकीय ढाँचे मे समाविष्ट किया गया है। इसमे सिकन्दर और पर्वतक के युद्ध के सम्बन्ध मे डा० सेठ की अन्तिम मान्यता को ही स्वीकार किया गया है अर्थात् इसमे दिखाया गया हैं कि युद्ध अनिर्णीत रहता है, रणक्षेत्र मे ही सिकन्दर (सभवत पराजय की आशका से) सन्धि के लिए पहले अपना दाहिना हाथ आगे बढाता है और दोनो मे सन्धि हो जाती है। इस अवसर पर सिकन्दर का कथन द्रष्टव्य है—

"पचनद नरेश, युद्ध को बन्द करने की आज्ञा दीजिये और घोषणा कीजिये कि इस सन्धि के उपलक्ष्य मे कल सूर्यपूजा होगी जो आर्यावर्त और यूनान दोनो के देव है।"[5]

---

1 शशिगुप्त, ऐतिहासिक प्रस्तावना, पृ० 16।

2, 3, 4 वही, पृ० 17।

5 शशिगुप्त, पृ० 71।

लेकिन वे स्थल अधिक रमणीय नही बन पाये है । हेलन और चन्द्रगुप्त का प्रेम-प्रसग चित्रित करके नाटक मे प्राण रस का सचार किया जा सकता था, 'कुलीनता' मे सेठ जी की कला कुछ अधिक उत्कृष्ट रूप मे प्रकट हुई है । यहाँ चन्द्रगुप्त पर चाणक्य का नियन्त्रण इतना अधिक है कि वह बेचारा आँख भर हेलन को देख भी नही सकता । एक बार उसने देखने का प्रयास अवश्य किया, लेकिन उसी क्षण चाणक्य की दृष्टि उस पर पड जाने से वह ऐसा नीचे गड गया कि फिर शायद ही उसे देखने का साहस हुआ । चाणक्य के महान् व्यक्तित्व के कारण शशिगुप्त का व्यक्तित्व अधिक नही उभर सका ।

शशिगुप्त की अपेक्षा चाणक्य का चरित्र-चित्रण अधिक प्रभावशाली है । उसे दूरदर्शी, प्रतिभाशाली, नीतिकुशल, आत्मविश्वासी, देशभक्त एव महान् त्यागी के रूप मे चित्रित किया गया है । वह कार्य की सिद्धि के लिए साधन की पवित्रता अपवित्रता का विचार नही करता । उसकी दृष्टि मे कार्य का महत्त्व है, साधनो का नही । उसकी इसी नीति से खिन्न होकर एक बार जब शशिगुप्त उसकी किसी आज्ञा को मानने मे असमर्थता प्रकट करता है, तो वह क्रोधाभिभूत हो गरज उठता है—

"चाणक्य अगणित शशिगुप्तो के निर्माण की क्षमता रखता है ।"[1]

हेलन की चरित्र-रेखाओ मे भी लेखक गहरा रग नही भर सका । उसे हर क्षण गाते ही दिखाना अधिक अस्वाभाविक प्रतीत होता है, गान के बिना उसका कोई अस्तित्व नही है । उसका अन्तर्द्वन्द्व चित्रण करने का प्रयास नाटककार ने किया अवश्य है लेकिन वह अधिक गहराई मे प्रवेश नही कर सका ।

सिकन्दर को पराक्रमी, अन्यायी, सुराप्रेमी तथा विलासी सम्राट् के रूप मे चित्रित किया गया है । पर्वतक का वीर अहमन्य तथा विलासी रूप चित्रित हुआ है । आभीक के देशद्रोही रूप को अधिक उभार प्रदान किया गया है ।

नाटक मे अभिनय की सफलता के लिए विस्तृत रग-सकेत है, कही-कही तो ये रग-सकेत चार-चार पृष्ठ के है । अभिनय की दृष्टि से पूर्ण सफल तो कदाचित् नाटक नही है, कुछ परिवर्तन के पश्चात् नाटक का अभिनय असम्भव नही । तत्कालीन वातावरण का चित्रण यथार्थता लिए हुए है ।

प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' तथा सेठ जी के 'शशिगुप्त' की तुलना करते हुए डा० रामचरण महेन्द्र ने लिखा है—

"जो अन्तर प्रसाद जी के भावना-प्रधान 'चन्द्रगुप्त' और गोविन्ददास जी के यथार्थवादी 'शशिगुप्त' नाटको मे है, वही अन्तर प्रसाद जी के तथा सेठ जी के अन्य ऐतिहासिक नाटको मे है । जिस प्रकार का कवित्व उनके 'चन्द्रगुप्त' नाटक मे है, उसी प्रकार का कवित्व उनके अन्य ऐतिहासिक नाटको मे भी है और कवित्व की दृष्टि से

---

1 शशिगुप्त, चतुर्थ अक, पचम दृश्य, पृ० 136 ।

दोनों कथाओं को एक सूत्र मे पिरोने का प्रयास किया गया है लेकिन यह प्रयास पूर्णरूपेण सफल नही हो पाया। दोनो कथाएँ अलग-अलग प्रतीत होती है और प्रासगिक कथा आधिकारिक कथा को गति नही प्रदान करती।

सहसरा के जागीरदार हसन का पुत्र फरीद (शेरशाह के बचपन का नाम) अपनी कर्तव्य-निष्ठा, सेवा, ईमानदारी के कारण जौनपुर तथा अपनी जागीरदारी मे लोकप्रिय बन जाता है। पिता की मृत्यु के पश्चात् वह जागीरदारी का भार अपने छोटे पर छोडकर स्वय विहार शरीफ जीविकोपार्जन के लिए जाता है, वहाँ का सूबेदार बहारखाँ उसका नाम फरीद से बदलकर शेरखाँ कर देता है।

देश पर मुगलो का आक्रमण होता है, शेरखा मुगलो को विदेशी लुटेरा समझता है, इन लुटेरो से देश को मुक्त करने के लिए वह हिन्दुस्तान के हिन्दू-मुसलमानो का सगठन आवश्यक मानता है। बाबर की विशाल सेना से प्रत्यक्ष युद्ध करने के लिए उसके पास सैनिको की पर्याप्त व्यवस्था न होने से वह उसकी सेना मे बलवा कराने के उद्देश्य से भर्ती हो जाता है। बहुत प्रयत्न करने पर भी वह बलवा कराने मे समर्थ नही होता। इसी बीच बाबर की मृत्यु हो जाती है और हुमायू सिहासनासीन होता है।

शेरखा मुगलो से टक्कर लेने के लिए धन की इच्छा से चुनार के सूबेदार ताज खा का वध करके उसकी बीबी लाड मलिका (पूर्वनाम लाड बानू) से विवाह कर लेता है।

वह अवसर की ताक मे रहता है, अपने प्रिय मित्र ब्रह्मादित्य को हुमायू की सेना मे सैनिक रूप मे भर्ती कराकर ठीक अवसर पर उसकी सेना मे विद्रोह करा देता है। हुमायू के बहुत से भारतीय सैनिक 'चलो भाई घर चले' कहकर चले जाते है और बाकी बचे मुगल सैनिक रात मे चुपके से अपने देश को प्रस्थान कर देते है। इस प्रकार बिना युद्ध के ही शेरखा मुगलो को भगाने मे सफल हो जाता है। हुमायू के भारत से जाने के बाद वह (शेरखा) शेरशाह नाम से भारत का सम्राट् पद ग्रहण करता है।

उपर्युक्त मूल कथा के अतिरिक्त प्रासगिक कथा इस प्रकार है — शेरशाह के छोटे भाई निजाम और आगरे की लाड बानू का आगरे के उद्यान मे प्रथम बार साक्षात्कार होता है। लाड की सहेलियो के आग्रह से निजाम उसका चित्र बनाने के लिए तैयार होता है। इस उद्देश्य से लाड रोज उद्यान मे आती है। चित्र पूर्ण होने से एक दिन पूर्व पिता की मृत्यु का समाचार पाकर निजाम सहसरा चला जाता है। उद्यान का प्रथम परिचय प्रणय का रूप धारण कर लेता है। दोनो एक दूसरे की प्रेम-ज्वाला मे जलते हैं लेकिन एक दूसरे के अस्तित्व से अनभिज्ञ रहते है।

लाड बानू चुनार के सूबेदार ताजखा की बीबी होकर लाड मलिका बन जाती है। शेरशाह उसकी सम्पत्ति की लालसा से उसके पति का वध करके उससे विवाह कर लेता है और इस प्रकार निजाम तथा लाड का सम्बन्ध देवर भाभी का हो जाता है।

लाड अब भी दिल से निजाम को प्रेम करती है, निजाम के हृदय मे भी उसके प्रति ललक है लेकिन अपनी पाप-पुण्य भावना के कारण वह उसे अपना नही पाता।

दोनो के अन्दर निरतर ज्वाला जलती रहती है, परिणामस्वरूप लाड तो पागल हो जाती है तथा निजाम योगी।

'शेरशाह' मे इतिहास और कल्पना—नाटक मे चित्रित शेर शाह के जीवन की प्रारभिक घटनाए जैसे सौतेली मा के दुर्व्यवहार से जौनपुर जाना वहा उनकी शिक्षा-दीक्षा वापस आकर जागीर का कार्यभार सभालना, उसकी बढ़ती लोकप्रियता से मा की पुन ईर्ष्या आदि इतिहाससम्मत है—

Hasan Khan had eight sons, of whom the eldest, Farid was born some years before 1489 Of Hasan's eight sons only four are of any importance, Farid and Nizam, the two eldest, born of his senior wife, an Afghan, and Sulaiman and Ahmad, the two youngest, born of Hindu concubine He had wearied of his Afghan wife, and was entirely submissive to his concubine She was devoted to the interests of her own sons and so resented any favour shown to her step sons that Farid, while yet a lad, chafing under his father's coldness to him, fled from their home at Sasaram, and took refuge with Jamal Khan at Jaunpur. Jamal Khan urged Farid to return to his father and to pursue his studies, but Farid refused to return as Jaunpur was a better place for study than Sasaram Such progress did he make that his father when he visited Jaunpur, invited him to return and placed him incharge of the two parganas, Hajipur and Khavasspur Tanda

The administration of these two parganas was Farid's initiation and he mastered all the details of revenue and customary law, and rigorously suppressed bribery, extortion, brigandage and disaffection.[1]

But Hasan was still subservient to his concubine, who was so enraged by his praise of her step son that she ceased to admit him to intercourse with her, and thus compelled him to promise that he would make over the administration of Farid's parganas to her son, Sulaiman Farid, after vainly reproaching his father with breach of faith, as he had promised that he would not in

1 The Cambridge History of India, Vol IV, Edn 1963, p 45-46

future neglect Farid, left the district and sought service in Agra, at the court of Ibrahim Lodi [1]

डा० आशीर्वादीलाल के अनुसार, "वह सुल्तान इब्राहीम लोदी के दरबार मे पहुचा और उससे प्रार्थना की कि उसके पिता की जागीर उसे सौप दी जाय। किन्तु सुल्तान के ऊपर उसका अच्छा प्रभाव इसलिए नही पडा कि वह अपने पिता की ही शिकायत उससे करने पहुचा था और इसी कारण जागीर उसे प्रदान नही की गयी। सयोगवश कुछ दिनो बाद हसन की मृत्यु हो गयी और अब सुल्तान इब्राहीम को फरीद की प्रार्थना स्वीकार करने मे कोई आपत्ति नही हो सकती थी। सहसराम, खवासपुर, टाडा की जागीर उसे सौप दी गयी।"[2]

'शेरशाह' मे शेरशाह के चरित्र-गौरव की रक्षा के लिए सुल्तान इब्राहीम से उसका पिता की शिकायत करना नही चित्रित किया गया है और न ही वह जागीर के लिए उससे प्रार्थना करता है। इस सम्बन्ध मे सहसरा छोडते समय निजाम से उसका निम्न कथन द्रष्टव्य है—

"मैं सहसरा से फिर ऊब उठा हू। नयी मा के मिजाज मे कुछ फर्क नही पडा, बल्कि रिआया के दिल मे मेरे लिए जो एक तरह की हमदर्दी हो गयी है, उससे उनकी नाराजगी और ज्यादा बढ गयी है। वक्त वक्त पर हमारे खिलाफ यहा साजिशे तक होती है, यह कई मर्तबा मुझे ब्रह्मादित्य से मालूम हुआ है। यहा जितना काम हो सकता था, वह भी मै कर चुका, इसलिए फिर एक दफा फाकामस्ती की धुन सवार हुई है।"[3]

यहा शेरशाह हसन की मृत्यु के उपरात अपने मित्र पडित ब्रह्मादित्य की राय मानकर जागीर के लिए शाही फरमान लेकर लौटता है।

'शेरशाह' मे दिखाया गया है कि शेरशाह एक मात्र बलवा कराने के उद्देश्य से बाबर की सेना मे भर्ती हो जाता है। इस सम्बन्ध मे इतिहासकारो मे मतभेद है। कुछ उद्धरण देखिए—

"He now temporarily entered Babur's service, really with the object of studying Babur's system and ascertaining how he could be expelled from India"[4]

सुलेमान की ओर से मुहम्मद खाँ सूर ने परगनो पर बलात् अपना अधिकार कर लिया और शेरखाँ को वहाँ से निकाल बाहर किया। शेरखा पुन बेघर बार

1 The Cambridge History of India, Vol IV, Edn 1963, p 46
2 मुगलकालीन भारत—डा० आशीर्वादीलाल, पचम सस्करण, 1965, पृ० 84।
3. शेरशाह, पृ० 19।
4 The Cambridge History of India, p 47.

नौकरी की तलाश में निकल पड़ा। इस समय उसे बाबर से ही, जो उत्तरी भारत में साम्राज्य स्थापित कर चुका था, सहायता प्राप्त करने की आशा थी, जिससे मुहम्मद सूर से वह अपनी जागीर पुन. प्राप्त कर सके। इसी विचार से उसने कड़ा और मानिकपुर के मुगल गवर्नर जुन्नैद बरलास से सम्पर्क स्थापित किया और उसके द्वारा अप्रैल 1520 ई० में मुगल सेना में एक स्थान प्राप्त कर लिया। अब बाबर ने बिहार के अफगानों पर चढ़ाई की, तो शेरखाँ की सेवाएं और सहायताएं काफी लाभदायक सिद्ध हुईं और मार्च 1528 ई० में उसकी जागीर उसे पुन. सौंप दी गयी।[1]

'शेरशाह' में भी मुगलों की सहायता से जागीर वापस लेने का उल्लेख है और इसके लिए शेरखाँ को पश्चात्ताप भी होता है।[2] मुगलों की सहायता से प्राप्त जागीर सुलेमान एवं अहमद (सौतेले भाइयों) को वापस दे देना ऐतिहासिक तथ्य नहीं है, यह नाट्यकार की नवीन कल्पना है और इससे शेरशाह के चरित्र की महानता प्रकट होती है।

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि "चुनार के एक पूर्व गवर्नर ताजखाँ की विधवा पत्नी लाड मलिका से शादी कर लेने पर उसे चुनार दुर्ग प्राप्त हो गया, जिससे उसकी सैनिक और आर्थिक स्थिति और मजबूत हो गयी। इस शादी-सम्बन्ध से दो प्रत्यक्ष लाभ हुए। एक तो चुनार गढ़ जैसा अभेद्य दुर्ग उसे प्राप्त हो गया, दूसरे वहाँ की जमीन में छिपा हुआ एक बहुत बड़ा खजाना भी उसके हाथ लगा।"[3]

'शेरशाह' में सेठ जी ने इस घटना को किंचित् परिवर्तित रूप में प्रस्तुत किया है, यहाँ शेरखाँ चुनार के सूबेदार ताजखाँ का वध करके उसकी पत्नी लाड मलिका से विवाह करता है और विवाह भी केवल उसकी दौलत प्राप्त करने के लिए किया जाता है जिससे मुगलों को भारत से निकाला जा सके।[4]

'शेरशाह' में वर्णित यह घटना सर्वथा काल्पनिक है कि शेरखाँ का मित्र पंडित ब्रह्मादित्य उसकी प्रेरणा से हुमायूं की सेना में भर्ती होकर उसकी सेना के हिन्दू, मुसलमान सैनिकों को बहका कर युद्ध से अलग रख सकने में समर्थ हो जाता है। प्रस्तुत घटना से सम्बन्धित शेरशाह और ब्रह्मादित्य का कथोपकथन देखिए—

शेरशाह—तुमने सचमुच ही गजब किया, पंडित! हुमायूं के इतने सिपाही 'चलो भाई घर चलें' यह कह कहकर चल देंगे, इसे हुमायूं ही ने क्या, मैंने भी न सोचा था। यह हाल देखकर तो मुझे यूनान के सिकन्दर के हमले की याद आती है।

---

1. मुगलकालीन भारत, पृ० 85।
2. देखिए 'शेरशाह', पृ० 70।
3. मुगलकालीन भारत, पृ० 89।
4. देखिए 'शेरशाह', पृ० 82-83।

ब्रह्मादित्य—मुझे दुःख यही है, जहापनाह, कि इन सैनिको को मैं अपनी ओर न कर सका। इनमे घर भागने का तो साहस है, पर मुगलो को छोडकर हमारी ओर से लडने का नही।[1]

शेरशाह के चरित्र को उच्च रखने के लिए नाट्यकार ने अनेक कल्पनाए की हैं, यथा—

उसे हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रबल समर्थक बताया गया है, मुसलमान होते हुए भी वह मुगलो को लुटेरा समझता है, उसे सच्चे देश-प्रेमी के रूप मे चित्रित किया गया है, धन का उपयोग वह स्वय के लिए न करके देश के कल्याणार्थ करता है, प्रजा द्वारा प्रदत्त 'पठान सल्तनत के बादशाह' की उपाधि को भी वह तुरत ग्रहण नही करता, जबकि ऐतिहासिक तथ्य यह है कि वह स्वय राज्याभिषेक के लिए लालायित था।[2]

फरीद के मित्र पडित ब्रह्मादित्य और निजाम के नौकर रहमान को छोडकर नाटक के प्राय. सभी पात्र ऐतिहासिक हैं।

निजाम और लाड बानू का प्रेम-प्रसग सर्वथा काल्पनिक है।

विशेषताएँ

प्रस्तुत नाटक मे इतिहास और कल्पना का अद्भुत सामजस्य हुआ है। निजाम और लाड का प्रेम-प्रसग, जो सर्वथा काल्पनिक है इतिहास के शुष्क मरुस्थल मे पयस्विनी सरिता के समान प्रतीत होता है यद्यपि आधिकारिक और प्रासगिक कथाए अत तक अलग-अलग बनी रहती है लेकिन इससे कथा मे व्याघात नही उत्पन्न होता।

चरित्र-चित्रण मे लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है। शेरशाह के चरित्र की रेखाओ मे बडा गहरा रग भरा गया है। वह हिन्दू-मुस्लिम की साप्रदायिक जजीरो को तोड कर इन क्षुद्र बन्धनो से मुक्त दिखाई पडता है। उसके अन्दर राष्ट्रीयता की भावना है और देश की रक्षा के निमित्त वह सर्वस्व त्याग करने के लिए प्रस्तुत है। वह लाड की अतुल सम्पत्ति का उपभोग स्वय न करके देश-रक्षा के लिए उसे व्यय करता है। वह मुसलमान होते हुए भी मुगलो के आक्रमणो को यथाशक्ति रोकने का प्रयास करता है। बाहर से आने वाले मुगलो को वह विदेशी और लुटेरा मानता है तथा हिन्दुस्तान मे रहने वाले हिन्दू-मुसलमान उसकी दृष्टि मे बराबर हैं। उसका स्पष्ट कथन है—

"मैं हूँ हिन्दी, इसी मुल्क मे पैदा हुआ, यहीं की आबोहवा मे मे पला, यही की मिट्टी से बना और इसी मिट्टी मे मिलू गा। यहाँ से बाहर देखने के लिए मेरे पास

1 शेरशाह, पृ० 165।

2 देखिए—मुगलकालीन भारत, पृ० 99-100।

कुछ नही। हिन्दुस्तान ही मेरे लिए सब कुछ हैं। यहाँ के रहने वाले चाहे वे किसी भी मजहबो मिल्लत के हों, मेरे भाई विरादर हैं।"[1]

शेरशाह के चरित्र की विशेषताओ का उद्घाटन ब्रह्मादित्य के निम्न कथन भी करते है—

"चरणो पर लोटते हुए पदो को अनिच्छा, सच्चे विराग से जो ग्रहण करता है, वही उन पदो से प्राप्त अधिकार का सदुपयोग कर सकता है। यदि वह आपके सदृश प्रतिभावान हो, साथ ही दूरदर्शी, शूर, साहसी, त्यागी और धैर्यवान, तब तो पूछना ही क्या है ?"[2]

शेरशाह के अतिरिक्त निजाम, लाड वानू आदि के चरित्र भी कुशलतापूर्वक अकित किये गये है। निजाम का चित्रण भावुक कलाकार के रूप मे अत्यन्त सफल है। लाड बानू के प्रसग मे उसका पाप-पुण्य भावना से उत्पन्न अन्त सघर्ष बडी मार्मिकता से चित्रित किया गया है। इस चित्रण मे सेठ जी की बाल्यावस्था की निजी अनुभूति अधिक सहायक सिद्ध हुई है। नाटककार को अपने जीवन मे भी एक बार इसी विषम परिस्थिति से गुजरना पडा है, ऐसा लगता है कि उसने अपनी भावनाओ को निजाम के माध्यम से मूर्तता प्रदान की हैं। लाड वानू का चित्रण एक ऐसी नारी के रूप मे हुआ है जिसकी यौन भावनाए दमित है।

नाटक मे मुगलकालीन वातावरण की यथार्थ झलक दिखाई पडती है। वातावरण-निर्माण विशेष रूप से मुसलमान पात्रो की उर्दूमिश्रित हिन्दी द्वारा तथा गानो मे प्राय उर्दू गजलो का प्रयोग करके किया गया है। सवाद पात्रानुकूल छोटे तथा प्रभावपूर्ण हैं। कही-कही लम्वे स्वगत कथन भी है। (देखिये अक 5, दृश्य 2, निजाम का स्वगत कथन)

घटनाओ का जमघट, दृश्यो का असीमित विस्तार (36) समय की लम्वी अवधि (1511-1541) के समावेश आदि के कारण नाटक रगमच पर पूर्णतया सफल सिद्ध न हो सकेगा। इसका दृश्य-विधान रगमच की अपेक्षा कदाचित् सिनेमा को अधिक ध्यान मे रखकर किया गया है।

वस्तु-कल्पना, चरित्र-चित्रण, भाषा, सवाद, वातावरण आदि की दृष्टि से 'शेरशाह' सेठ जी की सुन्दर नाट्य-रचना है।

अशोक—इसका प्रकाशन काल 1957 है, द्वितीय सस्करण 1961 मे प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत नाटक मे अशोक के जीवन से सम्वन्धित प्रमुख घटनाओ का समावेश है। इसमे कुल चार अक, प्रत्येक अक मे तीन दृश्य तथा अन्त मे उपसहार है।

---

1. शेरशाह, तृतीय अक, प्रथम दृश्य, पृ० 81।
2. शेरशाह, पचम अक, तृतीय दृश्य, पृ० 157।

कथावस्तु

महाराज विन्दुसार के शासन-काल मे तक्षशिला मे विद्रोह होता है, अशोक का वडा भाई सुसीम जव उसका दमन करने मे असमर्थ सिद्ध होता है तो अशोक अपने पिता की आज्ञा से पल मात्र मे उसका दमन कर देता है। विन्दुसार अपने जीवन काल मे ही अशोक को युवराज पद पर प्रतिष्ठित करते है, उनकी मृत्यु के पश्चात् सुसीम और अशोक के मध्य राज्य के लिए चार वर्ष तक निरन्तर गृह-युद्ध चलता रहता है अत मे इस गृह-युद्ध मे अशोक विजयी होता है और बडी धूम-धाम से उसका राज्याभिषेक होता है, इस अवसर पर वह राज्य के सीमा-विस्तार की घोषणा करता है और इस वात का सकेत भी करता है कि सीमा-विस्तार के लिए यदि आवश्यकता पडी तो शक्ति-प्रयोग भी किया जायेगा।

अशोक का ज्येष्ठ पुत्र महेन्द्र एव उसकी पुत्री सघमित्रा भिक्षु भिक्षुणी बन जाते है। कलिंग राज्य को जीतने के लिए अशोक उस पर आक्रमण करता है, उसे विजय तो प्राप्त होती है लेकिन युद्ध के भीषण रक्त काड को देखकर उसका दिल दहल उठता है। उमका हृदय इस जघन्य कृति के लिए उसे बार-बार कोसता है। इसके वाद वह सदा के लिए युद्ध वन्द कर देने की घोषणा करता है। राज्य मे सभी प्रकार के हिंसात्मक कार्य वन्द कर दिये जाते है और सभी धर्मो को समान दृष्टि से देखा जाने लगता है।

वृद्धावस्था मे अशोक असन्धिमित्रा (उसकी वडी रानी) की दासी तिष्यरक्षिता से विवाह करता है। तिष्यरक्षिता का आकर्षण अपने सौतेले पुत्र कुणाल के प्रति होता है। वह उसे अपना वासना पूर्ति का साधन वनाना चाहती है लेकिन उसके द्वारा स्पष्ट इकार कर दिए जाने पर वह प्रतिशोध का निश्चय करतो है। अशोक की मुद्रा का उपयोग कर षड्यन्त्र रचकर वह कुणाल की दोनो आखे मगवा लेती है। अपने इस षड्यन्त्र का रहस्य वह स्वय प्रकट कर देती है, परिणामस्वरूप उसे मृत्यु दण्ड मिलता है और कुणाल का पुत्र दशरथ युवराज घोषित किया जाता है।

'अशोक' मे इतिहास एवं कल्पना—विश्व के इतिहास मे अपनी अहिंसा नीति के लिए विख्यात अशोक जीवन के प्रारम्भिक वर्षो मे पूर्ण हिंसावादी रहा और राज्यारोहण के लिए लगभग चार वर्ष गृह-कलह मे व्यस्त रहा। "सिंहली वृत्तान्तो मे अशोक को राज्यारोहण" के पूर्व निर्दय चित्रित किया गया है। उसमे लिखा है कि उसने अपने सहोदर भाई तिष्य को छोड शेष सारे 99 भाइयो को तलवार के घाट उतार दिया और इस प्रकार रक्त का समुद्र पार कर वह मगध के सिंहासन पर वैठा। अशोक के पाँचवें शिलालेख मे भाइयो के प्रति उसके सकेत के आधार पर अनेक विद्वान सिंहली इतिहासो के इस वृत्तान्त पर सदेह करते है। इस अभिलेख का प्रमाण यद्यपि सर्वथा असदिग्ध नही है, क्योकि इसमे वस्तुत जीवित भाइयो के नही वरन् उनके परिवार के प्रति अशोक की कल्याण-वुद्धि का निर्देश मिलता है, तथापि

इसमे सदेह नही कि यह दक्षिणी विवरण अतिरंजित है। इतना विश्वसनीय अवश्य है कि अशोक का राज्यारोहण स्वाभाविक नही हुआ होगा क्योंकि वह अपने पिता का ज्येष्ठ पुत्र नही था। मगध के साम्राज्य का वास्तविक अधिकारी उसका अग्रज सुसीम अथवा सुमन था जो पहले तक्षशिला का शासक रह चुका था और जिसके स्थानीय विद्रोह को न दबा सकने के कारण अशोक को उज्जैन से तक्षशिला जाना पडा था। इससे गद्दी पाने के पूर्व अशोक का अपने उस भाई से सघर्ष स्वाभाविक था। उत्तराधिकार का यह सघर्ष सचमुच हुआ यह इससे सिद्ध हो जाता है कि अशोक के राज्यारोहण और राज्याभिषेक के बीच प्राय. 3-4 वर्षों का अन्तर है।"[1]

उत्तराधिकार के लिए सघर्ष का उल्लेख श्री विन्सेन्ट स्मिथ ने भी अपने ऐतिहासिक ग्रन्थ मे किया है—

It is, however, possible that the northern tradition which testifies to a contest for the succession between Asoka and Susima, his eldest brother, may be founded on fact [2]

'अशोक' मे नाट्यकार ने स्वय अशोक के कथन द्वारा मौर्य वश के गृह-कलह पर प्रकाश डाला है, यथा—

"· · पूज्य पाद अमित्राघाट पिता जी के स्वर्गारोहण को चार वर्षों के एक युग से भी कुछ अधिक व्यतीत हो गया। यद्यपि उन्होने अपने जीवन-काल मे ही मुझे युवराज पद पर प्रतिष्ठित कर दिया था और इस सम्बन्ध मे राजघोषणा भी हो गयी थी तथापि मौर्यवश के गृह-कलह के कारण गत चार वर्षों तक भारत मे रक्त-पात होता रहा। आज के राजतिलक का यह समारोह यद्यपि पूज्यपाद पिता जी के स्वर्गारोहण के पश्चात्, राजशोक के समय के उपरान्त, तुरन्त हो सकता था, परन्तु मैंने यह उचित न समझा कि पूज्यपाद पिता जी के स्वर्गारोहण के पश्चात् राजशोक के समय मे ही गृह-कलह के जो काड आरम्भ हो गए थे उनके शमन के पूर्व मैं यह समारोह कराता।"[3]

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डा० डी० आर० भडारकर ने अधिकाश इतिहासकारो द्वारा मान्य अशोक के राज्यारोहण और राज्याभिषेक के मध्य चार वर्ष के अन्तर को असगत बताया है। उनका स्पष्ट कथन है—

"यह मानने के लिए कोई पुष्ट कारण नहीं है कि अशोक के राज्याभिषेक

1 प्राचीन भारत का इतिहास—डा० रमाशकर त्रिपाठी, चतुर्थ स० 1965, पृ० 124-25।

2 The Early History of India, p 164

3 अशोक, सस्करण 1961, पृ० 21-22।

और राज्यारोहण के बीच चार वर्ष जैसा लम्बा व्यवधान रहा था।'[1]

'नाटक में बौद्ध-धर्म का कट्टर समर्थक बनने से पूर्व अशोक को महत्त्वाकांक्षी, हिंसावादी एवं विलासप्रिय राजा के रूप में चित्रित किया गया है। इतिहास ग्रन्थों शिलालेखों आदि से इस मान्यता का समर्थन होता है। शिला प्रज्ञापन 1 से पता चलता है कि 'अन्य सब राजाओं की तरह अशोक भी अपने प्रजाजनों को दावतें दिया करता था और उनका मनोरंजन किया करता था—सम्भवतः अपनी प्रजा को प्रसन्न और संतुष्ट रखने के लिए यह उसकी कूटनीतिक चाल थी। सार्वजनिक मनोरंजन की एक रीति यह थी कि वह समाज कराता था। समाज दो प्रकार का होता था। एक में जनता को स्वादिष्ट भोजन कराया जाता था जिसमें मांस का सबसे प्रमुख स्थान होता था। दूसरे में नृत्य, संगीत, मल्ल युद्ध तथा अन्य कला प्रदर्शनों का आयोजन होता था।"[2]

इस सम्बन्ध में श्री विन्सेन्ट स्मिथ का कथन द्रष्टव्य है—

Tradition probably is right in stating that Asoka followed the religion of the Brahmans in his early days, with a special devotion to Siva, and we may assume that he led the life of an ordinary Hindu Raja of his time We know, because he has told us so himself, that he then had no objection to sharing in the pleasures of the chase, or in the free use of animal food, while he permitted his subjects at the capital to indulge in merry-makings accompanied by feasting, wine, and song.[3]

'कलिंग-विजय' के पश्चात् नाटक में चित्रित अशोक के जीवन में महान् परिवर्तन एवं उसका पूर्णतः बौद्ध धर्म का अनुयायी होना सर्वमान्य ऐतिहासिक तथ्य है। इस सम्बन्ध में डा० आशीर्वादी लाल का निम्न कथन प्रमाण स्वरूप उद्धृत किया जा सकता है—

"कलिंग युद्ध के बाद अशोक ने तलवार सदैव के लिए म्यान में रख दी। यद्यपि इस विजय ने मौर्य साम्राज्य को पराकाष्ठा में पहुंचा दिया था, फिर भी भारत के अन्दर तथा उसकी सीमाओं पर चेर चोल पाड्य, सातीय पुत्र, केरल पुत्र आदि अनेक छोटे-मोटे राज्य थे। अशोक ने उन सब को अभयदान दिया और उनकी स्वतन्त्रता पर किसी प्रकार का आघात नहीं किया। यही नहीं, उसने उन राज्यों की प्रजा की भी आध्यात्मिक, नैतिक तथा भौतिक उन्नति का उतना ही प्रयत्न किया जितना

1 अशोक (हिन्दी अनुवाद)—डा० डी० आर० भंडारकर प्र० सं० 1960, पृ० 9।
2 अशोक—डा० भंडारकर, पृ० 19।
3 Asoka—V A Smith, Second Edn 1964, p 23.

अपनी प्रजा का ।[1] ·· कलिंग युद्ध की रोमांचकारी घटना ने अशोक के हृदय को पूर्णतया बदल दिया और बौद्ध धर्म में उसको प्रवृत्त किया । उसी समय वह उपगुप्त नामक मथुरा के एक बौद्ध भिक्षु के सम्पर्क में आया । उसके संसर्ग से और भी बौद्ध धर्म में उसकी रुचि बढ़ गई ।"[2]

'अशोक' नाटक में सेठ जी ने अशोक का वृद्धावस्था में उसकी बड़ी रानी असंधिमित्रा की दासी तिष्यरक्षिता से विवाह दिखाया है, इसके साथ ही तिष्यरक्षिता की कुणाल पर आसक्ति, उसके (कुणाल) द्वारा प्रणय को अस्वीकार किए जाने पर प्रतिशोध के रूप में उसकी आँखें मंगवाना और अशोक द्वारा उसे (तिष्यरक्षिता) प्राणदण्ड आदि घटनाएँ भी चित्रित हैं ।

तिष्यरक्षिता और अशोक का विवाह ऐतिहासिक तथ्य है, किन्तु कुणाल के साथ उसके प्रेम-प्रसंग को बहुत से इतिहासकार मात्र किंवदन्ती ही मानते हैं—

Tradition avers that his faithful chief queen for many years was named Asandhimitra, and that when she died, and Asoka was old, he married a dissolute young woman named Tishyarakshita, concerning whom and her step son Kunala, the old folk-lore tale, known to the Greeks as that of Phaedra and Hippolytus, is related with much imaginative embellishment But folk-lore is not history, and the pathetic story of the blinded Kunala must not be read or criticized as matter of fact narrative[3]

'The Cambridge History of India' में इस घटना का उल्लेख इस प्रकार है—

···· Another romance is connected with the name of Tishyarakshita, represented as an attendant upon Asandhimitra and Chief Queen of Asoka's later years, who, enacting the part of Potiphar's wife, is stated to have occasioned the blinding of the emperor's eldest son and heir, Kunala, Viceroy of Taxila, and in a still later legend founder of the Buddhist dynasty of Khotan in Chinese Turkestan[4]

1 भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, पृ० 99 ।
2 वही, पृ० 99 ।
3 The Early History of India, V A Smith, p 201
4 The Cambridge History of India, Vol I, 2nd Edn 1962, p. 451

'अशोक' मे तिष्यरक्षिता का कुणाल की आँखो पर रीझ कर उन आँखो को पास रखने की लालसा से उन्हे निकलवा मगाना, नितान्त काल्पनिक है। इसके अतिरिक्त तिष्यरक्षिता के चरित्र-चित्रण मे भी नाट्यकार की कल्पना दिखाई पडती है। कुणाल के साथ बातचीत करते हुए उसकी आन्तरिक भावनाएँ द्रष्टव्य है—

कुणाल—माता जी माता जी !

तिष्यरक्षिता—मुझे माता न कहो। कैसे मैं तुम्हारी माता और कैसे तुम मेरे पुत्र !

कुणाल—पर पिता जी ने आपसे विवाह जो किया है।

तिष्यरक्षिता—पिता के विवाह करने से ही कोई माता हो जाती है ?

कुणाल—पिता जिस स्त्री से विवाह करता है, वह माता नही तो और क्या होती है ?

तिष्यरक्षिता—पिता की पत्नी हो सकती है, पर माता नही। तुम से भी कम अवस्था वाली मै तुम्हारी माता।[1]

इसी प्रकार 'उचित-अनुचित' तथा विवाह सस्था के सम्बन्ध मे अपना दृष्टिकोण प्रकट करती हुई वह एक स्थान पर कुणाल से कहती है—

तिष्यरक्षिता—पर, कुणाल, क्या उचित है और क्या अनुचित इसकी जगत् मे कभी कोई ठीक और अन्तिम व्याख्या हो पायी है ?

कुणाल—देश-काल के अनुसार सदा उचित और अनुचित की व्याख्या हुई है।

तिष्यरक्षिता—और वह सदा परिवर्तनशील है। एक समय था जब विवाह सस्था ही नही थी। पुरुष और नारी सहजीवन के लिए स्वतन्त्र थे। वरन् माता पुत्रो को इसलिए पालती-पोसती थी कि युवा होने पर वे उनके साथ पति का सा आचरण करेंगे। भाई और बहन तो पति-पत्नियो के सदृश रहते ही थे।[2]

'अशोक' के सभी पात्र ऐतिहासिक हैं।

विशेषताएँ

प्रस्तुत नाटक मे ऐतिहासिकता का निर्वाह पूर्ण रूप से हुआ है। इसका न तो कोई पात्र और न ही कोई घटना काल्पनिक है। पात्रो मे कुणाल की पत्नी को छोड़ कर शेष सभी पात्रो के नाम भी इतिहास-सम्मत है। घटनाओ का कुशलतापूर्वक नियोजन तथा यत्र-तत्र कल्पना की कूँची फेर देने के कारण नाटक शुष्क इतिहास चित्रण मात्र बनने से बच गया है अपितु इन्ही दो विशेषताओ के कारण वह सरस

1 अशोक, पृ० 86-87।

2 वही, पृ० 88।

भी बन गया है। सेठ जी की यह कल्पना कि तिष्यरक्षिता ने कुणाल की आँखे प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से नही अपितु इस कारण मगवाई थी कि वह उन आँखो पर ही मोहित हुई थी, एक सुन्दर कल्पना है। इस सम्बन्ध मे तिष्यरक्षिता का कथन दर्शनीय है—

"इनके नयनो पर मै सबसे अधिक मुग्ध हुई थी वही मैने माँगे। .. मुझे विश्वास था उन लोचनो के पाने का। वे आँखे आ गयी।"[1]

अशोक, कुणाल तथा तिष्यरक्षिता के चरित्र-चित्रण मे लेखक को विशेष सफलता मिली है। अशोक के चरित्र के दोनो पक्ष—श्वेत और श्याम प्रस्तुत किये गये है। उसका प्रारम्भिक रूप हिंसावादी, विस्तारवादी, महत्त्वाकाक्षी, स्वार्थी, युद्धप्रेमी एव साहसी का है। बाद का रूप अहिंसावादी, धार्मिक, प्रजावत्सल, दयालु, न्यायी तथा कामुक का है। वृद्धावस्था मे पत्नी की दासी से विवाह उसके चरित्र पर सबसे बडा धब्बा है। कुणाल का चरित्र अत्यन्त महान् अकित हुआ है। तिष्यरक्षिता के प्रणय-निवेदन का उत्तर वह इन शब्दो मे देता है—

'आपने जिस लिए बुलाया था वह तो मै समझ गया, परन्तु मै आप से स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि आप मुझ से किसी अनुचित अभीष्ट की सिद्धि की आशा न रखे।'[2]

पिता की आज्ञा की यथार्थता का परीक्षण किए बिना केवल उसके मुद्राकित कागज को देखकर अपनी दोनो आँखे निकाल कर दे देना उच्चतम कोटि की पितृ-भक्ति का प्रमाण है।

अशोक और कुणाल से भी अधिक स्वाभाविक तिष्यरक्षिता का चरित्र अकित हुआ है। इसका चरित्र अत्यन्त मनोवैज्ञानिक है। जब हम उसके नैतिक पतन (पुत्र से प्रणय-निवेदन) तथा जघन्य कृति (कुणाल की आँखे मगाना) पर दृष्टिपात करते है तो उससे घृणा होती है, वह अत्यन्त नीच प्रतीत होती है, लेकिन जब हम उसकी परिस्थिति एव उसकी व्यक्तिगत मान्यताओ की पृष्ठभूमि मे उसके सारे कार्यो का अवलोकन करते है तो वे स्वाभाविक प्रतीत होते है और वह भी घृणा का पात्र न रह कर सहानुभूति का पात्र बन जाती है। क्या वृद्ध (अशोक) का पौरुष उसकी उद्दाम कामाग्नि को शान्त करने मे समर्थ था? यदि नही, तो उसने अपनी वासना पूर्ति का साधन कुणाल को बनाना चाहा तो इसमे उसका क्या दोष है? नैतिकता प्रेमी सज्जन कह सकते है कि परिस्थिति चाहे कैसी भी क्यो न रही हो पुत्र के प्रति विमाता की वासनात्मक दृष्टि अनुचित है। वास्तव मे जब नारी की कामाग्नि प्रज्वलित होती है तो उचित-अनुचित, नैतिक-अनैतिक सब बधन टूट जाते है। नारी चरित्र के मर्मज्ञ गोस्वामी तुलसीदास ने 'मानस' मे एक स्थान पर लिखा है—

1 अशोक, 1961 का सस्करण, चतुर्थ अक, तृतीय दृश्य, पृ० 104।
2 वही, चतुर्थ अक, द्वितीय दृश्य, पृ० 87।

माता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी।

[illegible] शत-प्रतिशत ठीक न होने पर भी कुछ प्रतिशत तो ठीक है [illegible] तिष्यरक्षिता की वृत्ति भी एक सीमा तक स्वाभाविक मानी जा सकती है।

तिष्यरक्षिता का कुणाल की आंखें निकलवाना भी स्वाभाविक कृति है। इस [illegible] मनोवैज्ञानिक पक्ष का उद्घाटन नाटककार ने स्वयं कर दिया है—

जिसके प्रणय का तिरस्कार किया जाता है वह नारी भूखी बाघिन हो जाती है।[1]

तिष्यरक्षिता की वास्तविक परिस्थिति को देखते हुए उसके कृत्यों के कारण [illegible] प्राण दंड देना एक ऐसा अमानुषिक कृत्य है जो उसके उज्ज्वल चरित्र पर सदा सदा के लिए कलंक रूप में विद्यमान रहेगा। नाटक अधिक सुन्दर बन सकता था यदि नाटककार इतिहास के इस निर्मम सत्य को अपनी कल्पना की तूलिका [illegible] उपस्थित करता। इस कृति के लिए दोषी तिष्यरक्षिता को [illegible] यदि स्वयं अपने को मानता और उसे प्राणदण्ड देने के स्थान पर [illegible] प्रायश्चित्त [illegible] (स्वयं) करता, तो उसका चरित्र बहुत ऊँचा उठ जाता।

नाटक में तत्कालीन ऐतिहासिक वातावरण का अच्छा निर्वाह है। भाषा [illegible] के पात्रों की एक ही समान है। कथोपकथन सेठ जी की प्रवृत्ति के अनुसार साहित्यिक भाषा में है, मुहावरों का प्रयोग न होने पर भी कथोपकथन में [illegible] से सजीवता आ गई है। अभिनय सम्बन्धी कठिनाई का [illegible] तथा उसके निराकरण का उपाय स्वयं नाटककार ने निवेदन में इंगित किया है। [illegible] विस्तृत है। स्वगत-कथनों का अभाव है लेकिन पात्रों (विशेषकर [illegible]) में भाषण की प्रवृत्ति विद्यमान है।

[illegible] सीमाओं की सापेक्षिक तुलना के अनन्तर हम इस निष्कर्ष पर [illegible] 'अशोक' अपनी कतिपय सीमाओं के बावजूद एक सुन्दर रचना है।

भिक्षु से गृहस्थ गृहस्थ से भिक्षु—इसका प्रथम संस्करण 1957 में प्रकाशित [illegible]। द्वितीय संस्करण अभी तक नहीं प्रकाशित हुआ। इसे 'गोविन्ददास [illegible] में स्थान दिया गया है। इसमें कुल पांच अंक हैं और अंक ही [illegible] योजना नहीं है। प्रारम्भ में उपक्रम तथा [illegible]

[illegible] कुणाल, सीता और कुमारजीव की ऐतिहासिक कथा पर [illegible]। इससे सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाओं का विस्तृत विवरण नाटककार [illegible] के अन्तर्गत दे दिया है।

1 [illegible], पृ० 90।

कथानक

भारत के एक छोटे से राज्य (राज्य का नाम नाटक मे नही दिया गया) के मन्त्री का विद्वान् पुत्र कुमारायन युवावस्था मे ही भिक्षु बन जाता है। देश-देशान्तर मे बौद्ध धर्म का प्रचार करता हुआ वह भारत के उत्तर मे स्थित कूँची राज्य मे पहुँच जाता है। कुमारायन की विद्वत्ता से प्रभावित होकर कूँची नरेश उसे अपना गुरु बना लेता है। राजगुरु बनने के पश्चात् कुमारायन कूची मे रहने लगता है, उसकी प्रतिभा, प्रकाड पाडित्य, भव्य रूप के कारण कूँची नरेश की कन्या जीवा उस पर आसक्त हो जाती है। वह भी जीवा के अनुपम सौन्दर्य पर रीझ जाता है और परिणाम यह होता है कि दोनो परिणय-सूत्र मे बध जाते है। भिक्षु कुमारायन गृहस्थ बन जाता है।

कुमारायन और जीवा के पुत्र का नाम कुमारजीव रखा जाता है। 10 वर्ष की अवस्था मे उसकी माँ जीवा स्वय भिक्षुणी बनकर उसे कश्मीर ले जाती है और वहाँ वह अनेक विषयो का अध्ययन करके पिता के समान विद्वान होकर निकलता है। उच्च शिक्षा की प्राप्ति के बाद कुमार जीव अनेक देशो का भ्रमण करता हुआ कूँची पहुचता है। फिर वह बौद्ध धर्म के प्रचार के उद्देश्य से चीन जाता है। अपनी विद्वत्ता के कारण कुमारजीव चीन मे प्रसिद्धि प्राप्त करता है। उसकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर फाह्यान तथा अन्य अनेक चीन-निवासी उसका शिष्यत्व ग्रहण करते है। जीवा भिक्षुणी के वेश मे कुमारजीव के पास जाती है। कुमारायन भी बौद्ध-भिक्षु बनकर कुमारजीव के पास पहुँच जाता है। कुमारायन, जीवा तथा कुमारजीव के बौद्ध धर्म की प्रार्थना मे सम्मिलित होने तथा उसकी समाप्ति के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

'भिक्षु से गृहस्थ और गृहस्थ से भिक्षु' मे इतिहास और कल्पना—

प्रस्तुत नाटक की ऐतिहासिकता का उल्लेख स्वय नाट्यकार ने नाटक मे 'निवेदन' के अन्तर्गत इस प्रकार किया है—

कुमारायन नामक भारत का एक छोटे से राज्य का मत्री पुत्र युवावस्था मे ही अपना सारा वैभव छोड बौद्ध भिक्षु हो गया। (इस राज्य के भौगोलिक स्थान का अब पता नही लगता) कुमारायन महान् विद्वान था। भिक्षु होकर बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए देश-देशान्तरो मे घूमता हुआ वह भारत के उत्तर मे कूँची (वर्तमान कूचा) नामक राज्य मे पहुँचा। वह राज्य भारतीय सस्कृति का एक केन्द्र था, यहाँ तक कि इस राज्य के पुराने शासको के नाम भी 'स्वर्ण पुष्प', 'हरि पुष्प', 'स्वर्णदेव', 'हरदेव' के सदृश भारतीय नाम होते थे। कूँची उस समय बडा वैभवशाली उन्नत नगर था। बौद्ध विहारो, सघारामो के वहाँ बडे-बडे विशाल भवन थे और वहा के प्राय सभी निवासी बौद्ध मतावलबी थे।

कुमारायन अपने प्रकाड पाडित्य के कारण कूँची नरेश द्वारा राजगुरु बनाया

गया। उसने वहा 'गोमती विहार' नामक एक बौद्ध विहार स्थापित किया जिसका आगे चलकर एक कारण से बडा ऐतिहासिक महत्त्व हो गया।

कुमारायन के कूची पहुँचने के पश्चात् उसके जीवन से सबध रखने वाली एक विलक्षण घटना घटित हुई। कूची नरेश की जीवा नामक कन्या थी। जीवा का कुमारायन पर प्रेम हो गया और कुमारायन और जीवा का विवाह हुआ। कुमारायन और जीवा के कुमारजीव नामक पुत्र हुआ। जब कुमारजीव नौ वर्ष का हो गया तब जीवा भिक्षुणी होकर कुमारजीव को उच्च शिक्षा के लिए कश्मीर लायी। कुमारजीव को कश्मीर मे बन्धुदत्त नामक शिक्षक ने अनेक विषयो मे पारगत किया। इनमे बौद्ध धर्म के 'दीघ' और 'मज्झिम' निकाय प्रमुख थे।[1]

सन् 383 ई० मे चीन और कूची के बीच एक युद्ध हुआ जिसमे कूची की हार हुई और चूकि उन दिनो हारे हुए देशो से सौगात के रूप मे विद्वान भी लिए जाते थे इसलिए कुमारजीव चीन देश मे आया।. कुमारजीव इतना बडा विद्वान था कि चीनी सम्राट याओहिन ने बार-बार उसे चीन की राजधानी मे आमत्रित किया। सन् 407 ई० मे कुमारजीव चीनी राजधानी को आया। कुमारजीव सस्कृत और चीनी दोनो भाषाओ का दिग्गज विद्वान् था और कुमारजीव ने बौद्ध धर्म के महायान मार्ग के दार्शनिक ग्र थो का चीनी भाषा मे सुन्दर अनुवाद किया है। इन ग्र थो की सख्या सौ से भी ऊपर है। कुमारजीव की विद्वत्ता के कारण चीन देश के भिन्न-भिन्न भूखडो के लोग सहस्रो की सख्या मे कुमारजीव के शिष्य हुए। इतिहास-प्रसिद्ध भारत यात्री फाह्यान कुमारजीव का एक प्रमुख शिष्य था और वह भारत कुमारजीव की प्रेरणा से ही आया था।[2]

प्रस्तुत नाटक मे ऐतिहासिक तथ्यो का पूरा निर्वाह किया गया है। कुमारायन और जीवा के प्रेम-प्रसग और उनके चरित्र-चित्रण मे नाट्यकार की कल्पना के दर्शन होते है।

विशेषताए

प्रस्तुत नाटक का आधार ऐतिहासिक होते हुए भी इसमे कल्पना को कुछ अधिक मुखर होने का अवसर प्राप्त हुआ है। कुमारायन और जीवा के प्रेम-प्रसग के कारण नाटक सरस बन गया है, इस सन्दर्भ मे लेखक ने कुमारायन और जीवा की मानसिक दशाओ तथा उनके अन्त सघर्ष का सुन्दर चित्रण किया है। उनके दाम्पत्य जीवन के बडे सरस चित्र अकित हुए है। वास्तव मे सेठ जी ने अपने सुखी दाम्पत्य जीवन की व्यक्तिगत अनुभूति को कुमारायन और जीवा के माध्यम से प्रकट किया है।

---

1 भिक्षु से गृहस्थ गृहस्थ से भिक्षु, निवेदन।

2 वही, पृ० ग-घ।

जीवा और कुमारायन का चरित्र उच्चता लिए है। उनके चरित्र की महानता तो प्रकट होती है लेकिन उस महानता का दिग्दर्शन यदि कार्य-व्यापार द्वारा प्रस्तुत किया जाता तो अधिक सुन्दर होता। कुमारजीव के चरित्र का बिल्कुल विकास नही हो पाया। उसके प्रति नाटककार के हृदय मे असीम श्रद्धा तो है लेकिन उस श्रद्धा के प्रदर्शन का उसने अवसर नही निकाला। कुमारायन की मा उत्पल वर्णा का पुत्र के प्रति ममत्व गहराई लिए है, ममतामयी मा के रूप मे उसका चित्रण सुन्दर बन पडा है। शेष पात्रो मे कोई विशेषता नही है।

प्रस्तुत नाटक के सवाद काफी अच्छे है। वास्तव मे सवाद के कारण ही इसमे प्राण रस का सचार हुआ है। सवादो की भाषा यद्यपि साहित्यिक ही है लेकिन उसे क्लिष्टता से बोझिल नही किया गया है और इसीलिए वे अस्वाभाविक नही प्रतीत होते।

कुमारायन और जीवा के सवाद सरस, स्वाभाविक एव सजीव है। स्वगत कथनो का अभाव नही है और वे पाँच-पाच पृष्ठो तक के है, लाघव-नीति अपनाई गई होती तो अधिक उचित होता।

इसमे सेठ जी के जीवन दर्शन—महान् उद्देश्य के लिए त्याग भावना, वर्णाश्रम के प्रति आस्था, मातृत्व के पूति पूज्य बुद्धि आदि की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

भाषा मुहावरो के समावेश (हृदय पर पत्थर रखकर, पैरो मे सीसा भर जाना, आदि), आलकारिकता एव भावपूर्णता के कारण पर्याप्त सजीव बन गई है। आलकारिक भाषा का एक उदाहरण देखिए—

"मेरा हरा-भरा जीवनरूपी उपवन जिसे निराशा के दावानल ने मरुस्थल-सा बना दिया था, उसमे आशा की वृष्टि से पुन नये कोपल निकल आये, मेरे जीवनरूपी भवन की चित्रकारी जिसे निराशा ने एकाएक पोछ कर मिटा दिया था, उसमे आशा रूपी तूलिका ने फिर से नये रग भर दिये।"[1]

नाटक की दृश्य योजना सरल है। घटनाओ का जमघट नही है। भाषा, सवाद आदि भी सुन्दर है, अत नाटक की रगमचीय अभिनेयता की सफलता मे कोई सदेह नही हो सकता।

विजय-वेलि अथवा कुरुष—प्रस्तुत नाटक विश्व के प्रथम ऐतिहासिक विजेता ईरान के सम्राट् काइरस महान् के ऐतिहासिक जीवन-वृत्त पर लिखा गया है। कथानक का आधार ऐतिहासिक है लेकिन जिन घटनाओ के सम्बन्ध मे इतिहास मौन है या इतिहासकारो मे मतभेद है, वहाँ नाटककार ने अपनी कल्पना का उपयोग कर उसे रमणीय एव विश्वसनीय रूप मे प्रस्तुत किया है। इस नाटक मे कुल पाच अक,

1. भिक्षु से गृहस्थ गृहस्थ से भिक्षु—तीसरा अक, पृ० 45।

प्रारम्भ में उपक्रम तथा अन्त में उपसंहार है। अंकों के अतिरिक्त अलग से दृश्य-योजना नहीं है अंक अपने आप ही दृश्य का काम करते हैं।

कथानक

ईरान के मीडिया प्रदेश का राजा अतिथिग्व यह स्वप्न देखता है कि उसकी पुत्री मदना के पेट से बेलि निकल कर चारों तरफ फैल गई है। इस स्वप्न का अर्थ वह यह लगाता है कि मदना (जो गर्भवती है) के गर्भ से उत्पन्न शिशु विश्व-विजेता बनेगा। अपने राज्य की एवं वंश की रक्षा के लिए वह सेनापति हरपाग को मदना के पुत्र-प्रसव के तुरन्त बाद उसके नवजात शिशु का वध करने की आज्ञा देता है।

हरपाग मदना के नवजात शिशु (कुरुप) का वध न करके उसे भारत के कश्मीर देश में अगिरस के आश्रम में छोड़ जाता है। वहीं उसकी शिक्षा पूर्ण होती है तथा एक भारतीय नारी रेणुका से उसका विवाह भी वहीं हो जाता है। रेणुका उसे जीवन में सत्पथ पर चलने की प्रेरणा देती है।

विवाह के उपरान्त कुरुप अपनी पत्नी रेणुका के साथ ईरान वापस जाता है। उसके आने से मदना तथा कम्बोज (कुरुप के पिता) को अतिशय प्रसन्नता होती है। इस समय तक अतिथिग्व का हृदय भी परिवर्तित हो गया होता है, वह कुरुप को हृदय से लगाता है तथा अपनी सम्पत्ति का बड़ा भाग कुरुप रेणुका को भेंट स्वरूप दे देता है। सेनापति हरपाग से उसके कृत्य का प्रतिशोध लेने के लिए अतिथिग्व उसके इकलौते पुत्र को मार डालता है तथा उसका मांस भून कर सेनापति को खाने के लिए देता है।

कुरुप दिग्विजय का निश्चय करता है, पहले उसका मातामह अतिथिग्व उसे सैनिक सहायता का आश्वासन देता है लेकिन ठीक मौके पर उसके विद्रोह का समाचार मिलता है। अल्प सैनिक शक्ति होते हुए भी कुरुप दिग्विजय प्रयाण स्थगित नहीं करता। उसको अपने लक्ष्य (दिग्विजय) में आंशिक सफलता मिलती है, ईरान के पश्चिमी देशों को तो वह जीत लेता है लेकिन पूर्व के देशों में भारत को जीतने में असमर्थ रहता है। भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर आदिवासियों के साथ युद्ध में वह घायल होता है और ईरान पहुँचकर उसकी मृत्यु हो जाती है। उसकी मृत्यु की घटना पर नाटक समाप्त हो जाता है।

'विजय-बेलि अथवा कुरुप' में इतिहास और कल्पना

ईरान के सम्राट् कारुस महान् से सम्बन्धित ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख सर पर्सी साइक्स के प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ "परशिया का इतिहास" में इस प्रकार है—

The account given by Herodotus of the coming of Cyrus is well known. Astyages, we are told, dreamed that from his

daughter Mandane, "such a stream of water flowed forth as not only to fill his capital, but to flood the whole of Asia" The Median monarch thereupon feared to marry her to a noble-man of her own country, lest the dream should be accomplished. Instead, he gave her to a Persian "of good family, indeed, but of a quiet temper, whom he looked on as much inferior to a Mede of even middle condition" Combyses, the Persian, took away Mandane to his home Shortly afterwards Astyages dreamed another dream, in which he saw a wine growing from Mandane which overshadowed the whole of Asia Terrified at this second warning, he summoned his daughter to the capital, and when her son was born, entrusted him to Harpagus, "a man of his own house and the most faithful of the Medes, with instruction to slay and bury the infant Cyrus"[1]

स्वप्न की उपर्युक्त घटना का उल्लेख 'विजय-वेलि' मे हुआ है और उसमे यह भी चित्रित किया गया है कि अतिथिग्व (एस्थिगस) अपने सेनापति हरिपाग (हरपागस) को मदना के पुत्र होते ही उसका तत्काल वध करने की आज्ञा देता है।[2]

इसके पश्चात् सेठ जी का यह चित्रण कि हरिपाग कुरुप (काइरस) का वध न करके उसे भारत के कश्मीर प्रदेश मे स्थित महर्षि अगिरस के आश्रम मे छोड जाता है और वही शिक्षार्जन के हेतु आई भारतीय कन्या रेणुका से उसका साक्षात्कार होता है जो आगे चलकर परिणय मे परिवर्तित हो जाता है, नितान्त काल्पनिक है। ऐतिहासिक ग्रथो मे आगे की घटना का उल्लेख इस प्रकार है—

. The minister (Harpagus) gave the boy to a shepherd, with directions to slay him but the shepherd in consequence of the solicitations of his humane wife, not only preserved the young prince, but took care that his education should be suitable to his birth After the lapse of some years, this deception was discovered by Astyages, who, though he desisted from his intention of destroying his grandson, punished the

1 A History of Persia—Sir Percy Sykes, Vol I, 3rd Edn 1951, p 140

2, विजय-वेलि, पृ० 11-12 ।

neglect of Harpagus, by putting to death the son of that Minister[1]

हरपागस से एस्तिगस के अमानवीय व्यवहार का वर्णन 'परशिया का इतिहास' मे भी है—

Harpagus, however, was cruelly punished At a royal banquet he was served with the flesh of his own son, whom Astyages had sent for and killed, and the child's head, hands, and feet were presented to him in a basket[2]

'विजय-वेलि' मे उपर्युक्त घटना किंचित् परिवर्तित रूप मे प्रस्तुत की गई है। यहाँ अतिथिग्व हरिपाग के पुत्र को मार करके उसका माँस भून कर थाल मे रख नौकर के सिर पर रखकर ले जाता है। इसी के साथ अन्य नौकरो के सिर पर हीरे जवाहरातो से भरे अनेक थालो को ले जाकर अपने दौहित्र और दौहित्र-वधू को अर्पित करता है और मास वाला थाल हरिपाग को देकर उसे खाने के लिए कहता है। इस अवसर पर हरिपाग और अतिथिग्व का सवाद देखिए—

हरिपाग—सम्राट्, मुझे मृत्यु-दड दे, वह भी मै सहर्ष स्वीकार करूँगा।

अतिथिग्व—मृत्युदड! तुझे मार कर मै अपने हाथ कलुषित न करूँगा और तुझ पातकी को हुतात्मा न बनने दूँगा। (कुछ रुककर) मैने तुझे दडित करने के लिए एक नया मार्ग सोचा है। (उस दास के निकट जाकर जिसके सिर पर अभी भी एक थाल रखा था) सुनें, सुने सब लोग और सुने सारा ससार। (दास से) रख, इस थाल को सामने रख। (दास उस थाल को सामने रखता है। उसके वस्त्र को हटाते हुए) मै इस विश्वास-घाती अधम हरिपाग के इकलौते पुत्र को मार उसका मॉस भून कर लाया हू और इसे हरिपाग को खाना होगा।[3]

काइरस केवल एक महान् विजेता ही नही था, उसमे धीरोदात्त नायक के अन्य गुण—उदारता, शौर्य, सौजन्य, धैर्य आदि भी विद्यमान थे। उसके सम्बन्ध मे सर जान मेलकाम का कथन है—

Wherever his name is mentioned, it is as a king who was alike eminent for wisdom and virtue, and who enjoyed great renown and extensive dominion upon the earth[4]

---

1 The History of Persia (from the Most Early Period to the Present Time)—Sir John Malcolm, Vol I, p 220-21

2 A History of Persia—Sir Percy Sykes, Vol I, p 141

3 विजय-वेलि, पृ० 63।

4 The History of Persia, Vol I, p 224

काइरस की मृत्यु के सम्बन्ध मे इतिहासकारो मे मतभेद है—

"The last campaigns of Cyrus and his death are wrapped in mystery It appears probable that he was called upon to beat back one of those invasions from the East which have constituted the chief factor in the history of Central Asia In this campaign he was killed, in 529 B C Tradition, of course, has woven many legends The best-known is that of Herodotus, who narrates that he demanded the hand of Tomyris, Queen of the Massagetae in marriage, but was refused with disdain Thereupon he invaded her country, defeated her advance guard and captured her eldest son and heir, who immediately killed himself In the great battle which ensued and was fiercely contested, Cyrus was defeated and slain The Queen, to avenge the death of her son, dipped the hero's head in gore, exclaiming, "I give thee thy fill of blood "[1]

Ctesias says he was killed by the javelin of an Indian when making war upon the dervishes, a tribe of that nation [2]

'विजय-वेलि' मे दिखाया गया है कि कुरुष भारत की उत्तर-पश्चिम सीमा पर युद्ध करते हुए मसगत जाति के नेता के गदा-प्रहार से घायल हो जाता है, इसके वाद ईरान की सीमा मे स्थित जरतुष्ट के आश्रम मे उसकी मृत्यु हो जाती है।

विशेषताएँ

नाटक मे इतिहास एव कल्पना का मणिकाचन सयोग है। इतिहास के आधार पर कल्पना का भवन निर्माण किया गया है। कुरुष का अगिरस के आश्रम मे लालन पालन, शिक्षा-दीक्षा, भारतीय पत्नी से विवाह और पत्नी के कारण ही उसमे लोक-कल्याण, प्रेम, औदार्य प्रभृति भावनाओ की जागृति, सेठ जी की सुन्दर कल्पना के परिचायक है।

पात्रो मे कुरुप, रेणुका के चरित्र बहुत सुन्दर अकित है। नाटककार इन दोनो की चारित्रिक विशेषता के उद्घाटन मे विशेष सन्नद्ध दिखाई पडता है। कुरुप को वीर, आत्मविश्वासी, दृढ-प्रतिज्ञ, दयावान, भावना-प्रधान, उदार तथा महत्त्वकाक्षी व्यक्ति के रूप मे चित्रित किया गया है। दूसरे अक मे (पृ० 60) अतिथिग्व के अपनी भावनाओ की स्पष्ट अभिव्यक्ति के समय कुरुप बीच-बीच मे व्यग्य करके उसका

1 A History of Persia, Vol I, Sir Percy Sykes, p 153.

2 The History of Persia, Vol I, Sir John Malcolm, p 222-23.

तिरस्कार सा करता प्रतीत होता है, इस अवसर पर उसके कथन मे वीरोचित गौरव का अभाव मिलता है, उसका व्यग्यपूर्ण कथन उसे उच्छृखल व्यक्तियो की श्रेणी मे बिठा देता है। रेणुका के सामने उसका चरित्र फीका मालूम पडता है। रेणुका आदर्श भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है। विश्व-विजय के लिए युद्ध की अपेक्षा वह प्रेम, सेवा, उदारता के मार्ग को श्रेष्ठ मानती है। वह अहिसा की पूर्ण समर्थिका है और उसे पूर्ण विश्वास है कि विश्व-कल्याण अहिसा द्वारा ही सभव है। रेणुका सेठ जी के गाँधीवादी आदर्श को प्रस्तुत करती है और इसी के माध्यम से सेठ जी ने अपना जीवन-दर्शन अभिव्यक्त किया है। रेणुका के चरित्र-चित्रण मे नाटककार को पूर्ण सफलता मिली है।

अतिथिग्व का चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक भूमि पर प्रतिष्ठित होने के कारण अत्यन्त स्वाभाविक है। उसके जघन्य कृत्य—दौहित्र के वध की योजना, सेनापति के पुत्र का वध, कुरुप से विश्वासघात आदि उसका अत्यन्त घृणास्पद चित्र प्रस्तुत करते है, लेकिन जब हम इन कृत्यो के मूल कारणो पर दृष्टिपात करते है तो उसका चरित्र उतना घृणास्पद नही प्रतीत होता। उसका सकुचित कुल-गौरव, देश-प्रेम की भावना, आत्माभिमान आदि ही उसे नीच से नीच कार्य करने के लिए प्रेरित करते है। दौहित्र का वध वह इसलिए कराना चाहता है ताकि उसके राज्य पर उसी के वशजो का अधिकार रहे और इसी कारण वह कुरुष से विश्वासघात करता है। सेनापति हरपाग के विश्वासघात के कारण वह उसके पुत्र को मार डालता है। उसका चरित्र पतित तो है ही इसमे कोई सन्देह नही।

नाटक के अधिकाश कथोपकथन सरस, सजीव तथा स्वाभाविक है। प्राय सवाद छोटे है लेकिन बडे सम्वादो का नितान्त अभाव नही। कथोपकथन मे सूक्तियो का प्रयोग पर्याप्त मात्रा मे होने के कारण उनमे विशेष लालित्य आ गया है। कुछ सूक्तियाँ तो सचमुच बडी सुन्दर है, यथा—

> असन्तोष के बिना विकास और आकाक्षा के अभाव मे प्रगति असम्भव है।[1]
> वीरता का सबसे बडा गुण कर्मण्यता है।[2]

स्वगत कथनो का नितान्त अभाव तो नही लेकिन अन्य नाटको की तुलना मे वे बहुत कम है।

भाषा मे मुहावरो का प्रयोग एव आलकारिता है। कही-कही भावपूर्ण भाषा का प्रयोग भी किया है।[3] सेठ जी की शैली मे प्राय व्यग्यात्मकता का अभाव रहता है, यहाँ कही-कही व्यग्यात्मक शैली के दर्शन भी होते है—

1 विजय-वेलि, तृतीय अक, पृ० 71।

2 वही, पचम अक, पृ० 122।

3 वही प्रथम अक, पृ० 17 का पहला अनुच्छेद।

रेणुका—तुम्हारी माता के पेट से निकली हुई यह वेलि, देखना है, ससार के लिए अमृत-वेलि सिद्ध होती है या विष-वेलि ।[1]

दृश्य-योजना सरल होने पर भी नाटक मे सूच्याशो की अधिकता, पात्रो का वाहुल्य, युद्ध के दृश्यो के समावेश आदि के कारण इसका सफलतापूर्वक अभिनय असम्भव नही तो कठिन अवश्य है ।

सिहल द्वीप—सेठ जी के प्रकाशित ऐतिहासिक नाटको की परम्परा मे 'सिहल द्वीप' अतिम नाटक है । पॉच अको के इस नाटक का प्रकाशन सन् 1966 मे हुआ । इसमे महात्मा बुद्ध के समकालीन वगाल के राजा सिहल के पुत्र विजय का पिता से सैद्धान्तिक मतभेद के कारण देश-निष्कासन एव उसका अनेक भारतीयो के साथ प्राचीन लकापुरी मे जाने तथा उसे पुन आबाद करने के प्रयत्नो का उल्लेख है ।

कथावस्तु

वगाल के राजा सिहल आर्य-धर्म के कट्टर अनुयायी तथा वर्ण-व्यवस्था के पूर्ण समर्थक है । उनका पुत्र विजय महात्मा बुद्ध के सिद्धान्तो से प्रभावित होने के कारण जाति-भेद, अस्पृश्यता और ऊँच-नीच की भावना का कट्टर विरोधी है । पिता और पुत्र मे इस प्रकार सैद्धात्मिक मतभेद है । विजय की कृति उसके विचारो के अनुरूप है, वह उन लोगो के साथ घनिष्ठता वढाता है जिन्हे राजा सिहल तथा उसके अन्य कर्मचारी निम्न श्रेणी का अछूत समझते है । एक दिन अछूतो और चडालो के साथ सहभोज मे सम्मिलित हो जाने के कारण उसके पिता उसे देश-निष्कासन का दड देते है । विजय अपने कुछ घनिष्ठ मित्रो एव सहयोगियो को साथ लेकर दक्षिण भारत के समुद्र-तट पर आता है । यहाँ वहुत से भारतीय उसके उदार विचारो के कारण उसके साथ हो जाते है । विजय इन सव को लेकर प्राचीन लकापुरी मे पहुँच जाता है, इस समय यह द्वीप उजडा होता है, कही-कही कुछ थोडे से आदिवासियो को छोडकर शेष सारा भूखण्ड निर्जन दिखाई पडता है । विजय तथा उसके अन्य साथी वहाँ की जन-जातियो की लडकियो से विवाह करते है। विजय उस विशाल द्वीप का सम्राट् वनाया जाता है तथा उसकी इच्छानुसार इस द्वीप का नाम उसके पिता के नाम पर 'सिहल द्वीप' रखा जाता है ।

'सिहल द्वीप' मे इतिहास और कल्पना—विजय और उसके लका-प्रयाण से सम्वन्धित घटनाओ का उल्लेख 'महावश' मे इस प्रकार है—

"लाल (लाट) देश के इस नगर (सिहपुर) मे राजा सिहबाहु, सिहसीवली को अपनी रानी वना राज्य करता रहा ।।36।। काल पाकर उस रानी को सोलह वार जुडवे पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमे सवसे वडा विजय और उससे छोटा सुमित्र था। वे सव वत्तास थे । राजा ने कुछ काल के वाद विजय को युवराज अभिषिक्त किया ।। 37-38 ।।

1 विजय-वेलि, प्रथम अक, पृ० 19 ।

विजय और उसके साथी दुराचारी थे। उन्होने अनेक असह्य दुष्कर्म किये ॥ 39 ॥ प्रजा ने क्रोधित हो, राजा से पुकार की। राजा ने उसे आश्वासन दे पुत्र को समझाया ॥ 40 ॥ फिर दूसरी बार और तीसरी बार भी ऐसा ही हुआ। तब लोगो ने क्रोधित हो, राजा से कहा, "अपने पुत्र को मारो" ॥ 41 ॥ राजा ने विजय और उसके सात सौ साथियो का आधा सिर मुडवा, उनको जहाज मे डाल कर समुद्र मे छुडवा दिया, उनके स्त्री बच्चो को भी ॥ 42-43 ॥ वे पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे अलग-अलग बिछुड कर, पृथक्-पृथक् द्वीपो मे जाकर उतरे, और (वही) बसे ॥ 44 ॥ जिस द्वीप पर बच्चे जाकर उतरे, उसका नाम 'नग्ग (नग्न) द्वीप' हुआ जिस पर स्त्रियाँ उतरी, उसका नाम 'महिला द्वीप' हुआ ॥ 45 ॥ कुमार विजय 'सुप्पारक पट्टन' पर उतरा। किन्तु अपने साथियो की उद्दडता से डरकर, उसे फिर नाव पर चढना पडा ॥ 46 ॥ स्थिरमति विजयकुमार लका मे ताम्रपर्णी नामक स्थान पर उसी दिन उतरा, जिस दिन (कुशीनगर मे) भगवान (बुद्ध) निर्वाण प्राप्ति के लिए जोडे शाल (साखू) वृक्षो के बीच लेटे ॥ 47 ॥"[1]

"जब विजय और उसके आदमी नाव से पृथ्वी पर उतरे, तो थकावट के कारण पृथ्वी पर हाथ टेक कर बैठे थे ॥ 40 ॥ ताम्रवर्ण की मिट्टी के स्पर्श से (उनके हाथ) तावे के पत्र (तम्बपण्णी) हुआ ॥ 41 ॥ राजा सिहबाहु, सिह (मार) लाये थे। इसलिए वह सिहल (सिहाल) कहलाये और उसी सम्बन्ध से ये सब (लका वासी) सिंहल हुए ॥ 42 ॥

अनेक स्थानो पर विजय के अमात्यो ने गाँव बसाये। अनुराध ग्राम उसी नाम के किसी (अमात्य) ने कदम्ब नदी के समीप बसाया ॥ 43 ॥ अनुराध (ग्राम) से उत्तर गम्भीर नदी के किनारे उपतिष्य पुरोहित ने उपतिष्य-ग्राम बसाया ॥ 44 ॥ तीन अमात्यो ने पृथक्-पृथक् उज्जैनी, उरूवेला और विजिलपुर नामक तीन नगर बसाये ॥ 45 ॥[2]

"देश को बसा चुकने पर, सब अमात्यो ने इकट्ठे हो राजकुमार से कहा, 'स्वामी ! अब (आप) राज्याभिषिक्त हो' ॥ 46 ॥ ऐसा कहने पर, राजकुमार ने एक क्षत्रिय कन्या के पटरानी हुए बिना अपना राज्याभिषेक कराना नही चाहा ॥ 47 ॥ (किन्तु) स्वामी के अभिषेक के लिए अत्यधिक इच्छुक दुष्कर कार्यो मे भी भय के कारण का अतिक्रमण कर चुके स्वामिभक्त अमात्यो ने बहुत से आदमियो को मणिमुक्ताओ की अमूल्य भेट के सहित दक्षिण मधुरा (मथुरा) नगर को भेजा, कि

1 महावंश (हिन्दी अनुवाद)—भदत आनन्द कौसल्यायन, द्वि० स० 2014, षष्ठ परिच्छेद, पृ० 39-40।

2 वही, सप्तम परिच्छेद, पृ० 43।

उल्लेख 'महावश' और 'दीपवश' नामक प्राचीन ग्रन्थो मे है। इन ग्रन्थो मे विजय द्वारा सीलोन के पुन बसाने का वर्णन है और यह लिखा है कि विजय की कुछ कुकृतियो के कारण उसके पिता सिहल ने उसको देश-निष्कासन का दण्ड दिया था। प्रस्तुत नाटक मे देश-निष्कासन का कारण सैद्धान्तिक मतभेद बताया गया है, यह एक सुन्दर कल्पना है।

विजय के चरित्र को उच्चता, महानता प्रदान करने का नाटककार का श्रमपूर्ण प्रयास सर्वत्र परिलक्षित होता है। उसकी महानता उसके द्वारा किये गये कार्यो से झलकती तो चरित्र अधिक स्वाभाविक एव प्रभावोत्पादक होता। नाटक मे उसके द्वारा केवल एक महान् कार्य—अछूतो के भोज मे सम्मिलित होना—सम्पन्न होता है, इसके अतिरिक्त उसके चरित्र की विशेषताओ का उल्लेख प्राय कथोपकथनो द्वारा होता है। सिद्धान्त के प्रश्न पर पिता-पुत्र सघर्ष मे सेठ जी ने अपने जीवन-सघर्ष की झाकी प्रस्तुत की है (सेठ जी को भी स्वराज्य आन्दोलनो मे भाग लेने के प्रश्न पर इसी प्रकार अग्रेज-भक्त पिता से सघर्ष करना पडा है)।

सिहल का चरित्र कर्तव्यनिष्ठ की अपेक्षा धर्मभीरु, जनभीरु का अधिक है। वह विजय को अपनी कर्तव्यनिष्ठा के कारण नही अपितु इस कारण देश-निष्कासन का दण्ड देता है क्योकि उसके कारण धर्मभीरु प्रजा मे विद्रोह की आशका उत्पन्न हो जाती है।

सिहल की पत्नी सुलोचना की वात्सल्य भावना का सुन्दर चित्रण किया गया है।

नाटक पर गाधीवाद एव वर्तमान युगीन सामाजिक सुधार आन्दोलन का व्यापक प्रभाव पडा है। इसमे सेठ जी ने विजय के माध्यम से अपना जीवन-दर्शन (अस्पृश्यता के प्रति घृणा, जाति-भेद के प्रति अनास्था, कर्तव्य-निष्ठा) अभिव्यक्त किया है।

कथोपकथन मार्मिक नही है, विजय के कथन मे भाषण की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। स्वगत कथनो का अभाव है। भाषा मे विशेष सौन्दर्य नही है, कही-कही मुहावरो का गला घोट दिया गया है, यथा—

छाती पर पत्थर नही पर्वत-शिखर रख कर्तव्य के कारण हमे यह प्रस्ताव करना पडा है, महारानी जी।[1]

विस्तृत रगसकेत होते हुए भी, कार्य-व्यापार का अभाव, कथोपकथन की निर्जीवता, पात्रो का आधिक्य, भाषा की शिथिलता आदि के कारण नाटक रगमच की दृष्टि से भी अधिक सफल नही कहा जा सकता।

विश्वासघात— सेठ जी का यह नाटक अभी तक अप्रकाशित है। इसका

1 सिहल द्वीप, उपक्रम, पृ० 8।

रचना काल मई 1923 है। नाटक की पाडुलिपि के प्रथम पृष्ठ पर बायें तरफ 'कारा कृति का करण' वाक्याश अकित है। इसमे कुल पाँच अक है।

कथावस्तु

कथानक का आधार 'प्लासी के युद्ध' से सम्बन्धित घटनाएँ है। इसका प्रारभ बगाल के नवाब सिराजुद्दौला के मत्री राय दुर्लभ, सेनापति मीर जाफर, कलकत्ते के प्रसिद्ध व्यापारी अमीचद तथा मुर्शिदाबाद के साहूकार जगत सेठ की गुप्त मत्रणा से होता है। ये चारो अग्रेजो की सहायता से नवाब सिराजुद्दौला को अपदस्थ करने तथा मीर जाफर को नवाब बनाने की योजना बनाते है।

अग्रेजो के अपमानजनक व्यवहार से क्रुद्ध होकर नवाब सिराजुद्दौला प्लासी के मैदान मे उन्हे पराजित करने का निश्चय करता है। नवाब के इस निश्चय को जान-कर मत्री राय दुर्लभ सेनापति मीर जाफर को यह राय देता है कि वह युद्ध मे सेना को लडने की आज्ञा न दे और इसका परिणाम यह होगा कि सिराजुद्दौला परास्त हो जायेगा।

युद्ध के मैदान मे मीर जाफर पूर्व योजना के अनुसार सेना को लडने की आज्ञा न देकर सिराजुद्दौला के साथ विश्वासघात करता है। इसी समय नवाब की बेगम लुतफुन्निसा पुरुष वेश मे युद्ध-क्षेत्र मे आती है और नवाब की आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार होती है। नवाब तथा उसकी बेगम गिरफ्तार कर लिए जाते है।

सिराजुदौला और उसकी बेगम के बन्दी बनाये जाने के पश्चात् क्लाइव मीर जाफर को बगाल का नवाब बना देता है, शेष षड्यत्रकारियो को कुछ नही मिलता। अमीचद के छोटे भाई चन्द्रविलास का रोहिणी से विवाह हो जाता है।

अमीचद के छोटे भाई चन्द्रविलास के प्रयत्न से दोनो (सिराजुद्दौला और उसकी बेगम) बन्दीगृह से निकल भागते है। मार्ग मे एक पठान सोये हुए नवाब का वध कर देता है तथा बेगम स्वय आत्महत्या कर लेती है। नाटक का पर्यवसान दु खमय होने कारण यह दुखान्त नाटक है।

'विश्वासघात' मे इतिहास और कल्पना—प्रस्तुत नाटक मे ऐतिहासिक तथ्यो का पूर्ण निर्वाह हुआ है। इसकी अधिकाश घटनाएँ इतिहास-सम्मत है। ऐतिहासिकता के सम्बन्ध मे नाट्यकार का कथन है—

"इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है कि ऐतिहासिक घटनाओ मे कोई परिवर्तन न कर उनका अधिक से अधिक अनुसरण किया जाय। इस नाटक मे वर्णित अमीचन्द के जमादार द्वारा उसके घर की 13 स्त्रियो के वध तक ऐतिहासिक घटना है। पात्रो मे पडित कैलाशनाथ, रोहिणी और गुलनार को छोड शेष सभी पात्र ऐतिहासिक है।[1]

---

1 विश्वासघात (अप्रकाशित), पाडुलिपि, निवेदन।

नाटक मे वर्णित अमीचन्द के छोटे भाई चन्द्रविलास का जगत सेठ की पुत्री रोहिणी से विवाह नितान्त काल्पनिक है। राय दुर्लभ के विषय मे इतिहास प्राय मौन है और इसीलिए उससे सम्बन्धित विस्तृत बातो का पता नही चलता।

विशेषताएँ

नाटक मे सिराजुद्दौला, उसकी बेगम तथा चन्द्रविलास के चरित्र-चित्रण काफी अच्छे हैं। सिराजुद्दौला का चरित्र वीर, साहसी, धैर्यवान, विश्वसनीय तथा दृढ-प्रतिज्ञ नवाब के रूप मे अकित हुआ है। उसकी बेगम लुतफुन्निसा भी वीर, साहसी, पतिपरायणा नारी के रूप मे चित्रित हुई है। चन्द्रविलास का चरित्र-चित्रण देश-प्रेमी, कर्तव्यनिष्ठ तथा ईमानदार व्यक्ति के रूप मे हुआ है। षड्यत्रकारियो का चरित्र अत्यन्त घृणित रूप मे प्रस्तुत किया गया है और वह अस्वाभाविक नही प्रतीत होता। षड्यत्र मे पूर्णत सम्मिलित होने से पूर्व राय दुर्लभ के मानसिक सघर्ष का सुन्दर चित्रण हुआ है। वह बार-बार सोचता है कि मेरा स्वामी के प्रति विश्वासघात कही धर्म-विरुद्ध तो नही है। उसकी आशकाओ का निवारण स्वार्थी अमीचन्द यह कहकर करता है कि—

"एक ओर करोडो दुखी और सन्तप्त आत्माओ को सुखी करना है और दूसरी ओर एक आततायी को दड देना, एक ओर सैकडो सतियो के धर्म को बचाना हे और दूसरी ओर एक विलासी के विलासो मे सहायक होना।"[1]

कथोपकथन प्रभावशाली तथा स्वाभाविक है। भाषा भी अच्छी ही है। सेठ जी का यह अप्रकाशित नाटक उनके कई प्रकाशित नाटको से भी अधिक सुन्दर है।

ऐतिहासिक नाटकों का मूल स्रोत

ऐतिहासिक नाटको, उपन्यासो या कहानियो मे नाट्यकार, उपन्यासकार था कहानीकार को इतिहास सम्बन्धी कितनी स्वतत्रता लेने का अधिकार है इसका उल्लेख सेठ जी ने अपने प्रथम ऐतिहासिक नाटक 'हर्ष' की भूमिका मे किया है—

"मेरा मत है कि नाटक, उपन्यास या कहानी लेखक को यह अधिकार नही है कि वह किसी भी पुरानी कथा को तोड-मरोड कर उसे एक नयी कथा ही बना दे। हाँ, कथा का अर्थ (Interpretation) वह अवश्य अपने मतानुसार कर सकता है।"[2]

सेठजी ने अपने सभी ऐतिहासिक नाटको के प्रणयन मे प्रारभ से अक तक यही दृष्टिकोण सामने रखा है। उनके ऐतिहासिक नाटको मे ऐतिहासिकता की पूर्ण रक्षा की

1 विश्वासघात (अप्रकाशित), पाडुलिपि।

2 'हर्ष', षष्ठ सस्करण, निवेदन, पृ० 'ख'।

गई है, कल्पना का उपयोग वही किया गया है जहाँ किसी घटना के विषय मे इतिहास मौन है अथवा इतिहासकारो मे मतभेद है । उनके ऐतिहासिक नाटको के प्राय सभी पात्र ऐतिहासिक है, हाँ स्त्री पात्रो के नाम ऐतिहासिक ग्र थो मे न मिलने पर वे काल्पनिक अवश्य रख लेते है, यथा, हर्ष की पालित पुत्री, राज्यश्री की सखी एव माधव गुप्त की पत्नी का नाम क्रमश अलका, जयमाला और शैलमाला काल्पनिक है । इसी प्रकार की प्रवृत्ति अन्य नाटको मे भी मिलती है ।

सेठ जी के नाटको मे इतिहास एव कल्पना का अलग-अलग सकेत[1] प्रत्येक नाटक का विवेचन करते समय पीछे किया जा चुका है । अत यहाँ उनके ऐतिहासिक नाटको के सृजन मे जिन ग्र थो से सहायता ली गई है, केवल उसका उल्लेख किया जायगा ।

'हर्ष' नाटक के सृजन मे निम्नलिखित ग्र थो से सहायता ली गई है— 'History of Ancient India' by V Smith, 'History of Medieval Hindu India' by C V Vaid, बाण का 'हर्ष चरित' और थामस वाल्टर्स द्वारा सम्पादित चीनी यात्री यान चाग का 'यात्रा वर्णन' ।

कुलीनता के आधार-ग्र थ ये है— सैन्ट्रल प्राविन्सिज गैजेटियर, जबलपुर डिस्ट्रिक्ट गैजेटियर, मडला डिस्ट्रिक्ट गैजेटियर, राय बहादुर हीरालाल रचित 'जबलपुर ज्योति', 'मडला मयूख' और 'इन्सक्रिपशन्स इन सी० पी० एड बरार', आर० डी० बैनर्जी लिखित 'त्रिपुरी एड देअर मान्यूमेटस' , बिशप चैटरटन द्वारा लिखित 'हिस्ट्री आफ गोडवाना' , सी० जे० ब्राउन कृत 'दि काइन्स आफ इ डिया' । इनके अतिरिक्त 'हर्ष' के लिए उल्लिखित प्रथम दो पुस्तको से भी सहायता ली गई है ।

'शशिगुप्त' का प्रणयन डा० हरिश्चन्द्र सेठ के चन्द्रगुप्त, चाणक्य और सिकन्दर सम्बन्धी नवीन खोजो के आधार पर किया गया है । इसका मूल आधार ग्र थ डा० सेठ का शोध प्रबन्ध 'चन्द्रगुप्त मौर्य और एलक्जेन्डर की भारत मे पराजय' ही है ।

'शेरशाह' सोलहवी शताब्दी की मुगलकालीन ऐतिहासिक घटनाओ के आधार पर लिखा गया है । इसमे काल्पनिक अ श अन्य नाटको की अपेक्षा कुछ अधिक है ।

'अशोक' की रचना के लिए निम्न ग्र थो से सहायता ली गई है—

अशोक— डा० भडारकर, अशोक एड हिज इन्सक्रिपशन्स—डा० बेनीमाधव बरुआ, अशोक और उसके लेख—गु डोपत हरिभक्त तथा अशोक — डा० हरिश्चन्द्र। इसके अतिरिक्त 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इ डिया, भाग 1' और 'दी एज आफ इम्पीरियल

---

1 देखिए—ऐतिहासिक नाटको की आलोचना ।

यूनिटी फ्राम दी हिस्ट्री एड कल्चर ग्राफ इ डियन पीपुल, भाग 2' से भी सहायता ली गई है।

'विजयवेलि ग्रथवा कुरुप' के निर्माण मे सहायक ग्र थो का उल्लेख स्वय नाट्यकार ने इस प्रकार किया है—[1]

1 मैकाले द्वारा ग्रनूदित हैरोडोटस का इतिहास
2 रावर्ट विलियम राजर्स का प्राचीन परशिया का इतिहास
3 सर परसी साइक्स का परशिया का इतिहास
4 ग्रर्थर यु पोप का परशिया की कला का निरीक्षण
5 इरिच एफ सहमिडिक का परसीपोलिस
6 डडेनीसन ग्रास का परशियन कला
7 हेनरी फ्रेंक फोर्ट का प्राचीन कला ग्रौर स्थापत्य कला

'सिहल द्वीप' की कथावस्तु मूलत 'महावश' ग्रौर 'दीपवश' नामक प्राचीन ग्र थो मे ली गई है। इसके ग्रतिरिक्त कैम्ब्रिज हिस्ट्री ग्राफ इ डिया, दी हिस्ट्री एड कल्चर ग्राफ इ डियन पीपुल, जिल्द 2, दि एज ग्राफ इम्पीरियल यूनिटी, 5 शार्ट हिस्ट्री ग्राफ सीलोन—एच० डब्ल्यू० कार्डारगटन ग्रादि ऐतिहासिक ग्र थो से भी सामग्री का चयन किया गया है।

जीवनी नाटक

भारतीय ग्रौर पाश्चात्य नाट्य-शास्त्र के मूल सिद्धान्तो को हृदयगम करने के पश्चात् सेठ गोविन्ददास ने हिन्दी नाट्य-क्षेत्र मे निरतर नवीन नाटकीय प्रयोग किये है, जीवनी-नाटक का निर्माण उनके इन्ही नाटकीय प्रयोगो मे से एक है। यद्यपि जीवनी-नाटक के ग्रादि प्रवर्त्तक ग्रग्रेजी के प्रसिद्ध नाट्यकार जान ड्रिक वाटर माने जाते है तथापि हिन्दी नाट्य-क्षेत्र मे इसको प्रचलित करने का श्रेय गोविन्ददास जी को ही है।

जीवनी-नाटको मे किसी प्रसिद्ध साहित्यिक, राजनीतिज्ञ, ग्रथवा ग्रन्य किसी विशिष्ट व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन या उसके जीवन की प्रमुख वास्तविक घटनाग्रो को कथानक के रूप मे ग्रहण किया जाता है। जीवन की वही घटनाएँ कथानक के रूप मे ली जाती है जिनके द्वारा नाट्यकार पर्याप्त नाटकीय कौतूहल उत्पन्न करने मे समर्थ होता है। नाटक मे यह नाटकीय कौतूहल, चरित्र नायक के ग्रन्त ग्रथवा वाह्य-सघर्ष के चित्रण द्वारा ग्रथवा उसके किन्ही विशिष्ट गुणो की साहित्यक ग्रभिव्यक्ति के द्वारा उत्पन्न किया जाता है। ऐतिहासिक नाटक की एक विधा होते हुए भी जीवनी-नाटक का प्रणयन उसकी ग्रपेक्षा कही ग्रधिक कठिन है। इसका कारण यह है कि ऐतिहासिक नाटक मे जहा नाटककार को कल्पना की कुलाचे भरने के लिए पर्याप्त ग्रवसर रहता

---

1 विजयवेलि ग्रथवा कुरुप, निवेदन, पृ० 'छ'।

है, वह यत्र तत्र नवीन उद्भावनाएँ करने के लिए स्वतन्त्र रहता है, वहाँ जीवनी नाटक मे नाटककार की कल्पना उन्मुक्त होकर गगन विहारिणी नही बन सकती। कल्पना के सीमित प्रयोग के प्रतिबन्ध को मानते हुए, अपने सीमित क्षेत्र मे ही जीवनी-नाटककार को पाठक अथवा दर्शक की कुतूहल-प्रियता को शात करना पडता है और यह कार्य घटनाओ के मार्मिक स्थल को पकडने तथा उसे नाटकीय रूप देने मे समर्थ कलाकार ही कर सकता है। इस प्रकार हम देखते है कि जीवनी-नाटक की सफलता के लिए चरित्र-नायक के जीवन की ऐतिहासिक प्रामाणिकता को अक्षुण्ण रखते हुए, कथानक की रोचकता को अन्त तक बनाये रखना नाटककार के लिए एक आवश्यक शर्त है।

सेठ गोविन्ददास के निम्नलिखित नाटक जीवनी-नाटक के अन्तर्गत परिगणित किये जा सकते है—

1 महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य

2 रहीम

3 भारतेन्दु

4 महात्मा गाँधी

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य—'महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य' पाँच अको मे समाप्त होने वाला एक ऐतिहासिक जीवनी-नाटक है जिसका प्रकाशन काल विक्रम सम्वत् 2014 है। इसके आदि और अन्त मे क्रमश उपक्रम तथा उपसहार की योजना द्वारा नाटककार ने चरित्र-नायक के जन्म और उनके निर्वाण-काल के दृश्यो को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

वल्लभ-सम्प्रदाय के प्रति अनन्य निष्ठावान सेठ गोविन्ददास इस सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक श्री वल्लभाचार्य के व्यक्तित्व की महानता से अत्यधिक प्रभावित है। इस ग्रन्थ के प्रणयन की मूल प्रेरणा को स्पष्ट करते हुए उन्होने इसके 'निवेदन' मे स्वय लिखा है, "... मेरा निश्चित मत है कि केवल इस देश मे ही नही, अपितु ससार मे जो महापुरुष हो गये है, उनमे वल्लभाचार्य जी भी एक थे। उनकी विद्वत्ता और इस विद्वत्ता के साथ ही उनका चरित्र और त्याग अद्वितीय तथा असाधारण था। आरम्भ से ही उनमे अलौकिक प्रतिभा थी। अत इस विषय मे सन्देह करने की कोई गु जाइश नही है कि ग्यारह वर्ष की अवस्था मे ही वे वेद-विद्या मे किस प्रकार पारगत हो गये तथा चौदह वर्ष की अवस्था मे राजा कृष्णदेव राय की सभा मे शास्त्रार्थ मे वे किस प्रकार विजयी हुए।"[1]

नाटक की कथावस्तु सक्षेप मे इस प्रकार है—

वास्तविक नाटक प्रारम्भ होने से पूर्व ही उपक्रम के अतर्गत लेखक ने श्री वल्लभाचार्य के जन्म के समय की घटना का चित्राकन किया है। यही इस बात का

---

1 महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य, लेखक का निवेदन, पृ० 7।

सकेत मिलता है कि वे अवतारी पुरुष है। इसके बाद काशी मे नारायण भट्ट की पाठशाला मे वल्लभ एक प्रतिभावान शिक्षार्थी के रूप मे दिखाई पडते है और यही ग्यारह वर्ष की अल्पायु मे ही वे वेद, ब्राह्मण, वेदान्त, गीता, शास्त्र, पुराण, इतिहास आदि मे पारगत हो चुके है। उनके अन्तस मे शुद्धाद्वैत की भावना का आविर्भाव भी यही हुआ है। विद्याध्ययन के पश्चात् अपने नवीन सिद्धात (शुद्धाद्वैत या ब्रह्मवाद) का प्रसार काशी मे करना चाहते है, किन्तु काशी के असहिष्णु ब्राह्मण अपनी मूर्खता एव हठवादिता के कारण उनका अपमान कर देते है। काशी मे अपमानित होकर वे अपने सिद्धान्त का प्रचार अन्यत्र करना चाहते है और इस हेतु दक्षिण को प्रस्थान करते है। दक्षिण मे विजयनगर के राजा कृष्णदेवराय की सभा मे, केवल 14 वर्ष की आयु मे, स्मार्तो के नेता विद्या तीर्थ तथा वैष्णवो के नेता व्यास तीर्थ को, अपने प्रकाड पाडित्य से, ब्रह्मवाद की सर्वथा बुद्धिग्राह्य व्याख्या करके, शास्त्रार्थ मे परास्त करते है। इस स्थल पर शुद्धाद्वैत की बडी ही सरल और सुन्दर व्याख्या नाटककार ने वल्लभाचार्य के द्वारा प्रस्तुत की है। देखिए —

वल्लभ—'सर्व खल्विद ब्रह्म' इस महावाक्य को मै सर्वप्रधान मन्त्र मानता हूँ। कहिये, इसमे तो किसी को मतभेद नही है ?

विद्यातीर्थ—व्यासतीर्थ के सहित समस्त सभासद—किसी का नही, किसी का नही।

वल्लभ—तो अब 'सर्व खल्विद ब्रह्म' के आधार पर श्री मध्वाचार्य के द्वैत, निम्वार्काचार्य के द्वैताद्वैत और रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत पर विचार कीजिये और देखिए कि 'सर्व खल्विद ब्रह्म' के अनुसार ये वाद ठीक-ठीक वैठते है या नही।

विद्यातीर्थ— सर्वथा नही।

कुछ सभासद—हाँ, सर्वथा नही।

वल्लभ—'सर्व खल्विद ब्रह्म' मन्त्र के अनुसार अद्वैत ही ठीक बैठता है।

विद्यातीर्थ—धन्य ! धन्य !

वल्लभ—परन्तु 'सर्व खल्विद ब्रह्म' के साथ अद्वैत का प्रतिपादन करते करते जब श्रीमच्छकराचार्य कहते है—'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या' और इस पर जब वे अपने मायावाद को आधारित करते है, तब वे भी 'सर्व खल्विद ब्रह्म' मन्त्र से दूर होते हुए दृष्टिगोचर होते है। यदि सब कुछ ब्रह्म है तो जीव और माया भी ब्रह्म से पृथक् नही तथा यह जगत् भी सत्य है, मिथ्या नही। इसीलिए मेरा वाद है—ब्रह्मवाद, शुद्धाद्वैत।[1]

राजा कृष्णदेवराय की सभा मे ही वल्लभ विष्णु-स्वामी सम्प्रदाय के आचार्यत्व का पद भी ग्रहण करते है।

---

1 महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य, प्रथम अक, तृतीय दृश्य, पृ० 34।

(दूसरे अक के प्रथम दृश्य मे) वल्लभाचार्य को स्वप्न मे श्रीनाथ जी का स्वरूप दिखाई पडता है और स्वरूप द्वारा ही उन्हे विदित होता है कि वे ब्रह्म के अवतार है। स्वप्न मे ही उन्हे गोवर्धन पर्वत पर जाकर गोवर्धन जी को प्रकट कराने, उनको पास बैठाने और उनकी सेवा की व्यवस्था करने का आदेश होता है। भगवदादेशानुसार वे यह सारा कार्य करते है। यह सारा कार्य सम्पन्न हो जाने पर फिर स्वप्न मे ही स्वरूप का दर्शन होता है और पुष्टि मार्गीय भक्ति को सर्वसाधारण के लिए सुलभ बनाने के हेतु भेदभाव-रहित दीक्षा के लिए आदेश होता है, आदेशानुसार वे इसी 'श्रीकृष्ण शरण मम' मन्त्र की विशद और व्यापक व्याख्या करते है तथा ऊँच-नीच, स्त्री-पुरुष का भेदभाव छोडकर सबको समान रूप से दीक्षा देते है।

चौथे अक मे श्री वल्लभ के दाम्पत्य जीवन का एक हल्का-सा चित्र मिलता है और यही इस बात का सकेत मिलता है कि उन्होने भगवदादेशानुसार अपनी मृत्यु के पश्चात् सम्प्रदाय को यथावत् जीवित रखने के लिए योग्य अधिकारी प्राप्त होने के हेतु विवाह किया था। इसी अक मे जगन्नाथपुरी मे शास्त्रार्थ मे विजयी होने की घटना का वर्णन किया गया है। यहाँ एक अलौकिक घटना का वर्णन है कि वल्लभाचार्य ने जगन्नाथपुरी के राजा के चार प्रश्नो का उत्तर पाने के लिये कोरा कागज और कलम दवात जगदीश के मन्दिर मे रखवा दिया और उन प्रश्नो का सही उत्तर वहाँ से लिखकर आ गया।

इसी अक के तृतीय दृश्य मे महाप्रभु वल्लभाचार्य तथा चैतन्य महाप्रभु के भावपूर्ण मिलन का दृश्य भी अकित किया गया है।

अतिम अक मे महाप्रभु के सन्यास ग्रहण करने तथा काशी के उसी स्थान पर जहा उनका अपमान हुआ था, जाकर लोगो को अपने दर्शन से कृतार्थ करने का दृश्य दिखाया गया है।

उपसहार के अन्तर्गत उनके निर्वाण का एक अलौकिक दृश्याकन हुआ है।

विशेषताएँ

वल्लभाचार्य के जीवन की अलौकिक घटनाओ को बुद्धि-ग्राह्य बनाते हुए लौकिकता की आधार-भूमि पर रखकर नाटक के कथानक का निर्माण किया गया है। इसमे आचार्य के जीवन की प्राय सभी प्रमुख घटनाओ को चित्रित करने का प्रयास परिलक्षित होता है, और वह भी शुद्ध ऐतिहासिक प्रामाणिकता के साथ। यही नाट्यकार का नाट्य-कौशल दृष्टिगोचर होता है। घटनाओ की ऐतिहासिक प्रामाणिकता को यथावत् स्थिर रखकर नाटककार ने इतनी स्वतन्त्रता अवश्य बरती है कि उसने घटनाओ के क्रम मे थोडा बहुत परिवर्तन करने मे सकोच नही किया है—जैसे जगन्नाथ पुरी के शास्त्रार्थ की घटना राजा कृष्णदेव राय के सभा की शास्त्रार्थ के घटना से पहले घटित हुई थी किन्तु लेखक ने इसे बाद मे रखा है। इस घटना को बाद मे रखने

का उद्देश्य यही है कि नाट्यकार 14 वर्ष की अल्पायु मे श्री वल्लभाचार्य को विजय-नगर के शास्त्रार्थ म विजयी दिखाना चाहता है। इतनी अल्प वय मे दक्षिण के धुरधर विद्वान तथा स्मार्तो के नेता विद्यातीर्थ एव वैष्णवो के नेता व्यासतीर्थ को परास्त कराकर लेखक ने चरित्र-नायक के महत्त्व को और अधिक बढा दिया है। कुछ घटनाएँ जो वल्लभाचार्य के वास्तविक जीवन मे भिन्न-भिन्न स्थानो पर घटित हुई थी, उन्हे एक ही स्थान पर घटित दिखाया गया है।

इस नाटक के सभी पात्र ऐतिहासिक है। इसमे किसी भी काल्पनिक पात्र का समावेश न करके नाटककार ने ऐतिहासिकता की रक्षा की है। इसके साथ ही पाठको और दर्शको की रुचि को भी अन्त तक बनाये रखने मे वह सफल हुआ है। वि० स० 1535 से 1587 अर्थात् 52 वर्ष की घटनाओ को बडे कौशल के साथ नाटककार ने इस नाटक की लडी मे पिरोने का सफल प्रयास किया है। नाटक मे कीर्तनो का उपयोग उसके नाट्य-सौन्दर्य की अभिवृद्धि मे सहायक हुआ है।

रहीम—इसका प्रकाशन काल 1955 है। इसमे कुल पाच अक, प्रत्येक अ क मे तीन दृश्य, प्रारम्भ मे उपक्रम तथा अन्त मे उपसहार है।

कथानक

रहीम के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओ को ही प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु के रूप मे चित्रित किया गया है। कथानक का प्रारम्भ सूबेदार अब्दुर रहीम खाँ की गुजरात विजय से होता है। वे 19 वर्ष की आयु मे गुजरात के नवाब मुजफ्फर को पराजित करते है और वहाँ से पर्याप्त मात्रा मे हीरे, जवाहारात तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ प्राप्त कर उसे बादशाह अकबर की सेवा मे प्रस्तुत करते है। अकबर रहीम की वीरता से प्रसन्न होकर उन्हे 'खानखाना' की उपाधि से विभूषित करता है तथा अपने नवरत्नो मे उन्हे स्थान देता है। नाटक के प्रथम अ क मे रहीम के जीवन का उत्तरोत्तर विकास दिखाया गया है। उन्हे सम्मान और ऐश्वर्य के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया गया है। यही उनकी दानशीलता का परिचय भी मिलता है। इसी अक मे उनके सुखी दाम्पत्य-जीवन के मधुर चित्र भी अ कित किये गये है।

दूसरे अ क मे रहीम का औदार्य, उनके द्वारा कवियो की आर्थिक सहायता, रहीम की कृष्ण-भक्ति, गोस्वामी तुलसीदास से उनकी भेट आदि का वर्ण न है।

तीसरे अ क मे रहीम के जीवन की उत्तरोत्तर गिरती अवस्था का चित्रण किया गया है। धन-सम्पत्ति का दान कर देने के बाद उनकी आर्थिक दशा खराब है, वे चित्रकूट के पास एक कस्बे मे रहते है और धनाभाव के कारण अब याचको से मिलना भी पसन्द नही करते। चौथे अ क मे जहाँगीर के राज्यकाल मे उनकी स्थिति सुधरती है और दक्षिण-विजय के उपरान्त उन्हे पुन प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। वृद्धावस्था के कारण रहीम राज-कार्य से मुक्त होकर वैराग्य धारण करने की इच्छा जहाँगीर के

का प्रयास किया गया है। नाटक का प्रारभ बालक भारतेन्दु के प्रारभिक साहित्यानुराग से होता ह तथा अत उनकी मृत्यु के साथ होता है। इसमे भारतेन्दु के जीवन के उज्ज्वल तथा श्याम दोनो पक्षो का चित्रण है। वे एक ओर साहित्यकार, दानी, उदार, व्यक्ति के रूप मे चित्रित हुए है तो दूसरी ओर वेश्यागामी रूप मे भी। उनकी रखैल वेश्याओ का नामोल्लेख नाटककार ने किया है। उनके दाम्पत्य जीवन के मधुर एव करुण चित्र भी प्रस्तुत किए गए है।

विशेषताएँ—प्रस्तुत नाटक मे नाटककार का उद्देश्य भारतेन्दु के सम्पूर्ण जीवन का चित्रण है, सम्पूर्ण जीवन-चित्रण की इसी मूल वृत्ति के कारण इसमे बहुत बिखराव आ गया है और नाटक के लिए आवश्यक सुसम्बद्ध कथानक का अभाव दृष्टिगोचर होता है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से नाटककार की सफलता असदिग्ध है, उसने चरित नायक की विशेपताओ एव दुर्बलताओ का बडा मनोरम चित्र प्रस्तुत किया है। वेश्याओ के कारण पत्नी को पूर्ण प्रेम प्रदान न कर पाने के कारण उसकी व्यथा से भारतेन्दु भी चितित चित्रित किए गए है, उनके मानसिक सघर्ष का भी यथार्थ चित्रण नाटककार ने किया है। भारतेन्दु की पत्नी मन्नो का चरित्र-चित्रण पतिपरायणा, त्यागमयी तपस्विनी नारी के रूप मे किया गया है।

कथोपकथन छोटे-छोटे है तथा स्वगत कथनो का प्राय अभाव है। कविताओ की भरमार है जिसमे कुछ कविताए भारतेन्दु की हैं शेष अन्य कवियो की। सुनियोजित दृश्य-योजना के कारण नाटक का रगमच पर अभिनय सरलता से हो सकता है। पाचवे अक के पहले दृश्य मे भारतेन्दु की लगभग चार पृष्ठ की लबी कविता उद्धृत की गई है जो नाटक के सगठन मे दोषवत् प्रतीत होती है। 'भारतेन्दु' मे सेठ जी की नाट्यकला का पूर्ण प्रदर्शन नही हो पाया है।

महात्मा गाँधी—इसका प्रकाशन काल 1959 है। नाटक मे कुल पाच अक है जिनका विभाजन दृश्यो मे किया गया है। अत मे उपसहार का प्रयोग हुआ है।

प्रस्तुत नाटक का उद्देश्य गाधी जी के जीवन की प्रमुख घटनाओ का चित्रण है।

कथानक

कथानक का प्रारभ गाधी जी के पाच-छ वर्षीय जीवन से सम्बन्धित घटना से होता है तथा अत गाधी जी की मृत्यु के साथ। इसमे उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओ का अकन ही हुआ है और इन घटनाओ मे उनके चरित्र की विशेपताओ तथा दुर्बलताओ को प्रकट करने वाली दोनो प्रकार की घटनाएँ अकित की गई है। गाधी जी के द्वारा अनेक समस्याओ पर उनके व्यक्तिगत मत भी व्यक्त कराये गये है।

विशेषताएँ--गाँधी जी के जीवन सम्बन्धी घटनाओ की जानकारी तथा उनके जीवन-दर्शन के प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से नाटक की उपयोगिता है, गाधी जी का

चरित्र-चित्रण भी अच्छा हुआ है लेकिन नाट्यकला की दृष्टि से पुस्तक को सफल नहीं कहा जा सकता। नाटक में इतिहास रस तो है लेकिन कथा रस का अभाव है, जहा गाधी जी द्वारा उनके मत व्यक्त कराये गये हैं[1] वे स्थल सिद्धान्त विवेचन मात्र बनकर रह गए हैं। कथोपकथन स्वाभाविक होते हुए भी सजीव नहीं हैं। अभिनय के लिए स्वय नाटककार ने सिनेमा के उपयोग का सुझाव दिया है अर्थात् जैसे का तैसा नाटक अभिनय के लिए अनुपयुक्त है।

सेठ जी के जीवनी-नाटको के विषय मे डा० सावित्री सिन्हा का यह कथन उचित प्रतीत होता है कि "इन रचनाओ मे कला-प्रक्रिया का वह सहज स्वाभाविक रूप नहीं है, जहाँ साहित्यकार अथवा कवि कुछ कहने की विवशता को न सभाल सकने पर कुछ कहता है।'[2]

सामाजिक नाटक

हिन्दी के नाट्य-साहित्य को ऐतिहासिक कथानको ने इतना अधिक घेर लिया है कि दूसरी दिशाओ मे जाने के लिए उसे जैसे न अवकाश है और न प्रयत्न की इच्छा। इस दिशा मे जो कुछ प्रयास किये गये है उनमे जीवन की गहरी पकड़ का अभाव इस बात की सूचना देता है कि 'चलो इस ओर भी कुछ करते चले' की प्रवृत्ति से परिचालित होकर नाटककारो ने कुछ लिख दिया है। सामाजिक समस्याओ के नाम पर नाटककारो ने या तो गाधीजी से प्रभावित सामाजिक-राजनीतिक विचार-धारा के स्थूल रूपो को ग्रहण किया है या फिर पाश्चात्य शिक्षा के प्रभावो से उत्पन्न प्रेम और विवाह की स्थूल समस्याओ को। सेठ गोविन्ददास यदि पहली कोटि मे आते है तो पृथ्वीनाथ शर्मा और अश्क दूसरी कोटि मे।[3]

सामाजिक नाटको मे मुख्यत राष्ट्रीय चेतना, देश-प्रेम, राजनीति एवं समाज से सम्बन्धित बातो का समावेश होता है। इस वर्ग के अन्तर्गत सेठ जी के छ नाटक आते है, रचनाकाल के अनुसार उनका क्रम इस प्रकार है—विश्व प्रेम, प्रकाश, सिद्धान्त स्वातन्त्र्य, सेवापथ, पाकिस्तान तथा भूदान। इस सन्दर्भ मे इन्ही नाटको पर विचार किया जायेगा।

विश्व-प्रेम—रचना-काल की दृष्टि से 'विश्व-प्रेम' सेठ जी का प्रथम नाटक है। यह सन् 1919 के फरवरी मास मे लिखा गया था और इसी वर्ष नई नाम मे जबलपुर के शारदा भवन पुस्तकालय के वार्षिकोत्सव के समय इसका अभिनय किया गया था। इसमे कुल पाच अक है, उपक्रम एव उपसहार की कोई योजना नही है।

---

1 महात्मा गाधी, पृ० 127, 128, 129, 130।
2 सेठ गोविन्ददास अभिनदन ग्रथ, पृ० 148।
3 हिन्दी नाटक—डा० बच्चन सिंह, पृ० 194।

कथानक

नेह नगर के जमींदार शूरसेन की पुत्री कालिंदी उसी के यहाँ पल रहे युवक मोहन पर आसक्त हो जाती है। मोहन का भी कालिंदी के प्रति आकर्षण होता है, दोनों एक दूसरे पर सर्वस्व अर्पण का व्रत लेते हैं। शूरसेन कालिंदी के प्रति मोहन की भावनाएं जानकर उसे अपने यहाँ से निकाल देता है। नेह नगर से निष्कासित होने के बाद मोहन अयोध्या के मत्री रूपसेन के यहाँ आश्रय पाता है। अपनी योग्यता, ईमानदारी, दयालुता, उदारता के कारण वह मत्री जी का विश्वासपात्र बन जाता है। मत्री रूपसेन मत्रित्व का भार मोहन पर सौंपकर स्वय सन्यासी बन जाता है और जाते समय एक बद लिफाफा मोहन को यह कह कर दे जाता है कि एक वर्ष पूर्ण होने पर खोलना।

विलास नगर का विलासी, शराबी, चरित्रहीन जमींदार चन्द्रप्रकाश अपनी दुरभिसधि द्वारा किसी प्रकार कालिदी को प्राप्त करना चाहता है। उसके इस षड्यत्र मे दुर्जनसिंह उसकी सहायता करता है और समय-समय पर उसे कालिंदी की गतिविधियों से सूचित करता रहता है। कालिंदी चन्द्रप्रकाश से घृणा करती है लेकिन उसकी छोटी बहन कौमुदी उस पर अनुरक्त है।

अयोध्या और नेह नगर दोनो स्थानों पर अकाल पडता है, मोहन अयोध्या मे तथा कालिंदी नेह नगर मे पूर्ण शक्ति से लोगो की सहायता करते है। अपनी सेवाओ के कारण दोनो जनप्रिय बन जाते है।

एक वर्ष बाद मोहन लिफाफा खोलता है। वह रूपसेन की सारी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बना दिया गया होता है तथा साथ ही उससे मत्री की पुत्री रूपवती से विवाह का अनुरोध भी किया गया होता है। कालिंदी के समक्ष की गई प्रतिज्ञा के कारण वह रूपवती को ग्रहण करने मे असमर्थ होता है।

लडकियो की उचित शिक्षा-दीक्षा के लिए कालिंदी कुमारिकाश्रम की स्थापना करती है। इस आश्रम के वार्षिकोत्सव के अवसर पर अनेक गण्यमान्य व्यक्ति आमन्त्रित किये जाते है, मोहन भी इनमे सम्मिलित होता है। चन्द्रविलास अपने कर्मचारी दुर्जनसिंह द्वारा इस अवसर पर मडप मे आग लगवा देता है, लडकियो की रक्षा के प्रयत्न मे मोहन जल जाता है और कई दिन तक इस पीडा से दुखी रहता है। कालिंदी की बहन कौमुदी को दुर्जनसिंह इसी भगदड मे उठा ले जाता है और चन्द्रविलास के यहां पहुँचा देता है। बाद मे शूरसेन की सहमति से चन्द्रविलास और कौमुदी का विवाह हो जाता है।

कालिंदी मोहन के शोक मे बीमार होकर अत मे मृत्यु का ग्रास बन जाती है। उसकी मृत्यु के अनन्तर शूरसेन रूपसेन तथा प्रमोदिनी (सन्यासिनी) रूपवती के साथ विवाह करने का अत्यधिक आग्रह करते है किन्तु वह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ रहता है और अन्तिम क्षण तक विवाह नहीं करता।

विशेषताएं

नाटक मे प्रेम और लालसा, व्यक्ति-प्रेम तथा विश्व-प्रेम का अतर स्पष्ट किया गया है। इसमे कर्त्तव्य, सेवा, उदारता, दयालुता, त्याग आदि भावनाओ का सुन्दर चित्रण हुआ है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी नाटक उत्तम है। इसमे मोहन और कालिदी के चरित्र अत्यन्त ऊँचाई लिए प्रतीत होते है। मोहन को कर्त्तव्यपरायण, जनसेवी, ईमानदार, उदार, एकनिष्ठ प्रेमी तथा त्यागी पुरुष के रूप मे चित्रित किया गया है। कालिदी के चरित्र मे भी इन्ही भावनाओ का विकास देखा जा सकता है। चन्द्रविलास का चरित्र अत्यन्त घृणित है। शूरसेन के चरित्र मे अहमन्यता तथा रूपसेन के चरित्र मे गुणग्राहकता एव त्याग भावना का विकास हुआ है। प्रमोदिनी का चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल है, वह देवी तुल्य प्रतीत होती है।

कथोपकथन छोटे-छोटे है, पात्रो की भाषा साहित्यिक होते हुए भी उसमे प्रवाह विद्यमान है। सूक्तियो[2] का प्रयोग भी हुआ है जिससे सवादो मे मार्मिकता आ गई है। लम्बे-लम्बे स्वगत कथनो का सर्वथा अभाव है। भाषा प्राजल है, अनेक स्थलो पर मुहावरो[2] के समावेश से वह काफी सजीव प्रतीत होती है। कही-कही आलकारिक भाषा का प्रयोग भी है जिससे इसमे चमत्कार आ गया है। आलकारिक भाषा का एक नमूना देखिए—

"उनका प्रेम सूर्य के उस प्रकाश के सदृश है जो पहले कालिदी देवी रूपी प्राची के प्रकाशित करने मे ही अनुरक्त था, पर शनै शनै सभी दिशाओ पर फैल गया, पर मेरा प्रेम अभी भी कमलिनी के प्रेम के सदृश है जो केवल कमलिनी नायक से ही प्रफुल्लित हो सकती है।"[3]

कथानक मे पर्याप्त नाटकीयता न होते हुए भी वह रोचक है। कालिन्दी और रूपवती के प्रेम चित्रण के कारण कथा काफी सरस बन गई है। वस्तु विधान स्वच्छ है तथा नाटक का रगमच पर अभिनय भी सफलतापूर्वक हो सकता है।

प्रकाश—इसका रचनाकाल 1930 तथा प्रकाशन काल 1935 है। सन् 1958 मे इसका द्वितीय सस्करण निकला है। इसमे कुल तीन अक, चौबीस दृश्य तथा प्रारभ मे उपक्रम एव अत मे उपसहार है।

कथानक

प्रकाश अपनी वृद्धा मा के साथ गाव से नगर मे आता है। यहा उसका सम्पर्क 'हिन्दुस्थान' पत्र के सम्पादक कन्हैयालाल वर्मा से होता है। एक दिन वह

1 विश्व-प्रेम, द्वि० स०, पृ० 9, 10, 18, 50, 114, 130।

2 वही, पृ० 4, 43, 48, 54, 94, 97, 118।

3 वही, पृ० 127-128।

मिस्टर वर्मा के साथ गवर्नर के सम्मान मे दिये जाने वाले राजा अजय सिंह के प्रीतिभोज मे सम्मिलित होता है। वहाँ धनिको और निर्धनो के लिए भोज की अलग अलग व्यवस्था रहती है। प्रकाश को निर्धन वर्ग और कन्हैया लाल को धनिक वर्ग वाले भोज मे भेजा जाता है। प्रकाश गवर्नर के समक्ष ही इस मनोवृत्ति का विरोध करता है और इसके सम्बन्ध मे एक सारगर्भित भाषण देता है। इस भाषण के बाद प्रकाश तथा निर्धन वर्ग के अधिकाश सदस्य विरोध स्वरूप बाहर चले जाते है और सारे भोज का मजा किरकिरा हो जाता है। इस घटना से लोगो का ध्यान प्रकाश की ओर आकर्षित हो जाता है और वह अनायास ही उनका नेता बन जाता है। उसके नेतृत्व मे 'सत्य-समाज' का सगठन होता है जिसका मूल उद्देश्य समाज के सामने सत्यता को प्रकट करना है।

'सत्य-समाज' का कार्यक्षेत्र केवल नगर तक ही सीमित नही रहता अपितु यह गावो मे भी काम करने के लिए आगे बढता है। इस समाज द्वारा राजा अजय-सिंह का गाव ग्रामीण कार्यक्षेत्र के लिए केन्द्र बनाया जाता है।

यह समाज कौसिल सदस्य दामोदरदास गुप्ता एव मिनिस्टर धनपाल की मिलीभगत मे नहर निकाल कर रुपये खाने की योजना का डटकर विरोध करता है, परिणामस्वरूप उनकी यह योजना सफल नही हो पाती। दामोदरदास गुप्ता प्रति-शोध लेने के उद्देश्य से वकील नेस्ट फील्ड द्वारा राजा अजयसिंह पर दबाव डाल कर यह अर्जी दिलवा देता है कि प्रकाश उसके गाव मे बलवे की तैयारी कर रहा है। राजा अजय सिंह की अर्जी के आधार पर प्रकाश गिरफ्तार होता है और जिस समय पुलिस उसे गिरफ्तार करके ले जा रही होती है, राजा अजयसिंह को सूचना मिलती है कि प्रकाश उनकी परित्यक्ता पत्नी इन्दु का पुत्र है। नाटक का अत नाटकीय है।

मुख्य कथानक के अतिरिक्त मनोरमा का प्रकाश के प्रति एकनिष्ठ प्रेम, तारा का उज्ज्वल मातृत्व, कल्याणी का भारतीय नारी का आदर्श, कौसिल के सदस्यो एव मत्रियो का षड्यत्र, राजाओ का वाह्याडवर, वकीली के पतित हथकडे आदि का वर्णन भी नाटक मे हुआ है। उपक्रम मे मिट्टी के चमकीले पालिशदार बर्तनो की दूकान मे साड के घुस आने और उपसहार मे उसके बाधे जाने के दृश्य की झाकी दिखाकर नाट्यकार ने प्रतीक योजना (Symbolism) का भी अच्छा उपयोग किया है।

विशेषताएँ

प्रस्तुत नाटक मे ऐतिहासिकता का बधन न रहने के कारण नाटककार को अपनी उन्मुक्त कल्पना के उपयोग का अवसर मिला है और कल्पना की रगीन तूलिका से उसने जो चित्र प्रस्तुत किया है वह रमणीय है। कथानक रोचक है और प्रारभ से अत तक पाठक की जिज्ञासा बनी रहती है, अत तो पर्याप्त नाटकीयता से युक्त है।

इस नाटक के पात्र अपनी व्यक्तिगत विशेषताओ के साथ अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व भी करते है। राजा अजयसिंह टूटते हुए जमीदार वर्ग, दामोदरदास गुप्ता सामन्तशाही पूजीवादी वर्ग, धनपाल स्वार्थलिप्त मत्रीवर्ग, नेस्ट फील्ड वकील वर्ग तथा कन्हैयालाल वर्मा पत्रकार वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। नारी पात्रो मे कल्याणी भारतीय आदर्श नारी वर्ग, रुक्मिणी, पाश्चात्य शिक्षा एव सस्कृति से प्रभावित आधुनिक तितली वर्ग तथा मनोरमा गाधीवाद के अनुयायी स्त्री समुदाय का प्रतिनिधित्व करती है। भगवान दास के रूप मे ठेठ मारवाडी समाज और लक्ष्मी के रूप मे गोरखपुर की पुरविनी नारी वर्ग के चित्र प्रस्तुत किये गये है। सबसे सशक्त चरित्र प्रकाश का है। अपनी व्यक्तिगत विशेषताओ, मूलत अहिंसावादी क्रान्तिकारिणी प्रवृत्ति के कारण वह शीघ्र ही न्यायप्रिय समाज का नेता बन जाता है और भ्रष्ट समाज की आखो मे काटे की भाति खटकने लगता है। वह प्रत्येक अनुचित कार्य का विरोध करता है, अपने इस विरोध मार्ग मे पडने वाले उच्च से उच्च पदासीन व्यक्तियो को भी नही छोडता, इसीलिए मिनिस्टर धनपाल की नहर-योजना के षड्यन्त्र का सार्वजनिक सभा मे भडा फोड करके वह उनका कोपभाजन बनना स्वीकार कर लेता है। सच्चाई के मार्ग मे आने वाले सभी सकटो को वह सहर्ष झेलने के लिए प्रस्तुत दिखाई पडता है और इस रूप मे वह गाँधीवाद का सच्चा प्रतिनिधि प्रतीत होता है।

नाटक के कथोपकथन स्वाभाविक एव सजीव है। इसके सवादो की भाषा साहित्यिक न होकर आम वोलचाल की भाषा होने के कारण अधिक रमणीय प्रतीत होती है। नाटककार ने सभी पात्रो के कथोपकथनो मे समान भाषा का प्रयोग न करके उनके मानसिक स्तर और प्रादेशिकता के अनुरूप भाषा के विभिन्न स्वरूपो का प्रयोग किया है जिससे कथोपकथन अधिक आकर्षक बन गये है। दामोदर दास गुप्ता तथा धनपाल के कथोपकथनो मे अग्रेजी शब्दो की भरमार है, शहीद बख्श उर्दू मिश्रित हिन्दी का प्रयोग करता है, प्रकाश के सवादो मे शुद्ध हिन्दी का रूप मिलता है, लाला भगवानदास तुतलाते हुए मारवाडी भाषा मे बोलते है तो उनकी पत्नी लक्ष्मी ग्रामीण अवधी मे ही बात करती है। कथोपकथन सम्बन्धी एक नमूना देखिए—

लक्ष्मी—नासि होइ जाय तुम्हरी ढोंगी पूजा केरि। यह बिटेवा अठारह वरस केरि होइ गै है, मुन्दा बियाहे क्यार अबै तक ठीकु नहिन। लरिका औरु पुतऊ किरिस्तान अस घूमति है।

भगवानदास—तुम दुनिया तो समझती हो नही, दबरदस्ती लाल-लाल पीली-पीली आये लिए घूमती हो।[1]

---

1 प्रकाश, 1958 स०, पृ० 72।

कथोपकथनों में सूक्तियों के प्रयोग से अधिक मार्मिकता आ गई है। स्वगत कथनों का नितान्त अभाव है लेकिन कहीं-कहीं पात्रों ने (विशेषत प्रकाश में) भाषण की प्रवृत्ति अवश्य है।

क्लिष्ट शब्दों से बोझिल न होने के कारण भाषा में सहज प्रवाहमयता है और ग्रामीण शब्दों के प्रयोग ने उसकी सुन्दरता में चार चाद लग गये हैं। भाषा में मुहावरों[1] का पर्याप्त प्रयोग होने से वह सजीव प्रतीत होती है। सामान्यत बोल चाल की भाषा का प्रयोग किया गया है लेकिन कहीं-कहीं आलकारिक भाषा का प्रयोग भी हुआ है यथा—

पुत्र की कर्त्तव्यपरायणता माता के हृदय सागर में भी हर्ष की हिलोर उठाए बिना नहीं रह सकती।[2]

प्रकाश के माध्यम से नाटककार ने अपना जीवन दर्शन—वेदान्त का अभेद-वाद—भी नाटक में यथा अवसर अभिव्यक्त किया है। रगमच की दृष्टि से भी नाटक की सफलता असदिग्ध है।

'प्रकाश को यदि सेठ जी का सर्वश्रेष्ठ सामाजिक नाटक कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

सिद्धान्त स्वातन्त्र्य—सेठ जी की तीसरी जेल-यात्रा (सन् 1932) के समय नागपुर जेल में रचित 'सिद्धान्त स्वातन्त्र्य' दो अको का लघु नाटक है। इसमें दृश्य-योजना अलग से नहीं है यत अक ही दृश्य का काम भी करते हैं।

कथानक

राजा चतुर्भुज दास का पुत्र त्रिभुवनदास सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य का पुजारी है। अपनी सिद्धान्तप्रियता के कारण वह अपने पिता से लडता है और पिता की इच्छा के विरुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेता है। उसका पिता स्नेहवश उसके आगे झुक जाता है और अपने व्यक्तिगत सिद्धान्तों का पुत्र के सिद्धान्तों की वेदी पर बलिदान कर देता है।

25 वर्ष बाद त्रिभुवनदास के पूर्व सिद्धान्त परिवर्तित हो जाते हैं। वह सत्याग्रह और असहयोग आन्दोलनों की असफलता का उद्घोष कर सरकार का पक्का समर्थक बन जाता है। वह कौसिल का सदस्य चुना जाता है और वहाँ जाकर मिनिस्टर बनता है। उसे राजभक्ति के कारण 'सर' की उपाधि भी मिलती है। उसका पुत्र मनोहरदास राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेता है। एक स्थान पर पिकेटिंग

---

1 प्रकाश, 1958 स०, पृ० 79, 133, 134, 170, 172, 178।
2 वही, पृ० 117।

कथानक

शक्तिपाल, श्रीनिवास तथा दीनानाथ जनसेवा के अभिलाषी है। दीनानाथ शरीर द्वारा स्वार्थ त्याग कर, शक्तिपाल अपने धन-वैभव को यथावत् बनाये रख राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर तथा श्रीनिवास धन के द्वारा राष्ट्रसेवा का निश्चय करते हैं। शक्तिपाल चुनाव लडकर मन्त्री बन जाता है और दीनानाथ अपनी पूर्व योजना के अनुसार तन-मन से सेवा कार्य मे जुट जाता है। श्रीनिवास भी शक्तिपाल के साथ ही चुनाव लडकर कौसिल का सदस्य बन जाता है। वह अपने तथा शक्तिपाल के चुनाव मे विजय के लिए मतदाताओ पर साम, दाम, दड, भेद नीति का खुलकर प्रयोग करता है और अपनी इस योजना की सूचना शक्तिपाल तक को नही देता। शक्तिपाल यही समझता है कि वह चुनाव मे समाजवादी विचारधारा का प्रबल समर्थक होने के कारण चुना गया है। कुछ समय बाद एक दिन समाचार पत्र मे श्रीनिवास द्वारा चुनाव मे भ्रष्टाचार के विरुद्ध लेख छपता है। भ्रमवश इस लेख का लेखक दीनानाथ को मानकर श्रीनिवास उससे प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से उस पर सार्वजनिक धन के गबन का झूठा मुकदमा चलाता है। मुकदमे मे उसकी (दीनानाथ) जीत होती है लेकिन जनता मे उसकी अपकीर्ति फैल जाती है। इस अपकीर्ति मे खिन्न होकर वह सेवा-मार्ग को छोडकर प्रोफेसरी के लिए प्रार्थनापत्र भेज देता है लेकिन वाद मे इसे एक क्षणिक निर्बलता मानकर वह प्रोफेसर का पद स्वीकार नही करता और अपना सेवा-कार्य जारी रखता है। इस सेवा-कार्य मे प्रारम्भ मे तो नही, लेकिन वाद मे उसकी पत्नी एव बच्चो का पूर्ण सहयोग उसे प्राप्त होता है।

शक्तिपाल की अग्रेज पत्नी मार्गरेट का श्रीनिवास से अवैध सम्बन्ध हो जाता है। दूसरी वार शक्तिपाल और उसका दल चुनाव मे पराजित होता है। एक दिन श्रीनिवास तथा मार्गरेट को एक कमरे मे बातें करते देखकर शक्तिपाल उन्हे मारने के लिए अपनी पिस्तौल से गोली चलाता है, अचानक दीनानाथ उसकी रक्षा के लिए वीच मे आ जाता है और गोली उसकी जाँघ मे लग जाती है। वह शक्तिपाल से श्रीनिवास को क्षमा कर देने का अनुरोध करता है। शक्तिपाल उसके कथनानुसार श्रीनिवास को माफ कर देता है और स्वय दीनानाथ का अनुयायी बन जाता है।

विशेषताएँ

प्रस्तुत नाटक मे शक्तिपाल समाजवाद, श्रीनिवास पूँजीवाद तथा दीनानाथ गाधीवाद के प्रबल समर्थक है। दीनानाथ की विजय दिखला कर नाट्यकार ने गाँधीवादी विचारधारा की सफलता घोषित की है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से दीनानाथ का चरित्र बहुत ही उच्च है। उसे गाधी का प्रतिरूप माना जा सकता है, वह स्वार्थपूर्ण कृति को तो पाप समझता ही है लेकिन स्वार्थमय विचार भी उसके लिए पाप है। उसका आदर्श, सच्चे दिल से,

स्वार्थ वृत्ति को त्याग कर, सब की समान भाव से सेवा करना है। उसके लिए मित्र-शत्रु सभी बराबर है, इसीलिए वह अपने शत्रु श्रीनिवास दास को भी क्षमा करने के लिए शक्तिपाल से कहता है। दीनानाथ के चरित्र मे अधिक से अधिक गुणो के समावेश का प्रयास परिलक्षित होता है। उसके सम्बन्ध मे श्रीनिवास की पत्नी सरला के कथन द्रष्टव्य है—

"मै तो उन्हे मनुष्य न मानकर देवता मानती हू। ज्ञान के वे केन्द्र और कर्म के वे क्षेत्र है। ज्ञान का सच्चा उपार्जन और कर्म का ठीक दिशा मे अनुष्ठान ही मनुष्य को देवता बना देता है, क्योकि ज्ञान का लक्ष्य सत्य और कर्म की नीति है। दोनो का अन्तिम परिणाम परमार्थ की प्राप्ति है, जो सेवा से ही होती है। वे इसी मे सलग्न है।"[1]

वास्तविकता यह है कि दीनानाथ मनुष्य की अपेक्षा देवता के अधिक निकट लगता है। हम उसकी पूजा भले ही कर कर ले लेकिन उसके साथ हमारा तादात्म्य नही हो पाता।

शक्तिपाल का चरित्र-चित्रण यथार्थ प्रतीत होता है। उसमे गुण-दोष दोनो है। वह ईमानदार है, मन्त्री बन जाने के बाद भी रिश्वत नही लेता। यही नहीं जब उसको यह ज्ञात होता है कि उसके चुनाव मे भ्रष्ट तरीके अपनाये गए है और तब वह विजयी हुआ है, तो उसे दु ख होता है। उसमे आत्मसम्मान की भावना भी है, इसी कारण अपनी पत्नी मार्गरेट से अवैध सम्बन्ध रखने वाले मित्र श्रीनिवास पर वह गोली छोड देता है। वह समाजवादी विचारधारा का समर्थक होते हुए भी तीन हजार रुपये वेतन मे से एक पैसा भी निर्धन लोगो पर व्यय नही करता, दूसरी बार उसके पराजित होने का कारण मुख्यत यही है। शक्तिपाल का चरित्र स्वाभाविक है। श्रीनिवास का चरित्र-चित्रण विलासप्रिय, व्यभिचारी, शराबी, लम्पट के रूप मे किया गया है। सरला गाँधीवादी विचारधारा की अनुगामिनी है इसीलिए वह दीनानाथ का बहुत आदर करती है। दीनानाथ की पत्नी कमला का पहले धन के प्रति आकर्षण होता है लेकिन बाद मे वह भी सच्चे हृदय से पति की अनुगामिनी बन जाती है। मार्गरेट के चरित्र मे नाटककार ने "पाश्चात्य चरित्र की उच्छृ खलता, अस्थिरता, स्वार्थ और भोगलिप्सा का अच्छा परिचय दिया है।"[2]

नाटक के कथोपकथन अधिकाशत बोलचाल की भाषा मे होने के कारण स्वाभाविक एव सजीव हैं। सूक्तियो का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा मे होने के कारण कथोपकथन अधिक मार्मिक बन गये है।

---

1 सेवा-पथ, द्वि० स० 1950, पृ० 74।

2 हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, पृ० 260।

सभी पात्रो की भाषा एकसी नही है। पात्रो के मानसिक स्तर, उनकी प्रादेशिकता के अनुसार भाषा के भिन्न-भिन्न रूपो का प्रयोग किया गया है। अधिकाशत बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग है लेकिन कही-कही आलकारिक एव भावपूर्ण भाषा भी प्रयुक्त हुई है। मुहावरो एव लोकोक्तियो के प्रचुर प्रयोग से भाषा सजीव बन गई है।

सेठजी के अधिकाश नाटको मे हास्य का अभाव मिलता है, परन्तु इस नाटक मे हास्य की अवतारणा पर्याप्त मात्रा मे है। शिष्ट हास्य का एक नमूना देखिये—

शक्तिपाल—(मारवाडी सेठ से) बहुत दिनो बाद आपका नियाज हासिल हुआ।

सेठ—पियाज तो म्हे लोग खावा ई कोनी मिनिश्टर शाब, आपने यूई कदेई श्यू बाग आई होगी।[1]

नाटक मे कार्य-व्यापार का अभाव है। इसमे अत्यन्त तर्कपूर्ण शैली मे सिद्धात प्रतिपादन किया गया है। शक्तिपाल समाजवाद, श्रीनिवास पूँजीवाद तथा दीनानाथ गाँधीवाद के पक्ष मे उसे श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए एक से एक अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत करते है और यह सिद्धान्त विवेचन काफी मनोरम एव बुद्धिग्राह्य भी है लेकिन इसके कारण कथा रस को भी पर्याप्त क्षति पहुँची है। वास्तव मे इसमे मस्तिष्क के लिए तो प्रचुर सामग्री है किन्तु हृदय को रमाने वाली सामग्री का सर्वथा अभाव तो नही लेकिन वह पर्याप्त मात्रा मे नही है।

इस नाटक द्वारा नाटककार ने अपना गाँधीवादी जीवन दर्शन अपने प्रमुख पात्र दीनानाथ एव सरला के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

कार्य-व्यापार की कमी होने पर भी वादविवाद की श्रेष्ठता के कारण नाटक का रगमच पर सफल अभिनय सम्भव है।

पाकिस्तान—प्रस्तुत नाटक का प्रकाशन काल सन् 1946 है। अभी तक इस का दूसरा सस्करण नही निकला है। इसमे कुल तीन अक, चौदह दृश्य, प्रारम्भ मे उपक्रम एव अन्त मे उपसहार है। यह एक राजनीतिक समस्या—पाकिस्तान का निर्माण, पर लिखा गया नितान्त काल्पनिक नाटक है।

कथानक

नाटक का प्रारम्भ जहाआरा और शान्तिप्रिय के प्रेमपूर्ण वार्तालाप से होता है। इन दोनो का प्रेम सम्बन्ध नितान्त शुद्ध भाई-बहन का प्रेम है। शान्तिप्रिय की माँ की मृत्यु के अनन्तर उसका पालन-पोषण जहाआरा द्वारा ही हुआ है, अत वह उसको बडी बहन के समान मानता है और वह भी उसे छोटा भाई समझती है।

---

1 सेवा-पथ, पृ० 57।

क्लब मे पीरबख्श, दुर्गा, अमरनाथ, शातिप्रिय, जहाँआरा, तथा कुछ अन्य सदस्यो के बीच पाकिस्तान का वाद-विवाद छिड जाता है और यह प्रारम्भिक वाद-विवाद छोटे-मोटे झगडे का रूप धारण कर लेता है। पीरबख्श पाकिस्तान-निर्माण का खुलकर समर्थन करता है और दुर्गा अखड भारत मे हिन्दू राज्य की पूर्ण समर्थिका है। यहाँ हिन्दू-मुस्लिम दो वर्ग बन जाते है और पारस्परिक सघर्ष बढता जाता है। जहाआरा पीरबख्श के साथ मुस्लिम वर्ग मे और शान्तिप्रिय दुर्गा के साथ हिन्दू वर्ग मे सम्मिलित हो जाते है। राष्ट्रवादी काग्रेसी अमरनाथ पाकिस्तान न बनने पाये, इसके लिए जी जान से प्रयत्न करता है, लेकिन उसे सफलता नही मिलती और बहुमत के आधार पर पाकिस्तान तथा हिन्दुस्तान दो राष्ट्र बन जाते है।

पाकिस्तान का प्रधानमन्त्री पीरबख्श तथा हिन्दुस्तान के प्रधानमन्त्री शाति-प्रिय बनते हैं। जहाआरा को पाकिस्तान के मन्त्रिमण्डल मे तथा दुर्गा को हिन्दुस्तान के मन्त्रिमण्डल मे सम्मिलित किया जाता है। जहाआरा पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री की धर्मान्धता, सकीर्णता से तग आकर मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र देकर शान्तिप्रिय के पास दिल्ली चली आती है।

पाकिस्तान बन जाने के बाद भी अल्पसख्यक जातियो की समस्याएँ (जिसके कारण ही मूलत पाकिस्तान बना था) वैसी बनी रहती है। दोनो देशो के अल्प-सख्यको मे असतोष तथा नेताओ के प्रति अविश्वास बना ही रहता है। अमरनाथ तथा महफूज खा दोनो देशो मे एकीकरण के लिए प्रयास करते है लेकिन नेताओ की स्वार्थपरता के कारण उन्हे सफलता नही मिलती। अत मे कॉग्रेस की एक राष्ट्र की नीति के फलस्वरूप दोनो देशो के मन्त्रियो को त्यागपत्र देना पडता है। शातिप्रिय तथा जहाआरा पुन इन दो राष्ट्रो के एकीकरण के लिए अपने प्रयास मे जुट जाते है।

विशेषताएँ

पाकिस्तान के बनने से पूर्व भी नाटककार ने सन् 1946 मे अपने नाटक 'पाकिस्तान' मे भारत-विभाजन के विषय मे जो भविष्यवाणी की थी, वह कालातर मे बिल्कुल सच निकली। इस नाटक का निर्माण देश की तत्कालीन प्रतिपल परि-वर्तित गतिविधियो का सूक्ष्म निरीक्षण करने के उपरात ही किया गया होगा, यदि ऐसा न होता तो भविष्यवाणी की सत्यता भी न हो पाती।

जहाआरा और शातिप्रिय के चरित्रो का उद्घाटन नाटककार ने बड़े कौशल से किया है। वे दोनो आजीवन भाई-बहन के सम्बन्ध का निर्वाह करते हैं। यहाँ नाटककार की हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य भावना का रूप भी प्रकट हुआ है। कुछ समय के लिए दोनो पर साम्प्रदायिकता का रग चढा ज्ञात होता है, जहाआरा मुस्लिम लीग मे सम्मिलित होकर पाकिस्तान का समर्थन करती है और शातिप्रिय दुर्गा के विचारो से

सहमत प्रतीत होता है। बाद मे दोनो का दोनो देशो के एकीकरण के लिए प्रयास उन्हे इस कोटि से बचा लेता है। दोनो के मानसिक सघर्षो का भी अच्छा चित्रण हुआ है। अमरनाथ एव महफूज खा का चरित्र-चित्रण राष्ट्रवादी नेता के रूप मे हुआ है। पीरवख्श एव दुर्गा पर साम्प्रदायिकता का रग अधिक गहराई के साथ चढा है। वे दोनो अपने-अपने मतो के कट्टर समर्थक है।

कथोपकथन की दृष्टि से नाटक को बहुत सफल नही कहा जा सकता। सवाद साहित्यिक भाषा मे होने के कारण अधिक स्वाभाविक एव सजीव नही बन पड़े। कही-कही सूक्तियो के प्रयोग से कथोपकथन मे जान आ गई है, यथा—

अमरनाथ—आशा देवी है और निराशा राक्षसी।[1]

भाषा पात्रानुकूल है। मुसलमान पात्रो की भाषा उर्दू है और हिन्दू पात्रो की शुद्ध हिन्दी। कही-कही आलकारिक भाषा का भी प्रयोग हुआ है—

"हिन्दू जाति ने स्वतन्त्रता रूपी मृग-मरीचिका के लालच मे घोर से घोर अनर्थ किया है। माता का हिमालय रूपी किरीट अब खडित हो जायेगा। माता की गगा और यमुना रूपी मेखला अब टूट जायेगी और उसके मोती बिखर जायेंगे।"[2]

नाटक की कथा सामान्यत रोचक है, कार्य-व्यापार की कमी भी नही है। पात्रो की कमी, दृश्य-योजना की सरलता आदि के कारण नाटक का रगमच पर अभिनय भी सफलतापूर्वक हो सकता है।

भूदान-यज्ञ—प्रस्तुत नाटक भूदान-यज्ञ समिति के मध्यप्रदेश के सयोजक श्री भाई नाईक, उनके साथी श्री ठाकुरदास बग तथा आचार्य विनोबा भावे के सेक्रेटरी श्री दामोदरदास मूदडा के अनुरोध पर लिखा गया है। इसका प्रथम सस्करण 1954 मे प्रकाशित हुआ। द्वितीय सस्करण का प्रकाशन काल सन् 1961 है। इसमे कुल तीन अक, बारह दृश्य (प्रत्येक अक मे चार दृश्य), आरम्भ मे उपक्रम एव अन्त मे उपसहार है।

कथानक

उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिला गोरखपुर की निर्धनता का सजीव चित्र चित्रपट पर दिखाया जाता है। तेलगाने के साम्यवादी कुछ व्यक्ति जमीन के आवश्यकता के अनुसार वितरण के लिए खूनी क्रांति की योजना बनाते है। इस गुप्त सभा मे एकत्रित सभी व्यक्ति खून से प्रतिज्ञा-पत्र भरते है। दूसरे दिन तेलगाने मे खूनी क्रान्ति प्रारम्भ हो जाती है। भूमिपतियो के परिवार के अबोध बालको को भी बडी निर्दयता से मौत के घाट उतार दिया जाता है। दो भूमिपति वहाँ की दर्दनाक स्थिति का चित्र विनोबा

1 पाकिस्तान, प्र० स० 1946, पृ० 83।

2 वही, पृ० 78।

जी के समक्ष आकर प्रस्तुत करते हैं। हृदय-परिवर्तन द्वारा भूमिदान प्राप्त करने के उद्देश्य से विनोबा जी अपने वर्धा आश्रम से पैदल तेलगाना के लिए प्रस्थान करते हैं। उनका सिद्धान्त सफल होता है और सर्वप्रथम रामचन्द्र रेड्डी 100 एकड़ जमीन का दान करता है। भूमि समस्या को हल करने के लिए इस नवीन ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करने के लिए वे पैदल यात्रा प्रारम्भ कर देते हैं। बिहार में उन्हें काफी भूमि मिल जाती है। शिक्षित वर्ग विनोबा जी के उद्देश्य की सफलता के प्रति सशंकित प्रतीत होता है, जयप्रकाश नारायण भूदान सम्बन्धी शंकाओं का निराकरण करके लोगों को भूदान के लिए उत्साहित करते हैं। भूदान की दिशा में प्रगति के चित्र जवाहरलाल नेहरू को दिखाये जाते हैं।

बिहार का एक युवक जमींदार एक लाख एकड़ जमीन देने का निश्चय करता है। भूदान की सफलता देखकर साम्यवादी नेता रुद्रदत्त विनोबा जी का शिष्य बन जाता है। अन्य उसके कुछ साथी भी यही करते हैं। भूदान की प्रशंसा बाहर फैलती है और बाहरी देशों के संवाददाता यहाँ आते हैं। इस सम्बन्ध में वे अपने-अपने देश में रिपोर्ट देते हैं। डा० राजेन्द्रप्रसाद की अध्यक्षता में विनोबा जी का सार्वजनिक अभिनंदन किया जाता है। अन्त में चित्रपट पर फिर वही प्रारम्भ का गाँव आता है लेकिन अब यहाँ सब लोग सुखी और उल्लासपूर्ण दिखाई पड़ते हैं।

विशेषताएँ

इसमें गांधी जी के हृदय-परिवर्तन के सिद्धान्त का प्रतिपादन नाटकीय शैली में किया गया है। साम्यवादी नेता रुद्रदत्त द्वारा आचार्य विनोबा के शिष्यत्व ग्रहण का प्रसंग उपस्थित कर नाटककार ने हिंसा पर अहिंसा की विजय दिखाई है। जो कार्य—जमीन का आवश्यकतानुसार वितरण—साम्यवादियों की खूनी क्रान्ति से पूरा न हो सका, वह विनोबा जी के हृदय-परिवर्तन द्वारा सम्पन्न हो गया।[1]

नाटक के पात्र आचार्य विनोबा भावे, जवाहरलाल नेहरू, राजेन्द्रप्रसाद तथा जयप्रकाश नारायण आदि हैं। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से नाटक में कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं है।

अधिकांश कथोपकथन सरल, स्वाभाविक एवं सजीव हैं। संवाद प्राय छोटे-छोटे हैं लेकिन कहीं-कहीं पात्रों (विशेषत आचार्य विनोबा भावे) द्वारा लम्बे-लम्बे भाषण भी दिलवाये गये हैं। भाषण लम्बे होने पर उनकी व्यवस्था इस प्रकार है (भाषणकर्ता की भाषणमाला के बीच एक या अनेक पात्रों का बीच-बीच में बोलते रहना—पृ० 49-56) कि वे अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होते। कथोपकथन सम्बन्धी एक नमूना प्रस्तुत है—

---

1. भूदान-यज्ञ, द्वितीय स०, पृ० 14।

एक व्यक्ति—अरे ! इह रजवा से अ ग्रेजी रजवा ही अच्छा रहा ।

खड़ा हुआ व्यक्ति—(उत्तेजित होकर) यह आप क्या कह रहे है ? स्वराज्य से अग्रेजी राज्य अच्छा ! यह तो हमे स्वप्न मे भी नही सोचना चाहिए । ' दरअसल स्वतत्रता नून, तेल, लकडी की तखडी पर नही तौली जा सकती ।[1]

नाटक मे पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है । इस सम्बन्ध मे स्वय नाट्यकार का कथन है—

श्री विनोबा जी, राजेन्द्रप्रसाद जी, जवाहरलाल जी, जयप्रकाश जी आदि के मुख से जो बाते मैंने कहलायी है उनमे इस बात का बहुत ध्यान रखना पडा है कि वे उनके विचारो और भाषा के प्रतिकूल न जावे । विनोबा जी के मु ह से जो बातें कहलायी गई है उनमे से तो अधिक ऐसी है कि जो उन्होने कही न कही अपने भाषरगो या वार्तालाप मे कही है ।[2]

विदेशी पत्रकारो की भाषा मे पर्याप्त सजीवता के दर्शन होते है । भाषा सम्वन्धी एक उदाहरण देखिए—

मार्गरेट—ह्यू मन हिस्ट्री मे कबी बी किसी मुलुक मे ऐसा बाट नेई हुआ कि माँगने से किसी को मिलियन्स आफ एकर्स लैण्ड मिले ।

स्टीवनसन—ये मुलुक ही वन्डर फुल । यहाँ फ्रीडम मिला बिना लराई । यहाँ प्रिन्सेज अपना टमाम पावर डेडिया बिना झगरा । यहा लोग मिलियन्स आफ एकर्स जमीन डे रहा है माँगने से ।[3]

भाषा मे मुहावरो के प्रयोग से अधिक रमरणीयता आ गई है । कही-कही ओजपूर्ण भाषा भी प्रयुक्त हुई है, यथा—

सारे देश मे प्रलय का ताडव होगा । नर-रक्त से भारत भूमि प्लावित हो जाएगी । आहतो के आर्तनाद से कानो के परदे फटने लगेगे ।[4]

नाटक के अधिकाँश गीत अवसरानुकूल एव स्वाभाविक है । उनसे नाटकीय सौन्दर्य मे अभिवृद्धि हुई है ।

नाटक मे कार्य-व्यापार अधिक नही है । रगमच पर इसकी सफलता के लिए नाटककार के सकेतानुसार अनेक दृश्यो का सिनेमा द्वारा दिखाया जाना आवश्यक ही नही अनिवार्य है, इसके विना नाटक प्राण-विहीन हो जायेगा ।

---

1 भूदान-यज्ञ, द्वितीय स०, पृ० 14 ।

2 वही, पृ० 8, लेखक का निवेदन ।

3 वही, पृ० 99 ।

4 वही, पृ० 32 ।

समस्या नाटक

समस्या नाटक हिन्दी-नाट्य-साहित्य की अपेक्षाकृत नवीन किन्तु महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। नाटक की यह विधा पाश्चात्य साहित्य मे लगभग एक शताब्दी पूर्व आविर्भूत हुई थी। इसके मूल मे सामाजिक नव-जागरण की चेतना विद्यमान थी जो साहित्य की प्रगतिवादी विचारधारा से शक्ति ग्रहण कर रही थी। वास्तव मे 19-वी शती का उत्तरार्द्ध योरप मे नवजागरण का काल था। इस युग मे बौद्धिक दृष्टिकोण का विकास हो रहा था जिसने परम्परागत जीवन मूल्यो को नए सिरे से परखने का आह्वान किया। लोग समझने लगे थे कि प्राचीन जीवनादर्श वर्तमान युगीन जीवन को सचालित करने मे समर्थ नही हो सकते। अत उपयुक्त जीवन मूल्यो की खोज करने के लिए किसी तर्क-सगत वैज्ञानिक आधार की माँग उभर रही थी। लोगो मे सामाजिक रूढियो के प्रति अनास्था का भाव प्रबल होता जा रहा था। वे चिरन्तन आदर्शो के प्रति अन्ध श्रद्धा का उपहास करने लगे थे। युगजीवन के प्रति यही यथार्थवादी एव बौद्धिक दृष्टिकोण पाश्चात्य समस्या नाटक का उत्स था।[1]

हिन्दी समस्या नाटक को पाश्चात्य नाट्य-साहित्य की देन कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी। हिन्दी नाटको मे यथार्थवादी चेतना का विकास मूलत. पश्चिम के यथार्थवादी नाट्यकारो—इब्सन तथा वर्नार्डशा—के प्रभाव के कारण हुआ है। समस्या नाटक युगीन चेतना से युक्त होने के कारण आज इतना अधिक लोकप्रिय हो गया है। इसी लोकप्रियता पर विचार करते हुए डा० नगेन्द्र लिखते है—

आज समस्या नाटक एक साथ क्यो लोकप्रिय हो गया ? वास्तव मे इस प्रश्न का सम्बन्ध जहा हमारे राजनीतिक और सामाजिक जीवन की बढती हुई समस्याओ से है, वहाँ पिछले युग की प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्ति—पलायन के विरुद्ध प्रतिक्रिया से भी कम नही है। एक ओर यदि हमारे साहित्य मे वर्तमान सघर्ष से घबराकर कल्पनालोक अथवा स्वर्ण-अतीत मे शरण की खोज हो रही थी, तो दूसरी ओर कतिपय लेखको के मन मे यह भावना भी दृढ होने लग गयी थी कि आज का जीवन न तो सुधार-युग का स्थूल आदर्शवाद चाहता है और न कल्पना-लोक मे पलायन से ही काम चल सकता है। भावुकता जीवन की विषमताओ को भुलाने मे सहायक हो सकती है पर भुलावा कब तक चलेगा, अब तो आवश्यकता है विषमताओ के मूल कारणो पर छानबीन करने, और परिस्थिति से सामजस्य स्थापित करते हुए उनके सुलझाने की। आज यही भावना हमारे सामने अधिक प्रकट और सशक्त रूप मे आई है। हमारे वैयक्तिक, सामाजिक एव राजनीतिक जीवन मे ग्रन्थियाँ पडी हुई है—जिनको खोलना आज हमारा नित्य कर्म है। अत यह उचित है कि हमारा आज का साहित्य इन्ही ग्रन्थियो को सुलझाने मे अधिक व्यस्त रहे—इस प्रकार हमारा दृष्टि-

1 नाट्य-समीक्षा—डा० दशरथ ओझा, द्वि० स०, पृ० 109।

कोण बहुत कुछ बौद्धिक एव आलोचनात्मक हो गया है और इस बढती हुई बौद्धिकता और समस्या नाटको की लोकप्रियता का घनिष्ठ सम्बन्ध है।[1]

सेठ गोविन्ददास के पौराणिक, ऐतिहासिक एव सामाजिक नाटको मे भी एक या अनेक समस्याओ का समावेश रहता है, परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नही है कि इन समस्याओ के कारण उनके सभी पौराणिक, ऐतिहासिक एव सामाजिक नाटक समस्या नाटक बन जाते है। समस्या नाटक के लिए मात्र समस्याओ का चित्रण ही आवश्यक नही है अपितु इसकी अपनी एक अलग विधा है जिसके अन्तर्गत समस्या-चित्रण भी एक अ ग है। समस्या नाटको के लिए यथार्थवादी चेतना, रोमॉस एव भावुकता का बहिष्कार तथा मनोविश्लेषणात्मक शैली आवश्यक ही नही अनिवार्य है।

समस्या नाटक की विधा को ध्यान मे रखकर सेठ जी ने कुछ नाटको का निर्माण किया है। प्रकाशन काल के अनुसार सेठ जी के समस्या नाटको का क्रम इस प्रकार है—

1	दलित कुसुम	प्र० स०	सवत् 1999 (सन् 1942)
2	पतित सुमन	,, ,,	सवत् 1999 (सन् 1942)
3	त्याग या ग्रहण	,, ,,	सन् 1943
4	हिसा या अहिसा	,, ,,	सन् 1943
5	सतोष कहाँ ?	,, ,,	सवत् 2002 (सन् 1945)
6	दु ख क्यो ?	,, ,,	सन् 1946
7	प्रेम या पाप	,, ,,	सन् 1946
8	गरीबी या अमीरी	,, ,,	सन् 1947, द्वि० स० 1953
9	महत्त्व किसे ?	,, ,,	सन् 1947
10	बडा पापी कौन ?	,, ,,	सन् 1948

सेठ जी के समस्या नाटकों का विवेचन

दलित कुसुम—यह पाँच अको का एक समस्या नाटक है, जिसमे हिन्दू-समाज मे बाल-विधवाओ की दयनीय स्थिति का यथार्थ चित्र अकित हुआ है। नाटक की मूल भावना प्रेमचन्द के 'सेवा सदन' से साम्य रखती है।

कथानक

कुसुम एक बाल विधवा है। उसकी माँ पुत्री के वैधव्य की वेदना को असह्य जानकर उसका पुनर्विवाह उसके बचपन के साथी मदन से करने की इच्छुक है।

1. आधुनिक हिन्दी नाटक—डा० नगेन्द्र, नवम स०, पृ० 50।

मदन भी कुसुम से विवाह करने को राजी है, इसी बीच उसे पच्चीस हजार के दहेज के साथ लखनऊ से शादी का नया प्रस्ताव प्राप्त होता है तथा इस विवाह से उसे अतुल वैभव की प्राप्ति की भी आशा होती है। धन के लालच मे पडकर वह कुसुम से विवाह न करने का कोई बहाना खोजने लगता है। एक दिन वह देव-दर्शन करने जाती है और मन्दिर का महन्त उस पर बलात्कार करना चाहता है। यकायक उसी समय मदन भी वहाँ पहुँच जाता है। उसे कुसुम से शादी न करने का अच्छा बहाना मिल जाता है और वह उसे दुश्चरित्रा घोषित कर स्वय लखनऊ चला जाता है।

मदन के साथ उसका विवाह-सम्बन्ध टूट जाने और दुश्चरित्रा घोषित होने के बाद सारे समाज मे उसकी अपकीर्ति फैल जाती है। उसे समाज मे कही स्थान नही मिलता। जहाँ वह जाती है वही लोग उसे अपनी वासना-पूर्ति का साधन बनाना चाहते है। उसका रक्षक कही कोई नही है, लेकिन भक्षक सर्वत्र दिखाई देते है। अन्त मे वह एक कुटनी के चक्कर मे पडकर विधवाश्रम के मैनेजर रसिक लाल के यहाँ पहुँच जाती है और व्यभिचारी रसिक द्वारा जबरदस्ती उसका शील-भग किया जाता है। इस घटना के बाद उसे इतना दुःख होता है कि वह आत्महत्या के लिए गगा मे कूद पडती है, उसे बचा लिया जाता है और उस पर आत्म-हत्या के अभियोग मे मुकदमा चलता है। अदालत मे मजिस्ट्रेट के सामने बयान देते-देते भावावेश मे उसका हार्ट फेल हो जाता है और यही नाटक समाप्त हो जाता है।

विशेषताएँ—प्रस्तुत नाटक मे एक अनाथ विधवा के माध्यम से समाज मे विधवाओ की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। हिन्दू समाज मे अनाश्रिती बाल-विधवाओ की दशा का मार्मिक चित्र अकित किया गया है जो अपने आप मे काफी करुणामय है। कुसुम की वैधव्य-यातना एव उसके द्वारा अदालत मे कहे गए ये शब्द— मैं 'महन्त वाली', 'वैश्या', 'रडी', न जाने किस-किस दिव्य नाम से पुकारी जाने लगी। ऐसी पापिनी किसी घर मे या किसी सार्वजनिक सस्था मे कैसे रह सकती है? फिर तो मुझ से छल हुआ। मुझे दिन दहाडे धोखा दिया गया और अन्त मे ..... अन्त मे मजिस्ट्रेट साहब, मेरा सर्वस्व भी बल पूर्वक मुझ से . हर लिया गया।"[1] आज भी सहृदय पाठको को झकझोर देते है। प्रसिद्ध आलोचक शान्तिप्रिय द्विवेदी का, नाटक के विषय मे, निम्न कथन नितान्त सत्य है—

"हिन्दू विधवा के लिए न तो समाज मे स्थान है, न धर्म मे, न कानून मे, उसके लिए सर्वत्र पथ रूँधा हुआ है। उसके जीवन-मार्ग की कठिनाइयो का इस नाटक मे जो वस्तुचित्र दिया गया है वह हमारे सार्वजनिक जगत् की खाइयो का बडी स्पष्टता से परिचय देता है। ज्ञात होता है कि इतना बडा समाज चारो ओर वन्य

---

1 दलित कुसुम, पृ० 113।

पशुग्रो से भरा हुग्रा है। ऐसे समाज मे 'ऐक्सेप्शन्स' भी है, किन्तु उनका वश नही चल पाता।"[1]

समस्या नाटक की दृष्टि से 'दलित कुसुम' एक सुन्दर रचना है।

पतित कुसुम—प्रस्तुत नाटक मे जिस समस्या को उठाया गया है उसका मूलाधार व्यक्ति की नैतिक चेतना है। इसमे यथार्थ के अत्यन्त सन्निकट पहुंच कर नाट्यकार ने अपनी आदर्शवादिता के कारण नैतिक मर्यादाग्रो की रक्षा करनी चाही है। नाटक की कथा सक्षेप मे यह है—

सुमन (महामाया की पालित लडकी) ग्रौर विश्वनाथ सिह एक ही पिता की सतान है। दोनो के पिता एक हैं लेकिन माताएँ भिन्न-भिन्न है। सुमन विश्वनाथ सिह के यहाँ ही रहती है। दोनो इस सम्बन्ध मे सर्वथा अनभिज्ञ होने के कारण एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट होते है ग्रौर उनकी प्रणय लीला प्रारम्भ हो जाती है। जब दोनो विवाह के योग्य हो जाते है, तो एक दिन महामाया (विश्वनाथ की मा) सुमन को उसके जन्म का वास्तविक रहस्य बता देती है कि वह ग्रौर विश्वनाथ एक ही पिता की सतान होने के कारण बहन-भाई है। वह दोनो से प्रतिज्ञा भी करा लेती है कि भविष्य मे वे एक दूसरे से कभी न मिलेगे।

सुमन की शादी एक समृद्ध किसान विक्रमसिह से हो जाती है जो विश्वनाथ-सिह की जमीदारी के अन्दर ही रह रहा होता है। विश्वनाथ सिह इस बात से अनभिज्ञ होता है कि सुमन उसी की जमीदारी मे ब्याही है। एक दिन अचानक विश्वनाथ जमीदार एसोसियेशन के सभापति के रूप मे विक्रमसिह के गाँव मे पहुच जाता है। वह विक्रमसिह की प्रार्थना पर उसके घर जाता है ग्रौर वहाँ सुमन से उसकी भेट हो जाती है। दोनो का प्रारम्भिक प्रणय फिर जग जाता है। विश्वनाथ सिह सुमन के पति को अपनी जमीदारी का कारिन्दा नियुक्त कर उसे अपने नगर के मकान पर लाता है, सुमन भी उसके साथ आती है। यहाँ आकर दोनो मे फिर प्रणय लीला होने लगती है। महामाया, जो काशी-वास के लिए गई होती है, इन दोनो की प्रणय सम्बन्धी सूचना पाकर तुरन्त वापस ग्रा जाती है। महामाया के आ जाने पर सुमन को इतनी आत्मग्लानि होती है कि वह आत्महत्या कर लेती है।

विशेषताएँ—प्रस्तुत नाटक मे व्यक्ति की सहज प्रणय भावना ग्रौर उसकी नैतिक चेतना के बीच सघर्ष की स्थिति का यथार्थ चित्रण किया गया है। सुमन का निम्न उद्‌गार उसकी मानसिक व्यथा का कितना सजीव चित्र प्रस्तुत करता है—

मेरे पति मुझ पर सर्वस्व अर्पित किए हुए है, पर मेरे हृदय मे उनके लिए प्रेम नही। विश्वनाथ की पत्नी उन पर सब कुछ निछावर किए हुए है, पर उनकी उस पर प्रीति कहाँ ? हम जानते है कि हम भाई-बहिन है, लेकिन न उनके

1 'देशदूत'—31 मई, 1942, पृ० 17।

हृदय मे मेरे प्रति बहन का सा भाव है और न मेरे अन्त करण मे उनके लिए भाई-बहिन की सी भावनाएं। हम दोनो भाई-बहिन है, यह जानते हैं, इस कारण हृदय के हाथ से बाहर होते हुए भी मस्तिष्क के शासन के कारण एक-दूसरे को प्रियतम और प्रियतमा के सदृश भी प्रेम नही कर सकते . एक दूसरे के वियोग मे रहा नही जाता और एक-दूसरे के सयोग से भयभीत रहते है। किसी से कुछ नही कह सकते, इसलिए हर मनुष्य हर तरह की बात सोचता और कहता है।[1]

कथानक का विकास जिस ढग से हुआ है उससे तो यही प्रतीत होता था कि अन्त मे सुमन और विश्व प्रणय सूत्र मे बध जाएँगे, लेकिन नाटककार की नैतिक चेतना को कदाचित् इतना बड़ा पाप असह्य था इसीलिए उसने सुमन की आत्महत्या करा कर अपने हिन्दू सस्कारो की विजय का उद्घोष किया है। सुमन की आत्म-हत्या से नाट्यकार की नैतिक मर्यादा की रक्षा भले ही हो गई हो लेकिन इसके कारण स्वाभाविकता पर जो बलात्कार किया गया है उसने नाट्यकला को कम क्षति नही पहुँचाई है।

त्याग या ग्रहण—'त्याग या ग्रहण' पाँच अको मे समाप्त होने वाला एक सामाजिक समस्या नाटक है। इस नाटक मे सेठ जी ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि समाज के लिए समाजवाद के ग्रहण का सिद्धान्त कभी भी श्रेयस्कर नही हो सकता। समाजवाद तथा गाँधीवाद के व्यावहारिक पक्ष की तुलना करके उन्होंने समाजवाद पर गाँधीवाद की विजय दिखाई है।

कथावस्तु

'देहात' के सपादक रमाकान्त वर्मा के कार्यालय मे मिस विमला के एम० ए० मे प्रथम आने के उपलक्ष्य मे एक पार्टी का आयोजन होता है। इस पार्टी मे मिस विमला का गाँधीवादी युवक धर्मध्वज तथा समाजवादी युवक नीतिराज से साक्षात्कार होता है। प्रथम दर्शन मे वह दोनो की ओर आकृष्ट होती है। यही नीतिराज तथा धर्मध्वज का परस्पर ग्रहण तथा त्याग के सिद्धात पर वाद-विवाद भी होता है। मिस विमला का झुकाव समाजवाद की ओर है लेकिन कभी-कभी उसके मन मे नीतिराज के ग्रहणवाद के प्रति सदेह भी उठ खडा होता है।

मिस विमला एवं नीतिराज समाजवाद के नियमानुसार विवाह-बधन को न मानते हुए पति-पत्नी के रूप मे रहना स्वीकार करते है समाज की मर्यादाओ की किंचित् परवाह नही करते। सिनेमाघरो, पार्कों और सार्वजनिक स्थानों पर भी उनका चुम्बन और प्रेमालिगन कार्य चलता है।

उनके समाज-विरोधी कार्यो से समाज मे खलबली मच जाती है। चारो तरफ से उन पर आक्षेपो और अपवादो की बौछारे होने लगती है। नीतिराज पर

1 पतित सुमन, प्र० स०, 1999, पृ० 165।

इन सामाजिक आलोचनाओ का बहुत प्रभाव पडता है और मिस विमला के प्रति उसका व्यवहार पूर्ववत् नही रहता। अन्त मे जब विमला अपने गर्भवती होने की सूचना उसे देती है तो वह विमला से विवाह करने की इच्छा व्यक्त करता है। विमला उसके इस प्रस्ताव को ठुकरा कर और उसे दो-चार खरी-खोटी सुनाकर धर्मध्वज के पास चली जाती है।

धर्मध्वज के पास पहुँच कर विमला उससे कहती है कि वह किसी ऐसे व्यक्ति के प्रति अपना सर्वस्व समर्पण करना चाहती है जिसके चरण समर्पण के योग्य हो। धर्मध्वज स्वय अपने को इस सेवा के लिए प्रस्तुत करता है। यह जानते हुए कि विमला गर्भवती है, धर्मध्वज उससे विवाह करने को तैयार हो जाता है। धर्मध्वज और विमला के विवाह के साथ ही नाटक समाप्त हो जाता है।

विशेषताएँ—प्रस्तुत नाटक मे त्याग की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। धर्मध्वज द्वारा गर्भवती विमला का ग्रहण भी एक महान् त्याग है। आज समाज मे ऐसे कितने व्यक्ति है जो किसी व्यभिचारिणी नारी को ग्रहण करने का साहस दिखा सकते है। नीतिराज विमला का सब कुछ ग्रहण कर लेता है परन्तु वह विमला के लिए समाज की भर्त्सना सहन करने तक का त्याग नही कर सकता। मिस विमला द्वारा नाट्यकार ने अपना जीवन-दर्शन अभिव्यक्त किया है—

मनुष्यता का आधार त्याग है, ग्रहण नही।[1]

इस नाटक मे समाजवाद की ग्रहणवादी नीति तथा गाधीवाद की त्यागवादी नीति का बहुत सुन्दर तर्कसम्मत विवेचन नीतिराज एव धर्मध्वज के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इस सम्बन्ध मे एक उद्धरण द्रष्टव्य है—

नीतिराज—हमारे त्याग के सिद्धान्त उन प्राचीन देवताओ के सदृश है जिनके नाम पर स्वार्थी हर पग पर कोई न कोई बलिदान मॉग कर समाज पर आतक जमाए रहते थे। हमारी पराधीनता, हमारे सारे आधिभौतिक सुखो की जननी त्याग की यह भावना ही है।[2]

धर्मध्वज—सकुचित और दूषित दृष्टि से देखने पर महान् और पवित्र वस्तु भी बहुत छोटी और नीच नजर आने लगती है। त्याग महान् है, पवित्र है। अगर मनुष्य त्याग की जगह ग्रहण को आदर्श बना लेगा तो उसमे और पशु मे कोई फर्क न रह जायेगा।[3]

नाटक मे अनेक स्थलो पर इस बात का उल्लेख है कि सोशलिज्म विवाह

---

1 त्याग या ग्रहण, प्र० स०, पृ० 109।
2 वही, पृ० 14।
3 वही, पृ० 15।

बधन को नही मानता। नाट्यकार की इस मान्यता पर श्री मन्मथनाथ गुप्त का आक्षेप है कि—

समाजवाद के सम्बन्ध मे यह कहना कि वह विवाह प्रथा के ही विरुद्ध है, तथ्य और ऐतिहासिक दोनो दृष्टियो से गलत है। क्या मार्क्स, एंगेल्स अथवा लेनिन, किसी ने कही पर यह कहा है कि विवाह प्रथा का उच्छेद कर देना चाहिये, तथा 'स्वतन्त्र प्रेम' का जीवन व्यतीत करना चाहिए।[1]

मन्मथनाथ जी का उपर्युक्त आक्षेप अपने आप मे काफी सशक्त है। भाषा, सवाद, अभिनेयता आदि की दृष्टि से नाटक की सफलता मे किसी प्रकार का सदेह नही हो सकता। समस्याओ का यथार्थवादी चित्रण भी काफी मनोरम है, हा गाँधीवाद के प्रति नाटककार का सहज झुकाव होने के कारण गाँधीवादी युवक धर्मध्वज के चरित्र-चित्रण मे उसकी विशेष रुचि अवश्य परिलक्षित होती है और सामान्य पाठको को इसमे पक्षपात भावना दिखाई पडे, तो कोई आश्चर्य की बात नही।

हिंसा या अहिंसा—चार अको के इस समस्या नाटक मे मिल मजदूरो के आन्दोलन तथा मिल मालिक द्वारा हिंसात्मक दमन के चित्र अकित किए गए है।

कथावस्तु

माधव मिल का सस्थापक माधवदास अपनी उदार वृत्ति के कारण मिल मजदूरो से भाई-चारे का सम्बन्ध बनाये रख कर शान्तिपूर्ण वातावरण मे अपना कारोबार करता रहा है। वृद्धावस्था के कारण अपने आप को कार्य करने मे अशक्त पाकर वह मिल का सारा कार्य-भार अपने पुत्र दुर्गादास को सौप देता है। दुर्गादास उग्र स्वभाव का व्यक्ति है जो दमन नीति मे विश्वास रखता है। वह मजदूरो को कीट पतग समझता है तथा उन्हे कुचल देने मे ही अपनी शान समझता है। उसके उग्रवादी स्वभाव के कारण मिल मे हडताल हो जाती है। मजदूरो की इस हडताल का सचालन उनके दो नेता हेमराज और त्रिलोचनपाल करते है। हेमराज शान्त प्रकृति का वयोवृद्ध नेता है और त्रिलोचनपाल उग्र स्वभाव का तरुण नेता।

माधवदास हेमराज से शान्तिपूर्ण समझौते की बाते करता है। दुर्गादास की सौतेली माँ (सौदामिनी) की बहन अलकनदा जो अहिंसा और शान्तिपूर्ण समझौते मे विश्वास रखती है, स्वय त्रिलोचनपाल से सन्धि वार्ता करती है। दुर्गादास और अलकनदा मे प्रणय सम्बन्ध है। समझौते के लिए अलकनदा का प्रयास देखकर दुर्गादास उसे मध्यस्थ बनाने को सहमत हो जाता है।

---

1 सेठ गोविन्ददास अभिनदन ग्रन्थ, पृ० 173।

दुर्गादास से मध्यस्थ बनाये जाने का आश्वासन पाकर वह मजदूर नेता त्रिलोचनपाल से बातचीत करती है। उसके प्रति अलकनदा का आकर्षण भी होता है। वह मजदूरो को विश्वास दिलाती है कि यदि दुर्गादास ने उसे समझौते का दायित्व न सौंपा तो वह स्वय मजदूर दल का नेतृत्व करेगी। मजदूर वर्ग उसे मध्यस्थ बनाने को तैयार हो जाता है। अलकनदा दुर्गादास से समझौते की बात करती है लेकिन वह अपने वचन से मुकर जाता है और उसे मध्यस्थ बनाना अस्वीकार कर देता है। मजदूरो की सन्धि-वार्ता टूट जाती है।

अलकनदा अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मजदूर वर्ग का नेतृत्व ग्रहण करने के लिए आती है। दुर्गादास आवेश मे आकर त्रिलोचनपाल को गोली मार देता है और स्वय आत्म-हत्या कर लेता है। माधवदास का हार्ट फेल हो जाता है और मिल हमेशा के लिए बन्द हो जाती है।

विशेषताएँ—इस नाटक मे सेठ जी ने दिखलाया है कि वर्ग-युद्ध से पूँजीवाद और श्रमवाद दोनो का नाश हो जायेगा। उत्तेजना-रहित, सहयोगपूर्ण सद्भाव से ही पूँजीपतियो और श्रमिको की समस्या सुलझ सकती है।[1] हिंसाजन्य कृत्यो के भयकर दुष्परिणामो को दिखाकर नाट्यकार ने यह सकेत किया है कि समस्या का समाधान अहिंसात्मक साधनो को अपनाकर ही किया जा सकता है।

सतोष कहाँ ?—पाँच अक वाले इस नाटक मे एक ऐसे व्यक्ति की जीवन-गाथा है जो जीवन मे सतोष खोजता है, लेकिन उसे पूर्ण सतोष अन्तिम क्षण तक नही प्राप्त होता।

कथानक

मनसाराम पहले साठ रुपए मासिक वेतन पर अध्यापन कार्य करता है। पारिवारिक सुख-दुःख के उत्तरदायित्व से विमुख रह वह केवल पुस्तके पढने मे ही डूबा रहता है। ज्ञानोपार्जन ही उसका व्यसन है, लेकिन इस जीवन से उसे सतोष नही होता। सतोष-प्राप्ति के लिए वह अकर्मण्य जीवन त्याग कर धन कमाने का निश्चय करता है और इस कार्य मे इतनी तन्मयता से जुट जाता है कि अल्प समय मे ही अतुल वैभव का स्वामी बन जाता है। उसे सरकार से 'सर' की उपधि भी मिल जाती है लेकिन इस वैभव-सम्पन्न जीवन से भी उसे सन्तोष नही होता। उसने सट्टे मे धन कमाया होता है अत इस जीवन को सर्वथा असत्य जीवन मानता है। वह कुल अर्जित सम्पत्ति को त्याग कर आश्रम का जीवन अगीकार करता है।

आश्रम जीवन मे पहले तो उसे पूर्व के प्रत्येक जीवन की भाति आनन्द मिलता है, लेकिन बाद मे इसमे भी उसे सन्तोष नही मिलता, वह सोचता है कि यह जीवन

---

1 देशदूत—मई 1942, श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० 19।

तो केवल दिखावा मात्र है। अतएव इस जीवन को भी त्याग देने का निश्चय करता है।

आश्रम का जीवन त्यागने के बाद वह असेम्बली का चुनाव लडता है और उसमें सफल होकर मत्री बन जाता है। मत्री बन जाने के बाद वह देखता है कि जिस उद्देश्य से (जनता की सेवा के लिए) उसने मत्रित्व स्वीकार किया था, वह उद्देश्य पूर्ण नही हो सकता, क्योकि सर्वत्र स्वार्थ-भावना व्याप्त है और सरकारी अधिकारी सहयोग नही दे रहे है, तो उसे इस जीवन से भी घृणा हो जाती है। एक दिन उसका पुत्र स्वराज चन्द्र कहता है कि उसके विद्यालय मे यह खबर फैली है कि उसने (मनसाराम) अच्छी खासी रकम रिश्वत मे लेकर दूसरो को ठेका दिलाया है, पुत्र के इस समाचार से उसे इतना मानसिक विक्षोभ होता है कि वह मत्री पद से त्यागपत्र दे देता है और एक सामाजिक कार्यकर्ता का जीवन स्वीकार करता है। वह अनाथालय, बाल भवन, विद्यालय तथा छात्रावास की स्थापना करता है। इस जीवन से भी उसे पूर्ण सन्तोष तो नही होता, लेकिन पूर्व जीवन की भाति उतना असतोष भी नही रहता। उसके द्वारा एक नाटक का निर्माण किया जाता है जिसका नाम होता है—सतोष कहा?

विशेषताएँ—प्रस्तुत नाटक की समस्या मूलत वैयक्तिक है। इसकी प्रमुख समस्या है—सच्चा सतोष कहाँ और किसमे है? इस मूल समस्या का समाधान नाटककार ने इस प्रकार किया है—

सन्तोष का मार्ग खोजते रहना चाहिए और सच्चा सन्तोष कदाचित् असन्तोष ही है।[1]

नाटक मे केवल मनसाराम के चरित्र का विकास है, अन्य पात्रो की नितान्त उपेक्षा की गई है। मनसाराम के मानसिक सघर्ष का अच्छा निरूपण हुआ है। एक उद्धरण देखिए—

मेरा . मेरा . बच्चा .. मित्रो के पैसे के . (जोर से) मित्रो के पैसे के दूध से पले? और . और मै बैठे बैठे पुस्तके पढू? धिक्कार है मुझे . धिक्कार है मेरे पौरुष को। .मनसाराम .. मनसाराम तू बच्चा नही अबोध नही ... अज्ञानी नही . दुश्चरित्र नही ... पर अकर्मण्यता.. अकर्मण्यता का यह .. यह जीवन .।[2]

नाटक की भाषा सजीव है, अनेक स्थलो पर आलकारिक भाषा का प्रयोग उसकी रमणीयता मे वृद्धि करने मे सहायक हुआ है। भाषा सम्बन्धी एक उदाहरण देखिए—

1. सन्तोष कहाँ, प्र० स०, पृ० 86।
2 वही, पृ० 10।

जीवन समस्या मेरे लिए उस खोटे सिक्के के सदृश सिद्ध हुई है जो लौट-लौट कर आ जाता है। मालूम नही यह जीवन रूपी पतग समस्याओ के कितने दीपको के चारो ओर घूमता रहेगा।[1]

नाटक मे कार्य-व्यापार की कमी है। रगमच की दृष्टि से भी नाटक की सफलता का दावा नही किया जा सकता है।

दु ख क्यो—प्रस्तुत नाटक का रचना-काल 1921 है। यह पहले 'ईर्ष्या' नाम से प्रकाशित हुआ था। सन् 1946 मे पूर्व नाटक को ही 'दु ख क्यो' नाम से प्रकाशित कराया गया है। नाटक की मूल समस्या इसके नाम से ही प्रकट है।

कथानक

नाटक का नायक यशपाल एक वकील है। उसका पारिवारिक जीवन बहुत सुखी है। उसके सुखी पारिवारिक जीवन का बहुत कुछ श्रेय उसकी पत्नी सुखदा को है। इसी बीच असहयोग आन्दोलन प्रारभ होता है। यशपाल सोचता है कि यदि वह प० मोतीलाल नेहरू तथा देशबन्धु चितरजनदास की भाति वकालत छोड दे तो वह भी उन्ही के समान यशस्वी बन जायेगा। इस उद्देश्य के साथ-साथ वह ब्रह्मदत्त नामक वकील एव स्थानीय नेता को नीचा दिखाना चाहता है। ब्रह्मदत्त ने उसके साथ अनेक एहसान किये है, लेकिन ईर्ष्यालु यशपाल के लिए उन एहसानो का कोई मूल्य नही। उसका विचार है कि ब्रह्मदत्त वकालत छोडेगा नही, अत यदि वह छोड दे तो शीघ्र ही वह विख्यात हो जायेगा और ब्रह्मदत्त की बदनामी होगी। सुखदा उसके इस निश्चय का विरोध करती है।

सुखदा की इच्छा के प्रतिकूल यशपाल बाहर से आये अखिल भारतीय नेताओ के सामने वकालत छोडने की घोषणा करता है। उसकी इस घोषणा से लोग उसे सर आखो पर उठा लेते है, चारो तरफ उसकी कीर्ति फैल जाती है और पल मात्र मे वह लोकप्रिय बन जाता है। वही वह अस्थायी काग्रेस कमेटी का सभापति चुन लिया जाता है और काग्रेस के कार्य के लिए एकत्रित 1132 रु० ।=) की थैली भी उसे अर्पित की जाती है।

यशपाल के इस कार्य से सुखदा को बहुत दु ख होता है क्योकि वह उनके हृदय की सच्ची भावना से परिचित है। उसका दृढ विश्वास है कि जिस घर मे किसी के अपकार की बात सोची जाती है, वह घर कभी सुखी रह ही नही सकता। वह यशपाल को उसके मार्ग से हटाना चाहती है, लेकिन उसमे सफल न होने पर आदर्श भारतीय नारी के समान उसकी प्रसन्नता मे ही अपनी प्रसन्नता मानने लगती है।

यशपाल की ब्रह्मदत्त के प्रति ईर्ष्या भावना समाप्त नही होती। ब्रह्मदत्त कौसिल की सदस्यता के लिए खडा होता है, काग्रेस के आदेश के विरुद्ध यशपाल

1 सन्तोष कहाँ, पृ० 71।

उसके मुकाबले मे एक मोची को खड़ा कर देता है। मोची जीत जाता है लेकिन इस चुनाव मे उसके (यशपाल) पास एकत्रित कांग्रेस कोष का सारा धन खर्च हो जाता है। यशपाल पर एक नई विपदा आ जाती है, कांग्रेस की स्थायी समिति का चुनाव हो जाने के कारण दूसरे दिन उसे कोष का सारा धन कोषाध्यक्ष को सौंपना होता है। यशपाल को चितामग्न देखकर सुखदा अपने गहने बेचकर तथा कुछ धन वैद्य गरीबदास, जिसे वह गुरु के समान मानती है, से ऋण लेकर कोष का धन पूरा करने का निश्चय करती है।

यशपाल अपने मित्र चन्द्रभान के सामने जब सार्वजनिक सभा के अपने प्रथम भाषण का रिहर्सल कर रहा होता है उसी समय एक फरार क्रान्तिकारी आता है। वह यशपाल से कहता है कि सरकार ने उसकी गिरफ्तारी पर 1000) इनाम की घोषणा कर रखी है अत वह उसके यहा आश्रय चाहता है। यशपाल उसे अपना घर असुरक्षित बताकर वैद्य गरीबदास के यहाँ भेज देता है।

क्रान्तिकारी के चले जाने के बाद चन्द्रभान को यकायक सूझता है कि क्यो न इसकी सूचना पुलिस मे देकर एक हजार रुपया प्राप्त किया जाय और उससे कोष का धन पूरा कर दिया जाय। अपने मन के भाव यशपाल पर प्रकट कर वह तुरत पुलिस मे सूचना देने के लिए दौड़ जाता है। सुखदा को सारी बातो का पता चल जाता है। वह यशपाल से तुरत भागकर चन्द्रभान को रोकने के लिए कहती है। उसके आना-कानी करने पर वह स्वय भागकर वैद्य जी के पास पहुँच जाती है और क्रान्तिकारी को भाग जाने की सलाह देती है। वह सुखदा की सलाह मानकर भागने का प्रयत्न करता है लेकिन इसी बीच पुलिस के आ जाने से गिरफ्तार कर लिया जाता है। वैद्य गरीबदास भी क्रान्तिकारी को अपने घर मे शरण देने के आरोप मे गिरफ्तार कर लिया जाता है।

मुकदमे की पेशी के दिन सुखदा के साथ यशपाल भी कचहरी जाता है। मजिस्ट्रेट यशपाल को त्यागी समझकर उसका बड़ा सम्मान करता है। मुकदमे की सुनवाई शुरु होती है, सारे गवाह गरीबदास के विपक्ष मे जाते है। मजिस्ट्रेट उस पर चार्ज लगाकर उसे सजा का हुक्म देने ही वाला होता है कि सुखदा आगे बढकर बोल उठती है—बांकेविहारी (क्रान्तिकारी) को भगाने मे मेरा दोष है। गरीबदास जी निर्दोष है। आप उन्हे नही, मुझे दड दीजिए मैं दड भोगने के लिए तैयार हू।[1] मजिस्ट्रेट के यह पूछने पर कि आपको कैसे मालूम हुआ कि बांके विहारी क्रान्तिकारी है, वह गरीबदास के मकान पर गया है और पुलिस उसे गिरफ्तार करने जा रही है, सुखदा कहती है कि वह इस सम्बन्ध मे कुछ नही बतायेगी। इसके बाद मजिस्ट्रेट एक सप्ताह के लिए पेशी स्थगित कर देता है और इसी अनिश्चयावस्था मे नाटक समाप्त हो जाता है।

विशेषताएं— प्रस्तुत नाटक की मूल समस्या है कि दुख का मूलभूत कारण

---

1 दुःख क्यो, प्र० स०, 1946, पृ० 114।

क्या है ? नाट्यकार ने ईर्ष्या को ही सब दु खो की जड माना है । उसने अपना मन्तव्य सुखदा के माध्यम से स्पष्टत. प्रकट कर दिया है—

"आज इस घर मे दूसरे का अपकार करने की बात घुसी है । इस पाप से इस घर का सब सुख नष्ट हो जायेगा ।"[1]

यशपाल के दाम्पत्य जीवन रूपी हरे-भरे वन को ईर्ष्या की एक छोटी-सी चिनगारी ने भस्म कर दिया ।

'यशपाल' को गाँधीवादी युवक के रूप मे चित्रित कर नाटक-लेखक ने यह भी प्रतिपादित किया है कि सर्वोत्तम या सर्वोदयी भावना वाला व्यक्ति भी राजनीति और ईर्ष्या मे कितने निम्न स्तर पर उतर आता है । ऐसे पात्र तो आज समाज मे एक बडी सख्या मे दिखाई देते है, और सभवत भारतीय समाज की परम्परा मे, उसे सदा दुर्बल बनाते दिखाई देते है, वैसे ईर्ष्या-प्रश्रयी पात्र विश्व-मानव की अपनी-अपनी भूमि-सीमाओ मे हर काल मे जीवन को प्रताडित करते हुए अपने खेल खेलते रहते है ।[2]

नाटक के चरित्र-चित्रण मे स्वाभाविकता है । यशपाल के चरित्र मे नीचता कुछ अधिक उभरी है लेकिन उसकी ईर्ष्यालु प्रकृति के कारण उसकी नीच-वृत्ति अस्वाभाविक नही लगती । सुखदा का चरित्र बडा ही हृदयस्पर्शी है और गरीबदास तो बिल्कुल सत प्रतीत होता है ।

सवाद छोटे-छोटे है और उनमे पर्याप्त सजीवता है । कही-कही (पृ० 64, 66) गरीबदास का भाषण अवश्य कुछ लबा हो गया है जो पाठको को अरुचिकर लग सकता है । कथोपकथन मे अनेक स्थलो पर सूक्तियो के उपयोग से विशेष रमणीयता आ गई है । एक उद्धरण देखिए—

गरीबदास— मनुष्य को उसके कर्म सूर्य से भी अधिक प्रकाशवत और अमा रात्रि से भी अधिक श्याम बना सकते है ।[3]

भाषा मे मुहावरो एव लोकोक्तियो के प्रयोग से सजीवता है । कार्य-व्यापार का बाहुल्य तो नही है, लेकिन इतना अभाव भी नही है कि नाटक रगमंच के सर्वथा अनुपयुक्त बन जाये । रगमच पर नाटक का सफल अभिनय सभव है । इस नाटक पर इब्सन के 'दी पिलर्स आफ सोसाइटी' का स्पष्ट प्रभाव है । सेठ जी का यह नाटक उनके सफल समस्या नाटको मे से एक है ।

---

1 दु ख क्यो, प्र० स०, 1946, पृ० 19 ।

2 सेठ गोविन्ददास अभिनदन ग्र थ मे लेख (सेठ गोविन्ददास के सामाजिक नाटक श्री शिखर चन्द जैन), पृ० 162 ।

3 दु ख क्यो, पृ० 65 ।

प्रेम या पाप—चार अको के इस सामाजिक समस्या नाटक मे कला के नाम पर समाज मे व्याप्त व्यभिचार का सजीव चित्र खीचा गया है।

कथावस्तु

शेयर बाजार के प्रसिद्ध व्यापारी लक्ष्मीनिवास की पत्नी कीर्ति के मन मे कला के प्रति अनुराग पैदा होता है। उसको कला की शिक्षा देने के लिए कलानाथ नाम का एक कवि सगीतज्ञ नियुक्त किया जाता है। कीर्ति महत्त्वाकाक्षिणी है और वह प्रसिद्ध फिल्म अभिनेत्री ग्रेटा गारबो के समान ससार मे प्रसिद्धि प्राप्त करने की इच्छुक है। कलानाथ को कीर्ति की इच्छा का पता चल जाता है। वह फिल्म जगत् मे फैले व्यभिचार का अत्यन्त घृणास्पद चित्र प्रस्तुत कर कीर्ति का मन उस तरफ से मोड देता है। कला की शिक्षा देते-देते कलानाथ कीर्ति के रूपलावण्य पर मुग्ध हो जाता है। कीर्ति को अपने जाल मे फसाने के उद्देश्य से वह उस पर एक महाकाव्य लिखने का झूठा आश्वासन उसे देता है। वह कीर्ति से कहता है कि महाकाव्य पूर्ण होते ही उसकी कीर्ति-ध्वजा सारे विश्व मे लहराने लगेगी। कीर्ति के यह कहने पर कि काव्य के लिए कथानक चाहिए, वह कहता है—उसका निर्माण हम दोनो करेगे। (कीर्ति को अपने भुजपाश मे बाँधकर) इसी विशुद्ध प्रेम के वायुमण्डल मे हमारी उत्तम कला का निर्माण होगा।

कीर्ति कलानाथ की वास्तविक भावना को समझकर उसके प्रेम-जाल मे फस जाती है। सात वर्ष तक कलानाथ अपने झूठे आश्वासन के बल पर उसके शरीर का अपनी वासना-पूर्ति के लिए पूर्ण उपभोग करता है। इस बीच न तो महाकाव्य लिखा जाता है और न कीर्ति की कीर्ति-ध्वजा सारे ससार मे लहराती है। कीर्ति को कलानाथ की सच्ची भावना का पता लग जाता है अत वह उसे त्यागकर फिल्म अभिनेत्री बनने की इच्छा से फिल्म डायरेक्टर नरेन्द्र के पास जाती है। नरेन्द्र भी उसकी महत्त्वाकाँक्षा का अनुचित लाभ उठाता है, वह फिल्म अभिनेत्री के शरीर नापने के बहाने उसकी जाँघ और वक्ष स्थल की नाप लेता है तथा उसे हृदय से लगाकर उसका अधरपान भी करता है। वह कीर्ति को अपना रुपया लगाकर सिनेटोन बनाने की सलाह देता है और इसके लिये एक लाख रुपये का चैक माँगता है। कीर्ति रुपये देने का वादा करके भी नरेन्द्र को रुपये नही देती और अन्त मे नरेन्द्र विवश होकर उसे कह देता है कि उसकी आयु अधिक हो गई है इसलिए वह फिल्म अभिनेत्री नही बन सकती।

प्रस्तुत नाटक मे प्रेम, पाप की समस्या को उठाया गया है। इसकी मूल समस्या है कि अवैध प्रेम प्रेम है अथवा पाप है ? नाट्यकार की दृष्टि मे तो यह सर्वथा पाप ही है। इस सम्बन्ध मे नाटक के अन्तिम पृष्ठ पर कहे गये कीर्ति के कथन प्रमाणस्वरूप उपस्थित किये जा सकते है। उसका कथन है—

रुपया आवेगा चाहे कही से क्यो न आये। प्रेम सिनेटोन बनेगा चाहे कैसे ही क्यो न बने। उसमे (शराब का गिलास आगे करके) बहेगा यह...बहेगा यह ..फिर

चाहे उसमे उच्च कला का निर्माण हो या अधम कला का। उसका वायुमडल प्रेम का हो या पाप का।

पाप-पुण्य का सम्बन्ध मूलत मनुष्य की धार्मिक भावनाओ से है। यौन-नैतिकता (Sex Morality) पर विश्वास न करने वाले सज्जनो को कलानाथ एव नरेन्द्र के कृत्यो मे हो सकता है कोई पाप भावना न दिखाई पडे, वे इसे पुरुष की स्वाभाविक वृत्ति का परिणाम मान सकते है। इतना निश्चित है कि इसमे वर्णित कीर्ति की मूर्खता एव कलानाथ तथा नरेन्द्र द्वारा कला के नाम पर किये गये नारी के शारीरिक शोषण से कोई असहमत नही हो सकता।

विशेषताएँ

प्रस्तुत नाटक से सम्बन्धित कुछ समस्याओ की ओर श्री मन्मथनाथ गुप्त ने सकेत किया है जो काफी महत्वपूर्ण प्रतीत होता है—

"प्रश्न यह उठता है कि कलाकारो मे कई बडे खतरनाक होते है, यदि एक भोली-भाली कुल वधू के मन मे कला के प्रति प्रेम उत्पन्न हो, तो वह क्या करे ? पर नही, इसके साथ यह भी समस्या है कि यदि किसी स्त्री की अभिरुचि कला की ओर है और उसे ऐसा पति मिलता है, जो साहित्य, सगीत और कला तीनो से विहीन है, तो वह क्या करे ? क्या वह पति के साथ साधारण सामाजिक रिश्ता कायम रखते हुए वाहरी जगत् मे कूद पडे, जहाँ उसे विभिन्न कारणो से डसने और ग्रसने के लिए सैकडो अजगर और घडियाल घूम रहे है ?"[1]

कलानाथ एव कीर्ति के प्रेम-प्रसग मे नाट्यकार ने इतनी अभिरुचि दिखाई है कि नाटक की समस्या उसके नीचे दब गई है और रोमास ने अनायास प्रमुखता प्राप्त कर ली है।

गरीबी या अमीरी अथवा श्रम या उत्तराधिकार

पॉच अको के इस नाटक की मूल समस्या है कि जीवन का सुख दरिद्रता मे है अथवा सम्पन्नता मे। इसके साथ ही एक समस्या और भी है कि जीवन की महत्ता का आधार श्रम है या उत्तराधिकार। इसकी कथावस्तु पर रूस की 'निहलिस्ट' कथाओ तथा प्रसिद्ध रूसी उपन्यासकार लिओनार्ड मैरिक के 'दि हाउस ऑफ लिच' उपन्यास का प्रभाव है।

कथावस्तु

दक्षिणी अफ्रीका मे निवास करने वाला भारतीय व्यापारी लक्ष्मीदास भारतीय मजदूरो के शोषण एव उन पर पशुवत् अत्याचार से करोडपति बनता है। उसकी

1 सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ—स० डा० नगेन्द्र, पृ० 172।

विद्याभूषण से अलग हो जाने पर अचला अपने पिता लक्ष्मीदास के पास दक्षिणी अफ्रीका पहुँच जाती है और वहा तीन वर्ष तक सुख-सुविधाओ से पूर्ण जीवन बिताती है। पति-विहीन अचला को यकायक इस जीवन से घृणा हो जाती है और वह पति की अनुगामिनी बनने के उद्देश्य से गरीबी का व्रत लेकर भारत लौट आती है और मध्य प्रात के एक गाँव मे रहना प्रारम्भ करती है। वह निश्चय करती है कि अपने जीवन को विद्याभूषण के आदर्शो के अनुरूप ढालकर ही उनसे मिलेगी। वह अपना सारा समय ग्रामवासियो को शिक्षित, सुसस्कृत और सुखी बनाने मे लगाती है। ग्रामवासी नर-नारी उसे देवी तुल्य मानने लगते है। इसी बीच लक्ष्मीदास की मृत्यु का समाचार प्राप्त होता है और अचला को यह भी पता चलता है कि वह समस्त सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी बना दी गई है। अचला सारी सम्पत्ति को दक्षिणी अफ्रीका मे रहने वाले भारतीयो की भलाई के निमित्त दान कर देने की घोषणा कर देती है।

समाचारपत्रो मे अचला के दान की घोषणा का समाचार पढकर विद्याभूषण विक्षुब्ध हो उठता है क्योकि जीवन के कटु अनुभवो के कारण उसे अपने आदर्शो मे अब कोई तत्त्व नही प्रतीत होता, आर्थिक कठिनाइयो और उसके टूटते हुए स्वास्थ्य ने उसे इस बात को मानने के लिए विवश कर दिया है कि जीवन मे धन का बडा महत्त्व है। वह इस सम्बन्ध मे अचला से परामर्श करने और यदि सम्भव हो तो उसकी घोषणा को गैरकानूनी करार देने के उद्देश्य से उसके पास पहुँच जाता है। वहाँ पहुँच कर वह अपने मन की पूरी बात भी नही कह पाता कि उसका हार्ट फेल हो जाता है। अचला पति के आदर्शो पर चलती हुई उन्ही के सिद्धान्तो के अनुरूप अपने पुत्र सरस्वती चन्द्र की भावनाओ का विकास करती है।

विशेषताएँ

प्रस्तुत नाटक मे आदर्शवाद एव यथार्थवाद के सघर्ष का चित्रण किया गया है जो अपने आप मे काफी रमणीय है। आदर्श के प्रति नाट्यकार का झुकाव होने पर भी वह यथार्थ की उपेक्षा नही कर सका है। विद्याभूषण का सिद्धात परिवर्तन निश्चित रूप से आदर्श पर यथार्थ की विजय का उद्घोष करता है। अचला के हृदय मे भी सम्पन्न और विपन्न जीवन के प्रति बार-बार जो राग और विराग होता है, उसमे भी यथार्थता है। नाटक का अन्त अवश्य ही आदर्शवाद से अनुप्राणित है लेकिन पात्र (अचला) के चारित्रिक विकास को देखते हुए यह अन्त अस्वाभाविक नही प्रतीत होता, हाँ, विद्याभूषण की आकस्मिक मृत्यु अवश्य ही अस्वाभाविक है।

पात्रो के चरित्र-चित्रण मे नाट्यकार पर्याप्त सफल है। इस नाटक के पात्र वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व करते हुए भी अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखते है। लक्ष्मीदास को पूँजीपति वर्ग का प्रतिनिधि मान सकते है जिसका उद्देश्य शोषण और दमन नीति से धन सग्रह होता है। धन-सग्रह की दृष्टि से पूँजीपति वर्ग का प्रतिनिधि होने पर भी वह केवल मात्र पूँजीपति ही नही है, अपितु वह अपनी एकमात्र सन्तान अचला के

लिए अत्यन्त कोमल हृदय का वात्सल्यपूर्ण पिता भी है। सन्तान के प्रति उसके असीम स्नेह का अनुमान उसके निम्न कथन द्वारा लगाया जा सकता है—

मुझे शायद सारे ससार का खून देखकर चक्कर न आयेगा, उसकी नदियाँ देखकर भी नही, पर, बेटा, तेरे आसुओ की दो बूँदे, हाँ, दो बूँदे मेरे पैर कपाने के लिए, अरे ! मुझे बहा तक देने के लिए काफी है।[1]

विद्याभूषण को भावुक कलाकारो का प्रतिनिधि माना जा सकता है। धन के प्रति वितृष्णा, उच्च जीवनादर्श, उत्तराधिकार के प्रति उपेक्षावृत्ति तथा श्रम को जीवन की महत्ता का आधार मानना उसके व्यक्तित्व की कुछ उल्लेखनीय विशेपताएँ है। अपने आदर्श के प्रति आस्थावान होने के कारण ही वह लक्ष्मीदास की सम्पत्ति को ग्रहण नही करता, यद्यपि उसे धनाभाव के कारण जीवन मे घोर आर्थिक कठिनाइयो का सामना करना पडता है। जीवन के अन्तिम दिनो मे परिस्थितियो से विवश होकर वह अपने सिद्धान्तो की मिथ्यावादिता को स्वय स्वीकार कर लेता है। उसका यह सिद्धान्त परिवर्तन उसे इस लोक का प्राणी तथा हाड माँस से निर्मित मानव बनाने मे समर्थ है। विद्याभूषण का चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक है। नाट्यकार ने उसके अन्तर्द्वन्द्व का सफल चित्रण किया है। एक उद्धरण देखिए—

क्यो ... क्यो अपना कैरियर ... कैरियर भी बर्बाद कर रहा हूँ। हजारो, लाखो की नही, करोडो ... हाँ हाँ, करोडो की सम्पत्ति सामने है। वह वह भी बिना बिना किसी श्रम प्राप्त हो सकती है। बिना .. बिना किसी खुशामद .. खुशामद के मिल सकती है। पर पर उसने . उसने, कितनो को रुला कर, कितनो कितनो को बिलखाकर, इतना इतना ही नही, . कितनो का खून बहाकर मॉस और हड्डियाँ सुखाकर .. उस सम्पत्ति को पैदा किया है।[2]

अचला का चरित्र-चित्रण भावुक युवती के रूप मे बडा ही स्वाभाविक एव रमणीय है।

नाटक के कथोपकथन सामान्यत ठीक ही है, लम्बे-लम्बे स्वगत कथनो का प्रचुर प्रयोग निश्चित रूप से पाठको को अस्वाभाविक प्रतीत होगा। कथोपकथन को स्वाभाविक बनाने के उद्देश्य से प्राय उसको टूटे वाक्यो मे प्रस्तुत किया गया है, अनेक स्थलो पर पृष्ठ के पृष्ठ ये टूटे वाक्य स्वाभाविक प्रतीत होने के स्थान पर अस्वाभाविक लगते है। नाटक मे गीतो की सख्या भी कम नही है, समस्या-प्रधान इस नाटक मे इन गीतो को स्थान न दिया गया होता तो अच्छा होता।

नाटक मे कार्य-व्यापार की प्रचुरता है, कथानक रोचक एव सुसगठित है, पात्रो की सख्या सीमित है अतएव सकलन-त्रय का निर्वाह न किये जाने पर भी नाटक की रगमचीय सफलता मे सन्देह नही हो सकता।

1 गरीबी या अमीरी, पृ० 32।
2 वही, पृ० 81।

'गरीबी या ग्रमीरी' को सेठ जी का सर्वश्रेष्ठ समस्या नाटक माना जा सकता है।

महत्त्व किसे—यह चार ग्र को का एक लघु नाटक है। इसकी समस्या सेठ जी के पूर्व-विरचित नाटक 'गरीबी या ग्रमीरी' से मिलती-जुलती है। इसमे नाट्य-कार ने यह समस्या प्रस्तुत की है कि सम्पन्नता ग्रौर दरिद्रता मे से कौन महत्त्वपूर्ण है। इसकी समस्याएँ राजनीतिक जीवन की पृष्ठभूमि मे प्रस्तुत की गई है।

कथानक

धन-कुबेर कर्मचन्द ग्रसहयोग ग्रान्दोलन मे सम्मिलित होकर विदेशी वस्तुग्रो के वहिष्कार का पूर्ण निश्चय करता है। वह सच्चे हृदय से गाँधी जी के सिद्धान्तो पर विश्वास करता है। ग्रत ग्रपने महल की सभी विदेशी वस्तुए यहाँ तक कि दीवाल मे लगी विदेशी ईटो को भी निकलवा देता है। वह स्वय खादी पहनना ग्रारम्भ करता है ग्रौर नौकरो को भी छ छ सेट खादी के वस्त्र मुफ्त बनवा देता है। ग्रसहयोग के कार्यक्रम मे सम्मिलित स्कूलो एव ग्रदालतो के बहिष्कार को भी वह क्रियात्मक रूप देता है। ग्रपने पुत्र लल्ला को स्कूल से निकलवा लेता है तथा मैनेजर को कोई भी मुकदमा ग्रदालत मे न ले जाने का ग्रादेश देता है।

काश्तकारो एव कर्जदारो के मुकदमे ग्रदालतो मे न ले जाने के कारण वसूली नही होती ग्रौर उसकी ग्राय घटने लगती है। उसके चारो तरफ काँग्रेसी चाटुकार मडराते रहते है ग्रौर उसके सरल स्वभाव का नाजायज फायदा उठाते है। उसकी पत्नी सत्यभामा ग्रपने सीधे-सादे पति के चारो ग्रोर मडराने वाले इन स्वार्थियो की भावनाग्रो से भली भाँति परिचित है, वह कई बार कर्मचन्द को सचेत भी करती है लेकिन वह ग्रपने समान ही दूसरो को मानने के कारण उसकी बातो पर ध्यान नही देता।

सन् 1926 के कौसिल के चुनाव मे कर्मचन्द ग्रपने पास पर्याप्त धन न होने पर सेठ लक्ष्मीपति से उसके व्याज की कडी से कडी शर्त मानकर ढाई लाख रुपये ऋण लेता है ग्रौर यह धन वह ग्रपने सहयोगी काग्रेसी सदस्यो विशेषत देशव्रत के चुनाव पर खर्च कर देता है। सन् 1930 मे वह सत्याग्रह ग्रान्दोलन मे जेल जाता है, उसके वही सहयोगी जिनके चुनाव पर उसने ग्रपना धन लगाया था, उसकी बदनामी करते है ग्रौर उस पर काग्रेस का धन खाने का झूठा ग्रारोप लगाते है। सेठ लक्ष्मीपति सूद के रूप मे मूल से ग्रधिक वसूल कर लेता है लेकिन फिर भी मूल की वसूली के लिए उस पर दावा कर देता है। उसके जेल से छूट कर ग्राने के वाद लक्ष्मीपति, देशव्रत ग्रौर सृष्टिनाथ को साथ लेकर रुपये की वसूली के लिए गिरफ्तारी का वारट लाता है। सत्यभामा ढाई लाख के वदले लगभग दस लाख का ग्रपना जेवर लक्ष्मीपति को देकर उसे गिरफ्तार होने से वचा लेती है। सत्यभामा ग्रौर कर्मचन्द मे प्राय इस विषय पर

बहस होती रहती है कि सम्पन्नता और दरिद्रता मे किसे अधिक महत्व प्राप्त है। सत्य-भामा सम्पन्नता को महत्त्व देती है और कर्मचन्द दरिद्रता को। घर की बिगडती हालत और पति की अपकीर्ति को देखकर सत्यभामा कर्मक्षेत्र मे कूद पडती है। वह थोडे ही दिन मे सट्टे से पर्याप्त धन कमाकर घर की हालत सुधार देती है और धन आ जाने पर उसके पति की प्रतिष्ठा भी पुन लौट आती है। उसके धोखेबाज मित्र एव सहयोगी फिर उसके चारो ओर मडराने लगते है, इतने पर भी कर्मचन्द यह मानने के लिए तैयार नही होता कि जीवन मे सम्पन्नता को ही महत्त्व है।

विशेषताएँ—प्रस्तुत नाटक मे इसकी मूल समस्या को बडी सुन्दरता से नाट्यकार ने प्रस्तुत किया है। प्रत्येक अक की कथावस्तु को इस प्रकार नियोजित किया गया है कि उसका अन्त प्राय निम्न कथनो से होता है—

सत्यभामा— ..देखना है कि आने वाले जमाने मे भी सम्पन्नता और दरिद्रता मे.. (कुछ सोचते हुए) सम्पन्नता और दरिद्रता मे . (चुप हो जाती है।)

कर्मचन्द—हा, सम्पन्नता और दरिद्रता मे .

सत्यभामा—है महत्त्व किसे ?[1]

कर्मचन्द का चरित्र-चित्रण गाँधीवाद के सच्चे अनुयायी तथा आदर्शवादी राजनेता के रूप मे किया गया है। वह महान् त्यागी है, उसका अन्त करण नितान्त शुद्ध है, इसीलिए वह दूसरो को भी अपने ही समान पवित्र समझता है और उन पर कभी भी अविश्वास नही करता। उसकी चारित्रिक विशेषताओ को नाट्यकार ने सत्यभामा के निम्न कथन द्वारा प्रकट किया है—

यह दुनियाँ आप के लायक नही है। आपका हृदय शुद्ध है, ऐसा शुद्ध है जैसा शायद ढूँढने से भी न मिलेगा। आपने महात्मा गाँधी का अनुसरण शुद्ध अन्त करण से किया है। आप इस रास्ते मे बिना किसी छल, कपट के चलेगे। इतना ही नही, बिना आगे-पीछे, बिना इधर-उधर देखे बढेगे। जो त्याग भी करना होगा, आप करेगे, जो तकलीफ भी सहनी होगी, बिना उफ किये सहेगे।[2]

कर्मचन्द की दृष्टि मे धन का कोई महत्त्व नही है। इस सम्बन्ध मे उसका कथन द्रष्टव्य है—

' गाँधी-युग मे इस खजाने, इस धन का कोई महत्त्व नही। वह जमाना चला गया, जिसमे धन को महत्त्व था। इस जमाने मे दरिद्र नारायण की महिमा बढेगी। धनवान् घृणा की चीज और निर्धन पूजा की वस्तु होगे।[3]

---

1 महत्त्व किसे, प्र० स० 1947, पृ० 21-22।

2 वही, पृ० 19।

3. वही, पृ० 21।

सत्यभामा का चरित्र-चित्रण पतिपरायणा, कुशाग्रबुद्धि एव व्यवहार-कुशल नारी के रूप मे हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि कर्मचन्द के रूप मे स्वय सेठ जी नाटक मे अवतरित हुए है और कर्मचन्द के सहयोगी, मित्र गण स्वय सेठ जी के जाने पहचाने मित्र गण ही है। कर्मचन्द की धन के प्रति वितृष्णा स्वय सेठ जी की वितृष्णा है या नहीं, इस सम्बन्ध मे कुछ नही कहा जा सकता।

नाटक के कथोपकथन छोटे-छोटे है और उनमे स्वाभाविकता भी है। कार्य-व्यापार की प्रचुरता तो नही है लेकिन कथानक की रोचकता को अस्वीकार नही किया जा सकता। नाटक का अत अनिश्चय मे हुआ है जो पर्याप्त आकर्षक है।

बड़ा पापी कौन—प्रस्तुत नाटक चार अको मे विभाजित है। यह सेठ जी का सबसे छोटा समस्या नाटक है। नाटक की समस्या नाम से ही प्रकट है, इसमे दो जमीदारो को एक दूसरे से बढकर पतित चरित्र अकित किया गया है और फिर इस का निर्णय करना पाठको पर छोड दिया गया है कि उन दोनो मे बडा पापी कौन है ?

कथावस्तु

त्रिलोकीनाथ एक पुराना जमीदार और खानदानी रईस है। उसके पुराने कुल की प्रतिष्ठा के कारण लोग अब भी उसका सम्मान करते है और पिछले कई वर्षो से वह चेम्बर का प्रेसीडेन्ट बनता आ रहा है। वह दयालु प्रकृति एव उदार हृदय का व्यक्ति है। इन गुणो के साथ उसमे कुछ दुर्गुण भी है। वह वेश्यागामी है और मलका नामक वेश्या को अपने घर मे रखैल की भाति रखता है तथा वह पक्का शराबी भी है। उस के इन दोनो दुर्गुणो को सारा समुदाय जानता है।

रमाकात एक नया जमीदार है जो पूर्णत ढोगी है। वह ऊपर से बडा नि स्वार्थ प्रतीत होता है लेकिन अन्दर से पूरा धोखेबाज है। उसका अपने मुख्य कारिन्दा रगलाल की विधवा साली से अवैध सम्बन्ध है। वह त्रिलोकीनाथ से खरीदे गये कारखाने के अनेक वृद्ध मजदूरो को नौकरी से निकाल देता है, अनेको की छटनी कर देता है, उनके वेतन घटा देता है और इसके लिए कारखाने को घाटे मे चलने का बहाना बता देता है। ग्रामीणो की उपजाऊ जमीने छीन लेता है और उनके आँसू पोछने के लिए कुछ रुपयो का दान करके एक स्कूल खुलवा देता है। वह एसेम्बली का मेम्बर है अत बजट पेश होने से पूर्व ही उसे पता चल जाता है कि किस चीज पर शुल्क बढेगा और किस पर घटेगा, अत इसका लाभ उठाकर वह लखपति बन जाता है, लेकिन यह कार्य ऐसे ढग से करता है कि किसी को शक नही होता।

रमाकात त्रिलोकीनाथ के मुकाबले मे चेम्बर की प्रेसीडेन्टी के लिए खडा होता है। त्रिलोकीनाथ की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण वह रमाकात का कर्जदार है। रमाकाँत उससे रुपयो की वसूली के लिए उस पर स्वय दावा नही करता—क्योकि

इसके कारण उसके (रमाकात) बदनाम होने की सभावना है—परन्तु वह अपनी हुँडी एक दूसरे व्यक्ति को देकर उस पर दावा करा देता है जिससे कि वह (त्रिलोकीनाथ) दिवालिया घोषित हो जाये और रमाकात सहज मे ही प्रेसीडेन्ट बन जाये।

इसी बीच त्रिलोकीनाथ का हार्ट फेल हो जाता है और रमाकात उसकी शव यात्रा मे सम्मिलित होता है तथा शोक सभा मे उसकी प्रशसा के पुल बाधकर जनता की दृष्टि मे ऊचा उठ जाता है।

विशेषताएँ—प्रस्तुत नाटक मे नाट्यकार की सहानुभूति त्रिलोकीनाथ के प्रति है अत रमाकात ही बडा पापी है। समाज की निगाहो मे त्रिलोकीनाथ बडा पापी है क्योकि रमाकात के पापो का भडाफोड नही हो सका है। पाठको का निर्णय नाट्यकार की इच्छा के अनुरूप ही होगा। नाटक की समस्या पर्याप्त आकर्षक है और इस के कारण नाटक मे कुछ जान है।

अधिकाश कथोपकथन छोटे-छोटे है जो पर्याप्त स्वाभाविक है, कही-कही (पृ० 7-8, 11-12) त्रिलोकी नाथ के कुछ कथन लम्बे अवश्य है। नाटक मे कार्य-व्यापार का अभाव है और मलका के बाजारू गीत तो नितान्त अस्वाभाविक प्रतीत होते है।

सेठ जी के समस्या नाटकों का नाट्य-शिल्प

सेठ जी के समस्या नाटको मे राजनीतिक और सामाजिक जीवन की अनेकानेक समस्याओ की बुद्धिवादी व्याख्या मिलती है। उनके कुछ नाटको जैसे 'सतोप कहा', 'दु ख क्यो', 'महत्त्व किसे' आदि मे राजनीतिक एव सामाजिक समस्याओ का समन्वित रूप दिखाई पडता है।

सेठ जी के समस्या नाटको की शैली व्याख्यात्मक है—व्यग्यात्मक नही। डा० नगेन्द्र के अनुसार "उनकी शैली समझाने की, रास्ते पर लाने की शैली है, जिसमे एक निश्चित आदर्श के सहारे बातो को खोलने और समझाने का प्रयत्न होता है, तीखे शब्दो या व्यग्य की चोट से श्रोता को हत-प्रभ करने की चेष्टा नही। इसीलिए वह सर्वत्र सुलभ, स्पष्ट और विश्वास करने वाली हो सकी है। तीखी तिलमिला देने वाली नही जो राजनीतिक क्षेत्र मे अधिक सफल होती है।"[1]

समस्याओ के चित्रण मे सेठ जी ने गहराई मे प्रवेश का प्रयास नही किया, उनके अधिकाश नाटको की समस्याए राजनीति एव समाज के ऊपरी धरातल का स्पर्श ही करती है। "इनमे न तो सवेदना ही इतनी सूक्ष्म-कोमल है कि जीवन के स्थूल-सत्यो से विमुख होकर रोमास का आचल पकड सके और न चिन्ताधारा ही इतनी गहन है कि आध्यात्मिक जीवन की तरल समस्याओ को ग्रहण कर सके।"[2]

1 आधुनिक नाटक, पृ० 68।

2 वही, पृ० 65।

सेठ जी के सरल, सादे जीवन के अनुरूप ही उनके नाटको की समस्याए भी सीधी-सादी है, उनमे मनोग्रथियो की जटिलता, सेक्स की उलझने तथा मनोविज्ञान की सूक्ष्म पकड नही है। यौन नैतिकता के समर्थक होने के कारण सेठ जी ने सेक्स के अत्यन्त मर्यादित रूप का चित्रण किया है। इनके समस्या नाटको मे यौन-विकृति का अभाव मिलेगा और कही-कही (जैसे पतित सुमन मे) तो यौन-नैतिकता की रक्षा के लिए स्वाभाविकता पर बलात्कार तक किया गया है। अधिकाश नाटको का अन्त सघर्ष प्राय दुर्बल है। कुछ नाटकों मे गीतो का समावेश भी है जो स्वाभाविक नहीं प्रतीत होता।

कथोपकथन समस्या नाटको की उपयुक्तता को ध्यान मे रखकर प्राय छोटे-छोटे, सरल, सयत और स्वाभाविक ही रखे गये है। कही-कही (गरीबी या अमीरी) लम्बे लम्बे स्वगत भाषणो का प्रयोग भी किया गया है जिन्हे अधिक स्वाभाविक नही कहा जा सकता। नाटको की भाषा सयत और परिष्कृत है। उसमे पर्याप्त प्रवाहमयता भी विद्यमान है तथा वह पात्रो के अनुरूप परिवर्तिनी भी है। अधिकाश नाटको मे पाठको को कार्य-व्यापार के अभाव की शिकायत हो सकती है और कुछ दर्शको को उनमे रहस्यात्मकता, आकस्मिकता एव कौतूहल का अभाव भी खटक सकता है।

प्रतीक नाटक

अग्रेजी साहित्य मे स्पेन्सर की 'फेयरी क्वीन' तथा 'पिल्ग्रिम्स प्रोग्रेस' नामक दो प्रसिद्ध प्रतीकवादी रचनाए मिलती है। सस्कृत साहित्य मे अनेक प्रतीकवादी नाटक रचे गये, जिनमे से 'प्रबोधचन्द्रोदय' सबसे प्रसिद्ध है। हिन्दी साहित्य मे भी अठारहवी तथा उन्नीसवी शताब्दियो मे 'प्रबोध चन्द्रोदय' के कई अनुवाद हुए। उनके अतिरिक्त 'देवमायाप्रपच' नामक एक और नाटक भी उसी प्रसिद्ध प्रतीकवादी सस्कृत नाटक के अनुकरण मे लिखा गया।

हिन्दी मे मौलिक प्रतीकात्मक नाटक का श्रीगणेश प्रसाद के 'कामना' नाटक से होता है और पन्त का 'ज्योत्स्ना' तथा भगवती प्रसाद वाजपेयी का 'छलना' इस परपरा के प्रमुख नाटक है।

प्रतीकात्मक नाटको मे नाट्यकार अमूर्त वस्तुओ को मूर्त रूप प्रदान करता है और कथावस्तु के विकास मे उन्ही मूर्त रूपो के क्रियाकलाप द्वारा अमूर्त भावनाओ का विधिवत् रहस्योद्घाटन भी करता है।

प्रतीकात्मक नाटको की परम्परा मे सेठ गोविन्ददास का स० 1997 मे प्रकाशित 'नवरस' नाटक विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

नवरस—'नवरस' नाटक लेखक की विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है। इसमे भारतीय काव्य-शास्त्र मे वर्णित रसो की अमूर्तता को मूर्तता प्रदान की गयी है। डा० सावित्री सिन्हा के अनुसार, "रसवादी आचार्यों ने मानव-जीवन की समस्त

उदात्त और विकारी भावनाओ को आत्मसात् कर साहित्य के मूल्याकन के लिए जो मापदड बनाये, सेठ जी ने उन्हे 'नवरस' मे साकार कर दिया है ।"[1]

प्रतीकात्मकता

इस नाटक का प्रत्येक पात्र काव्यशास्त्रीय किसी न किसी रस का प्रतीक है और उसकी प्रतीकात्मक विशेषताओ को बनाये रखकर कथानक का विकास दिखाया गया है। नाटक का नायक वीरसिह, वीर रस का प्रतीक है और नायिका प्रेमलता शृगार रस का प्रतिनिधित्व करती है। वीरसिह के अतिरिक्त पुरुष पात्रो मे रुद्रसेन, ग्लानिदत्त, अद्‌भुतचन्द्र तथा भीम क्रमश रौद्र, वीभत्स, अद्‌भुत तथा भयानक रस के प्रतीक है। बालक मधु वात्सल्य रस का प्रतीक है। स्त्री पात्रो मे शान्ता, करुणा तथा लीला क्रमश शान्त, करुण और हास्य की मूर्ति है। पुरुष पात्रो के चरित्र मे ओज, शौर्य, उत्साह, क्रोध आदि भावो का प्राचुर्य है और स्त्री पात्रो मे स्निग्धता, कोमलता तथा स्त्रियोचित सौन्दर्य के दर्शन होते है। कथानक के विकास मे अपने क्रिया-कलाप तथा कथोपकथन द्वारा प्राय सभी पात्र अपने प्रतीक रस का स्वाभाविक चित्रण करते है।

कथावस्तु

बालक राजा मधु की अल्पवयस्कता तथा उसके पिता की असामयिक मृत्यु के कारण जब उसका राज्य उथल-पुथल हो रहा होता है, उस समय रुद्रसेन (वीरसिह का मत्री) शत्रु की निर्बलता का पूरा लाभ उठाने के लिए राजा वीरसिह को मधु के राज्य पर आक्रमण कर देने के लिए प्रेरित करता है। पहले वीरसिह उस युद्ध के औचित्य पर शका प्रकट करते है, किन्तु बाद मे अपनी स्वार्थ-सिद्धि (मधु की बहन प्रेमलता की प्राप्ति) के लिए वे निरपराध मधु पर आक्रमण कर देते है।

राजा वीरसिह की बहन शान्ता इस युद्ध का खुलकर विरोध करती है। पहले तो वह इस युद्ध को सर्वथा अनुचित बतलाकर अपने भाई वीरसिह को इससे विमुख करने का प्रयास करती है, लेकिन उसकी इच्छा के प्रतिकूल जब युद्ध आरभ हो ही जाता है तो वह अपने ही देश मे सत्याग्रही सेना का निर्माण करती है और इस कारण उसे देश-निष्कासन की सजा मिलती है। उसके देश छोडने पर बहुसख्यक जनता उसके पीछे हो जाती है और वह इस बहुसख्यक जनता रूपी नि शस्त्र सेना को लेकर युद्ध स्थल (निर्मला नदी का तट) पर सत्याग्रह करती है। उसकी नि शस्त्र सत्याग्रही सेना बिना किसी प्रतिकार के शत्रु-सेना की गोलियो की मार खाने के लिए कटिबद्ध हो जाती है। वीरसिह के सेनापति ग्लानिदत्त को कुछ आभास मिलता है कि उनकी सेना

1 डा० सावित्री सिन्हा—सेठ गोविन्ददास के सास्कृतिक नाटक, सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्र थ, पृ० 148।

सभवत नि शस्त्र लोगो पर हथियार नही उठायेगी, अत सेना को गोली चलाने की आज्ञा देने के लिए रुद्रसेन की प्रेरणा से राजा वीरसिंह रणक्षेत्र मे जाते है। किन्तु वहा पहुँच कर नि शस्त्र विशाल जन-समुदाय को गोलियो की बौछार सहने के लिए तत्पर देखकर, उनका हृदय परिवर्तित हो जाता है। दूसरे अक के छठे दृश्य मे वीरसिह के हृदय-परिवर्तन का दृश्य वडा ही मर्मस्पर्शी है। देखिए—

वीरसिह—(दूर्वीन से सामने देखते हुए) तुम्हे विश्वास है, रुद्र, कि मेरी आज्ञा मिलते ही सेना गोली चलायेगी।

रुद्रसेन—इसमे कोई शक हो सकता है, महाराज ?

वीरसिह—(उसी तरह देखते हुए) और मेरी आज्ञा का इतना महत्त्व इसीलिए है न, कि मैं राजसिंहासन पर बैठा हुआ हूँ ?

रुद्रसेन—अवश्य।

वीरसिह—(दूर्वीन हटाकर रुद्रसेन की तरफ देखते हुए) तो राजसिंहासन पर अधिकार रखने के कारण मै इतना वडा कार्य कर सकता हूँ। इतने नर-नारियो का क्षण मात्र मे मृत्यु भी सहार नही कर सकती, पर मै कर सकता हूँ, रुद्र, क्यो ?[1]

इसके उपरान्त राजा वीरसिह सेना को गोली चलाने की आज्ञा देने से इन्कार कर देते है। साथ ही वे अपना राजमुकुट तथा राज दड रुद्रसेन को देकर उसे महाराजाधिराज के पद पर प्रतिष्ठित कर स्वय रणक्षेत्र से हट जाते है।

महाराजाधिराज के पद पर रुद्रसेन सेना को नि शस्त्र सत्याग्रहियो पर गोली चलाने की आज्ञा देता है। किंतु उसके आश्चर्य का ठिकाना नही रहता जब एक भी गोली नही चलती और न बम गिरता है। सैनिक अपनी बन्दूके पृथ्वी पर फेक देते है और 'सत्याग्रह की जय', 'अहिसा की जय' के नारे आकाश मे गूँजने लगते है।

राजा वीरसिह के राज्य मे क्रान्ति होती है और रुद्रसेन वन्दी वनाया जाता है।

अत मे शान्ता के प्रयत्न से राजा वीरसिंह तथा प्रेमलता का विवाह सम्पन्न होता है और यही आकर नाटक का सुखात परिणति मे पर्यवसान हो जाता है।

विशेषताएं—प्रस्तुत नाटक मे प्रतीक-निर्वाह का अधिक से अधिक प्रयास परिलक्षित होता है। नाट्यकार ने विभिन्न रसो के प्रतीक पात्रो के रूप-रग, उनकी वेश-भूषा आदि का वर्णन भी प्राय प्राचीन शास्त्रसम्मत रसो के अनुकूल ही रखा है। उदाहरणार्थ वीरसिंह के वस्त्र हेमवर्ण, अद्भुतचन्द्र के पीत वर्ण के है। लीला की वेश-भूषा शुभ्र है और रुद्रसेन की लाल। भीम का वर्ण काला है। प्रेमलता एव मधु दोनो

1. नवरस, प्रथम स० 1997, पृ० 62।

की वेश-भूषा नीली है। प्रतीक पात्रो के व्यवहार एव उनके क्रिया-कलाप भी प्राय उनके अपने-अपने रसो के अनुकूल है। प्रेमलता एव वीरसिह का परिणय शृगार एव वीर का शास्त्र-समस्त मधुर सम्बन्ध का प्रतीक है। उनका यह परिणय इस बात को भी सिद्ध करता है कि सौंदर्य के उपभोग का अधिकार केवल वीर पुरुषो को ही है। लीला को प्रेमलता की बहन बनाने का अर्थ हास्य का शृगार की सहचरी होना है, जो सर्वथा उचित है। प्रेमलता (शृगार) और मधु (वात्सल्य) का सहज सम्बन्ध नितान्त स्वाभाविक है। शान्ता (शान्त) एव भीम (भयानक) का रुद्रसेन (रौद्र) से विरोध सर्वथा शास्त्र-सम्मत है। शान्ता के प्रयत्न से वीरसिह और प्रेमलता का विवाह इस बात का प्रतीक है कि उत्साह और रति पर शान्ति (सयम) का अकुश अनिवार्य है। कथानक मे प्रारभ से अत तक प्रतीक-निर्वाह नही हो पाया है।

आकृति के साथ वाणी और कर्म का सयोग भी मानवीकरण के लिए आवश्यक है परन्तु यह जितना पूर्ण होना चाहिए था उतना नही हो सका। वीरसिह निर्वीर्य है, प्रेमलता मे भी शृगार की उष्णता नही है। यद्यपि शान्ता और रुद्रसेन जिस पर इस नाटक का सघर्ष अवलम्बित है और लीला भी, काफी सप्राण है, फिर भी रस के इन प्रतीको का व्यक्तित्व जितना तीखा होना चाहिए था उतना नही हो सका। ऐसा लेखक मे कवित्व गुण क्षीण होने के कारण हुआ है—और यही इस नाटक की सबसे बडी दुर्बलता है।[1]

नाटक की भाषा परिष्कृत, सशक्त तथा भावाभिव्यक्ति मे समर्थ है। कही-कही तो भाषा काव्यात्मक बन गई है। एक उदाहरण देखिए—

> युद्ध-नीति और वीरता की विवेचना, सगीतमय मुख,
> कवित्वमय कर और नर्तनमय चरण नही कर सकते।[2]

बालक मधु की भाषा पर्याप्त आकर्षक है—

> तेली पूली बात छमछ मे नही आती। न दाने
> तूने अभी त्या त्या तै दाला।[3]

नाटक मे प्रयुक्त सभी गीत अवसरानुकूल, पात्रो के मनोभावो को प्रकट करने वाले स्वाभाविक है। लीला द्वारा गाये जाने वाले गीतो मे शिष्ट हास्य का रूप देखा जा सकता है—

> वीर बनो, भाई, वीर बनो।
> तोप चलाकर गेहूँ काटो,
> टारपीडो से धान,

---

1 आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ० 89।
2 नवरस, पृ० 6।
3 वही, पृ० 11।

वायुयान से बम्ब गिराकर,
काटो सब खलिहान ।
अगर मारना होवे मछली,
सब मैरिन ले आओ
गन मशीन चौके मे लाकर
खाना खूब पकाओ ।[1]

नाटक मे कार्य-व्यापार का अभाव नही है और कथानक भी पर्याप्त रोचक है । रगमच पर इसका अभिनय सफलतापूर्वक हो सकता है ।

दार्शनिक नाटक

इस वर्ग के अन्तर्गत सेठजी का केवल एक नाटक 'सुख किसमे' आता है। इसमे दार्शनिक तत्त्वो का विवेचन किया गया है । नाटकीयता से युक्त होने के कारण यह विवेचन केवलमात्र शुष्क दार्शनिक तत्त्वो का विवेचन नही रह गया है अपितु इसमे पर्याप्त रोचकता है। दार्शनिकता के साथ-साथ इसमे समस्या भी है कि सुख किसमे है ? इसीलिए कुछ आलोचको ने इसको समस्या नाटक माना है । वास्तव मे इस नाटक की समस्याएँ भी दार्शनिक पृष्ठभूमि मे अकित की गई है और इसमे समस्याओ को प्रमुखता न देकर नाट्यकार ने दार्शनिक चितन को प्रमुखता प्रदान की है अत समस्या नाटक की अपेक्षा इसे दार्शनिक नाटक कहना अधिक युक्तिसगत प्रतीत होता है ।

सुख किसमे—इसका प्रकाशन काल सन् 1949 है। अभी तक इसका द्वितीय सस्करण नही निकला है। इसमे कुल पाँच अक है और प्रत्येक अक मे दो-दो दृश्य है ।

कथानक

नाटक का नायक सृष्टिनाथ अतुल वैभव का स्वामी है। वह सट्टे का बहुत वडा व्यापारी है। उसके पास विलास के सभी साधन विद्यमान है। अचानक व्यापार मे लाखो का घाटा पड जाने के कारण वह विपन्न हो जाता है और हरिद्वार मे गगा मे डूबकर आत्महत्या करना चाहता है । वह गगा मे कूदने ही वाला होता है कि अचानक वैराग्य वैभव नामक साधु उसे रोक लेता है। वह उसे सन्यास की दीक्षा देता है और सृष्टिनाथ एक वर्ष तक वैराग्य भाव के साथ रहता है । यही नाटककार ने दोनो के शका-समाधान के माध्यम से दार्शनिक तत्त्वो (ससार की असारता, जीव की नित्यता, शरीर की क्षणभगुरता आदि) का विवेचन किया है । वैभव के सस्कारो मे पले सृष्टिनाथ को सन्यास से शान्ति नही मिलती और वैराग्य वैभव को छोड़कर चल

1 नवरस, पृ० 76 ।

देता है। वह पुन गगा की शरण मे जाने को तत्पर दिखाई देता है, उसी समय प्रेम-पूर्णा के प्रेम भरे सगीत उसके कानो मे सुनाई पडते हैं और वह रुक जाता है। दोनो का परिचय होता है और कुछ काल अनन्तर यह परिचय परिणय मे परिवर्तित हो जाता है। प्रेमपूर्णा वास्तव मे प्रकृति-पुत्री है। सारी सृष्टि मे उसे एक ही तत्त्व दिखाई पडता है अत वह सबको एक ही भाव से प्रेम करती है। सृष्टिनाथ उस पर अपना एकछत्र अधिकार रखना चाहता है लेकिन उसके लिए तो जैसे सृष्टिनाथ है वैसे ही सारे ससार के प्राणी हैं। प्रेमपूर्णा पर अपना पूरा अधिकार न देखकर वह वहाँ से चलकर मायासिद्ध के पास पहुँचता है। वह 6 वर्ष तक मायासिद्ध के बताये साधनापथ पर चलता हुआ उसकी सेवा करता है, इससे भी उसे मानसिक शान्ति नही प्राप्त होती और वह पुन आत्महत्या के लिए उद्यत होता है। इस बार पुनः प्रेमपूर्णा से उसका साक्षात्कार होता है और वह अपनी पुत्री मोहनमाला (जो सृष्टि-नाथ की भी पुत्री है) उसे सौंपती है। उस बच्ची के वात्सल्य मे समर्पण के भाव का अनुभव सृष्टिनाथ करता है, अब वह ग्रहण की अपेक्षा त्याग मे अधिक गौरव देखता है। मोहनमाला के कारण वह पुन गृहस्थ बन जाता है और अपने छोटे-से कुटुम्ब के साथ रहने लगता है, पुत्री पर उसका सबसे अधिक प्रेम होता है। अचानक मोहन-माला का देहान्त हो जाता है और वह उसके वियोग मे पागल हो जाता है। प्रेम-पूर्णा यह प्रयत्न करती है कि सृष्टिनाथ मोहनमाला के दु ख को भूलने के लिये सारी सृष्टि मे उसी के दर्शन करे। कुछ समय बाद सृष्टिनाथ प्रेमपूर्णा के द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलने लगता है और इस स्थिति मे उसे पूर्ण सुख और सतोष प्राप्त होता है।

प्रतीकात्मकता

नाटक के पात्र प्रतीक है। पात्रो की प्रतीकात्मकता का सकेत नाट्यकार ने स्वय नाटक मे किया है। नाटक का नायक सृष्टिनाथ समस्त भौतिक जगत् पर अधिकार के इच्छुक व्यक्ति का प्रतीक है। प्रेमपूर्णा पथ के अँधियारे मे सृष्टिनाथ को अनजाने मे मिली आशा-किरण की प्रतीक है। मोहनमाला क्षणभगुर सुख की पराकाष्ठा है। वैराग्य वैभव वैराग्य की भावना और मायासिद्ध सिद्धि की भावना के प्रतीक है। पात्रो के प्रतिनिधि भावो का सुन्दर चित्रण नाटक मे हुआ है।

सृष्टिनाथ का चरित्र-चित्रण स्वाभाविक एव मनोरम है। उसके अन्तर्द्वन्द्व का अच्छा चित्रण नाटक मे हुआ है। एक उद्धरण देखिये—

सृष्टिनाथ—(गगा के निकट खडे होकर उसे सम्बोधित करते हुए)—हाँ, माता, अनेक बार.. तेरी शरण. तेरी शरण मे आया और लौट गया। नये-नये प्रलोभन, नये-नये लालच इस फिसलाहट के कारण थे। ..वैराग्य का वैभव देख लिया। . माया की सिद्धि देख ली। और...और देखा यहाँ से बहुत निकट प्रेमपूर्णा का प्रेम। ..लेकिन लेकिन, कहीं भी तो सुख...सुख न मिला। पहले तेरी शरण मे आया था—इस जन्म को

खत्म कर ऐसा जन्म पाने के लिए जिसमे वृद्धि, अधिकार और सफलता तीन शब्दो मे सारा जीवन व्याप्त रहे। मुझे, माँ, यह सब यदि मिल जाए तो मैं कैसे हो सकता हूँ, यह भी मैंने देख लिया। वह स्वप्न था, होगा, पर स्वप्न मे जो देखा, वह यदि प्रत्यक्ष मे मिल जाए तो तो भी क्या सुख मिल जाएगा ? स्वप्न मे भी सुख नही मिला, ज्यो-ज्यो अधिक भोगा त्यो-त्यो विराग और घृणा की उत्पत्ति हुई, सुख की नही, माता ! प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष मे वही होगा।[1]

प्रेमपूर्णा के चरित्र मे आदर्श की रेखाएँ अधिक गहरी है। उसे हम कवि मानस की आध्यात्मिक बालिका कह सकते है। वह देवी हो सकती है लेकिन मानवी नहीं।

वैराग्य वैभव एव मायासिद्ध के माध्यम से सन्यासियो एव सिद्धो के अज्ञान पर अच्छा व्यग्य किया है। शेष पात्रो के चरित्रो मे कोई विशेषता नही है। नाटक के अधिकाश कथोपकथन तर्कपूर्ण शैली मे होने के कारण वाद-विवाद का अच्छा रूप प्रस्तुत करते है। कई सवाद एव स्वगत कथन (अक 1 दृश्य 2, अक 3 दृश्य 2) काफी लम्बे हो गये है जो स्वाभाविक प्रतीत नही होते।

नाटक मे प्राय प्रत्येक दृश्य से पूर्व लम्बे रग सकेत है जो अभिनय के लिए पर्याप्त सहायक सिद्ध होगे। नाटक अपने मूल रूप मे रगमच पर अभिनीत नही हो सकता, इसके लिए सिनेमा का उपयोग अनिवार्य है।

प्रस्तुत नाटक मे नाट्यकार का प्रमुख उद्देश्य यह दिखाना है कि जीवन का सुख न तो वैभव-विलास मे है, न वैराग्य मे, न दाम्पत्य जीवन मे और न सिद्धि प्राप्त करने मे। वास्तव मे सृष्टि के समस्त प्राणियो को आत्मरूप मानने की अभेद भावना मे ही पूर्ण सुख है। इस उद्देश्य की दृष्टि से नाटक को सफल कहा जा सकता है।

नाटकीय संवाद

विकास

'विकास' (1940) सेठ जी का नाटकीय सवाद है क्योकि वह रगमच के लिए अनभिनेय है। इसकी विशेषता का एक प्रमुख कारण इसके तात्त्विक सवाद है। यह कहना अधिक उचित होगा कि सवाद ही इस नाटक का प्राण तत्त्व है। इसमे किसी अक या दृश्य-योजना का लिखित विधान नही है केवल स्थान-परिवर्तन द्वारा दृश्य-परिवर्तन किया गया है।

---

1 सुख किसमे—प्र० स० 1949, पृ० 76-77।

कथावस्तु

नाटक का नायक तथा नायिका एक रात्रि मे सृष्टि के विकास के प्रश्न पर वाद-विवाद करते-करते सो जाते है। सोते हुए नायक के मन मे विकास के सम्बन्ध मे उसका दृष्टिकोण प्रबल हो उठता है और सोने के पहले इस विषय पर पत्नी से किया गया सारा वाद-विवाद साकार होकर उसके सामने उपस्थित हो जाता है। स्वप्न में नायक आकाश का एव नायिका पृथ्वी का रूप धारण करते है और उनमे सृष्टि-विकास के प्रश्न पर तर्क-वितर्क चलते है। विकास के सम्बन्ध मे पृथ्वी अपना मत प्रकट करते हुए कहती है—

> अहो, यह प्रकृति बाल छबि वान,
> सतत नियति से निश्चित इसका पतन और उत्थान।[1]

उसका विश्वास है कि सृष्टि चक्रवत् घूम रही है और इसका उत्थान तथा पतन सदा नियति के द्वारा निश्चित किया जाता है। न तो यह सदा उत्थान की दशा मे रहती है और न ही सदा पतनोन्मुख। इसके विपरीत आकाश की पूर्ण आस्था है कि —

> शैशव को अति क्रान्त कर, चढ विकास सोपान
> ज्ञान उच्चतम शिखर को, प्रकृति नित्य गतिमान।[2]

अर्थात् सृष्टि निरन्तर उत्थान की ओर बढ रही है, उसका प्रतिपल विकास होता है, पतन नही। उसके मतानुसार सृष्टि का पतन रहित विकास ही उसका सतत नियम है। अपने-अपने मत के समर्थन मे दोनो एक-दूसरे से बढकर अकाट्य तर्क प्रस्तुत करते है। वे दोनो विश्व इतिहास के भिन्न-भिन्न कालो से उदाहरण प्रस्तुत कर अपने मत का समर्थन करते है। आकाश महात्मा बुद्ध, अशोक, ईसा और गाँधी के जीवन के पक्ष को प्रस्तुत कर अपने विकासवाद का समर्थन करता है और पृथ्वी इन्ही के जीवन और सिद्धातो के श्याम पक्ष का निरूपण कर पतन के दृश्य दिखाकर अपने मत का समर्थन करती है। यहाँ यह सकेत कर देना अप्रासगिक न होगा कि नाट्य-कार ने उत्थान-पतन को आध्यात्मिक अर्थ मे प्रस्तुत किया है। वह अहिंसा को उत्थान एव हिसा को पतन मानता है। पृथ्वी और आकाश के बीच चलते हुए इस तर्कपूर्ण वाद-विवाद का अन्त अनिश्चय मे होता है, दोनो ही अपने मतो पर अडिग रहते है, कोई भी हार मानने को तैयार नही होता, उसी समय नायक की नीद टूट जाती है और वह निकट हो सो रही अपनी पत्नी को स्वप्न की बाते बताने के लिए आतुर दिखाई पडता है। पत्नी अनमनी-सी होकर उसके स्वप्न को सुनने के लिए

1 राम से गाँधी, पृ० 212।
2 वही, पृ० 212।

तैयार होकर बैठ जाती है और वह भी उसी के निकट बैठ जाता है। यही नाटक समाप्त हो जाता है।

कथावस्तु और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से नाटक का विशेष महत्त्व नही है। इसका महत्त्व इसके रगारग, रोमाटिक दृश्य विधान और तर्कपूर्ण प्रभावशाली सवादो के कारण है। सवादो की विशेषता के ही कारण नाट्यकार ने इसे 'नाटकीय सवाद' कहा है। नाट्यकार ने विभिन्न देशो और कालो के उज्ज्वल एव गरिमामय चित्र अकिन करने मे अपनी अद्भुत, सूक्ष्म प्रतिभा का परिचय दिया है। वैषम्य-चित्रण के उद्देश्य से उत्थान और पतन के दृश्यो का साथ-साथ चित्राकन अत्यन्त रमणीय है। अभिनय की दृष्टि से नाटक की रगमचीय असफलता का उद्घोष नाट्यकार ने स्वय किया है, उसका मत है कि हिन्दी की आज की रगमच की अवस्था मे 'विकास' को अनभिनेय ही मानना होगा। इसका प्रदर्शन यदि रजत-पट पर किया जाय तो नाटक अवश्य चमक उठेगा।

डा० नगेन्द्र ने इसे 'स्वप्न नाटक' कहा है। इस सम्बन्ध मे उनका कथन इस प्रकार है—

" 'विचार' की दृष्टि से यह सृष्टि के क्रम विकास की आलोचना करने वाला स्वप्न नाटक है।"[1] वे आगे लिखते हैं—

नाटक मे स्वप्न-नाटक की टैकनीक का पूरा निर्वाह है। लेखक ने बडे हलके हाथो से धीरे-धीरे सामने का पर्दा उठाया है। पहले छाया कृतियाँ प्रकट होती है, फिर क्रम से उनमे रग भरता जाता है और अन्त मे सपने की समाप्ति भी बडे कौशल के साथ होती है। यहाँ नाटककार यह सकेत देना नही भूलता कि नायक बहुत रात गए तक अपनी पत्नी से सृष्टि विकास की बात करता रहा था—और यह सकेत सफाई से स्वप्न नाटक की व्याख्या कर देता है।[2]

जहाँ तक स्वप्न-नाटक की टेकनीक के निर्वाह का सम्बन्ध है इसे स्वप्न-नाटक मानने मे किसी को आपत्ति नही हो सकती। परन्तु नाटक के दृश्यो एव पृथ्वी और आकाश के तर्कपूर्ण, सुसम्बद्ध सवादो को यदि स्वप्न की सज्ञा दी जायेगी तो मनोविज्ञान की दृष्टि से वे यथार्थ नही होगे। स्वप्न हमेशा असम्बद्ध और क्षणिक हुआ करते है। स्वप्न मे हम किसी तर्कपूर्ण, सुसम्बद्ध सवाद की कल्पना नही कर सकते और इतने लम्बे-लम्बे, सुनियोजित, तर्कनिष्ठ सवाद की तो बिल्कुल नही। अत इस नाटक को 'स्वप्न-नाटक' न कहकर यदि 'नाटकीय-सवाद' ही कहा जाय तो मेरे विचार से अधिक उपयुक्त होगा।

टेकनीक की दृष्टि से 'विकास' एक नया प्रयोग है। हिन्दी के विकासशील नाट्य साहित्य मे यह नवीन प्रयोगवादी रचना सदा अमर रहेगी।

---

1 आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ० 151।
2 वही, पृ० 152।

गीतिनाट्य

गीति-नाट्य से साधारणत तात्पर्य है, पद्य-बद्ध नाटक का। परन्तु गीति-नाट्य के लिए यही पर्याप्त नही है कि उसका माध्यम गद्य न होकर केवल पद्य हो। उसके लिए भावमयता अनिवार्य है। गीति-तत्त्व मे भावना की प्रमुखता है। इसीलिए गीति-नाट्य मे कार्य की अपेक्षा भाव का महत्त्व अधिक है। वास्तव मे जिस रूप मे कार्य की आशा हम नाटक या दृश्य-काव्य मे करते है उस रूप के कार्य का यहाँ अभाव ही मिलेगा। इसके अतिरिक्त भावना का प्राधान्य होने के कारण गीति-नाट्य मे सघर्ष स्वाभावत वाह्य न होकर आन्तरिक होता है—अर्थात् मन की भावना का दूसरी भावना के विरुद्ध सघर्ष ही यहाँ मिलेगा। वाह्य परिस्थितियो का सघर्ष यदि होगा भी तो उसका प्रयोग आन्तरिक सघर्ष को तीव्रतर बनाने के लिए ही होगा।[1]

डाक्टर दशरथ ओझा के अनुसार, "गीति-नाट्य मे बाहरी क्रियाशीलता और सघर्ष के स्थान पर मानसिक भावो का एक-दूसरे के साथ सघर्ष दिखाया जाता है। नाटक मे भौतिक युद्ध आन्तरिक सघर्ष को उद्दीप्त करने के लिए रखा जाता है। दूसरा अन्तर यह है कि गीति-नाट्य का सम्पूर्ण कथानक गेय होता है और उसका अभिनय सगीतमय होता है।"[2]

इस वर्ग के अन्तर्गत सेठ जी का केवल एक नाटक 'स्नेह या स्वर्ग' आता है।

स्नेह या स्वर्ग—इसका प्रथम सस्करण 1946 मे प्रकाशित हुआ। द्वितीय सस्करण ग्रन्थावली के अग के रूप मे तथा अलग से भी सन् 1959 मे छपा है। इसमे कुल तीन अक और प्रत्येक अक के चार-चार दृश्य, इस प्रकार कुल बारह दृश्य है। अन्त मे उपसहार की योजना भी की गई है।

प्रस्तुत गीति-नाट्य सर्वथा मौलिक कृति नही है अपितु यह यूनान के महाकवि होमर के महाकाव्य 'ईलियड' की एक कथा को भारतीय रूप देकर लिखा गया है।

कथावस्तु

अक्षय की परम रूपवती कन्या स्नेहलता पर देवराज इन्द्र का पुत्र जयन्त मोहित हो जाता है। वह अपनी बहन शुचिता को स्वर्ग से उसके पास विवाह-प्रस्ताव रखने एव उसकी स्वीकृति प्राप्त करने के लिए भेजता है। स्नेहलता के बचपन का साथी अजेय भी उस पर अनुरक्त है और वह भी पूर्णतया तो नही लेकिन आशिक

1 आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ० 94।

2 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, द्वितीय स०, सवत् 2013, पृ० 406-407।

रूप मे उसके प्रति आकृष्ट अवश्य प्रतीत होती है। वह शुचिता के प्रस्ताव को तत्क्षण स्वीकार करने मे अपनी असमर्थता प्रकट करती है और उससे (शुचिता) स्पष्ट कह देती है कि उसके (स्नेहलता) पिता को ही अपनी इच्छानुसार किसी के साथ उसका विवाह करने का अधिकार है। शुचिता के यह पूछने पर कि यदि उसके पिता ने इस विषय पर उसकी सम्मति मांगी तो वह किसके पक्ष मे देगी, स्नेहलता कहती है कि उसने अभी तक कोई निर्णय नही किया। उसका लोभी पिता अक्षय जयन्त के अतुल वैभव एव उसकी अमरता के कारण अपनी पुत्री का विवाह उससे ही करना चाहता है। जयन्त विवाह के बाद उसे वर देने का प्रलोभन भी देता है।

अजेय अपने मित्र प्रभाकर को स्नेहलता के पास स्वेच्छाचारी जयन्त के प्रेम का यथार्थ रूप बताकर उसे उसके प्रेमजाल मे फसने से बचाने के लिए भेजता है। मानिनी स्नेहलता प्रेम के मार्ग मे मध्यस्थता को अनुचित मानती है। अत वह प्रभाकर से बात ही नही करती। इसके बाद अजेय उसके पास स्वय जाता है और उसे यह समझा कर कि यहाँ (अक्षय के घर) वह परिणय के सम्बन्ध मे अपना निष्पक्ष मत निर्धारित न कर पायेगी उसे अपने यहाँ बुला लाता है। अजेय की इस कृति के लिए जयन्त उसे कटु शब्द कह कर अपमानित करता है। इस बात का पता लगाने के लिए कि दोनो मे श्रेष्ठ कौन है, वे दोनो द्वन्द्व-युद्ध के लिए तैयार हो जाते हैं।

समुद्र-तट पर देवो, मनुष्यो की अपार भीड दोनो का द्वन्द्व-युद्ध देखने के लिए एकत्रित होती है। देवराज इन्द्र, शची, शुचिता, स्नेहलता, अक्षय, प्रभाकर आदि भी वहाँ जाते है। दोनो का द्वन्द्व-युद्ध होता है, अजेय का पराक्रम देखकर सभी आश्चर्य-चकित हो जाते हैं। हार-जीत का निर्णय होने के पूर्व ही देवराज इन्द्र युद्ध रोक देते हैं। वे स्नेहलता को दोनो मे से किसी एक को स्वेच्छा से चुनने का अधिकार देते है। वह बहुत सोच-विचार के बाद अन्त मे अजेय के गले मे जयमाल डाल देती है। महेन्द्र उन दोनो को बधाई देते हैं और उन्ही के कहने पर जयन्त भी उन्हे बधाई देता है।

विशेषताएँ—प्रस्तुत नाटक मे लालसा और प्रेम के मध्य सघर्ष का यथार्थ चित्रण किया गया है। जयन्त के हृदय मे स्नेहलता के लिए सच्चा प्रेम नही है अपितु उसे तो केवल उसके यौवन का उपभोग करने की लालसा है। उसके विषय मे अजेय का कथन द्रष्टव्य है—

> अप्सरा विहारी हैं जयन्त स्वेच्छाचारी भी,
> सत्य स्नेह क्या है, वह सोच नही सकता।
> स्नेह लता की है मात्र लालसा ही उसको,
> पूरी हुई ज्यो ही वह त्याग देगा उसको।
> स्नेहलता होगी तब विवश विरहिणी।[1]

---

1 स्नेह या स्वर्ग, द्वि० स० 1959, पृ० 9।

अजेय के हृदय मे स्नेहलता के प्रति सच्चा अनुराग है। उसका कथन है—

मेरा प्रेम पारावार कितना अगाध है,
उच्छ्वसित उसकी उदग्र उग्र ऊर्मिया।[1]

इसमे स्नेहलता के आन्तरिक सघर्ष का सुन्दर चित्रण किया गया है। जयन्त और अजेय मे से वह किसका वरण करे, यह समस्या उसके सामने अन्तिम क्षण तक बनी रहती है। जयन्त के वरण मे जहाँ उसे स्वर्ग का अनन्त वैभव, अमरत्व प्राप्त होने का विश्वास है, वही वह यह भी सोचती है कि अप्सरा विहारी जयन्त मे केवल उसके यौवन, सौन्दर्य का उपभोग करने की लालसा है, उसके हृदय मे सच्चा प्रेम नही है। दूसरी तरफ अजेय मे उसे अपने प्रति सच्चा अनुराग दिखाई पडता है, परन्तु वहाँ उसे स्वर्ग का वैभव एव अमरत्व नही दिखाई देता। अपनी कठिनाई का उल्लेख अन्तरग सखी चपला से वह इस प्रकार करती है—

हाँ, हाँ, कठिनाई, नही अल्प मेरे सामने,
दिव्य है जयन्त और अद्भुत अजेय है।
मेरे लिए चुनना सरल नही, चपले।[2]

जयन्त के पक्ष का समर्थन करती हुई जब उसकी सखी चपला कहती है—

विस्मय है, एक ओर स्वर्ग की श्री सम्पदा
और अमरत्व चिर-यौवन सुहाग भी,
और अन्य ओर इनमे से नही एक भी
फिर भी तुम्हारे मन मे है द्वन्द्व इतना।[3]

तो इस पर स्नेहलता वडी विनम्रता से स्थिति को स्पष्ट कर देती है—

सखि, जिस पक्ष के तू पक्ष मे है कहती,
खोज मै रही हूँ वहाँ स्नेह भी है वा नही ?
सर्वगुण युक्त यह पक्ष बिना प्रेम के
ज्यो सदभाव रिक्त, अलकार युक्त काव्य हो।
किवा जीवहीन देह सज्जित सुभूषा से।
दिव्य है जयन्त, किन्तु मैंने अपने लिए
अब तक कोई प्रेम देखा नही उसमे,
आया नही आप, भेजी दूती मात्र उसने।[4]

वरण से कुछ क्षण पूर्व स्नेहलता जयन्त और अजेय के गुण-दोष का परीक्षण करती है। उसका अन्तिम निष्कर्ष है—

---

1 स्नेह या स्वर्ग, द्वि० स० 1959, पृ० 9।
2 वही, पृ० 13।
3. वही, पृ० 37।
4 वही, पृ० 37।

स्वैर चारी, अप्सरा विहारी इन्द्र सुत मे
आभा अभिमान की है, आभा नही, स्नेह की
आनन से, मुद्रा से, स्वरो से और शब्दो से —
सब से प्रकट यही एक बात होती है—
लालसा ! हाँ लालसा ! हाँ लालसा ! हाँ लालसा !
इसके विरुद्ध उस अतुल अजेय मे
क्या ही तप, क्या ही त्याग, और क्या ही प्रेम है ![1]

अन्त मे नाट्यकार उसी (स्नेहलता) के माध्यम से अपना उद्देश्य प्रकट करता है—

यौवन मे प्रेम बना स्नेह बाल्य काल का ।
स्नेह किंवा स्वर्ग मेरे जीवन का द्वन्द्व था,
जीत गया प्रेम, स्वर्ग हार गया अन्त मे,
मन कहता है, यही स्वर्ग सुख प्राप्त है ।[2]

डा० केशरीनन्दन मिश्र इस नाटक के सम्बन्ध मे लिखते है—

'स्नेह या स्वर्ग' घटना-प्रधान नाटक है, अत यह पद्यबद्ध नाटक ही है, 'गीति-नाट्य' नही ।[3]

इसका विवेचन भी उन्होने नाटक के अन्तर्गत न करके काव्य के अन्तर्गत किया है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि नाटक मे आन्तरिक सघर्ष के खोज का प्रयास न करने के कारण ही उन्होने इसे गीति-नाट्य की श्रेणी से बहिष्कृत कर दिया है । जिस आधार पर (घटना-प्राधान्य) उन्होने इसे पद्य-बद्ध नाटक कहा है, वास्तव मे वह आधार ही निराधार है । इसमें घटना की प्रधानता तो है ही नही, केवल द्वन्द्व-युद्ध और स्नेहलता द्वारा अजेय का वर्णन ही उल्लेखनीय घटनाएँ है । आश्चर्य है कि डा० मिश्र ने इसे घटना-प्रधान नाटक कैसे मान लिया ।

अजेय तथा जयन्त के द्वन्द्व-युद्ध की योजना द्वारा नाट्यकार ने इसमे बाह्य सघर्ष का समावेश भी किया है, यह बाह्य सघर्ष नायिका स्नेहलता के आन्तरिक सघर्ष को और तीव्र करता है ।

नाटक मे पात्रो का चरित्र-चित्रण पर्याप्त गम्भीरता लिए है । जयन्त के चरित्र मे उच्छृखलता, मिथ्याभिमान, कामुकता के दर्शन होते है । अजेय सच्चा

1 स्नेह या स्वर्ग, पृ० 95 ।
2 वही, पृ० 98 ।
3 'सेठ गोविन्ददास—कला एव कृतित्व', शोध-प्रबन्ध (अप्रकाशित), टकित प्रति, पृ० 128 ।

प्रणयी, वीर, आत्माभिमानी, निर्भय एव सयमी है। स्नेहलता दृढ तथा स्वतन्त्र विचारो की युवती है। वह सच्चे प्रणय के चरणो पर स्वर्ग के सुख वैभव को भी तिलाजलि दे देती है। अक्षय का चरित्र-चित्रण लोभी पिता के रूप मे हुआ है जो अपनी कन्या की भावनाओ के विरुद्ध वैभव के प्रलोभन मे उसका विवाह जयन्त के साथ करने के लिए राजी हो जाता है। महेन्द्र मे देवत्व का विकास अपनी चरम सीमा पर है।

नाटक की सवाद-योजना सुन्दर है। इसके कारण रोचकता की अभिवृद्धि हुई है। स्वगत कथनो का अभाव है। अजेय और जयत के सवाद का एक नमूना देखिए—

जयन्त—मूढ अपमान करता है यो अमर्त्य का,
नाचता है काल तेरे सिर पर देख तू।
अजेय—काल यदि आएगा तो मुक्ति ही तो लाएगा।
जब लो न आवे मृत्यु, मर्त्य भी अमर्त्य है।
जयन्त (अट्टहास पूर्वक)—मर्त्य भी अमर्त्य है ? जो छुई-मुई का भाई है !
अजेय—मरना भी मानवो की अपनी महानता।[1]

भाषा की दृष्टि से नाटक मे पर्याप्त सजीवता है। वह भावो की अनुवर्तिनी है, कहीं-कही अलकारो की छटा भी दिखाई पडती है। उत्प्रेक्षा अलकार का एक उदाहरण देखिए—

दोनो रक्त रजित हो दीखते थे ऐसे वे
फूले दो विशाल साल लाल-लाल फूलो के
शैल के दो शृ गो पर मानो दीप्तिमान हो।[2]

अनेक स्थलो पर भाषा की प्रवाहमयता, भावो की कोमलता के कारण कथन काफी रमणीय बन गए है। यथा—

आप ही अनन्त है जो क्यो उस जयन्त की
प्रेमिकाएँ भी न होगी सोच लो अनन्त ही,
सारस-सा प्रेम कहाँ ? पारावत-सा वहाँ।
क्रीडा जिन पल्लवो से करता पवन है
नव्यता गयी जहाँ उन्ही को गिरा देता है।[3]

भाषा, भाव, चरित्र-चित्रण तथा संवाद आदि अनेक दृष्टियो से सेठ जी का 'स्नेह या स्वर्ग' एक सफल गीति-नाट्य है।

---

1 स्नेह या स्वर्ग, पृ० 56-57।
2 वही, पृ० 83।
3 वही, पृ० 42।

अध्याय 10

एकांकी

एकाकी नाटक साहित्य का वह नाट्य-प्रधान रूप है, जिसके माध्यम से मानव-जीवन के किमी एक पक्ष, एक चरित्र, एक कार्य, एक परिपार्श्व, एक भाव की ऐसी कलात्मक व्यजना की जाती है कि ये एक अविकल भाव से अनेक की सहानुभूति और आत्मीयता प्राप्त कर लेते है।

कलेवर की दृष्टि से एकाकी एक अक का नाटक है, किन्तु दृश्य-विधान के अनुमार इसके दो भेद किये जा सकते है—पहला, एक दृश्य का एकाकी, दूसरा अनेक दृश्यो का एकाकी। पहली श्रेणी के एकाकी मे कथा किसी घटित घटना के मार्मिक स्थल मे आरम्भ होती है और भावी घटनाओ के अवरोध से जिज्ञासा तथा कुतूहल की वृद्धि करती हुई तीव्र गति से विस्मयपूर्ण सक्रमण विन्दु तक पहुँच जाती है। इसमे कथा का प्रवाह उम निर्झर के समान होता है, जो किसी पहाडी से अकस्मात् फूटता है, कुछ दूर तक दिखाई पडता है और शीघ्र ही आँखो से ओझल हो जाता है। इस प्रकार के नाटको मे एक ही स्थान पर, एक ही समय मे कार्य सम्पन्न हो जाता है। दूमरी श्रेणी के नाटको मे विभिन्न स्थलो और समयो की घटनाओ द्वारा कथा मे वक्रता या विचित्रता उत्पन्न करने का प्रयास किया जाता है, जिसके फलस्वरूप दो या दो मे अधिक दृश्यो की योजना करनी पड जाती है। इस प्रकार के नाटको मे स्थल, काल और कार्य की एकता नही रह पाती, इसमे कथा की धारा भूप्रदेश की प्रवाह शीला, विम्तृत मूलवती सरिता के सदृश होती है, जो ऋजु या वक्रगति से अग्रगामी होकर उद्देश्य सिन्धु से मिल जाती है। ऐसे नाटको मे चरम विन्दु की उत्कटता नही होती। उनमे किसी ममस्या के उत्पन्न करने या तथ्य को उद्घाटन करने मे ही नाटक की मफलता मानी जाती है।[1]

सम्पूर्ण (अनेकाकी) नाटको की भाति सेठ गोविन्ददास ने प्रचुर परिमाण मे एकाकी नाटको का सृजन भी किया है। इनके प्रकाशित और अप्रकाशित एकाकियो की कुल मख्या 75 है। विषय-वस्तु की दृष्टि से इनके एकाकी नाटको मे पर्याप्त विविधता है। इन्होंने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एकाकियो का निर्माण तो किया ही

---

1 हिन्दी माहित्य कोश, भाग 1, द्वि० स०, पृ० 185।

है, इनके अतिरिक्त एक-पात्री एकाकियो, हास्य-व्यग्य-प्रधान प्रहसनो एव वैदेशिक कथाओ पर आधारित एकाकियो का सृजन भी किया है।

सेठ जी का एकाकी-लेखन सन् 1936 से 'स्पर्द्धा' नामक एकाकी की रचना से प्रारम्भ होता है। 'सप्तरश्मि', 'अष्टदल', 'एकादशी', पचभूत' एव 'चतुष्पथ' उनके प्रारम्भिक एकाकियो के सग्रह हैं। केवल वैदेशिक कथाओ पर आधारित एकाकियो को छोडकर शेष उनके सभी एकाकी प्रकाशित हो गये हैं। भारतीय विश्व-प्रकाशन दिल्ली ने सेठ जी के एकाकियो के विभिन्न सग्रह ऐतिहासिक कालक्रम, विषय-वस्तु की समानता एव समान टेकनीक को दृष्टि मे रखकर प्रकाशित हुए हैं। इन सग्रह ग्रथो के नाम है—प्रागैतिहासिक काल के भारत की एक झलक, प्राचीन काश्मीर की एक झलक, दक्षिण भारत की एक झलक, मुगलकालीन भारत की एक झलक, अग्रेजो का आगमन और उसके बाद, हमारे मुक्तिदाता, स्पर्द्धा तथा सात अन्य एकाकी, धोखेबाज तथा दस अन्य एकाकी, शाप और वर तथा अन्य एकपात्री नाटक, भविष्यवाणी तथा अन्य प्रहसन।

यह कहना तो कदाचित् अतिशयोक्तिपूर्ण होगा कि सेठ जी के सभी एकाकी कला की दृष्टि से उत्कृष्ट कोटि के है। उनके एकाकियो मे एकाकी कला का विकास खोजना भी व्यर्थ प्रयास ही होगा। एकाकियो मे से कुछ निश्चित रूप से उत्तम कोटि के है।

प्रस्तुत अध्याय मे सेठ जी के एकाकियो का सामान्य परिचय एव उनकी प्रमुख विशेषताओ का उल्लेख ही हमारा अभीष्ट है।

पौराणिक एकांकी

'प्राग् ऐतिहासिक काल के भारत की एक झलक' पुस्तक मे सग्रहीत 'कृषि-यज्ञ' सेठ जी का एक-मात्र पौराणिक एकाकी है। यह वाल्मीकि रामायण की एक कथा पर आधारित है। इसका समय त्रेता युग मे भगवान् राम के राज्य-काल की अवधि मे पडने वाला समय है।

इसका कथानक सक्षेप मे इस प्रकार है—गुरुकुल का सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी, वेद-वेदाग वेत्ता, ब्राह्मण कुलोत्पन्न त्रिजट समावर्तन से एक दिन पूर्व कृषि करने का निश्चय प्रकट करता है। उसके इस निश्चय से उसके अन्य साथी आश्चर्य-चकित हो जाते है, विशेषत इसलिए कि ब्राह्मण के लिए धर्म मे हल चलाना वर्जित है। वे त्रिजट को समझाते है कि उसका यह निश्चय किसी भी दशा मे उचित नही है क्योकि कृषि कार्य करने पर वह अपनी विद्वत्ता के बावजूद पतित ब्राह्मण माना जाने लगेगा। त्रिजट पर उसके साथियो के समझाने का कोई असर नही होता। वह कृषि कार्य एव हल चलाने को अधर्म न मानकर सबसे बडा धर्म मानता है और यही नही उसे यज्ञ के समान पवित्र भी समझता है। वह कृषि कार्य को अपने लाभ के लिए धन कमाने के

साधन के रूप मे अगीकार नही करता अपितु इस कार्य द्वारा समाज की सेवा करना चाहता है। अपने कुटुम्बी जनो के साथ दरिद्रता का जीवन बिताता हुआ वह कृषि-यज्ञ करता है। नित्य प्रति बीज, भूमि एव कृषि सम्बन्धी दिशाओ मे वह नवीन प्रयोग करता है और इससे अनाज की उपज मे निरतर वृद्धि होती जाती है। वह अपने लिए आवश्यक बीजो को रखकर बाकी उन लोगो मे वितरित कर देता है जिन्हे उसकी आवश्यकता होती है। उसकी पत्नी दरिद्रता से ऊबकर कृषि-कार्य छोडने के लिए उसे कहती है लेकिन त्रिजट अपने निश्चय पर अडिग रहता है। त्रिजट निष्क्रिय जीवन को अभिशाप मानता है और निरतर कार्यशील रहकर समाज का कल्याण ही उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य है। वह कृषि को नीच वृत्ति न मानकर, ऋग्वेद के एक मत्र के आधार पर उसे सब वर्णो के लिए समान उपयोगी मानता है।

भगवान् राम उसकी दिव्यता से प्रभावित होकर उसे एक हजार गाय दान मे देते है। 14 वर्षो मे वह अपने श्रम और सेवा से उनकी सख्या सवा लाख तक पहुँचा देता है। बैलो से ऊसर भूमि की जुताई होती है, कृषि उत्पादन मे अपरिमित वृद्धि होती है और चारो ओर लहलहाते उद्यान दिखाई पडते है। उसके वे साथी जो प्रारभ मे उसका विरोध करते थे स्वयं उसके इस कार्य मे सम्मिलित हो जाते है। कृषि-यज्ञ के साथ-साथ अन्य यज्ञो का आरभ भी होता है। विद्याध्ययन के लिए गुरुकुलो की स्थापना होती है, परिश्रमालय एव औषधालय भी चलाये जाते है। अत मे भगवान् राम त्रिजट के कार्यो की प्रशसा करते हुए कहते है—

आर्य त्रिजट आपने ससार के सामने एक नये प्रकार का यज्ञादर्श उपस्थित किया है और ब्राह्मणो के छहो कर्मो अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन दान और प्रतिग्रह का सुन्दर पालन भी आप कर रहे है। राम राज्य मे सदा इस प्रकार के यज्ञो की प्रतिष्ठा रहेगी।[1]

प्रस्तुत एकाकी मे वर्णव्यवस्था के मिथ्याडबरो पर प्रबल प्रहार किया गया है। त्रिजट ब्राह्मण का कृषि-कार्य आजकल के उन ब्राह्मणो के लिए एक आदर्श है जो अपने कर्तव्य की इतिश्री केवल दो-चार मत्रो को पढकर यज्ञ कराने एव दान के नाम पर जनता को लूटने मे ही मानते है। पौराणिक होते हुए भी इसकी समस्या आधुनिक है। आज भी बहुत से ब्राह्मण कृषि-कार्य को नीच-वृत्ति मानते है। भारत की खाद्य-समस्या को सुलझाने मे इस एकाकी के आदर्श पर्याप्त उपयोगी सिद्ध हो सकते है। विचार की दृष्टि से एकाकी की सफलता असदिग्ध है। त्रिजट का त्याग एव कर्मण्य जीवन भी अनुकरणीय है। एकाकी मे कौतूहल एव जिज्ञासा का अभाव है। कथा-रस के इच्छुक पाठको को निराश ही होना पडेगा।

---

1 प्राग् ऐतिहासिक काल के भारत की एक झलक, पृ० 71।

ऐतिहासिक एकांकी

इस वर्ग के अन्तर्गत सेठ जी के निम्न छ एकाकी-सग्रह आते है—

1 प्राग् ऐतिहासिक काल के भारत की एक झलक
2 प्राचीन काश्मीर की एक झलक
3 दक्षिण भारत की एक झलक
4 मुगलकालीन भारत की एक झलक
5 अग्रेजो का आगमन और उसके बाद
6 हमारे मुक्तिदाता

1 **प्राग् ऐतिहासिक काल के भारत की एक झलक**—प्रस्तुत एकाकी सकलन मे 'रैक्व और जानश्रुति', 'कर्म ही सच्चा वर्ण अथवा जाबाल सत्यकाम', 'कृषि-यज्ञ', 'महावीर का मौन भग', 'बुद्ध की एक शिष्या विशाखा' और 'बुद्ध के सच्चे स्नेही कौन' ये छ एकाकी सग्रहीत है। 'कृषि-यज्ञ' का विवेचन पौराणिक एकाकी के सन्दर्भ मे किया जा चुका है।

'रैक्व और जानश्रुति' की कथा छादोग्य उपनिषद् से ली गई है। अपनी उदारता एव दानशीलता के कारण प्रजा मे लोकप्रिय राजा जानश्रुति एक दिन जन सामान्य की भावनाओ का पता लगाने के उद्देश्य से सामान्य नागरिक के वेश मे एक स्थान पर एकत्रित जनसमूह मे सम्मिलित हो जाते है। वहा भल्लाक्ष नामक एक नागरिक महात्मा रैक्व को उनसे भी अधिक दानी और उदार बताता है। रैक्व की विशेपताएँ यह है कि वह अपने कर्तव्य का ईमानदारी से पालन करता है, श्रम को महत्त्व देता है, परिश्रम से अधिक मजदूरी लेना पाप समझता है और वेदान्त के अभेद तत्त्व मे विश्वास रखने के कारण सभी लोगो को अपने ही समान मानता है। उसका जीवन सादा और सरल है, अपनी गाढी मेहनत से प्राप्त किये गये धन मे से कुछ भाग अपाहिजो को दान करता है। राजा जानश्रुति उसकी परिश्रमशीलता, व्यवहार तथा सादे जीवन के कारण उससे अत्यधिक प्रभावित होते है और उसी के अनुरूप अपना जीवन बिताने का निश्चय करते है।

प्रस्तुत एकाकी मे लेखक का मूल उद्देश्य महात्मा रैक्व की चारित्रिक विशेपताओ के माध्यम से सच्चे जीवन का रहस्य प्रकट करना है और इस दृष्टि से एकाकीकार का प्रयास सराहनीय है। इसके अतिरिक्त एकाकी मे अन्य कोई उल्लेखनीय विशेपता दृष्टिगोचर नही होती।

'कर्म ही सच्चा वर्ण अथवा जाबाल सत्यकाम' की कथा भी छान्दोग्य उपनिषद् से ली गई है। जाबाला का पुत्र जाबाल महर्षि गौतम के गुरुकुल मे उनका शिष्यत्व ग्रहण करने के उद्देश्य से जाता है। प्राचीन वर्म-व्यवस्था के अनुसार उसे अपना शिष्य बनाने से पूर्व महर्षि गौतम उससे उसका गोत्र, वर्ण एवं पिता का नाम पूछते है। द्वादश वर्षीय बालक जाबाल अपने वर्ण गोत्र और यहा तक कि अपने

पिता के नाम से भी अनभिज्ञ होता है, अत वह महर्षि के प्रश्नो का उत्तर नही दे पाता। गौतम उसे इन प्रश्नो का उत्तर मा से पूछ कर आने के लिए भेज देते है। वहा से वापस आकर जावाल गौतम से कहता है—"उन्होने कहा कि मेरा कोई गोत्र या वर्ण नही है। मेरे पिता का नाम भी ज्ञात नही है। मेरी मा जब युवती हुई उस समय वे एक ऋषि आश्रम मे आया जाया करती थी, वही मैं उनकी कोख मे आया।"[1] उसकी इस सत्यवादिता से प्रभावित होकर महर्षि गौतम सहर्ष उसे अपना शिष्य बनाना स्वीकार कर लेते है और उसका नाम सत्यकाम घोषित कर देते है।

प्रस्तुत एकाकी का प्रतिपाद्य विषय इसके नाम से ही स्पष्ट है। इसमे एकाकीकार ने यही दिखाया है कि कर्म ही सच्चा वर्ण है। नाटक मे जाबाल के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण भी हुआ है। कथोपकथन प्राय छोटे-छोटे एव स्वाभाविक है। परन्तु दूसरे दृश्य मे जावाल का स्वगत कथन जो पूरे आठ पृष्ठो का है किसी प्रकार भी स्वाभाविक नही कहा जा सकता।

'महावीर का मौन भग' एक लघु एकाकी है। इसमे महा अहकारी इन्द्रभूति गौतम का जैनधर्म के चौबीसवे तीर्थकर वर्द्धमान महावीर का शिष्यत्व ग्रहण और इन्द्रभूति जैसे समर्थ शिष्य को पाकर उनका (महावीर) मौन भग वर्णित है। कथानक की दृष्टि से एकाकी का महत्त्व न होने पर भी सवादो की सजीवता से इन्कार नही किया जा सकता।

'बुद्ध की एक शिष्या विशाखा' मे विशाखा की बुद्धिमत्ता एव उसकी आन्तरिक वीरता का चित्रण किया गया है। बौद्धधर्मावलम्बी परिवार मे पोषित विशाखा का विवाह जैन धर्मावलवी परिवार के युवक पुण्यवर्धन से होता है। इस अन्तर्धार्मिक विवाह का कुछ लोग विरोध भी करते है। ससुराल मे विशाखा के कथन एव कार्य से उसके श्वसुर मिगारा को गलतफहमी हो जाती है और वे उसे अपराधिनी घोषित कर घर से निकल जाने का आदेश देते है। विशाखा द्वारा वास्तविक स्थिति स्पष्ट किये जाने पर उनकी गलतफहमी दूर हो जाती है और वे उसे रोकने के लिए अधीर हो उठते है। विशाखा के साथ पुण्यवर्धन भी जाने के लिए तैयार होता है। वह (विशाखा) किसी प्रकार भी उस घर मे रहने के लिए राजी नही है। अत मे विशाखा की पुरुषो एव स्त्रियो के प्रति समदृष्टि, बौद्ध और जैन धर्म का समान स्थान तथा असहिष्णु और असभ्य व्यक्तियो के प्रति कोई लगाव न रखने की ये तीन शर्तें मजूर कर ली जाती है और वह गृह-त्याग का निश्चय छोड देती है।

प्रस्तुत एकाकी का कथानक पर्याप्त रोचक है और पाठको की जिज्ञासा बनाये रखने मे समर्थ है। सम्वाद, विशेषत विशाखा के कथन, काफी सजीव है। विशाखा का चरित्र-चित्रण एक निर्भीक, बुद्धिमती नारी के रूप मे किया गया है। इसे सेठ जी के सफल एकाकियो मे परिगणित किया जा सकता है।

---

1 प्राग् ऐतिहासिक काल के भारत की एक झलक, पृ० 40।

'बुद्ध के सच्चे स्नेही कौन ?' इस सग्रह का अतिम एकाकी है। महात्मा बुद्ध के यह घोषणा करने पर कि वे चार मास के भीतर निर्वाण पद प्राप्त कर लेंगे, उनके शिष्यो मे से केवल दो—तिस्य और धर्मराम को छोडकर शेष सभी शिष्य शोक से विह्वल हो उठते है। उन सब की आखो से अश्रुधारा बहने लगती है, परन्तु तिस्य और धर्मराम पर कोई प्रभाव नही पडता। सभी शिष्य उन दो को पाषाण-हृदय व्यक्ति घोषित करते हैं। अत मे महात्मा बुद्ध यह घोषणा करते है कि उनकी शिक्षा को वास्तविक रूप मे इन दोनो ने ही ग्रहण किया है अत इनके सदृश व्यक्ति ही उनके (बुद्ध के) सच्चे स्नेही कहलाने के अधिकारी है।

2 **प्राचीन काश्मीर की एक झलक**—यह चार एकाकियो का सग्रह है। इसमें सग्रहीत एकाकियो के नाम है—जालौक और भिखारिणी, चन्द्रापीड और चर्मकार, सहित या रहित और अट्ठानवे किसे। सग्रह के सभी एकाकियो के कथानक काश्मीर के प्राचीन राजाओ से किसी न किसी रूप मे सम्बद्ध है।

'जालौक और भिखारिणी' की कथावस्तु कवि कल्हण कृत 'राजतरगिणी' से ली गई है। इसमे राजा जालौक के प्रतिज्ञापालन, उनकी अहिंसा तथा प्रजावत्सलता का चित्र प्रस्तुत किया गया है।

राजा जालौक का आदेश है कि उसके राज्य मे किसी प्रकार की हिंसा न की जाय। उसका यह भी नियम है कि धार्मिक अथवा अन्य किसी प्रकार के व्रत के अतिरिक्त यदि कोई उसके राज्य मे भूखा रहता है तो उसे खिलाये बिना वह भोजन नही करता। एक दिन उसके राज्य म एक भिखारिणी केवल नर मास खाकर ही अपनी क्षुधा-तृप्ति की घोषणा करती है। अधिकारियो के अनुनय-विनय पर वह किसी प्रकार भी अन्न ग्रहण के लिए राजी नही होती। राजा उसे नर-मास देने का वचन देता है। अब राजा के सामने एक विकट समस्या आती है—यदि वह नर-मास देता है तो उसके अहिंसा नियम का उल्लघन होता है और यदि नही देता है तो उसका वचन भग होता है। अत मे राजा अपने शरीर का मास देने का निश्चय करता है, क्योकि यह कार्य हिंसा न होकर बलिदान है। जब अन्य लोग अपना मास देने का आग्रह करते है तो वह यह कहकर कि अन्य लोगो का मॉस देना उनके लिए तो बलिदान है लेकिन मेरे लिए हिसा है, मना कर देता है। राजा अपने शरीर का मास काटने को उद्यत होता है, उसी क्षण भिखारिणी आगे बढकर उसका हाथ पकड लेती है और बोल पडती है—"धन्य, राजन्! आपको धन्य है! हो गया। मैं तृप्त हो गयी। आपने विश्व मे सिद्ध कर दिया कि आप सच्चे राजा, सच्चे सत्यवादी, सच्चे अहिंसक और सच्चे धर्मात्मा है।"[1]

एकाकी की कथावस्तु रोचक है और अन्त तक पाठको की जिज्ञासा बनी रहती है। राजा जालौक का चरित्र-चित्रण बहुत सुन्दर है। हिंसा और बलिदान के अन्तर

1 प्राचीन काश्मीर की एक झलक, पृ० 24।

को बड़ी सूक्ष्मता से प्रकट किया गया है। अन्तर्द्वन्द्व का अवसर विद्यमान रहने पर भी नाट्यकार ने उनका चित्रण नही किया। राजा जालौक के मानसिक संघर्ष को चित्रित कर दिया गया होता तो एकाकी की सुन्दरता और बढ जाती।

'चन्द्रापीड और चर्मकार' सेठ जी का अनेक दृश्यो वाला बृहद् एकाकी है। इसमे तेरह दृश्य और अत मे उपसहार है। इसकी कथा कल्हण के प्रसिद्ध काश्मीर के ऐतिहासिक ग्रथ 'राजतरगिणी' से ली गई है। कथा का आधार ऐतिहासिक है लेकिन कल्पना के पुट ने इसकी रूप-सज्जा को द्विगुणित कर दिया है। इसमे काश्मीर के राजा चन्द्रापीड और रैदास चमार की कथा वर्णित है।

काश्मीर का राजा चन्द्रापीड श्रीनगर के बाहर त्रिभुवन स्वामिन का मन्दिर बनवाना आरम्भ करता है, मन्दिर के घेरे मे वहा बसे अनेक चमारो की झोपडिया आ जाती है और राजा उन्हे उचित मुआवजा देकर अन्य स्थानो पर बसा देता है और उनकी झोपडिया ले लेता है। इन्ही चमारो मे बसे रैदास की झोपडी भी मन्दिर के घेरे मे आती है, रैदास किसी भी दशा मे अपनी झोपडी छोडने के लिए राजी नही होता। राज्य-कर्मचारी हर प्रकार से उस पर दवाव डालते है लेकिन वह टस से मस नही होता। रैदास के दृढ निश्चय की सूचना राजा को मिलती है। उसके पुरोहित तथा मत्री बलपूर्वक रैदास की झोपडी छीन लेने की राय देते है। न्यायप्रिय राजा को यह राय अनुचित प्रतीत होती है। वह रैदास को अपने राजप्रासाद मे बुलवाता है, कुल पुरोहित की व्यवस्था के अनुसार चमार का राजप्रासाद मे प्रवेश निषिद्ध होता है और राजा पर उसकी छाया भी नही पडनी चाहिए। राजा रैदास से राजप्रासाद के बाहर इस प्रकार मिलने का निश्चय करता है जिससे उसकी छाया उस पर न पड़ सके। इसी व्यवस्था के अनुसार भेट का आयोजन होता है। रैदास इसे अपना अपमान समझता है और एकत्रित जनसमूह के बीच अपनी मनोभावनाओ को बडे साहस से प्रकट कर देता है। रैदास के साहस से राजा भी हतप्रभ हो जाता है। अत मे प्रायश्चित्तस्वरूप राजा स्वय रैदास के पास जाता है, राजा की दयालुता, प्रजावत्सलता को देखकर रैदास का सारा क्रोध मिट जाता है और वह सहर्ष अपनी झोपडी राजा को अर्पित कर देता है। राजा भी यह घोषणा करता है कि इस मन्दिर मे हरिजनो का प्रवेश भी अन्य नागरिको के समान ही होगा।

प्रस्तुत एकाकी मे राजा चन्द्रापीड की न्याय-प्रियता, प्रजावत्सलता, दयालुता आदि का चित्रण किया गया है। राजा वर्ण-व्यवस्था के मिथ्याडम्बरो को मिटाकर सवर्ण-अवर्ण के प्रति समान व्यवहार करता है। इसमे अस्पृश्यता की समस्या को भी बडे सुन्दर रूप मे प्रस्तुत किया गया है। अस्पृश्यो के प्रति राजा चन्द्रापीड का व्यवहार एक आदर्श है। अधिकाश कथोपकथन स्वाभाविक है, विशेष रूप से चन्द्रापीड एव रैदास के सवाद तो पर्याप्त सजीवता लिये है। एकाकी का विस्तार अधिक है, 13 दृश्यो मे फैलाये गये कथानक को सुगुम्फित करके चार-पाच दृश्यो मे प्रस्तुत किया जाता तो इसकी प्रभविष्णुता निश्चित रूप से बढ जाती।

'सहित या रहित' इस सग्रह का तीसरा लघु एकाँकी है। इसमे कुल तीन दृश्य है। इसका सम्बन्ध काश्मीर के राजा यशस्कर से है।

राजा यशस्कर के सामने एक ऐसा मुकदमा आता है जिसका निर्णय 'सहित' या 'रहित' पर निर्भर है। वादी सत्यव्रत का कहना है कि उसने अपना जो उद्यान लक्ष्मीदत्त को बेचा था उसके विक्रय-पत्र मे उद्यान का कूप और उसके पास की भूमि के सम्बन्ध मे 'रहित' शब्द था अर्थात् ये नही बेचे गये थे। लक्ष्मीदत्त वही विक्रय-पत्र प्रस्तुत करता है और उसमे कूप एव उसके पास की भूमि के 'सहित' बेचे जाने का उल्लेख है। राजा बडी बुद्धिमत्ता से इस बात का पता लगा लेता है कि बाद मे 'रहित' के स्थान पर 'सहित' किया गया है और इसके लिए लक्ष्मीदत्त को कठोर दण्ड देता है।

इसमे राजा की न्यायप्रियता एव उसकी कुशाग्र बुद्धि पर प्रकाश डाला गया है। एकाँकी मे शब्दो के हेर-फेर और राजा की सत्यान्वेषी प्रकृति के कारण पर्याप्त कौतूहल विद्यमान है। नाटक का अन्त रहस्योद्घाटन के कारण प्रभावशाली है।

'अट्ठानवे किसे ?' प्रस्तुत सग्रह का अन्तिम लघु एकाकी है। इसका सम्बन्ध भी राजा यशस्कर की न्यायप्रियता से है।

परदेश से कमाकर घर लौट रहे देवराज के रुपयो की थैली स्नान करते समय एक कुएँ मे गिर जाती है। इस थैली मे कुल सौ मुद्राएँ होती है। अपाधीश नामक एक युवक थैली निकालने का आश्वासन देता है। वह देवराज से कहता है—"यदि मैने थैली निकाल दी तो मुझे उसमे से क्या दोगे ?" इसके उत्तर मे देवराज का कथन है—"जो तुम्हारी इच्छा हो, तुम ले लेना और जो चाहो वह मुझे दे देना। अपाधीश थैली निकालता है, वह दो मुद्राएँ देवराज को देना चाहता है और शेष अट्ठानवे स्वय रखना। देवराज दो मुद्राएँ भी नही लेता, वह राजा यशस्कर के पास निर्णय के लिए जाता है। अपाधीश बुलाया जाता है और अपना निर्णय देते हुए राजा यशस्कर कहते है—

"ऐसे प्रसगो पर न्याय करने के लिए शब्दो का नही, भावना का महत्त्व रहता है। (अपाधीश से) इसलिए मेरा निर्णय है कि अट्ठानवे मुद्राएँ तुम्हे और दो देवराज को नही, किन्तु दो तुम्हे और अट्ठानवे देवराज को मिलेगी।[1]"

3 **दक्षिण भारत की एक झलक**—यह आठ एकाकियो का सग्रह है। इसमे सग्रहीत एकाँकियो के नाम है—केरल का सुदामा, वे आँसू, शिवाजी का सच्चा स्वरूप, सच्चा धर्म, बाजीराव की तस्वीर, सच्ची पूजा, प्रायश्चित्त, भय का भूत।

'केरल का सुदामा' एकाकी मे ट्रावनकोर के राजा मार्तण्ड वर्मा का निर्धन कवि रामपुर की उसी प्रकार की सहायता का वर्णन है जिस प्रकार कृष्ण ने सुदामा की की थी। कथानक इस प्रकार है कि दौरे पर निकले मार्तण्ड वर्मा कवि रामपुर के प्रशस्ति गीत से प्रभावित हो उसे राजप्रासाद चलने का आग्रह करते हैं। मार्ग मे कवि सुदामा

1 प्राचीन काश्मीर की एक झलक, पृ० 135-36।

चरित्र का कुछ अंश सुनाता है। छः महीने तक रामपुर ट्रावनकोर मे रहता है और इस मध्य मार्तण्ड वर्मा उसके गाव मे उसकी झोपडी के स्थान पर सुन्दर महल बनवा देते है तथा हर प्रकार के आराम का साधन जुटा देते है। रामपुर राजा की इस कार्रवाई से अनभिज्ञ रहता है, घर मे जो पत्र आते है उन्हे भी उसे नही दिया जाता। छः मास बाद रामपुर गाँव जाने की इच्छा व्यक्त करता है, विदाई के समय उसे केवल दो रुपये, एक साधारण उत्तरीय तथा एक धोती दी जाती है। रामपुर आश्चर्यचकित रह जाता है लेकिन मन का भाव प्रकट नही होने देता। मार्ग मे वह राजा द्वारा प्रदत्त दो रुपये, उत्तरीय और धोती नहर मे डाल देता है। गाँव पहुँचने पर महल खडा देखता है। रात उसी महल के निकट एक सडक पर सोकर गुजार देता है। प्रात काल उसकी बहन, पत्नी एव परिवार के अन्य लोग आकर उसे अन्दर ले जाते है।

कथानक मे पर्याप्त कौतूहल है, एकाकी का अन्त रहस्यात्मकता के कारण बहुत सुन्दर बन पडा है। गीत अवसरानुकूल एव पात्रो की मनोदशा का यथार्थ चित्रण करने वाले है।

'वे आसू' ट्रावनकोर के राजा राम वर्मा के जीवन से सम्बन्धित घटना पर आधारित है। बाल्यावस्था मे राम वर्मा एक अत्यन्त दीन ब्राह्मण अटितरी, जिसके विवाह योग्य सात कन्याए है, को पर्याप्त धनराशि देकर आर्थिक सहायता करता है। उसकी दानशीलता से मुग्ध होकर अटितरी उसे गोद मे उठा लेता है और स्नेह के आसुओ से उसका अभिषेक कर देता है। इस घटना के लगभग पचास वर्ष के बाद टीपू सुल्तान राम वर्मा के राज्य पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान करता है और आलुवाइ नदी के तट पर डेरा डालता है। टीपू सुल्तान के मुकाबले राम वर्मा की सैनिक शक्ति बहुत कम होने पर भी वह प्रत्याक्रमण के लिए जाता है और आलुवाइ के तट पर डेरा लगाता है। इसी बीच एक दैवी घटना घटती है, बिना बरसात के ही अचानक आलुवाइ नदी मे तेज बाढ आ जाती है। बाढ की स्थिति कई दिनो तक रहती है और टीपू सुल्तान बिना आक्रमण किये ही लौट जाता है। इस अप्रत्याशित बाढ को देखकर राम वर्मा को अचानक ही उस दीन ब्राह्मण के वे आँसू याद हो जाते है और इसका कारण वह उन आँसुओ को ही मानता है।

एकाकी की कथा रोचक है, बाढ के विषय मे यह कल्पना कि ब्राह्मण के आँसू ही जल बनकर राम वर्मा और उसके राज्य की रक्षा के लिए नदी मे बाढ लाये पर्याप्त रमणीय है। एकाकी मे काल सकलन की पूर्ण अवहेलना की गई है, परन्तु उपक्रम की योजना के कारण यह अस्वाभाविक नही प्रतीत होता।

'शिवाजी का सच्चा स्वरूप' एक दृश्य मे समाप्त होने वाला लघु एकाँकी है। इसमे शिवाजी की चारित्रिक महानता को प्रकट करने वाली एक ऐतिहासिक घटना का उल्लेख है।

सेनापति आबाजी सोनदेव कल्याण प्रान्त की विजय के पश्चात् वहाँ से लाये

गये हीरे, जवाहरात एव अन्य वस्तुओ के साथ ही वहाँ के सूबेदार अहमद की अत्यन्त रूपवती पुत्रवधू को भी शिवाजी की सेवा मे उपस्थित करता है। सोनदेव के इस कृत्य से शिवाजी का मस्तक झुक जाता है और वे इस जघन्य कार्य के लिए सेनापति की भर्त्सना करते है। शिवाजी उस अपहृत नारी को 'माँ' शब्द से सम्बोधित कर सेनापति के दुर्व्यवहार के लिए क्षमा याचना करते है।

शिवाजी के जीवन से सम्बन्धित इतिहास की उपर्युक्त घटना काफी प्रसिद्ध है, प्रस्तुत एकाकी मे उसके इतिहास-सम्मत रूप का ही उल्लेख है अत कथा मे किसी प्रकार का कौतूहल या जिज्ञासा नही है। शिवाजी के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से एकाकी की सफलता मे सन्देह नही किया जा सकता।

'सच्चा धर्म' मे एक ब्राह्मण के कर्तव्य-पालन की कथा है। कर्तव्य की वेदी पर वह सत्यवादिता, धार्मिक वृत्ति और ब्राह्मणत्व का बलिदान करता है। कथानक इस प्रकार है—

मिठाई की टोकरी मे छिपकर औरगजेब की कैद से भागते समय शिवाजी अपने पुत्र सभा जी को दिल्ली निवासी महाराष्ट्रीय ब्राह्मण पुरुषोत्तम के पास छोड जाते है। पुरुषोत्तम उसे अपना भानजा बताता है, औरगजेब के गुप्तचर दिलावर खाँ को उसके (पुरुषोत्तम) कथन पर विश्वास नही है और वह सम्भाजी को शिवाजी का पुत्र ही मानता है। दिलावर की शर्त है कि यदि पुरुषोत्तम सम्भाजी के साथ भोजन कर ले तो वह उसे उसका भानजा मान लेगा। पुरुषोत्ताम की पत्नी अहिल्या धर्म भ्रष्ट होने का भय दिखाकर उसे सम्भाजी के साथ भोजन करने से रोकती है। उसके मन मे भी इस सम्वन्ध मे तर्क-वितर्क होता है, लेकिन सम्भाजी की प्राण-रक्षा के लिए अन्त मे वह उसके साथ भोजन कर लेता है।

पुरुषोत्ताम के अन्तर्द्वन्द्व चित्रण की दृष्टि से एकाकी पर्याप्त सफल है।

'बाजीराव की तस्वीर' इस सग्रह का सबसे छोटा एकाकी है, इसे यदि कथा-विहीन कहा जाय तो अनुचित न होगा।

निजाममुलमुल्क का चित्रकार उसके सामने बाजीराव की एक ऐसी तस्वीर पेश करता है जिसमे वह साधारण सिपाही के समान अन्य सिपाहियो के साथ अपना घोडा चराते हुए दिखाया गया है, उसे देखकर उसका शत्रु निजाम उसकी सादगी की प्रशसा करता है और इसे ही उसकी सफलता का रहस्य मानता है।

प्रस्तुत एकाकी सेठ जी के एकाकियो की सख्या बढाने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

'सच्ची पूजा' चार पृष्ठो का एक लघु एकाकी है। इसमे कर्तव्य-पालन को ही सच्ची पूजा बताया गया है।

पेशवा माधवराव राज-पाट की चिन्ता से मुक्त रहकर अपना अधिकाश समय पूजा-पाठ मे विताता है। पूजा-पाठ के प्रति उसकी बढती रुचि और राज्य-कार्यो के प्रति उपेक्षा-वृति न्यायाधीश रामशास्त्री के लिए सरदर्द बन जाती है। वह माधवराव को सन्यासियो के वेश मे अपने साथ काशी चलने के लिए कहता है। कारण यह, कि वैसी पूजा का स्थान काशी ही है। अन्त मे रामशास्त्री सच्ची पूजा का अर्थ कर्तव्य पालन वताकर उसे प्रजा-सेवा मे सलग्न करने मे सफल हो जाता है।

एकाकी मे मिथ्याडम्बर पर हल्का व्यग्य है, सच्ची पूजा के रूप मे कर्तव्य पालन निर्देश वडी चतुराई से किया गया है। रामशास्त्री का व्यक्तित्व पर्याप्त आकर्षक है। कार्य-व्यापार का नितान्त अभाव है।

'प्रायश्चित्त' मे पेशवा रघुनाथ राव की आत्मग्लानि का सुन्दर चित्रण हुआ है।

रघुनाथ राव पत्नी के षड्यन्त्र मे सम्मिलित होकर अपने भतीजे नारायणराव का वध करा देता है। इस घटना से उसे बहुत दु ख होता है और वह उद्विग्न रहने लगता है। उसे पेशवा का स्थान मिल जाता है फिर भी उद्विग्नता बनी रहती है। वह इस पाप के प्रायश्चित्त का निश्चय करता है और इसके विधान के लिए रामशास्त्री की राय लेता है। न्यायाधीश रामशास्त्री विधान के अनुसार हत्या का प्रायश्चित्त आत्महत्या वताता है। रघुनाथ राव उसकी आज्ञा का पालन नही करता है, मरते समय उसे अपने जघन्य कृत्य के कारण अत्यन्त आत्मग्लानि होती है।

एकाकी मे पर्याप्त नाटकीयता है। रघुनाथ राव के मानसिक सघर्ष का चित्रण भी सुन्दर है, उसकी आत्मग्लानि का यथार्थ चित्र अकित किया गया है। काल-सकलन की अवहेलना हुई है लेकिन उपक्रम, उपसहार की योजना के कारण व्यवधान खटकता नही है।

'भय का भूत' एकाकी एक ऐतिहासिक किवदन्ती पर आधारित है। पेशवा वाजीराव द्वितीय अपने कर्मचारियो के साथ महाराष्ट्र के एक गाँव मे राणोजी के यहाँ आतिथ्य ग्रहण करने वाला है। राणो जी अपने पुत्र मालोजी पर अतिथि-सत्कार का भार छोडकर निश्चिन्त हो जाता है। बाजीराव के आने की निश्चित तिथि से एक दिन पूर्व तक कुछ भी तैयारी नही होती, मालो जी सबको विश्वास दिलाता है कि उसे एक ऐसा मन्त्र आता है जिसके पढने से तुरन्त नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यजन तैयार होते है। कर्मचारियो के सहित बाजीराव का आगमन होता है, कपड़े से ढके वर्तन पानी डाल डालकर चूल्हे पर चढा दिये जाते है और मालोजी अपना मन्त्र पढना आरम्भ करता है। इसी बीच नेपथ्य मे बन्दूक के शब्द होते है और 'अग्रेज', 'अग्रेज सेना' की आवाजे सुनाई पडती है। बाजीराव और उसके सभी साथी विना खानपान के सिर पर पैर रखकर भागते है। बाद मे बर्तनो को देखने पर ज्ञात होता है कि उनमे खौलते पानी के अतिरिक्त कुछ नही है।

एकाकी की कथा पर्याप्त रोचक है। प्रारम्भ से अन्त तक पाठको की जिज्ञासा बनी रहती है। अन्त नाटकीय है। इसमे व्यग्य द्वारा बाजीराव की कायरता का उद्घोष किया गया है। एकाकी के प्रथम एव तृतीय दृश्य मे मूक अभिनय चलता है। सेठ जी के सफल एकाकियो मे इसे परिगणित किया जा सकता है।

4 **मुगल कालीन भारत की एक झलक**—यह पाँच एकाकियो का सग्रह है। सग्रहीत एकाकियो के नाम है—महाकवि कुम्भनदास अथवा अपरिग्रह की पराकाष्ठा, गुरु तेगबहादुर की भविष्यवाणी, पतन की पराकाष्ठा, निर्दोष की रक्षा, अजीबो गरीब मुलाकात।

'महाकवि कुम्भनदास अथवा अपरिग्रह की पराकाष्ठा' का कथानक गोस्वामी गोकुलनाथ कृत 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' नामक ग्रन्थ से लिया गया है। यह एक लघु एकाकी है जिसमे केवल एक दृश्य है। इसमे महाकवि की महान त्याग भावना चित्रित है।

महाकवि कुम्भनदास एक सद्गृहस्थ है और सत्रह प्राणियो का उनका एक सयुक्त परिवार है। जयपुर का राजा मानसिंह उनके पास जाता है और उन्हे क्रमश स्वर्ण की रत्न-जटित आरसी, मोहरो की थैली, जागीर मे एक गाँव देना चाहता है। कुम्भनदास जी इनमे से एक भी स्वीकार नही करते। इसके बाद वह उनके समस्त कुटुम्ब की भोजन-व्यवस्था अपने जिम्मे लेने का आग्रह करता है लेकिन वे यह भी स्वीकार करने मे अपनी असमर्थता प्रकट करते है। अन्त मे मानसिंह जब यह कहता है कि मुझे किसी सेवा की तो आज्ञा दीजिए तो कुम्भनदास जी का उत्तर बडा ही मार्मिक होता है। वे कहते है—"आप मेरी इतनी ही सेवा करे कि फिर इस प्रकार के कार्य के लिए कभी भी न पधारे।"[1]

कथानक सामान्यत रोचक है। मानसिंह और कुम्भनदास के सवाद पर्याप्त सजीव है। एकाकी मे व्रजभाषा के प्रयोग मे रमणीयता आ गई है। भाषा-सम्बन्धी एक उद्धरण देखिए—

"लै जमुना, मैंने पूरे यज्ञोपवीत को सूत कात दियो है। तू या तकली को सूत के साथ भीतर धरि दे। मैं जाय नहाय आऊँ।"[2]

'गुरु तेगबहादुर की भविष्यवाणी' एकाकी की रचना डारथी फील्ड नामक एक अग्रेज लेखक द्वारा लिखित 'विजडम ऑफ ईस्ट सीरीज' की 'दी रिलीजन ऑफ दी सिक्खस' नामक पुस्तक मे वर्णित एक प्रसग पर की गई है। यह एक दृश्य का छोटा एकाकी है।

---

1 मुगलकालीन भारत की एक झलक, पृ० 12।
2 वही पृ० 5।

औरगजेब की धर्मान्धता, सकीर्णता, साम्प्रदायिकता को देखकर गुरु तेगबहादुर भविष्यवाणी करते है कि सात समुद्र पार बसने वाली अग्रेज जाति शीघ्र ही भारत पर छा जाएगी। औरगजेब की यह भविष्यवाणी सत्य हुई।

एकाकी मे कथा तत्त्व का नितान्त अभाव है। भविष्यवाणी के अतिरिक्त अन्य कोई उल्लेखनीय विशेषता नही है।

'पतन की पराकाष्ठा' मे मुहम्मदशाह की बेगमो की कायरता एव उनके नैतिक पतन का चित्रण किया गया है।

नादिर शाह दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह को पराजित कर उसकी बेगमो को तुरन्त अपने पास आने का आदेश भिजवाता है। सभी बेगमे बुरका डालकर उसकी सेवा मे उपस्थित होती है। वह पहले उन सबसे बुरका उतारने का अनुरोध करता है लेकिन कोई भी अपना बुरका नही उतारती, फिर गरजकर बुरका उतारने का आदेश देता है और पल मात्र मे सबके बुरके उतर जाते है। इसके बाद वह सब बेगमो से उनके वस्त्र उतार देने की प्रार्थना करता है, कोई भी वस्त्र नही उतारता। उन्हे वस्त्र उतारने के लिए दस लमहे का समय देकर वह नीद आने का बहाना करके अपनी आँखें बन्द कर लेता है। इस बीच बेगमे परस्पर बातचीत करती है और इस स्थिति का सारा दोष मुहम्मद पर रखती है। नादिरशाह आँखे खोलकर, उन्हे तुरन्त वस्त्र उतारकर नगी होने का आदेश देता है। बेगमे वस्त्र उतारने को प्रस्तुत होती है और जैसे ही उनके हाथ साडी, सलवार खोलने के लिए बढते है, नादिरशाह उन्हे रोक देता है। बेगमो को धिक्कारते हुए वह कहता है—

सब . . . . सब कुछ खत्म हो गया है इस मुल्क का। यहाँ के मर्दो को मैं इतने दिनो से देख रहा था। यहाँ के मर्द, मर्द नही रहे, वह है भेड-बकरियाँ। औरतो को मैं और देखना चाहता था। कोई भी मुल्क तब तक पूरी तरह बरबाद नही हो सकता, जब तक वहाँ की औरते सच्ची औरते रहे, क्योकि ...... आगे की पुश्त को तो औरते बनाती है।[1]

एकाकी की कथावस्तु रोचक है। सवादो मे पर्याप्त सजीवता है। भाषा पात्रानुकूल है। नादिरशाह की महानता एव बेगमो के चारित्रिक पतन का चित्रण सुन्दर है।

'निर्दोष की रक्षा' मे हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य भावना का उच्चतम आदर्श प्रस्तुत किया गया है।

मनसबदार शुभकरण की पालकी मे आतिशबाजी के कारण आग लग जाती है। उसके बहुमूल्य कपडे यत्र-तत्र जल जाते है। उसके अग-रक्षको और पजाबी जूते वालो मे लडाई ठन जाती है। बात बढते-बढते साम्प्रदायिकता का रूप ले लेती है।

---

1 मुगलकालीन भारत की झलक, पृ० 31।

हिन्दू मुसलमान दो वर्ग बन जाते है। अगले दिन उसी लडाई से सम्बन्धित एक झगडे मे शुभकरण के शरीर-रक्षक बख्तावरसिंह की तलवार लगने से हाजी हाफिज की मृत्यु हो जाती है। इससे साम्प्रदायिकता की आग और भडक उठती है। मुसलमान प्रतिज्ञा करते है कि जब तक शुभकरण और बख्तावरसिंह की लाशे न जल जाएँगी वे हाजी हाफिज को न दफनाएँगे।

शुभकरण अपने आफीसर शेर अफगन की शरण मे जाता है। हाजी की लाश उठाकर मुसलमान जलूस की शक्ल मे शेर अफगन के पास जाते है और उससे शुभकरण को उन्हे सौप देने का आग्रह करते है। शेर अफगन यह आश्वासन देकर कि अपराधी को कठोर दण्ड दिया जायेगा, शुभकरण को देने से इकार कर देता है। बादशाह मुहम्मदशाह के हुक्म पर भी वह शुभकरण को मुसलमानो के हवाले नही करता और इस प्रकार एक हिन्दू की रक्षा करता है।

एकाकी मे कुल नौ दृश्य है, प्रथम दृश्य मे केवल मूक अभिनय की योजना है। दृश्य सख्या अधिक होने पर भी कथानक का नियोजन इस ढग से है कि कोई भी दृश्य व्यर्थ या केवल सख्या वृद्धि की दृष्टि से प्रयुक्त नही प्रतीत होता। कथा-रस का अभाव होने पर भी एकाकी पर्याप्त विचारोत्तेजक है। शेर अफगन का चरित्र बहुत सुन्दर चित्रित हुआ है। साम्प्रदायिकता विरोधी उसका निम्न कथन द्रष्टव्य है—

"जिस झगडे का मजहब से कोई ताल्लुक नही, उसे मजहबी शक्ल दी गयी। बिना वजह तुम्हारी कुर्बानी माँगी गयी। मै एक बेकसूर को इस तरह कुर्बान नही कर सकता और इसके लिए कभी भी इससे भी ज्यादा तकलीफे बर्दाश्त करने को तैयार हूँ।"[1]

'अजीबो गरीब मुलाकात' इस सग्रह का अन्तिम हास्य-व्यग्य प्रधान एकाकी है। यह एक अग्रेज सिपहसालार की अपनी पत्नी के साथ लखनऊ के नवाब से मुलाकात की घटना पर आधारित है। इसकी कथावस्तु The Life and Opinions of General Sir Charles James Napier G. C B by Sir W Napier K C B से ली गई है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का एक कमाडर अपनी पत्नी के साथ लखनऊ के नवाब से मुलाकात के लिए जाता है। वह पत्नी को पहले समझा देता है कि नवाब की हर वस्तु की प्रशसा करनी है। मिलने का समय न होने पर भी उसकी पत्नी के साथ रहने के कारण दीवाने खास मे मुलाकात होती है। वहाँ पहुँच कर अग्रेज लेडी नवाब की हर चीज की प्रशसा करना आरम्भ कर देती है, उगालदान को हाथ मे लेकर उसे सुन्दर फ्लावर पाट बताती है और नवाब की गद्दी पर उसे उलट देती है जिससे चारो ओर पीक फैल जाती है और गद्दी खराब हो जाती है। नवाब जब हुक्का

1. मुगलकालीन भारत की एक झलक, पृ० 62।

गुडगुडाता है तो उसकी आवाज को म्यूजिक बताती है। सात-आठ वर्षीय नवाब के पुत्र को उसका 'बावा' कहती है, जिस पर नवाब खीझ कर कहता है कि बाबा तुम्हारा होगा, मेरा तो लडका है। सबसे अधिक हास्यास्पद स्थिति तब उत्पन्न होती है जब कमाडर 'जो मजा इन्टेजार मे डेखा। बो कहाँ वस्ले यार मे डेखा।' का अवसर के सर्वथा प्रतिकूल परिस्थिति मे, इसका अर्थ न जानने के कारण, प्रयोग करता है। नवाब के वजीर द्वारा उनके मिलने का उद्देश्य पूछे जाने पर कमाडर कहता है कि वह और उसकी पत्नी 'रिस्पैक्ट्स पे' करने आए है। नवाब द्वारा इसका मतलब पूछे जाने पर वजीर 'इज्जत देना' बताता है। यह सुनकर नवाब हैरान हो जाता है और कहता है कि 'इस तरह यहा औरतो की इज्जत की खरीद नही होती। इसके बाद वजीर दोनो को बाहर भेज देता है और मुलाकात का अन्त हो जाता है।

प्रस्तुत एकाकी मे शिष्ट हास्य की सुन्दर योजना परिलक्षित होती है। शब्दो के वास्तविक अर्थ ग्रहण मे दोनो पक्ष (अग्रेज दम्पति और नवाब) गलतियाँ करते है और अपने-अपने स्थान पर दोनो की गलतियाँ ही मूलत हास्य का कारण है। भाषा पात्रानुकूल और प्राणवन्त है। नवाब उर्दू-मिश्रित हिन्दी का प्रयोग करता है और अग्रेज-दम्पति अग्रेजो की शैली (Style) पर अग्रेजी-मिश्रित हिन्दुस्तानी वोलते है। भाषा सम्बन्धी एक उदाहरण देखिए—

कमाण्डर—यस, यौर मैजिस्टी हमारा जोरू। जापना का कडमबोशा को और शाही पैलेस एण्ड एण्ड लकनौ को डेखना का वास्टे ये भी आया।[1]

एकाकी मे अग्रेजो के मिथ्याडबर एव भारतीय नवाबो की खुशामद कर उन्हे प्रसन्न करने की प्रवृत्ति पर अच्छा व्यग्य किया गया है।

5 **अग्रेजो का आगमन और उसके बाद**—यह सात एकाकियो का सग्रह है। सग्रहीत एकाकियो के नाम है—कृष्णकुमारी, अजीजन, कगाल नही, सूखे सन्तरे, सच्चा कॉग्रेसी कौन ? जब माँ रो पडी तथा जब भाग्य जागता है। महत्त्व की दृष्टि से 'कृष्णकुमारी', 'कगाल नही', और 'जब माँ रो पडी' ये तीन एकाकी ही विचारणीय है।

'कृष्णकुमारी' का कथानक कर्नल टाड और डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा के 'राजपूताना का इतिहास' से लिया गया है।

मेवाड के राणा भीमसिंह की रूपवती कन्या कृष्णकुमारी को मारवाड के महाराजा मानसिंह और जयपुर के राजा जगतसिंह अपनी रानी बनाना चाहते है। दौलत राम सिंधिया मानसिंह की तरफ से विवाह प्रस्ताव लेकर आता है, परन्तु वह राणा को आक्रमण का भय दिखाकर कृष्णकुमारी का विवाह अपने साथ करने के

1 मुगलकालीन भारत की एक झलक, पृ० 79।

लिए प्रस्ताव करता है। सिंधिया क्षत्रिय न होकर शूद्र है और किसी क्षत्रिय का अपनी कन्या का विवाह शूद्र के साथ करना असम्भव कल्पना ही है। सिंधिया के इस प्रस्ताव से दरबार मे खलबली मच जाती है। भीमसिंह शक्तिहीनता के कारण लडाई के मैदान मे सिंधिया का मुकाबला करने मे असमर्थ है और कन्या का विवाह एक शूद्र के साथ भी नही करना चाहता। अत उसके सामने एक विकट समस्या खडी हो जाती है। मेवाड के राजघराने का एक व्यक्ति अजीतसिह राणा को राय देता है कि राजकुमारी की मृत्यु ही इस सकट को टाल सकती है। कृष्णकुमारी को इस बात का पता लग जाता है और वह स्वय अपना बलिदान करने के लिए प्रस्तुत हो जाती है। उसे विष का प्याला दिया जाता है और वह सहर्ष उस हलाहल को पीकर अपना प्राण उत्सर्ग कर देती है।

प्रस्तुत एकाकी बहुत ही भावपूर्ण है। कृष्णकुमारी का बलिदान नारी जाति की विवशता का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। इसमे हिन्दुओ की जाति-गत सकीर्णता पर भी व्यग्य है और यह राजपूतो की कायरता का जीता-जागता चित्र प्रस्तुत करता है। कथोपकथन प्राय वाद-विवाद का रूप लिए है और उनमे तर्क-वितर्क की प्रधानता है। कृष्ण कुमारी के अधिकाँश कथन बडे ही मार्मिक है। एक उद्धरण देखिए—

"स्त्री तो मिटने के लिए ही बनी है, चाहे वह हत्या से मिटायी जाय या स्वय अपना बलिदान करे।"[1]

'अजीजन' मे कानपुर की एक वेश्या अजीजन का महान् त्याग एव बलिदान चित्रित किया गया है जो उसने 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता-सग्राम मे किया था। इसमे दिखाया गया है कि उच्च वर्ग के लोग इस सग्राम मे कुछ भी सहायता नही करते जबकि अजीजन इसमे अपना सर्वस्व दान कर देती है और अन्त मे प्राणो की आहुति भी दे देती है। अजीजन के चरित्र-चित्रण मे नाट्यकार को पर्याप्त सफलता मिली है, इसके अतिरिक्त अन्य बाते सामान्य स्तर की ही है।

'कगाल नही' सत्य घटना पर आधारित एकाकी है, इसमे महाराजा सग्राम शाह और महारानी दुर्गावती के वशज की अत्यन्त दयनीय स्थिति का मर्म-स्पर्शी चित्र अकित किया गया है। इस परिवार मे कुल सात प्राणी है और इन्हे एक सौ बीस रुपये साल पेंशन मिलती है, इसके अतिरिक्त इनकी आय का कोई साधन नही है। इस परिवार के पुरुषो को उनकी प्राचीन प्रतिष्ठा के कारण कगालो को मिलने वाली नौकरी भी नही मिलती। एकाकी के अन्त मे बडे राजा का कथन बडा ही मार्मिक है—

"माँ, हमे पेशन मिलती है, हम महाराजाधिराज राजराजेश्वर सग्रामशाह और महारानी दुर्गावती के कुल के है। हमारी बडी इज्जत है, हमारा बडा मान है।"

1 अग्रेजो का आगमन और उसके बाद, पृ० 33।

हमारी आमदनी चाहे तीन पैसा रोज ही हो,पर हमे कगालो की रोजनदारी, दो आना रोज, कैसे मिल सकती है ? हमारी भरती कगालो मे कैसे की जा सकती है ?"[1]

प्रस्तुत एकाकी सेठ जी के श्रेष्ठ एकाकियो मे से है।

'सूखे सन्तरे' मे एक हरिजन वालक द्वारा लाए गये सूखे सन्तरो के रस से गाँधी जी का यरवदा जेल मे अनशन तोडने का वर्णन है। एकाकी मे हरिजन समस्या को स्पर्श किया गया है, हरिजनो के कल्याणार्थ उपवास कर रहे गाँधी जी का हरिजन वालक के सूखे सन्तरे से उपवास तोडना एक सुन्दर कल्पना है। इसमे गाँधी जी की महानता का चित्रण है, हरिजन बालक के परिवार की आर्थिक दशा का मार्मिक चित्राकन भी इसमे हुआ है।

'सच्चा काँग्रेसी कौन ?' एक लघु एकाकी है जो दो पृष्ठो का है और जिसमे कथानक के नाम पर कुछ नही है। इसमे दिखाया है कि सच्चे काँग्रेसी वे हैं जो आडम्बर से दूर रह कर चुपचाप काँग्रेस द्वारा निर्धारित कार्यो को करते हैं। इसमे अवसरवादी, स्वार्थ सिद्ध करने के उद्देश्य से काँग्रेस मे सम्मिलित होने वाले लोगो पर व्यग भी किया गया है। एकाकी सामान्य स्तर से ऊपर नही उठ सका है।

'जब माँ रो पडी' मे अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल की माँ की दयनीय स्थिति का मर्मस्पर्शी चित्र अकित किया गया है। बिस्मिल की फाँसी के बाद उसके परिवार मे उनकी वृद्धा माँ, छोटा भाई रमेश और उसके पिता रह जाते है। आर्थिक कठिनाइयो के कारण उनका जीवन दूभर हो जाता है, धनाभाव के कारण इलाज की समुचित व्यवस्था न हो पाने से रमेश की तपेदिक से मृत्यु हो जाती है। पिता भी इस सकट के वोझ से टूट कर चल वसते है और माँ पर दुखो का पहाड टूट पडता है। उनके पास आय का कोई साधन नही है, पुलिस के डर से उनके मकान मे कोई किरायेदार भी नही आता, अन्त मे एक पुलिस ही उसके मकान मे किरायेदार के रूप मे रहने लगता है, इससे लोग बिस्मिल की मा को पुलिस वाली कहते है। एकाकी के अन्त मे शिव वर्मा द्वारा नाट्यकार ने अपनी मनोभावनाओ को अभिव्यक्त किया है जो अत्यन्त मार्मिक है। इसकी कुछ पक्तियाँ प्रस्तुत है—

"कैसी यह दुनिया है, मा, एक ओर—'बिस्मिल जिन्दाबाद' के गगन-भेदी नारे और चुनाव मे वोट लेने के लिए 'बिस्मिल द्वार' का निर्माण और दूसरी ओर उनके घर वालो की परछाई तक से भागना और उनकी निपूती बेवा मा पर वदनामी की मार। एक तरफ शहीद परिवार सहायक फड के नाम पर हजारो का चदा और दूसरी तरफ दवा और पथ्य के लिए पैसो के अभाव मे अमर शहीद

1 अग्रेजो का आगमन और उसके वाद, पृ० 91।

बिस्मिल के भाई का तपेदिक से घुट कर मरना ! क्या यही है शहीदो की इज्जत और उनकी पूजा ।"[1]

प्रस्तुत एकाकी पर्याप्त कारुणिक है, बिस्मिल के परिवार मुख्यत उसकी माँ की दयनीयता का यथार्थ चित्र अकित करने मे नाट्यकार काफी सफल हुआ है। शहीदो का नाम लेकर स्वार्थ सिद्ध करने वालो पर करारा व्यग्य है।

'जब भाग्य जागता है' मे एक अत्यन्त निर्धन बालक हरिया का एक रियासत की विधवा कुवरानी कालिन्दी द्वारा गोद लिए जाने का वर्णन है। जो बालक पहले दाने-दाने के लिये मोहताज होता है वही गोद लिए जाने के बाद जागीरदार के रूप मे वैभव के क्रोड मे खेलने लगता है।

एकाकी कला की दृष्टि से प्रस्तुत एकाकी सामान्य धरातल पर ही प्रतिष्ठित किया जा सकेगा।

6 **हमारे मुक्तिदाता**—प्रस्तुत सकलन मे भारतीय महापुरुषो के जीवन से सम्बन्धित पाँच एकाकी सग्रहीत है। सकलित एकाकियो के नाम है—शकराचार्य की प्रतिज्ञा, चैतन्य का सन्यास, गुरु नानक और नमाज, महर्षि की महत्ता, परमहस का पत्नी प्रेम अथवा एक अद्भुत सुहाग रात। एकाकी कला की दृष्टि से केवल अन्तिम एकाकी ही विचारणीय है, इसके अतिरिक्त अन्य एकाकियो मे कलागत वैशिष्ट्य के दर्शन नही होते, इनमे एकाकी की अपेक्षा महापुरुषो के दार्शनिक चिन्तन, उनके सिद्धान्त, उनकी उदारता, क्षमा शीलता, भक्ति भावना एव त्याग वृत्ति आदि के विवरण प्रस्तुत किये गये है। वास्तव मे अन्तिम एकाकी को छोडकर शेष को एकाकी की श्रेणी मे परिगणित करना भी कठिन प्रतीत होता है। एकाकी की अपेक्षा इन्हे लेख के रूप मे लिखा गया होता तो अधिक अच्छा रहता।

'शकराचार्य की प्रतिज्ञा' मे उनके जीवन की प्रमुख घटनाओ को समाविष्ट किया गया है। इसमे दिखाया गया है कि वे विवाह न करने का निश्चय प्रकट कर सन्यास ग्रहण की इच्छा व्यक्त करते है। माँ के द्वारा इसका विरोध किया जाता है, गगा-स्नान के समय एक ग्राह उनके पैर पकड कर बीच मे खीचता है, मा सन्यासी कह देती है और इसी के आधार पर वे सन्यास ग्रहण की अनुमति प्राप्त कर लेते है। शकराचार्य माँ को विश्वास दिलाते है कि वे उसके अन्त समय मे अन्त्येष्टि के लिए अवश्य आयेगे और सचमुच ही वे मरणासन्न मा के पास पहुँचकर ब्राह्मणो के विरोध के बावजूद उसका अन्तिम सस्कार करते है।

'चैतन्य का सन्यास' मे महाप्रभु चैतन्य की कृष्ण भक्ति एव उनके सन्यास ग्रहण करने की घटना का वर्णन है।

---

1 अग्रेजो का आगमन और उसके बाद, पृ० 138।

'गुरु नानक और नमाज' मे गुरु नानक की सच्ची भक्ति वर्णित है। वे सुल्तानपुर के नवाब और उसके साथी काजी के साथ नमाज पढने की कालीन पर जाकर भी केवल दिखावे के लिए नमाज नही पढते और दोनो मुसलमान जब इसका कारण पूछते है तो वे कहते है, "नवाब साहब और काजी साहब ! मैने आप दोनो के साथ नमाज पढना जरूर मजूर किया था, लेकिन आप दोनो ने नमाज पढी ही कहाँ ? नमाज की आसन पर आते ही नवाब साहब आप तो काबुल मे भटकने लगे और वहाँ घोडे खरीद रहे थे, और काजी साहब आप जैसे ही आसन पर आये वैसे ही यह सोचने लगे कि कही आपकी घोडी का बच्चा कुएँ मे न गिर जाए। आप दोनो नमाज पढते तो मै आपका साथ अवश्य देता।"[1]

'महर्षि की महत्ता' मे महर्षि दयानन्द की उदारता एव उनकी क्षमाशीलता का वर्णन है। इसमे दिखाया गया है कि वे अपने विष देने वाले विरोधी को भी क्षमा कर देते है।

'परम हस का पत्नी-प्रेम अथवा एक अद्भुत सुहाग रात' एक अत्यन्त मार्मिक एकाकी है।

स्वामी रामकृष्ण परमहस (बचपन का नाम गदाधर) का चौबीस वर्ष की आयु मे छ वर्षीय पत्नी शारदा देवी से विवाह होता है। लगभग बारह वर्ष तक शारदादेवी अपने मैके मे रहती है और इस बीच एक दो बार ही दोनो एक दूसरे का दर्शन कर पाते है। अठारह वर्ष की आयु मे शारदादेवी ससुराल आती है और उमगो से पूरित मग्न मन सुहागरात की तैयारी मे लग जाती है। सुहाग रात की अनेक मधुर कल्पनाएँ उसके मन मे उठती है। सारे दिन अपने को शृगार-प्रसाधनो एव वस्त्राभूषणो से सजाती रहती है और रात को शयन कक्ष मे जाने से पूर्व पति-पत्नी मकान के एक कमरे मे प्रतिष्ठित देवी की मूर्ति के सामने उपस्थित होते है। देवी की आरती का कार्यक्रम आरम्भ होता है और इसके पावन प्रकाश मे शारदादेवी रामकृष्ण को मा के रूप मे दिखाई पडती है। वे अपनी मनोभावनाओ को उसके सामने प्रकट करते है और इस बात का निर्णय उसी (पत्नी) पर छोड देते है कि वे भावी जीवन को किस प्रकार बिताएँ—पति-पत्नी के रूप मे या माँ-पुत्र के रूप मे। शारदादेवी के सामने सचमुच एक विकट समस्या खडी हो जाती है—एक तरफ यौवन की मदमाती नदी का उच्छल प्रवाह और उसके रोकने का प्रश्न है तथा दूसरी तरफ आध्यात्मिक जीवन का स्वर्गिक सुख एव त्याग की पराकाष्ठा। उसके मन मे भीषण तूफान उठता है, समस्या के पक्ष-विपक्ष मे तर्क-वितर्क प्रस्तुत किये जाते है और अन्त मे शारदादेवी भौतिक सुखो को आध्यात्मिक आनन्द की वेदी पर बलिदान कर माँ-पुत्र का जीवन बिताना स्वीकार कर लेती है। शारदादेवी की महानता से प्रभावित होकर स्वामी रामकृष्ण उसके पैर पकड लेते है और यही नाटक समाप्त हो जाता है।

---

1 हमारे मुक्तिदाता, पृ० 95।

प्रस्तुत एकाकी मे पर्याप्त नाटकीयता है। कथावस्तु रोचक एव कौतूहलपूर्ण है। स्वामी रामकृष्ण और उनकी पत्नी शारदादेवी के चरित्र अत्यन्त महान् प्रतीत होते है, शारदादेवी तो सचमुच मानवी रूप मे देवी की कोटि मे पहुँच गई है, उसमे त्याग की पराकाष्ठा दिखाई पडती है। नाट्यकार ने उसके अन्तर्द्वन्द्व का सफल चित्रण किया है। इस सम्बन्ध मे उसका एक स्वगत कथन द्रष्टव्य है—

"उनका धर्म और कर्त्तव्य है कि वे मेरे सग उसी प्रकार रहे जिस प्रकार अन्य पति-पत्नी रहते हैं। मेरी इच्छा को वे स्वाभाविक इच्छा भी मानते हैं। मैं .. मैं, माता! इस इच्छा को न दोषपूर्ण मानती न पापपूर्ण, और उनके कथनानुसार सर्वथा स्वाभाविक भी। पर . पर मैं . . मैं उन्हे माता .. .. माता के सदृश दीखूँ और ... और . . ऐसी दशा मे . .... ओह ... ओह।"[1]

कथोपकथन प्राय छोटे-छोटे एव सजीव है। स्वगत कथनो का अभाव नही है और वे प्राय लम्बे है। शारदादेवी के स्वगत कथन पर्याप्त लम्बे होने पर भी उसके अतर्द्वन्द्व चित्रण के कारण अस्वाभाविक नही प्रतीत होते।

एकाकी की गीत योजना सुन्दर है। इसके गीत अवसरानुकूल, वातावरण निर्माण मे समर्थ तथा पात्रो के मनोगत भावो को प्रकट करने वाले है।

भाव और शिल्प दोनो दृष्टियो मे मैं इसे सेठ जी का सर्वश्रेष्ठ एकाकी मानता हूँ।

सामाजिक एकांकी

इस वर्ग के अतर्गत सेठ जी के केवल दो एकॉकी सग्रह आते है—

1 स्पर्द्धा तथा सात अन्य एकाँकी
2 धोखेबाज तथा दस अन्य एकॉकी

1 **स्पर्द्धा तथा सात अन्य एकाकी**—यह आठ एकॉकियो का एक सग्रह है। सग्रहीत एकाँकियो के नाम है— स्पर्द्धा, मानव-मन, निर्माण का आनन्द, मैत्री, सुदामा के तदुल, आई सी, यू नो, हगर स्ट्राइक।

'स्पर्द्धा' मे क्लब जीवन का यथार्थ चित्र अकित किया गया है। यूनियन क्लब का सेक्रेटरी त्रिवेणीशकर और ज्वाइट सेक्रेटरी मिस कृष्णा कुमारी कौसिल की सदस्यता के लिए उम्मीदवार है। कृष्णा कुमारी का दल त्रिवेणीशकर के चरित्र पर आक्षेप करने वाला पम्फलेट निकालता है, प्रत्युत्तर मे दूसरे पक्ष की ओर से भी ऐसे पर्चे बॉटे जाते है जिनमे कृष्णा कुमारी के चरित्र पर घृणित आक्षेप रहते है। त्रिवेणी शकर के दल का यह कार्य परित्राण-शूरता के विरुद्ध माना जाता है और एक सभा उस पर लानत का प्रस्ताव पास करने के लिए बुलाई जाती है। इस सभा

---
1 हमारे मुक्तिदाता।

ने मिस विजया पुरुषों की परित्राण-प्रियता की दुहाई देकर त्रिवेणी शंकर के कार्य को अत्यन्त घृणित बताती है। उत्तर मे त्रिवेणी शकर कहता है कि जब महिलाओं ने उसी क्षेत्र मे पदार्पण किया है जिसमे पुरुष है, तब वे यह आशा नही कर सकती कि उस परिस्थिति मे भी पुरुष उनके रक्षक ही रहेंगे।

एकांकी के कथोपकथन स्वाभाविक तथा प्राणवन्त हैं। वास्तव मे इसकी महत्ता वाद-विवाद के कारण ही है। इनमे नाटकीय स्थितियाँ नही लाई गयी है और कौतूहल का भी अभाव है।

'मानव-मन' मनोविज्ञान पर आधारित एकाकी है जिसमे आदर्श और यथार्थ का सघर्ष चित्रित हुआ है और अत मे आदर्शवाद पर परिस्थितिजन्य यथार्थवाद की विजय दिखाई गई है। उसमे मानव-मन की यथार्थता का चित्र अ कित किया गया है।

व्रजमोहन की पत्नी (पद्मा की भाभी) दो वर्ष से बीमार चले आ रहे पति की बीमारी से ऊबकर जीवन-दिशा बदल देती है। वह पति को डाक्टर एव नर्स के सुपुर्द कर स्वय क्लबो मे जाने लगती है, कभी-कभी तो सारी रात डान्स या अन्य आयोजनों मे व्यस्त रहकर बिता देती है। पद्मा उसके इन कार्यों की कडी आलोचना करती है। एक स्थल पर वह अपनी सहेली भारती से कहती है—

"वह स्त्री नही, सुना बहन, सच्ची स्त्री नही। पति की बीमारी मे बीमार पति की सेवा मे, दो वर्ष नही अगर सारा जीवन भी बीत जाय तो स्त्री को रो धोकर नही पर शान्ति से उसे बिता देना चाहिए।"[1]

दुर्भाग्य से पद्मा का पति भी क्षय रोग से पीडित हो जाता है। दो वर्ष तक वह लगातार सेवा करती है, इस बीच एक क्षण के लिए भी पति को नही छोडती। दो वर्ष बाद पति के आग्रह पर श्रीनाथ द्वारे के छप्पन भोग मे सम्मिलित होने के लिए वस्त्राभूषणों से सज्जित हो तैयार होती है, इसी समय भारती आ जाती है और उसके इस नवीन रूप को देखकर कहती है—

"बहन, बरदाश्त करने की भी हद होती है। सहन-शक्ति सीमा-रहित नही है। बीमार के साथ बिना किसी बीमारी के कोई बहुत दिन तक बीमार से भी बदतर हालत मे नही रह सकता। आदर्श की बात दूसरी है। बहन, मानव मानव-मन पर मानव-मन ।"[2]

नाटक मे पर्याप्त स्वाभाविकता है। पति की लबी बीमारी से ऊब कर कुछ नारियों का जीवन-परिवर्तन या पति को त्यागने की भावना अस्वाभाविक नही, लेकिन सभी भारतीय नारियों के लिए ऐसी कल्पना असगत है। नाटक का प्रारंभिक विकास स्वाभाविक गति से हुआ है लेकिन अ त कुछ जल्दबाजी मे किया गया प्रतीत होता

1 स्पर्द्धा तथा सात अन्य एकाकी, पृ० 45।
2 वही पृ० 61।

है जिससे प्रभावान्विति को क्षति पहुँची है। कतिपय सीमाओं के बावजूद यह सेठ जी का सफल एकांकी ही प्रतीत होता है।

'निर्माण का आनन्द' में एक युवती (प्रकाशवती) द्वारा एक युवक (निर्मल चन्द्र) को पढ़ाये जाने और बाद में उससे विवाह कर लेने का वर्णन है। प्रकाशवती प्रोफेसर से विवाह न करके निर्मल चन्द्र से केवल इसलिए विवाह करती है जिससे वह उनके जीवन का निर्माण कर सके और उसे (प्रकाशवती) निर्माण का आनन्द प्राप्त हो। नाटक के अंत में उसका कथन द्रष्टव्य है—

"मैं हिन्दू हूँ, सच्ची हिन्दू पत्नी बनना चाहती हूँ। हिन्दू पत्नी के निर्माण में भी . . निर्माण में भी समर्पण समर्पण है।"[1]

'मैत्री' में दो अभिन्न मित्रों—निर्मलचन्द्र और विनय मोहन के मध्य क्षुद्र स्वार्थ आ जाने के कारण उनमें पारस्परिक मनोमालिन्य होने तथा बाद में स्वार्थ भावना को हटा कर एक हो जाने का वर्णन है। कथोपकथन में कोई आकर्षण नहीं है और वह निष्प्राण प्रतीत होता है।

'सुदामा के तंदुल' में एक स्वार्थी मंत्री का चरित्र अंकित किया गया है जो चुनाव से पहले अनेक प्रकार के वायदे करता है लेकिन चुनाव जीत जाने के बाद उन सब को भूल जाता है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से एकांकी सफल है।

'आई सी' में कांग्रेस के अवसरवादी मंत्रियों के ठाट-बाट, उनके मिथ्याडंबर एवं आन्तरिक खोखलेपन पर करारा व्यंग्य है। भूतपूर्व मंत्री भूपाल सिंह के माध्यम से नाटककार ने यह सब दिखाया है।

'यू नो' इस संग्रह का सबसे छोटा एकांकी है जिसमें कथावस्तु नाम की कोई वस्तु नहीं है। चौधरी रामदीन एम० एल० ए० अपने दल के मिनिस्टर विश्वेश्वर प्रसाद के यहाँ जाता है और वहाँ जाकर खाने-पीने की अनेक वस्तुओं का आर्डर देता है। उनके आर्डर के अनुसार नौकर फौरन सब चीजें हाजिर कर देता है। चाय कुछ कम गर्म होने के कारण वह कप प्लेट सब फेंक देता है और कमरे में चारों तरफ चाय टूटे-फूटे बर्तन आदि बिखर जाते हैं। उसके इस प्रकार के व्यवहार से रुष्ट होकर विश्वेश्वर प्रसाद कहता है—

'अजी जनाब ऐसी मिनिस्टरी पर लानत भेजता हूँ, जानते हैं आप? सुबह से सारे बंगले को सिर पर उठाकर रख लिया ऐसा गुलगपाड़ा जैसे भूकम्प हो गया हो। यू नो, यू नो! वेल, आई नो एवरीथिंग, बट यू आलसो आट टु नो . यू आल सो आट टू नो ..।[2]

---

1 स्पर्द्धा तथा मान अन्य एकांकी, पृ० 78।
2 वही पृ० 145।

'हगर स्ट्राइक' मे एक यशलोलुप कांग्रेसी सत्याग्रही का अकारण जेल में अनशन करने का वर्णन है। सत्याग्रही परमेश्वर दयाल ख्याति प्राप्त करने की कामना से अकारण जेल मे अनशन कर देता है। भूख लगने पर वह फोर्स फीडिंग करने वालों की राह देखता है। अत मे जिला कॉंग्रेस कमेटी के सभापति नरोत्तमप्रसाद जेल मे जाते हैं और बिना कारण अनशन कर कांग्रेस को बदनाम करने के आरोप मे परमेश्वर दयाल के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई करने की सूचना देते है। राधारमण परमेश्वरदयाल को सभापति की आज्ञा मानकर अनशन तोडने की सलाह देता है और साथ ही सभापति से कहता है कि वे समाचार पत्रो मे यह सूचना भिजवा दे कि उनकी आज्ञा से हगर स्ट्राइक तोडी गई है। परमेश्वर दयाल सूचना के साथ यह और जोड देने के लिए कहता है— हगर स्ट्राइक तोडी गयी है सन्तरे का रस पीकर वन्दे मातरम् के गान के बीच बीच मे।[1]

एकाकी मे, सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करने के उद्देश्य से गाधी जी के अहिंसात्मक अस्त्रो का दुरुपयोग करने वालो पर करारा व्यग्य है।

2, **धोखेबाज तथा दस अन्य एकाकी**—यह ग्यारह एकांकियो का एक सग्रह है। सग्रहीत एकाकियो के नाम है—धोखेबाज, फाँसी, व्यवहार, अधिकार-लिप्सा, आधुनिक यात्रा, ईद और होली, उठाओ खाओ खाना अथवा बफे डिनर, बूढे की जीभ, चौबीस घटे, महाराज और बन्द नोट।

'धोखेबाज' मे सट्टे से होने वाली हानियो का दिग्दर्शन कराया गया है। इसमे सट्टे के प्रसिद्ध व्यापारी दानमल का एकाएक अपकर्ष एव उसके मुनीम रूपचन्द के विश्वासघात का वर्णन किया गया है। रूपचन्द के चरित्र मे निहित स्वार्थ भावना का उद्घाटन बडे कलात्मक ढग से हुआ है। सट्टा बाजार का यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत करने मे लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है। कथोपकथन स्वाभाविक हैं तथा उनमे पर्याप्त सजीवता है। भाषा पात्रानुकूल एव प्राणवन्त है।

'फाँसी' मे कवि, पूँजीपति तथा मजदूर के फासी से कुछ क्षण पूर्व के मनोभावो का चित्रण है। सौन्दर्य-प्रिय कवि का अपराध यह है कि उसने एक नारी के सौन्दर्य पर रीझ कर उससे बलात्कार किया है जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई है। पूँजीपति ने हडताल करने वाले मजदूरो पर गोली चलाकर एक की हत्या की है और मजदूर ने खून चूसने वाले एक पूँजीपति को मौत के घाट उतारा है। इनमे कवि और पूँजीपति को मरने का दुख हो रहा है लेकिन मजदूर प्रसन्नता से मृत्यु का आलिंगन करने के लिए तैयार है। कथानक का अभाव होते हुए भी मनोगत भावो के चित्रण की दृष्टि से एकाकी सुन्दर है। कवि के द्वारा प्रयुक्त भाषा मे पर्याप्त काव्यात्मकता है और पूँजीपति का कथन तर्कपूर्ण है।

---

1 स्पर्द्धा तथा सात अन्य एकाकी, पृ० 162।

'व्यवहार' मे किसानो और जमीदारो के पारस्परिक व्यवहार का एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। नये विचारो का उदारमना युवक जमीदार रघुराज सिंह जमीदारो की प्राचीन शोषण नीति का विरोधी है। वह किसानो का लगान घटा देता है, बिना नजराने के उन्हे जमीनें देता है तथा उनके कर्ज माफ कर देता है। प्राचीन परपरा के विरुद्ध एक विशिष्ट अवसर (विवाहोत्सव) पर वह सभी किसानों को बिना किसी भेद-भाव के निमन्त्रित करता है। क्रान्ति चन्द्र नामक एक ग्रामीण युवक किसानो मे आत्मगौरव की भावनाएँ जाग्रत करता है तथा उनसे निमन्त्रण पर न जाने का आग्रह करता है। उसका कथन है—"जो आपको लूट रहा है, जो आपका खून पी रहा है, उस लुटेरे उस डाकू के भयसे आप निमन्त्रण मे जा रहे हैं।"[1] वह जमीदार को एक पत्र लिखकर किसानो की स्थिति स्पष्ट कर देता है तथा उसमे निस्सकोच लिख देता है कि भक्षक और भक्ष्य का कैसा व्यवहार ? उनका आपस मे कैसा प्रेम ? पत्र पाकर रघुराज सिंह के विचारो मे परिवर्तन होता है और वह जमीदारी छोडकर किसान के रूप मे उनकी सेवा का निश्चय करता है।

एकाकी का वैचारिक धरातल उच्च है, इसकी महत्ता समस्या चित्रण और उसका समाधान प्रस्तुत करने मे ही है ।

'अधिकार-लिप्सा' मे एक वृद्ध की अधिकार-लिप्सा का चित्रण है। जमीदार अयोध्यासिह वृद्धावस्था मे भी अपने अधिकार छोडने के इच्छुक नही है। पुत्र द्वारा कार्य-भार से मुक्त किए जाने पर वे इसे अपने अधिकारो का हनन मानते है, और इसे पुन प्राप्त करने के लिए बीमारी का वहाना करते है। रुग्णावस्था मे डाक्टर, वैद्य, हकीम तीनो का इलाज चलता है और ज्योतिषी तथा तान्त्रिक भी अपनी-अपनी करामातें प्रकट करते है। वीमारी न होने पर भी व्यर्थ की दवाओ के प्रयोग से उनकी मृत्यु हो जाती है।

एकाकी रोचक है। इसमे डाक्टरो, वैद्यो एव हकीमो की मूर्खता पर व्यग्य किया गया है। सवाद स्वाभाविक है तथा भाषा पात्रानुकूल होने के कारण पर्याप्त सजीव है।

'आधुनिक यात्रा' मे आधुनिक रेल-यात्रा की कठिनाइयो का वर्णन है। इसमे कथानक का नितान्त अभाव है। एकाकी सामान्य स्तर से ऊपर नही उठ सका है।

'ईद और होली' मे हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या का चित्रण किया गया है। किशोर वय बालकराम की मा रत्ना और मुसलमान बालिका हमीदा के बाप खुदाबख्श मे एक छोटी-सी बात पर तकरार हो जाती है। रत्ना उसे मलेच्छ कहती है और वह उसे काफिर कहता है। द्वेष के कारण खुदाबख्श रत्ना का मकान जला देता है, जलते हुए मकान के कोठे पर खेल रहे राम को देखकर उसके मन मे दया

1 धोखेबाज तथा दस अन्य एकाकी, पृ० 73 ।

उत्पन्न होती है और वह उसे निकाल लेता है। इस घटना के बाद रत्ना और खुदा-बख्श में बहन-भाई का सम्बन्ध हो जाता है। राम और हमीदा एक दूसरे के साथ खेलते और खाते-पीते हैं, लेकिन दोनों (रत्ना एवं खुदाबख्श) में से किसी को एतराज नहीं होता।

एकांकी का कथानक सुसगठित है और इसमें पर्याप्त रोचकता है। नाटक में हिन्दू-मुस्लिम एकता का सुन्दर आदर्श प्रस्तुत किया गया है।

'उठाओ खाओ खाना अथवा बफे डिनर' में दावत की पाश्चात्य पद्धति (बफे डिनर) की बुराइयों का उल्लेख किया गया है। नाट्यकार ने इस पद्धति को स्वास्थ्य की दृष्टि से अहितकर सिद्ध किया है। एकांकी कला की दृष्टि से इसमें कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं है।

'बूढ़े की जीभ' में एक वृद्ध रईस की स्वाद-लोलुपता एवं इसके कारण उसकी बदलती मनोवृत्तियों का सुन्दर चित्रण किया गया है। इस एकॉकी में पर्याप्त हास्य सामग्री विद्यमान है।

'चौबीस घंटे' सेठ जी का सबसे छोटा एकांकी है। इसका कथानक केवल यह है—आकाशवाणी से घोषणा की जाती है कि अब चौबीस घंटे प्रसारण किया जायेगा, इस सूचना को सुनकर एक वृद्ध अपने पुत्रों की इच्छा के विरुद्ध रेडियो उठाकर फेंक देता है। एकांकी में कुछ भी उल्लेखनीय नहीं है।

'महाराज' में ब्राह्मणों के विगत एवं वर्तमान जीवन के दो चित्र दो भागों (पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध) में प्रस्तुत किए गए हैं। पूर्वार्द्ध का महाराज ब्राह्मण की उच्चता एवं अन्य वर्गों की तुलना में उनकी श्रेष्ठता के मूल कारणों पर प्रकाश डालता है। वह राजा को भोजन के विषय में सात्विकता, स्पर्श-दोष आदि से परिचित कराता है। उत्तरार्द्ध में ब्राह्मणों की पतितावस्था का चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसमें दिखाया गया है कि अब ब्राह्मण का कार्य रसोई वाले महाराज तक सीमित रह गया है, इस युग में रसोई बनाने के अतिरिक्त उन्हें घर के अन्य कार्य (जैसे पानी भरना, घर लीपना, आदि) भी करने पड़ते हैं।

एकांकी के दोनों भाग रोचक हैं। उत्तरार्द्ध में सेठानी का निम्न कथन ब्राह्मण जाति पर निर्मम प्रहार करता है—

'नहीं करनी हो तो अपनो हिसाब कर लो, महराज, अठे रहस्यो तो काम तो करनोई पड़सी। मुफ्त का पीसा थोड़े ई आया छै। और थे नई रहस्यो तो थारे सरीसा छप्पन सैं आठ आजासी। न जाने कितरा भटियारा जूत्या चिटकाता आया, निकल चला गया।"[1]

---

1 धोखेबाज तथा दस अन्य एकांकी, पृ० 187।

'वन्द नोट' मे दिखाया गया है कि किस प्रकार एक ईमानदार और सिद्धान्त प्रिय व्यक्ति को भी परिस्थिति वश रिश्वत के रूप मे वन्द नोट देने के लिए वाध्य होना पडता है।

वैदेहीशरण एक ईमानदार, सिद्धान्तवादी युवक है जो किसी भी दशा मे रिश्वत देने-लेने का कट्टर विरोधी है। एक दिन परिवार सहित वह एक ऐसे स्टेशन पर जाता है जहा स्टेशन-मास्टर को रिश्वत दिये विना टिकट नही मिलता। रात का समय, सर्दी का वढता प्रकोप, पत्नी का आग्रह उसे स्टेशन मास्टर को वन्द नोट देकर टिकट लेने पर वाध्य कर देता है। परिस्थितियो के वशीभूत हो सिद्धान्तवादिता को तिलाजलि देकर वह टिकट मगा लेता है और इस प्रकार मनुष्य पर परिस्थिति की विजय होती है।

एकाकी मे आदर्श एव यथार्थ का सघर्ष दिखाया गया है तथा अन्त मे यथार्थ-वाद की विजय दिखाकर नाट्यकार ने स्वाभाविकता की रक्षा की है।

एकपात्री एकांकी नाटक

हिन्दी मे पाश्चात्य शैली पर एकपात्री नाटक का सृजन सर्वप्रथम सेठ जी ने ही किया है, अत इसके प्रवर्तन का श्रेय उन्ही को है। इस सम्वन्ध मे डा० दशरथ ओझा का निम्न कथन विचारणीय है—

" सेठ जी और वेनीपुरी दोनो ने पश्चिम के मोनोड्रामा से प्रभावित हाकर ये नए नाटक लिखे है, किन्तु यह समझ लेना भ्रमपूर्ण होगा कि ऐसे नाटक हमारे यहा कभी थे ही नही।"[1]

डा० ओझा के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि उन्हे सेठ जी का एकपात्री नाटको का आदि प्रवर्तक होना मान्य नही है। यह तथ्य है कि सेठ जी के एकपात्री नाटको से पूर्व सस्कृत मे कुछ आकाश-भाषित नाटको की रचना हुई है तथा हिन्दी मे भारतेन्दु का 'विषस्य विषमौषधम्' भी एकपात्री नाटक के रूप मे सेठ जी के नाटको से पूर्व की रचना है। पूर्व-विरचित इन नाटको मे एकपात्री नाट्य-कला का विकास नही हो पाया है, इनमे केवल स्वगत भाषण मात्र है और यही नही इनकी शैली अनाकर्षक होने के कारण इस परम्परा के नाटको का विकास भी नहीं हुआ। सेठ जी के एकपात्री नाटको की शैली इनसे भिन्न है, उनमे केवल स्वगत भाषण मात्र नही है अपितु उनका प्रधान पात्र किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु को सबोधित करके अपने मनोभावो को प्रकट करता है, कभी-कभी नोटबुक के कुछ अशो को पढाकर कथावस्तु का विकास दिखाया गया है। नाट्य-शिल्प की नितान्त भिन्नता के कारण सेठ जी के एकपात्री नाटक 'विषस्य विषमौधम्' की परम्परा मे नही आते, इन्हे एक नवीन विधा के रूप

1 हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, द्वितीय स०, पृ० 464।

से ही स्वीकार करना पडेगा, अत इस दृष्टि से उन्हे यदि एकपात्री नाटको का प्रवर्तक कहा जाय तो अनुचित न होगा।

इन नाटको के निर्माण की प्रेरणा के सम्बन्ध मे नाट्यकार का कथन है—

मि० नील के दो मोनोड्रामा भी जिनमे एक ही पात्र बोलता है, मैंने जेल मे पढे। नील के सिवा स्वीडन के प्रसिद्ध नाटककार स्ट्रैंडबर्ग के भी कुछ मोनोड्रामे मुझे जेल मे पढने को मिले।। मोनोड्रामा मे तो सारे कथन 'अश्राव्य' ही रहते हैं। सोचने विचारने और उपर्युक्त कलाकारो की कुछ कृतिया पढने के बाद मै भी इस नतीजे पर पहुँचा हू कि अश्राव्य स्वाभाविक तरीके से लिखा जा सकता है और उसके बिना कुछ आन्तरिक भावो एव अन्तर्द्वन्द्व का ठीक प्रकाशन कठिन ही नही, असभव है। इसी-लिये इस वार जेल मे लिखी हुई रचनाओ मे से कुछ मे मैने 'अश्राव्य' का उपयोग किया है और कुछ मोनोड्रामे भी लिखे है।[1]

सन् 1942 मे प्रथम बार सेठ जी के चार एकपात्री नाटको का सग्रह 'चतुष्पथ' नाम से प्रकाशित हुआ है। सग्रहीत नाटको के नाम है—प्रलय और सृष्टि, अलबेला, शाप और वर तथा सच्चा जीवन। "इन चारो नाटको की रचना उन चार विभिन्न पथो का अनुसरण करते हुए की गई है, जो अन्तत एक मे मिल जाते है। कदाचित् इसी कारण सग्रह का नाम चतुष्पथ रखा गया है। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि एकाकी के चतुष्पथ पर आकर चारो नाट्य शैलियाँ एकत्र हो जाती है। अतएव इन्हे एकाकी के अन्तर्गत रखना अनुपयुक्त न होगा।"[2]

सन् 1953 मे सेठ जी ने 'पट-दर्शन' नाम से एक अन्य एकपात्री नाटक का सृजन किया और इस नाटक को उपर्युक्त चार नाटको के साथ मिला कर सन् 1957 मे उनका 'शाप और वर तथा अन्य एकपात्री नाटक' नामक नवीन सग्रह प्रकाशित हुआ है।

इन पाँच नाटको के अतिरिक्त सन् 1959 मे प्रकाशित 'शवरी' मे भी एक-पात्री नाटक का समावेश है अत इसका विवेचन भी इसी प्रसग मे किया जायेगा।

रचना-काल के अनुसार सेठ जी के एकपात्री नाटको का क्रम इस प्रकार है—

1 शाप और वर
2 प्रलय और सृष्टि
3 अलवेला
4 सच्चा जीवन
5 पट-दर्शन
6 शवरी

---

1 गरीबी या अमीरी, द्वि० स०, पृ० 7।

2 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास—डा० दशरथ ओझा, पृ० 461।

1 **शाप और वर**— यह सेठ जी का प्रथम एकपात्री नाटक है प्रथम रचना होने पर भी इसमे उनकी कला का चरम विकास दृष्टिगोचर होता है। इसके दो भाग है—पूर्वार्द्ध एव उतरार्द्ध।

पूर्वार्द्ध मे सम्पन्न परिवार की उपेक्षिता नारी मृत्यु से पूर्व प्रसूतिगृह मे अपने मनोभावो को पति के सामने प्रकट करती है, पत्नी उत्तेजित वक्ता है और पति मूक श्रोता। बीच-बीच मे पति के भावो मे होने वाले परिवर्तनो के सूक्ष्म चित्र अकित किए गए है। पत्नी समग्र जीवन की सचित वेदना पति के सम्मुख अत्यन्त निर्भीकता से प्रकट कर देती है, वह (पति) यदि उसके पास से जाने की चेष्टा भी करता है तो उसे आग्रहपूर्वक बिठा लेती है। इस नारी को धन की क्रोड मे क्रीडा का अवसर तो मिला है, लेकिन पति के स्निग्ध स्नेह से जीवन भर वचित रही है। सास-ससुर ने भी इसे बच्चा जनने वाली मशीन से अधिक महत्त्व नही दिया। इस दु खपूर्ण स्थिति का दोष पति के माथे पर रखती हुई वह मरते समय उसे शाप देती है—

"देखो . देखो . शायद मै जा रही हूँ। सुनो सुनो जाते-जाते शाप हा, शाप देती हू। तुम्हारा वश निर्वंश हो जाय। कोई जीव इस जड मे गडने के लिए उत्पन्न न हो। यह सोना, चादी, ये हीरे, मोती, यह निर्जीव वैभव, यह सारा हृदय, भावनाओ और आत्मा से हीन आयोजन (अत्यन्त क्षीण स्वर मे) यदि सब कुछ .. सब कुछ होते हुए भी मै धर्म के अनुसार सती रही हू, तो मेरे . शाप शा .प '.. से भस्म भस्म.. म।[1] यह कहते-कहते उसकी इहलीला समाप्त हो जाती है।

उत्तरार्द्ध मे पूर्वार्द्ध से सर्वथा भिन्न चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसमे निर्धन परिवार की एक ग्रामीण स्त्री, जिसे पति और सास-ससुर का सम्पूर्ण स्नेह एव प्यार मिला है, मृत्यु से पूर्व एक देहाती प्रसूति-गृह मे पति के समक्ष अपने हृदयोद्गारो को व्यक्त करती है। यहाँ भी वक्ता केवल पत्नी है, पति की मानसिक प्रतिक्रिया आगिक चेष्टाओ द्वारा अभिव्यक्त होती है। स्त्री विगत जीवन की सुखानुभूतियो को बडी मार्मिकता से अभिव्यक्त करती है, बीच-बीच मे कई बार पुरुष के नेत्र सजल हो उठते है। पत्नी द्वारा वर्णित सयोग शृ गार सम्बन्धी एक रमणीय शब्द चित्र प्रस्तुत है—

...दिन मे हमे फुरसत ही न मिलती, पर रात तो हमारी थी। और दिन को.. दिन को भी...उष.काल मे ही तुम खेत पर अवश्य चले जाते, पर मैं तुम्हे ही तो याद कर सब कुछ करती। दुहनी के वक्त गायो और भैसो के थन मे से निकली हुई दूध की एक-एक धारा मे मुझे तुम्हारे प्रेम की धारा ही तो दीखती। उसके बर्तन मे गिरते हुए शब्द मे मुझे तुम्हारे प्रणय का ही स्वर तो सुनाई देता। . आटे पीसने और दाल दलने के वक्त चक्की की घन घोर आवाज मे, मुझे मेघ-गर्जना के समय तुम्हारा प्रेमालिंगन याद आता। रोटी बनाते समय उसके फूलते वक्त मुझे बसन्त के

---

1 शाप और वर तथा अन्य एकपात्री नाटक, पृ० 23।

कुसुम-समार का विकसन और उस काल का तुम्हारे चुम्बन का स्मरण आता ।"[1]

मरने से कुछ क्षण पूर्व स्त्री पति से वर मागती है..

"वर दो, नाथ, घर सूना न रक्खोगे, अपना जीवन अकेले न चलाओगे, इस शिशु को माता-विहीन न रहने दोगे । स्वर्ग जा रही हू, हृदयेश, स्वर्ग, नरक क्यो जाऊँगी ? स्वर्ग से तुम्हारा विवाह देखू गी । उस देखकर मुझे और मेरे सास-ससुर को जो सुख होगा उसकी तुम कल्पना नही कर सकते । तुम अकेले . अकेले रहे तो मुझे स्वर्ग स्वर्ग मे भी तुम्हारी चिन्ता लगी रहेगी कौन तुम्हे खिलायगा . - पिलायगा कौन खेतपर तुम्हारी . रोटी ले जायगा ? कौन रात को तुम्हारे पैर चापेगा ?"[2]

यह कहते कहते पत्नी की आखें हमेशा के लिए बद हो जाती है और पुरुष उसके शव से लिपट कर रोने लगता है । यही नाटक समाप्त हो जाता है ।

नाटक मे मनोविश्लेषण एव वैषम्य का सुन्दर चित्रण हुआ है । डा० नगेन्द्र का यह कथन सर्वथा उचित है कि "वास्तव मे यह नाटक हिन्दी मे अपने ढग का एक है. .अद्वितीय ।"[3]

2 **प्रलय और सृष्टि**—इसमे एक अधेड अवस्था का साम्यवादी व्यक्ति, जो मजदूरो का नेता है, अपने विविध रगो के चश्मो, नोटबुक, कलम, लाइट-हाउस-टावर, घटा चिमनी, बादल, धरती आदि को देख कर बाते करता है । इन वस्तुओ के सम्बोधन से वह साम्यवाद पोषक एव पू जीवाद विरोधी अपने हृद्गत भावो को प्रगट करता है । वह बातचीत कर रहा होता है कि यकायक भूकम्प होता है और उसमे उसके मकान का आधा भाग नष्ट हो जाता है तथा मिल की चिमनी भी गिर पडती है । उस दृश्य को देखकर वह कहता है—

मेरा मकान . मैं मजदूरो का नेता, प्रतिनिधि, मेरा मकान कैसे गिरा ? इसकी सीढिया कैसे गिरी ? यह कैसे इकगा हो गया ? तो . तो क्या मेरा वाद . मेरा वाद भी इकगा है ? . चिमनी चिमनी श्रमजीवियो की सच्ची प्रतीक, जिसे पू जीवाद ने खरीद लिया था, गिरी, याने पूँजीवाद और श्रमजीवी वाद की प्रतीक, गिरी । मोटा और पापी महन्त मरा मेरे मकान से । मन्दिर खडा है । मैं इकगे मकान पर खडा हू । उतरने और चढने का साधन गायब ।"[4]

प्रस्तुत नाटक मे प्रतीक योजनाओ के माध्यम से पू जीवादी व्यवस्था की बुराइयो को प्रकट किया गया है, इसके साथ ही यह भी चित्रित किया गया है कि

1 शाप और वर तथा अन्य एकपात्री नाटक, पृ० 36 ।

2. वही, पृ० 41 ।

3 आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ० 147 ।

4 शाप और वर तथा अन्य एकपात्री नाटक, पृ० 127 ।

साम्यवादी व्यवस्था भी एकांगी है। विचार-सौन्दर्य की दृष्टि से नाटक सफल है।

3 **अलबेला**—इसमें एक डाकू अपने अलबेला नामक घोड़े को सम्बोधित करके बातें करता है। नाटककार ने डाकू के मनोभावों का सुन्दर चित्रण किया है। वार्तालाप के मध्य घोड़े की अनेक शारीरिक चेष्टाओं यथा हिनहिनाना, पैरों पर नाचना, कनौती को पीछे करना, कुदाना आदि को वह (डाकू) अपने मनोनुकूल सांकेतिक अर्थों में ग्रहण करता है। एक उदाहरण देखिए—

(घोड़ा कनौती को सामने की तरफ कर दोनों कानों को मिला, अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से ध्यान से आदमी की ओर देखता है।)

आदमी—यही ..यही आगे को आकर मिली हुई कनौती, यही यही साहसी तथा सद्दृष्टि तो मुझे साँप के सदृश धन पर बैठे हुए कंजूसों और मक्खीचूसों को खून पीने वाले सूदखोर साहूकारों को, किसानों को हलाल करने वाले जमींदारों और ताल्लुकेदारों को लूटने के लिए उत्साहित करते हैं, जिससे ये कानूनी लुटेरे भी धन लुट जाने से उन्हीं के समान हो जाएँ जिनके पास कुछ नहीं है।[1]

भाव-सौन्दर्य की दृष्टि से प्रस्तुत नाटक पर्याप्त सफल है।

4. **सच्चा जीवन**—सेठ जी का यह एकपात्री नाटक नाट्य-शिल्प की दृष्टि से आकाश-भाषित नाटकों से पर्याप्त साम्य रखता है। सड़क पर चलता हुआ एक युवक अपने दोनों तरफ बने मकानों की ऊपरी छतों की ओर देखकर शून्य से बातें करता है तथा वह इस समस्या को सुलझाने में तल्लीन है कि सच्चा जीवन क्या है? उसके मन में एक साथ अनेक प्रश्न उठते हैं, वह सोचने लगता है—क्या सच्चा जीवन सहन करना है? क्या जीवन वैतरणी को तर लेना ही सच्चा जीवन है? क्या अर्थोपार्जन सच्चा जीवन है? पुरुष के लिए स्त्री और स्त्री के लिए पुरुष प्राप्ति क्या सच्चा जीवन है? तर्क-वितर्क करते करते वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि 'ठीक रास्ते पर चलना, बिना विघ्न-बाधाओं की परवाह किये चलना, अथक चलना निष्काम चलना ही सच्चा जीवन है।'[2] सच्चे जीवन का आदर्श सूर्य को मानकर वह कहता है . "सूर्य का जीवन, हाँ, सूर्य का जीवन ही सच्चा जीवन है। उसकी यात्रा क्षण मात्र को भी नहीं रुकती। अथक, निष्काम, चलती है। काले-काले बादल उसे आच्छादित कर लेते हैं, पर वह इन विघ्न-बाधाओं की परवाह नहीं करता। सबकी सेवा करता है। वह अच्छा हो या बुरा। किसी से बदले में कुछ नहीं चाहता है।"[3]

---

1. शाप और वर तथा अन्य एकपात्री नाटक, पृ० 133-34।
2. वहीं, पृ० 143।
3. वहीं, पृ० 144।

तर्क--वितर्क शैली का आश्रय लेकर नाट्यकार ने प्रस्तुत नाटक मे पर्याप्त विचार- सौंदर्य भरा है । इसमे युवक के माध्यम से लेखक ने 'सच्चे जीवन' के विषय मे अपना व्यक्तिगत मत अभिव्यक्त किया है ।

5 पट-दर्शन—यह सेठ जी का अत्यन्त भावात्मक नाटक है । इसमे कुल छ दृश्य, प्रारभ मे उपक्रम एव अत मे उपसहार है । इसका नाट्य-शिल्प पश्चिम के प्रसिद्ध प्रयोगवादी नाट्यकार ओ नील की अभिव्यजनावादी रचना 'द इम्परर जान्स' से साम्य रखता है अथवा यह कहना अधिक उचित होगा कि इस शिल्पतत्र पर उक्त नाटक का स्पष्ट प्रभाव है ।

प्रस्तुत नाटक मे नाट्यकार ने नारी जीवन की छ अवस्थाओ का चित्रण किया है—चचल बालिका, अज्ञात यौवना, विवाहिता, गर्भिणी, पुत्रवती तथा वृद्धा । इसमे रेडियो और सिनेमा की 'फ्लैशबैक' की टेकनीक से जीवन के छोर पर खडी वृद्धा अपने बीते सुखद जीवन पर सस्मरणात्मक दृष्टिपात करती है और मच पर उपर्युक्त छ अवस्थाओ मे प्रकट होती जाती है । वह स्वय सूत्रधार भी है और मुख्य पात्र भी । दृश्य-परिवर्तन के साथ ही उसकी अवस्था भी बदलती जाती है । नाटक मे एक-पात्री नाटक की सभी शैलियो का प्रयोग हुआ है । कही सम्बोध्य व्यक्ति शून्य मे है, तो कही प्रत्यक्ष सामने । कही एकान्त कथन है, तो कही मूक प्राणियो से उत्तर प्रत्युत्तर । नाटक का कथन-सूत्र सुसम्बद्ध है और कौतूहल को बढाता हुआ बडे ही कलात्मक ढग मे चरम विन्दु की ओर अग्रसर होता जाता है ।[1]

6 शवरी—'शवरी' केवल एकपात्री नाटक ही नही है अपितु इसमे कहानी, एकाकी, श्रव्यकाव्य आदि विधाओ का समावेश भी है । इन सब के माध्यम से शवरी के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डाला गया है । वास्तव मे इस रचना का महत्त्व एकपात्री नाटक के कारण है अत इसका विवेचन इसी वर्ग के अन्तर्गत करना अधिक युक्ति-सगत है ।

इस एकपात्री नाटक की विशेषता यह है कि इसके सवाद पद्य मे है । भगवान राम के आगमन की प्रतीक्षा मे रत शवरी मुख्यत अपनी धेनु को सम्बोधित कर अपने मनोभावो को प्रगट करती है । शवरी के मनोगत भावो का सहज, स्वाभाविक उच्छल प्रवाह अत्यन्त रमणीयता लिए हुए है । राम से मिलने की मधुर कल्पना मे डूबी शवरी उनके सत्कार की अनेकानेक योजनाएँ बनाती है । उसकी स्वागत-योजना का एक प्रारूप देखिए—

होंगे वे प्रविष्ट इस आश्रम मे जैसे ही
मस्तक झुका के उन्हे नमन करूगी मैं ।
धोऊगी पदाब्ज नेत्र-नीर से मै उनके,
होगा पाणि पद्म मेरे सिर पर उनका ।[2]

1 सेठ गोविन्ददास अभिनदन ग्रन्थ, स० डा० नगेन्द्र, पृ० 230 ।

2 शवरी, पृ० 23-24 ।

नाटक मे शवरी की कोमल भावनाम्रो, उसकी ग्राशा, ग्राकाक्षा, व्यग्रता, ग्रौत्सुक्य, प्रेम, प्रतीक्षा ग्रादि का मनोरम चित्रण हुग्रा है।

हास्य-व्यंग्य प्रधान प्रहसन

सेठ गोविन्ददास ने हास्य-व्यग्य प्रधान प्रहसनो का निर्माण भी किया है। ग्रन्य नाटको की तुलना मे इनकी सख्या बहुत कम है ग्रौर श्रेष्ठता की दृष्टि से भी इन नाटको का स्तर बहुत उच्च नही है। न तो इनमे हास्य इतना प्रस्फुटित हो सका है कि जिससे पाठक या दर्शक हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाये ग्रौर न ही व्यग्य इतना तीखा है कि पाठको को तिलमिला दे। इतना होने पर भी इन नाटको को सर्वथा हेय नही कहा जा सकता, इनमे जो हास्य का पुट ग्रौर व्यग्य का स्पर्श है, उनसे ये रचनाएँ पर्याप्त ग्राकर्षक बन गई है।

सन् 1960 मे प्रकाशित "भविष्यवाणी तथा ग्रन्य प्रहसन" सेठ जी के छ: प्रहसनो का सग्रह है। सग्रहीत प्रहसनो के नाम इस प्रकार है—

1 भविष्यवाणी
2 जाति-उत्थान
3 विटेमिन
4 वह मरा क्यो ?
5 हार्स पावर
6 ग्रर्द्ध-जाग्रत

भविष्यवाणी—यह तीन ग्रको का व्यग्य-प्रधान प्रहसन है जिसमे समाज मे प्रचलित ग्रध विश्वासो एव सभ्य तथा शिक्षित कहे जाने वाले लोगो की मूर्खताग्रो पर व्यग किया गया है। ग्राकार-प्रकार मे यह नाटक एकाकी प्रहसन से ग्रधिक साम्य रखता है, सभवत इसीलिए इसे एकाकी प्रहसनो के साथ रखा गया है।

इसमे ज्योतिषी भविष्यानद का ग्रपने शिष्य शालिग्राम के साथ मिलकर सुनियोजित ढग से लोगो को मूर्ख बनाकर लूटने का वर्णन है। ज्योतिषी महाशय ने एक बडा बोर्ड द्वार पर लटका रखा है जिसमे लिखा है—

भविष्यवाणी कार्यालय
स्थान
ग्रखिल भूमडल
ग्रध्यक्ष
महर्षि भृगुकुलावतन्स, ज्योतिष-ज्योति, सामुद्रिकाचार्य,
रमल-मार्तण्ड महापडित श्री 1008, भविष्यानदजी महाराज।

ग्रधिकाश ग्राहक इस बोर्ड से ग्राकर्षित होते प्रतीत होते है। इस भविष्य वक्ता की कार्य-पद्धति की विशेषता यह है कि वह भविष्य पूछने वालो से नियत समय

पर ही मिलता है और इस बीच उनके सम्बन्ध मे अनेक बातो का पता शालिग्राम द्वारा करा लेता है। अतीत जीवन का शत-प्रतिशत ठीक विवरण मिल जाने के कारण ग्राहक उससे सतुष्ट हो जाते है और उनके भविष्य के सम्बन्ध मे वह जो भी बताता है उस पर पूरा विश्वास करते है। एक दिन ठाकुर उमारमणसिंह अपने पुत्र रमारमणसिंह के साथ उसके विवाह की कुडली मिलवाने के लिए, सेठ लक्ष्मीदास व्यापार का रुख जानने के लिए, सरस्वती चन्द्र अपनी प्रेषित रचना के पुरस्कार के सम्बन्ध मे जानने के लिए, विज्ञान का विद्यार्थी माजूमदार परीक्षा के परिणाम जानने के लिए और ठेकेदार तथा राज्य सभा के सदस्य तरलोक सिह अपनी मृत्यु की तिथि जानने के लिए जाते है। ज्योतिषी इन सबसे पृथक्-पृथक् मिलकर इन्हे भिन्न-भिन्न बाते बताता है। उसकी भविष्यवाणी के अनुसार सरस्वती चन्द्र को उसकी रचना पर पुरस्कार मिलता है, शेष लोगो को बताई गई बाते मिथ्या सिद्ध होती है। भविष्यानद द्वारा मूर्ख बनाये गये ये लोग बदला लेने की भावना से उसके निवास-स्थान पर जाते है और वहाँ जाने पर पता चलता है कि ज्योतिषी महाराज पहले ही रफूचक्कर हो चुके है।

नाटक मे अत तक रहस्यात्मकता बनाए रखकर, जिसके लिए पर्याप्त गुजाइश भी थी, नाटकीय सौन्दर्य की रक्षा की जा सकती थी, परन्तु नाट्यकार ने जानबूझ कर या असावधानी वश इस तथ्य की उपेक्षा की है। प्रारभ मे ही भविष्यानद का शालिग्राम से यह कथन—अच्छा, जो लोग आज आने वाले है, उनके कुटुम्ब, अब तक के कार्यो, आदि सब का पता तो लगा लिया है न ? पाठक की सारी जिज्ञासा समाप्त कर देता है। सामाजिक अध-विश्वासो पर व्यग्य एव पात्रानुकूल भाषा की रमणीय छटा के कारण नाटक मे पर्याप्त सजीवता विद्यमान है।

जाति-उत्थान—इसमे जति-उत्थान का दभ करने वालो की हँसी उडाई गई है। कायस्थ रघ्घूमल, दूसर सत्तूपरसाद और मुलुआ नाई अपनी-अपनी जाति के उत्थान का निश्चय करते है। रघ्घूमल कायस्थ जाति को क्षत्रिय तथा सत्तूपरसाद और मुलुआ क्रमश दूसर एव नाई जाति को ब्राह्मण बनाने की प्रतिज्ञा करते है। इस प्रतिज्ञा के बाद इनके नाम क्रमश रघुराजसिंह, सीताशरण और मल्लिनाथ हो जाते है। ये तीनो अपने प्रयास मे सफल नही होते और अत मे जाति-पाति तोडक मडल के सदस्य बन जाते है।

नाटक मे कायस्थो को क्षत्रिय, दूसरो एव नाइयो को ब्राह्मण सिद्ध करने के लिए जिन आप्त वाक्यो का उल्लेख कराया गया है, वे पर्याप्त आकर्षक है।

विटेमिन—इसमे विज्ञान के अतिवादी प्रयोक्ताओ पर व्यग्य है। सभी प्रकार के विटेमिन से युक्त भोज्य पदार्थ का इच्छुक बच्छराज डा० गोपालनन्दन की राय से भोजन के नाम पर केवल कुछ कच्चे गेहू, अकुरित चने, चोकर, फलो के छिलके और खली खाता है। कुछ ही दिनो मे इस भोजन से वह हड्डियो का ककाल मात्र रह

जाता है। उसकी पत्नी कपिला अनुनय-विनय करके किसी प्रकार इस भोजन से उसका पीछा छुडाने मे सफल हो जाती है। अत मे कपिला अपना नाम परिवर्तित करके कमला और बच्छराज पद्मराज हो जाते है। नाम परिवर्तन का रहस्य बच्छराज को बताते हुए उसका कथन है—

यह इसलिए जिससे आगे चलकर गोपालनदन के सदृश कोई गो-नन्दन हमे कच्चे मूँग, अकुरित चने, चोकर, खली और दूर्वानल की सानी न न खिला सके।[1]

नाटक मे हास्य का पुट अत्यन्त स्पष्ट है, बच्छराज की मूर्खतापूर्ण कृति का अवलोकन कर दर्शक हँसे बिना नही रह सकता। सेठजी का यह प्रहसन हास्य और व्यग्य दोनो दृष्टियो से सफल प्रहसन की कोटि मे रखने योग्य है।

वह मरा क्यो—प्रस्तुत प्रहसन मे छावनी के एक अग्रेज डाक्टर की मूर्खताओ का चित्रण है। इसमे व्यग्य की अपेक्षा हास्य का पुट अधिक है।

हार्स पावर—'हार्स पावर' प्रस्तुत सग्रह का सर्वाधिक मनोरजक प्रहसन है। मोटर लारी से रौद जाने के कारण एक राजा साहब की खेती को कुछ नुकसान पहुँचता है। नुकसान पहुँचाने वाले जानवर को पकडकर तुरत काजी हाउस मे बन्द करने का हुक्म होता है। आज्ञानुसार मोटर लारी काजी हाउस के अहाते मे लाई जाती है। काजी हाउस मे लारी रखने का मुआवजा मोटर वाले से किस आधार पर लिया जाय, यह एक समस्या बन जाती है। अत मे मन्त्री जी बुलाये जाते है और वे व्यवस्था देते है कि जितने हार्स पावर की लारी हो, लारी के रूप मे उतने ही घोडे मान लिए जाएँ और घोडो की निर्ख पर मुआवजा लेकर लारी छोड दी जाय।

नाटक मे नाट्यकार की नवीन कल्पना प्रशसनीय है। इसमे व्यग्य की अपेक्षा हास्य का अश अधिक है।

अर्द्ध-जाग्रत—प्रस्तुत एकाकी मे एक ग्रामीण हरिजन का चरित्र-चित्रण हरिजनो की अर्द्ध-जाग्रतावस्था की पृष्ठभूमि मे किया गया है। यह हरिजन एक काँग्रेसवादी सज्जन की कृपा से एम० एल० ए० बन जाता है। एम० एल० ए० बन जाने के बाद इसका दिमाग सातवे आसमान पर पहुँच जाता है और बात-बात पर सरकारी कर्मचारियो, ग्रामीणो, हरिजनो का अपमान करने लगता है, यहाँ तक कि अपनी पत्नी को भी मैली कुचैली रहने के कारण पीटता है। उसकी वेशभूषा, बोलचाल, रहन-सहन सब मे विलक्षणता दिखाई पडती है। अपने असभ्यतापूर्ण व्यवहार के कारण वह सवर्ण हिन्दुओ के नाको दम कर देता है। इन सारी विलक्षणताओ का समाधान एक काग्रेसवादी के निम्न कथन से हो जाता है—

"उसके लिए तो यथार्थ मे हम सवर्ण हिन्दू दोषी है। हमने सहस्रो वर्षो से

1. भविष्यवाणी तथा अन्य प्रहसन, पृ० 134।

आप हरिजनों पर ऐसे अत्याचार किए हैं और आज भी कर रहे है कि हमे उसका प्रायश्चित्त करना ही होगा। हमने आपको ऐसा दबाया, ऐसा सुलाया कि अब आपको उठाने, आपको जगाने के वक्त यदि आप हाथ-पैर पछाडकर उठे और उस क्रिया मे यदि हमे चोट पहुचे तो हमे बर्दाश्त करना चाहिए।"[1]

नाटक मे व्यग्य का अभाव है, हास्य भी बहुत स्पष्ट नही है। हरिजन एम० एल० ए० की भाषा सम्बन्धी अशुद्धियाँ और उसका विलक्षण व्यवहार एक सीमा तक हास्य की उत्पत्ति मे समर्थ कहे जा सकते है।

वैदेशिक कथाओ पर आधारित एकांकी

सेठ जी के कुछ एकाकी नाटक वैदेशिक कथाओ के आधार पर निर्मित हुए है। इस वर्ग की समग्र रचनाएँ अब तक अप्रकाशित है और इनमे से अधिकाश की पाडुलिपियाँ भी खो जाने या नष्ट हो जाने के कारण उपलब्ध नही है। अत उनका विवेचन नही हो सकता।

वैदेशिक कथाओ पर रचित नाटको के नाम इस प्रकार है—

1 मातामायी और धर्मभीरु (अप्राप्य)
2 मिग पायी लान (अप्राप्य)
3 मुकदेन (अप्राप्य)
4 स्तारिक और बाबुश्के
5 गुल बीबी या इस्लामी दुनिया मे पद की खाक
6 परो वाले कारखाने
7 स्तखानोफ या छोटे-से-छोटे से बडे-से-बडा
8 दो मूर्तिया (अप्राप्य)
9 पाप का घडा

उपर्युक्त नाटको मे मे केवल पाँच—'स्तारिक और बाबुश्के', 'गुल बीबी', 'परो वाले कारखाने', 'स्तखानोफ' और 'पाप का घडा' की पाडुलिपिया मुझे प्राप्त हुई अत यहा केवल उन्ही पाच का सक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

'स्तारिक और बाबुश्के' रूस की कथा पर आधारित है। इसके दो भाग है। पहले भाग मे 1904 और दूसरे भाग मे 1941 की घटना वर्णित है। रूसी भाषा मे बूढे को स्तारिक और बुढिया को बाबुश्के कहते है। इस नाटक मे दिखाया गया है कि रूस मे किसी समय (1904 मे) बुढापा एक अभिशाप था और उसके पश्चात् (1941 मे) वही एक वरदान बन गया। प्रथम भाग का नायक वैसली बुढापे से तग होकर यह कहता हुआ 'बुढापा कहर है' रूस जापान की लडाई मे मरने के लिए चला जाता है। इसी का लडका फियोडोर, दूसरे भाग मे, रूस के नए क़ानून के कारण

1 भविष्यवाणी तथा अन्य प्रहसन, पृ० 203।

बुढापे को वरदान मानता है।। उसी कानून के कारण उसे जीविका के लिए पेंशन मिलती है तथा वह अन्यत्र कार्य भी कर लेता है। इस सम्बन्ध मे फियोडोर का अपनी पत्नी से निम्न कथन द्रष्टव्य है—

"मै भी अब बूढा स्तारिक हू और तुम भी बूढी दादी बाबुश्के। पर अब हमारे देश मे स्तारिक और बाबुश्के घृणास्पद नही माने जाते। उनका आदर किया जाता है। 'बुढापा कहर है' यह कहावत बदल कर 'वृद्धावस्था सम्मान की वस्तु है' इस कहावत का प्रचार हो गया है।"[1]

प्रस्तुत एकाकी मे विचारो का प्राधान्य होने पर भी नाटकीयता नही है।

'गुलबीबी या इस्लामी दुनिया मे पर्दे की खाक' रूस के उजबेक प्रान्त के एक गाव की सत्य घटना पर आधारित है। इसका समय 1928 है।

उजबेक प्रान्त के एक गाव मे मुस्लिम स्त्रिया अपनी मुक्ति का आन्दोलन प्रारभ करती है और इस दिन वे अपने पराजो को जलाती है। उन्ही स्त्रियो मे गुलबीबी नामक एक स्त्री बुरके मे लिपटी खडी रहती है। सब स्त्रिया उसे अपना बुरका उतार फेंकने को कहती है लेकिन वह नही मानती। दूसरे दिन उसकी शादी का समारोह होता है। व्यवस्था पूर्ण हो जाने पर उसका पिता काजी से शादी दर्ज करने के लिए कहता है। पिता के इस कथन को सुनकर वह बुरका उतार देती है और वही खडे युवक नूरस की ओर सकेत कर काजी से कहती है—"नूरस की और मेरी शादी दर्ज कीजिए।" सारे समुदाय मे तहलका मच जाता है। गुल बीबी के पिता के विरोध करने पर भी रूस के कानून के अनुसार नूरस के साथ उसकी शादी हो जाती है।

इस नाटक मे पर्दे की बुराइयो का चित्रण किया गया है। कथानक मे रोचकता है और कथोपकथन पर्याप्त सजीव है। कथोपकथन सम्बन्धी एक उदाहरण देखिए—

"इन पराजो की राख के साथ ही साथ पूरब की तमाम मुस्लिम आबादी की औरतो के पुराने दकियानूसी रीतोरिवाज भी खाक मे मिल जायेंगे।"[2]

'परो वाले कारखाने' रूस की एक घटना पर आधारित है। सन् 1941 मे रूस पर जर्मनी के आक्रमण के समय रूसी खार कोफ नामक स्थान के कारखाने की मशीनो को खोलकर और उसे उखाडकर सुदूर पूर्व मे एक स्थान पर यथावत् स्थापित कर देते हैं। यह कार्य इतनी जल्दी होता है कि लोग विश्वास नही कर पाते। इस सम्बन्ध मे कारखाने के एक कर्मचारी का कथन द्रष्टव्य है—

खारकोफ मे जिन कारखानो को स्थापित करने मे वर्षों लगे थे, उनका दिनो मे उठ जाना, और फिर से महीनो नही सप्ताहो मे यहाँ स्थापित हो, पहले से भी ज्यादा उत्पादन करने लगना अभूतपूर्व घटना है। जान पडता है, इनमे पर उग

1 स्तारिक और बाबुश्के, भाग 2।

2 गुल बीबी (अप्रकाशित), पृ० 2।

गये थे और स्वारकोफ से उड़कर ये पूरब में आ गये हैं।[1]

प्रस्तुत एकांकी में नाटकीय तत्वों का समावेश न होने के कारण यह रचना सामान्य स्तर से ऊपर नहीं उठ सकी है। इसे सेठ जी की सामान्य कोटि की रचनाओं में ही परिगणित किया जा सकता है।

'स्ताखानोफ या 'छोटे-से-छोटे से बड़े-से-बड़ा' भी रूस की एक घटना के आधार पर लिखा गया है। रूस का एक साधारण मजदूर स्ताखानोफ अपने बुद्धिकौशल से सरगो में स्थित इरमिनो नामक कोयले की खान में, कार्य-पद्धति में परिवर्तन कर कोयले का निकालना कई गुना बढ़ा देता है। पहले जहाँ पाँच टन निकलता था वहाँ अब 100 टन से भी ऊपर निकलने लगता है। उसकी इस कार्यपद्धति की सारे देश में प्रशंसा होती है और कोयला निकालने की इस पद्धति का नाम ही स्ताखानोफ पद्धति' रख दिया जाता है और उसे 'आर्डर आफ लेनिन की पदवी से विभूषित किया जाता है। इस घटना से यह सिद्ध होता है कि रूस में छोटे से छोटा भी बड़े से बड़ा बन सकता है।

एकांकी में नाटकीयता का नितान्त अभाव है, वास्तव में यह एकांकी की अपेक्षा लेख के अधिक निकट प्रतीत होता है।

'पाप का घड़ा' दक्षिणी अफ्रीका के केपटाउन के नगर में घटित एक घटना के आधार पर लिखा गया है। इसका रचना-काल 1955 है।

केपटाउन नगर का एक रंगीन (Coloured) व्यक्ति एक हब्शी स्त्री से विवाह कर लेता है। उसके तीन बच्चे हैं—दो लड़कियाँ और एक लड़का। बच्चों का रंग गोरों के समान है। वह रंगीन व्यक्ति अपने परिवार को गोरों के वर्ग में सम्मिलित कराने के लिए वर्ग निर्णायक अफसर के पास प्रार्थना-पत्र देता है। उस समय के प्रचलित कानून के अनुसार वर्ग निर्णायक अफसर उसके परिवार का वर्गीकरण हब्शियों में करता है। उसे इस निर्णय से बड़ा आघात पहुँचता है। हब्शियों की बस्ती में जाने के अतिरिक्त अब अन्य कोई मार्ग उसे नहीं दिखाई पड़ता। वह जाने की तैयारी कर रहा होता है उसी समय एक भारतीय और एक हब्शी आते हैं। हब्शी कहता है कि यदि रंगीन व्यक्ति किसी गोरे का नौकर बनना स्वीकार करले तो उसे हब्शियों की बस्ती में न जाना पड़ेगा। रंगीन व्यक्ति यह प्रस्ताव ठुकरा देता है।

भारतीय को रंगीन व्यक्ति की इस दशा पर बहुत दुख होता है। वह उसे सान्त्वना देता हुआ कहता है कि "हमारा संयुक्त मोर्चा ही इस समस्या को हल करेगा। हमें इकट्ठे रहना है और इकट्ठे रहना है प्रेम से। या तो ये गोरे सुधरेंगे पर यदि ये न सुधरे तो जल्दी ही इनके पाप का घड़ा फूटेगा और जिस तरह हमें इन्होंने कुत्ते, बिल्लियों और कीड़ों मकोड़ों के समान बनाकर रखा है, वैसी दशा होगी इनकी। और ..हमारी तो

---

1 परों वाले कारखाने, पाडुलिपि।

अध्याय 11

नाट्य शिल्प

सेठ गोविन्ददास की नाट्य कला प्राचीन सस्कृत नाट्य विधान की अपेक्षा पाश्चात्य नाट्य विधान से अधिक प्रभावित है। इस सम्बन्ध मे स्वय नाट्यकार का कथन है—

"नाटककारो को भरतमुनि के ग्रन्थ का मनन आज भी आवश्यक है। परन्तु मैं एक बात और भी कह देना आवश्यक समझता हू कि समय मे महान् परिवर्तन हो जाने के कारण यदि आज कोई नाटककार केवल इस प्राचीन भारतीय पद्धति का आश्रय लेकर नाटक रचना करेगा तो वह सफल नही हो सकता।"[1]

सेठ जी के नाटको मे प्राचीन सस्कृत नाटको की भाति नादी, सूत्रधार, विष्कंभक, मगलाचरण, अर्थ-प्रकृतियो, पच-सधियो आदि के अनुसधान का प्रयास व्यर्थ प्रयास ही होगा।

प्रस्तुत अध्याय मे हम सेठ जी की नाट्य कला सम्बन्धी कुछ मूल बातो पर निम्न दृष्टियो से विचार करेगे—

1 कथानक
2 पात्र और चरित्र-चित्रण
3 सवाद
4 भाषा
5 शैली और टेकनीक
6 देशकाल
7 उद्देश्य
8 अभिनेयता

कथानक—सेठ गोविन्ददास ने युग-जीवन के विस्तृत क्षेत्र से अपनी नाट्य-कृतियो के लिए कथानको का चयन किया है। उन्होने पौराणिक, ऐतिहासिक, जीवनी, सामाजिक, समस्या, दार्शनिक एव प्रतीकवादी नाटको का निर्माण किया है। इसके अतिरिक्त एक 'नाटकीय सवाद' गीति-नाट्य एव विपुल परिमाण मे एकाकियो का

1 नाट्यकला मीमासा, सस्करण 1961, पृ० 21।

महान् और वयोवृद्ध समाज मे न जाने कितने कथानक मिल सकते है, न जाने कितनी उलझने सुलझाने की समझ प्राप्त हो सकती है।"[1]

सेठ जी के नाटको की कथावस्तु युग और जीवन के विस्तृत क्षेत्र से ली जाने के कारण उनमे वैविध्य तो है लेकिन उलझनो का नितात अभाव है। उनके कथानको का विकास सरल, सीधी रेखाओ मे होता है और पाठक भी बिना किसी भ्रमरावर्त मे फसे नाट्यकार द्वारा निर्धारित लक्ष्य पर पहुँच जाता है।

कथावस्तु के सम्बन्ध मे डा० रामचरण महेन्द्र का कथन है—

"कथावस्तु वे प्राय दो प्रकार की रखते है—आधिकारिक और प्रासगिक। यह विधि उनके ऐतिहासिक नाटको मे पालन की गई है। एक प्रधान कथानक है, जिसका निर्माण इतिहास मे पाये जाने वाले पात्रो द्वारा हुआ है। मूल कथानक की सौन्दर्य-वृद्धि के लिए एक प्रासगिक या गौण काल्पनिक कथा भी मिला दी गयी है, जिससे मूल भाव तथा वातावरण और भी स्पष्ट हो जाता है।"[2]

डा० महेन्द्र के उपर्युक्त कथन मे आशिक सत्यता है। सेठ जी के सभी ऐतिहासिक नाटको मे प्रासगिक कथाओ की योजना नही है। केवल 'कुलीनता' और 'शेरशाह' मे ही इसका स्पष्ट स्वरूप दिखाई देता है। सामाजिक नाटको मे तो प्रासगिक कथाए नही के बराबर है।

सेठ जी के नाट्य कथानक कथा रस से परिपूरित भले ही न हो लेकिन उनमे विचारो एव समस्याओ का अनन्त पारावार लहराता है।

पात्र और चरित्र-चित्रण—नाटकीय कथानको के अनुरूप सेठ जी ने अपने नाटको के लिए पात्रो का चयन भी विभिन्न युगो एव क्षेत्रो से किया है। उनकी नाट्य-प्रतिभा उपयुक्त पात्रो की खोज के लिए पुराणो, इतिहासो एव आधुनिक सभ्य समाज का निरन्तर मन्थन करती रही है, इसीलिए उनके नाटको मे पौराणिक, ऐतिहासिक एव समाज के उच्च वर्गीय सभी प्रकार के पात्रो के दर्शन सहज मे ही हो जाते हैं।

पौराणिक पात्रो के चरित्र-चित्रण मे नाट्यकार ने युगानुरूप दृष्टिकोण अपनाया है, प्राय सभी पौराणिक पात्र—राम, कृष्ण, सीता, राधा, कर्ण, द्रौपदी आदि पौराणिकता से मुक्त है। उनमे अति मानवता के स्थान पर मानव भावनाओ की प्रतिष्ठा की गई है। राम और कृष्ण सामान्य मानवो की भाति प्रफुल्लित, उल्लसित, चिन्तित होते दिखाये गये है। इसी प्रकार सीता का चरित्र-चित्रण आदर्श भारतीय नारी के रूप मे और राधा का नख से शिख तक प्रेम पगी कर्तव्य-परायणा के रूप मे किया गया है। राम और कृष्ण मानव रूप मे भी आदर्श मानव है, राम धीरोदात्त नायक हैं और कृष्ण धीर ललित।

1 हिन्दी नाटककार—श्री जयनाथ 'नलिन', द्वि० स० 1961, पृ० 187-88।
2 सेठ गोविन्ददास : नाट्य कला तथा कृतिया, पृ० 28।

पौराणिक नाटको मे कर्ण, कुन्ती एव द्रौपदी के चरित्र-चित्रण अधिक स्वाभाविक है। कर्ण की नीचता एवं मानवता दोनो को चित्रित करके नाट्यकार ने उसे सामान्य मानवो की श्रेणी मे प्रतिष्ठित कर दिया है, कुन्ती का अन्तर्द्वन्द्व एव द्रौपदी का विद्रोहिणी नारी के रूप मे चित्रण आधुनिक युग के सर्वथा अनुकूल है।

ऐतिहासिक पात्रो के चरित्र-चित्रण मे भी नाटककार को पर्याप्त सफलता मिली है। इतिहास के ऐसे स्वर्णिम पृष्ठो से कथानको एव पात्रो का चयन किया गया है कि अनायास ही नाट्यकार को अनेक धीरोदात्त नायको की प्राप्ति हो गई है। 'हर्ष' के हर्ष, 'शशिगुप्त' के चन्द्रगुप्त एव चाणक्य, 'कुलीनता' के यदुराय, 'शेरशाह' के शेरशाह, 'अशोक' के अशोक, 'विजय वेलि अथवा कुरुप' के कुरुप, इसी प्रकार के महान चरित्र है। ऐतिहासिक नाटको के नारी पात्रो—राज्यश्री (हर्ष), हेलन (शशिगुप्त), रेवासुन्दरी (कुलीनता) एव रेणु (विजयवेलि अथवा कुरुप) आदि के चरित्र मे उच्चता की रेखाए अत्यन्त स्पष्ट है। नारी चरित्रो मे नाट्यकार ने प्रेम सहृदयता, दया, ममता, उदारता आदि गुणो का विकास दिखाया है। मेरे विचार से सर्वाधिक स्वाभाविक एव मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण 'अशोक' की तिष्यरक्षिता का हुआ है। इसका विस्तार से विवेचन ऐतिहासिक नाटको के प्रसग मे 'अशोक' की आलोचना करते समय किया जा चुका है।

पात्रो के नामकरण के सम्बन्ध मे भारतीय नाट्य परम्परा का पालन सेठ जी ने अपने सामाजिक नाटको मे किया है। इस वर्ग के नाटको के अधिकाश पात्रो के नाम उनके गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार ही रखे गये है। 'विश्व प्रेम' का मोहन ससार को मोहित करने वाला है, 'प्रेम या पाप' का लक्ष्मीनिवास और 'गरीबी या अमीरी' का लक्ष्मीदास दोनो ही करोडपति है। 'दुःख क्यो' की सुखदा सुखी दाम्पत्य जीवन का मूल कारण और यशपाल यश-लोलुप रगा सियार है। सेठ जी की यह प्रवृत्ति उनके प्राय सभी सामाजिक नाटको मे देखी जा सकती है।

सामाजिक नाटको के नेता के सम्बन्ध मे नाट्यकार की निम्न मान्यता है—

"सामाजिक नाटको के सभी पात्र साधारण गृहस्थ होने के कारण तब तक नेता को प्रधानता नही मिल सकती जब तक वह किसी विशिष्ट सामाजिक दल का प्रतिनिधि न हो। बिना इसके सामाजिक नाटक मे एकता का स्थापित करना बहुत ही कठिन हो जाता है, अत इस ओर अत्यधिक ध्यान रखना आवश्यक है।"[1]

सेठ जी के सामाजिक नाटको मे वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाले (टाइप) कई पात्र मिलते है। 'प्रकाश' मे राजा अजयसिंह टूटते हुए जमीदार वर्ग, दामोदर दास गुप्ता सामन्तशाही पूंजीवादी वर्ग, धनपाल स्वार्थलिप्त मन्त्रि-वर्ग, नेस्ट फील्ड वकील वर्ग तथा कन्हैयालाल वर्मा पत्रकार वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रकाश स्वयं सत्य-

1 नाट्य कला मीमासा, पृ० 33-34।

प्रिय एव निर्भीक युवक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। 'हिसा या अहिसा' का माधवदास पुराने पूजीवादी वर्ग, दुर्गादास नये पूजीवादी वर्ग, हेमराज प्राचीन रूढि-वादी मजदूर वर्ग और त्रिलोचन पाल नये मजदूर वर्ग का प्रतिनिधि है। 'सेवा पथ' का दीनानाथ गाधीवादी, शक्तिपाल समाजवादी एव श्री निवास पूजीवादी वर्ग का प्रतिनिधि है।

सेठ जी के प्रतीकवादी नाटक 'नवरस' मे अमूर्त पात्रो की सुन्दर योजना दिखाई पडती है। यहा शास्त्रसम्मत नव रसो को पात्रो के रूप मे प्रतिष्ठित किया गया है और विभिन्न रसो के प्रतीक पात्रो के क्रिया-कलाप उन रसो की विशेषताओ को ध्यान मे रखते हुए उनके अनुरूप ही चित्रित किये गये है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से सेठ जी के सामाजिक पात्रो को मूलत दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—

(1) आदर्शवादी वर्ग, (2) यथार्थवादी वर्ग।

प्रथम वर्ग के अन्तर्गत 'विश्व प्रेम' का मोहन, 'प्रकाश' का प्रकाश, 'सेवा पथ' का दीनानाथ, 'त्याग या ग्रहण' का धर्मध्वज, 'सुख किसमे' की प्रेमपूर्णा और 'महत्त्व किसे' का कर्मचन्द आदि है। इस वर्ग के व्यक्ति आदर्श के प्रति पूर्ण निष्ठा रखने वाले और जीवन मे नाना कष्टो को झेलते हुए भी अपने निर्दिष्ट मार्ग पर चलने वाले चित्रित किए गए है। अपनी आदर्शवादिता के कारण ये पात्र जन-सामान्य से बहुत ऊपर उठे हुए प्रतीत होते है और कई बार तो इसी के कारण इनके चरित्र कुछ अस्वा-भाविक भी लगते है।

द्वितीय वर्ग मे 'विश्व प्रेम' का शूरसेन और चन्द्रसेन, 'सेवापथ' का श्रीनिवास और शक्तिपाल, 'सिद्धान्त स्वातत्र्य' का त्रिभुवनदास, 'हिसा या अहिसा' का दुर्गादास, 'बडा पापी कौन' का त्रिलोकीनाथ एव रमाकात, 'सुख किसमे' का सृष्टिनाथ तथा 'गरीबी या अमीरी' का लक्ष्मीदास आदि आयेगे। इस वर्ग के पात्रो का चरित्र-चित्रण यथार्थवाद पर आधारित होने के कारण अधिक स्वाभाविक बन पडा है। सेठजी के अधिकाश सामाजिक पात्र इसी कोटि मे परिगणित किये जायेगे। वास्तविकता यह है कि जीवन-स्पन्दन सेठ जी के इन्ही पात्रो मे दिखाई पडता है।

सघर्ष—चरित्र-चित्रण का प्राण तत्त्व सघर्ष है, पश्चिमी नाटको मे इसे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यहा अधिकाश नाटको का आधार सघर्ष ही है। इस सम्बन्ध मे प्रो० ए० निकल का निम्न कथन द्रष्टव्य है—

"All drama ultimately arises out of conflict.. In tragedy there is ever a clash between forces physical or mental, or both, in comedy there is ever a conflict between personalities, between the sexes, or between an individual and society"[1]

1 Theory of Drama—Nicoll, 1931 edition, p 92

सघर्ष के विषय मे नाट्यकार (सेठ जी) का मत इस प्रकार है—

"चरित्र-चित्रण के लिए सघर्ष अनिवार्य है। सघर्ष द्विमुखी होना चाहिए—बाह्य भी और आतरिक भी। बाह्य सघर्ष किसी एक व्यक्ति के साथ दूसरे व्यक्ति का अथवा किसी एक व्यक्ति के साथ समाज अथवा राष्ट्र का अथवा पुरुष वर्ग के साथ स्त्री वर्ग का या अन्य भी अनेक प्रकार का हो सकता है। आन्तरिक सघर्ष एक ही व्यक्ति के हृदय का सघर्ष है। इसे बाह्य सघर्ष से अधिक महत्त्व प्राप्त है। यह सघर्ष एक भाव के साथ दूसरे भाव का होता है। यही नाटक मे मनोविज्ञान को अपना कार्य करने का अवसर मिलता है।"[1]

सेठ जी के नाटको मे बाह्य सघर्ष का प्राधान्य तो है लेकिन उनके अधिकाश नाटको का आन्तरिक सघर्ष दुर्बल है। एकाकियो के क्षेत्र मे यह अभाव कुछ अधिक खटकता है। अन्त सघर्ष की दृष्टि से 'परमहस का पत्नी प्रेम' सर्वोत्कृष्ट एकाकी है। इस लाइन पर सेठ जी ने पाच-दस एकाकियो का सृजन भी किया होता तो उनकी एकाकी-कला मर्मज्ञता के प्रति किसी को शिकायत न होती। पूरे नाटको मे कर्तव्य, कर्ण, अशोक, भिक्षु से गृहस्थ और गृहस्थ से भिक्षु, कुलीनता, विश्व प्रेम, पतित सुमन, दलित कुसुम, प्रेम या पाप, गरीबी या अमीरी, सतोष कहा और स्नेह या स्वर्ग आदि अन्त सघर्ष की दृष्टि से सफल नाटक है।

आदर्शवादी पात्रो को छोड कर अन्य पात्रो के चरित्र-चित्रण मे नाट्यकार ने मनोवैज्ञानिकता का ध्यान रखा है। इनके उत्थान-पतन मे परिस्थितियो का योगदान भी चित्रित हुआ है, यही कारण है कि अपनी पतितावस्था मे भी ये पात्र सामाजिको की सहानुभूति से वचित नही होते।

संवाद—सवाद नाट्य रचना का महत्त्वपूर्ण अग है। कथावस्तु के विन्यास, चारित्रिक विकास एव नाट्यकार की अभीप्ट सिद्धि का सर्वाधिक सफल माध्यम सवाद ही है। डा० दशरथ ओझा के शब्दो मे सफल नाटककार का कथोपकथन उस वायुयान के सदृश युगपत् त्रिविध कार्य करता है, जो कभी जल पर सतरण, कभी स्थल पर सचरण और कभी आकाश मे विचरण करता हुआ दृष्टिगत होता है। जिस कथोपकथन मे जितनी अधिक चरित्र-चित्रण की क्षमता, व्यापार प्रसार की योग्यता और रस-परिपाक के लिए भावोद्बोधन की तीव्रता होगी, वह उतना ही उत्तम माना जाएगा।[2]

सवादो के विषय मे दो प्रकार की धारणाएँ है—कुछ नाटककार सवादो मे जीवन की अनुरूपता भरते हुए भी साहित्यिक सवादो के ही पक्षपाती है। दूसरे प्रकार के यथार्थवादी नाटककार वास्तविक संवादो को ही ग्राह्य मानते है, उनके अनुसार जीवन मे जैसे सवाद सुनाई पडते है नाटको मे भी वैसे ही होने चाहिए।

---

1 नाट्य कला मीमासा, पृ० 25-26।

2 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, पृ० 360।

सेठ जी का झुकाव दूसरे पक्ष की ओर अधिक है, इस सम्बन्ध मे उनका दृष्टि-कोण इस प्रकार है—

"जहा तक कथोपकथन का प्रश्न है, उसके विषय मे मेरा सर्वप्रथम निवेदन तो यह है कि उसे अधिकाधिक स्वाभाविक और पात्रानुकूल होना चाहिए। . यहा एक गभीर समस्या यह उठती है कि हिन्दी नाटको मे किसी पात्र से हिन्दीतर भाषा का प्रयोग कराना कहा तक उचित है तथा विभिन्न जनपदीय भाषाओ का प्रयोग कहा तक उपयुक्त है ? नौकर, चाकर, धोबी, माली आदि पात्र अपनी ही भाषा मे बोले अथवा शुद्ध खडी बोली मे ? मै समझता हू उनका शुद्ध खडी बोली मे बोलना अस्वाभाविक होगा। ठीक इसी तरह किसी मुगल बादशाह अथवा सामान्य मुसलमान से भी हम सस्कृतनिष्ठ हिन्दी का प्रयोग नही करा सकते।"[1]

सेठ जी के पौराणिक और ऐतिहासिक नाटको के सवाद उस युग के अनुरूप भाषा मे ही है, यहा तक कि 'हर्ष' की मालिन और फल बेचने वाली भी सस्कृतनिष्ठ हिन्दी का ही प्रयोग करती है। इन नाटको के अधिकाश सवाद साहित्यिक है। सामाजिक और समस्या नाटको मे ही मुख्यत सेठ जी की सवाद विषयक मान्यताओ का यथार्थ रूप दिखाई पडता है। इन नाटको मे वास्तविक सवादो का माधुर्य अनेक स्थलो पर बिखरा है। पात्रो की मानसिक स्थिति, प्रदेश, स्तर के अनुसार भाषा मे परिवर्तन इन सवादो की विशेषता है। मुसलमान पात्रो के कथोपकथनो मे उर्दू मिश्रित हिन्दी, मारवाडी सेठ जी के सम्वादो मे ठेठ मारवाडी, अग्रेजो की टूटी फूटी हिन्दी, बगाली बाबू की बोली मे बगला शैली पर हिन्दी तथा इसी प्रकार के अन्य प्रादेशिक भाषाओ के प्रयोग सेठ जी के नाटको मे उपलब्ध है। इन विविध भाषा-प्रयोगो के कारण सम्वाद पर्याप्त स्वाभाविक एव सजीव प्रतीत होते है। एक उद्धरण देखिए—

"नासि होइ जाय तुम्हरी ढोगी पूजा केरि। यह बिटेवा अठारह वर्ष केरि होइगै है, मुन्दा बियाहे क्यार अबै तक ठीकु नहिन। लरिका औरु पुतऊ किरस्तान अस घूमति है"[2]

सेठ जी के साहित्यिक सम्वादो मे लक्षणा और व्यजना का तो प्राय अभाव है लेकिन अलकारो एव भावो की प्रचुरता अवश्य है। अलकृत सम्वाद का एक अश देखिए—

"तुम्हारे वियोग मे मेरा जीवन आकाश के सदृश शून्य हो गया था, तुम्हारे मिलन के आशा रूपी गीत की एक क्षीण ध्वनि उस शून्यता मे जीवन स्पन्दन को रखे हुए थी अन्यथा यह जीवन ही न रह पाता। अब नही, प्रियतम, अब यह वियोग वह्नि मुझे भस्म कर देगी।[3]

1 नाट्य कला मीमासा, पृ० 28-29।

2 प्रकाश, पृ० 72।

3 विजय वेलि अथवा कुरुप, पृ० 97।

सेठ जी के नाटको मे सम्वाद प्राय. छोटे-छोटे, गतिशील एव अवसरानुकूल है लेकिन कुछ स्थलो पर बडे-बडे, नीरस और अरुचिपूर्ण सम्वादो की योजना भी है। अपनी प्रवृत्ति के अनुसार सेठ जी ने पात्रो से कही-कही लम्बे-लम्बे भाषण भी दिलवाये है (देखिए 'कुलीनता' पृ० 23-24, 'अशोक' पृ० 45-46, 50-52, हर्ष पृ० 7-8) जो किसी भी दशा मे स्वाभाविक नही कहे जा सकते।

सेठ जी के कई नाटको मे लम्बे-लम्बे स्वगत कथनो की प्रचुरता भी है।[1] अन्तर्द्वन्द्व चित्रण के लिए एक सीमा तक इनकी उपयोगिता मानी जा सकती है परन्तु जिस रूप (पाच-पाच पृष्ठ तक) मे ये प्रयुक्त किये गये है उस रूप मे इन्हे स्वाभाविक नही माना जा सकता। एक-पात्री नाटको के स्वगत कथन निश्चित रूप से सुन्दर एव स्वाभाविक है।

विभिन्न पात्रो द्वारा पारस्परिक वार्तालाप मे यत्र-तत्र सूक्तियो के प्रयोग से कथोपकथन प्राणवन्त बन गये है। कुछ उद्धरण द्रष्टव्य है—

> उत्तेजना विवेक को सदा नष्ट कर देती है।
> सिद्धान्त व्यवहार के समय सदा सीमाबद्ध हो जाते है।
>
> —विश्वप्रेम, पृ० 114, 9।
>
> वीरता का सबसे बडा गुण कर्मण्यता है।
> क्रूरता ही वीरता की जननी है। कोमलता स्त्रियो का भूषण हो सकती है, पुरुषो का नही।
>
> —विजयवेलि, पृ० 122, 64।
>
> परिवर्तन ही जीवन है, स्थिरता तो मृत्यु है।
> जीवित रहने का अर्थ ही गति है और गति परिवर्तन बिना असम्भव है। —अशोक पृ० 59।

भाषा—सेठ जी के नाटको की भाषा सयत, परिष्कृत एव सरल है। इनकी भाषा न तो प्रेमचन्द के समान चलती हुई मुहावरेदार है और न ही प्रसाद के समान सस्कृतनिष्ठ, अपितु यह दोनो की मध्यवर्तिनी है। भाषा को बोझिलता से बचाने के लिए नाट्यकार ने क्लिष्ट एव अप्रचलित शब्दो को यथासम्भव बचाया है लेकिन जहा प्रादेशिक भाषाओ या उपभाषा का प्रयोग है वहा उस भाषा विशेष के शब्द ही रखे गये है। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है।

पौराणिक एव ऐतिहासिक नाटको मे उस युग के वातावरण की यथार्थता को लाने के लिए उस काल मे प्रचलित शब्दो का ही प्राय प्रयोग किया गया है। 'कर्त्तव्य' मे आर्य पुत्र, तात, वत्स आदि, 'हर्ष' मे महामात्य, परम भट्टारक, दड पाशिक आदि शब्दो का प्रयोग इसी उद्देश्य से किया गया है। इन नाटको की भाषा

---

1 देखिए—कर्ण, कुलीनता, भिक्षु से गृहस्थ और गृहस्थ से भिक्षु, गरीबी और अमीरी आदि।

पात्रों के मानसिक स्तर एव प्रादेशिकता के आधार पर परिवर्तित होते दिखाई गई है। सम्वाद के प्रसग मे इसका उल्लेख किया जा चुका है।

सेठ जी की भाषा मे उक्ति-वैचित्र्य एव ध्वन्यात्मकता का प्राय अभाव है परन्तु आलकारिता एव भावात्मकता के प्राचुर्य ने इस अभाव की पूर्ति कर दी है।

भाषा अश्लीलत्व दोष से लगभग मुक्त है। समग्र साहित्य मे केवल दो स्थानो पर 'शिश्नेन्द्रिय' शब्द का प्रयोग मिलता है जो अवश्य खटकता है। सेठ जी की सेक्स चेतना अत्यन्त मर्यादित है अत किसी भी स्थल पर उसके चित्रण मे अश्लीलता नहीं है।

मुहावरो और सूक्तियो के प्रयोग से भाषा सजीव हो उठी है और उसमे पर्याप्त गत्यात्मकता भी आ गई है।

शैली और टेक्नीक—सेठ जी की शैली व्यग्यात्मक न होकर व्याख्यात्मक है। उनके सरल, सीधे, ग्र थि रहित जीवन के अनुरूप ही उनकी शैली सीधी, सरल और उलझनो से मुक्त है। पाठको को तिलमिला देने वाला व्यग्य उनकी शैली का अग न होकर विचारो एव समस्याओ का तर्क-पूर्ण विवेचन, विश्लेषण ही मुख्यत उसका अग है। उनके पास विचारो का अक्षय भण्डार है, उन्ही विचारो को जन-सामान्य तक पहुँचाने के लिए उन्होने नाटकीय शैली अपनायी है। डा० नगेन्द्र का यह कथन सर्वथा सत्य है कि "उनके पास सृजन करने वाली कल्पना शक्ति कम और विवेचना शक्ति अधिक है।"[1] उत्तम नाट्य रचना के लिए महान् विचार की अनिवार्यता स्वय नाट्यकार ने स्वीकार की है। उसका कथन है—

"जिस नाटक मे जितना महान् विचार होगा, जितना तीव्र सघर्ष होगा, जितनी सगठित एव मनोरजक कथा होगी जितना विशद चरित्र-चित्रण होगा और जितनी स्वाभाविक कृति एव कथोपकथन होगे, वह उतना ही उत्तम तथा सफल होगा।"[2]

टेक्नीक की दृष्टि से सेठ जी नये-नये नाटकीय प्रयोग करने मे सिद्धहस्त है। काल-सकलन का अवरोध मिटाने के लिए नाटको के प्रारम्भ मे 'उपक्रम' और अन्त मे 'उपसहार' रखने की सेठ जी ने नई योजना प्रस्तुत की है। इनका सफल प्रयोग सेठ जी के अधिकाश नाटको मे हुआ है। इस सम्बन्ध मे नाट्यकार का दृष्टिकोण उल्लेखनीय है—

'किसी-किसी एकाकी नाटक के लिए 'काल-सकलन' अवरोध हो सकता है। ऐसी अवस्था मे मैंने एक नई योजना रखी है। वह है 'उपक्रम' या 'उपसहार'। 'उपक्रम' और उपसहार' का उपयोग सिर्फ 'काल-सकलन' के अवरोध से बचने के लिए ही नही है। कभी-कभी काल-सकलन रखते हुए भी इनका उपयोग हो सकता है।

1 आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ० 67।

2 नाट्य कला मीमासा, पृ० 33।

मेरे मत से इस प्रकार के उपयोग से भी नाटक का सौन्दर्य बढ जाता है, पर इस प्रकार का उपयोग अनिवार्य नही। 'काल-सकलन' को तोडकर यदि अधिक दृश्य रखना आवश्यक हो, तो मेरा मत है कि 'उपक्रम' और 'उपसहार' अनिवार्य है। उपक्रम' और 'उपसहार' का उपयोग नाटक के आरम्भ और अन्त मे ही हो सकता है।"[1]

एकाकियो के लिए प्रस्तावित उपर्युक्त विधान का उपयोग सेठ जी के एकाकियो मे उतना नही है जितना उनके पूरे नाटको मे। इसके कारण उनके नाटको मे एक नवीनता दृष्टिगोचर होती है। 'कर्ण', 'प्रकाश', 'भूदान यज्ञ' और 'गरीबी या अमीरी' मे उपक्रम एव उपसहार के प्रयोग से नाटकीय सौन्दर्य मे पर्याप्त वृद्धि हुई है।

अभिनय के सम्बन्ध मे भी सेठ जी के कुछ नाटकीय प्रयोग है। वे नाटक के कुछ दृश्यो को सिनेमा के द्वारा दिखलाये जाने के पक्षपाती है और अपने अनेक नाटको (कर्ण, अशोक, भूदान यज्ञ आदि) मे उन्होने इसी दृष्टिकोण से दृश्य-विधान निर्मित किये है। नाटको मे विस्तृत रग-सकेत औपन्यासिक शैली के अधिक निकट प्रतीत होते है। 'कर्तव्य', 'हर्ष,' 'कुलीनता', आदि नाटको मे पुरवासियो द्वारा घटनाओ का वर्णन भी औपन्यासिक शैली के अन्तर्गत ही आयेगा। सेठ जी के अधिकाश नाटको मे पाँच अक है, परन्तु उन्होने दो, तीन और चार अको के नाटको का निर्माण भी किया है। एकाकियो मे अक तो एक ही है लेकिन दृश्य-विधान प्राय भिन्न है। किसी किसी एकाकी (चन्द्रापीड और चर्मकार) मे तेरह दृश्य तक है। पाश्चात्य शैली से प्रभावित होने के कारण सेठ जी अपने नाटको मे वध, युद्ध, आत्महत्या, मृत्यु, शव, चिता, भूकम्प आदि के दृश्य दिखाना अनुचित नही मानते। उनके नाटको मे चुम्बन आलिंगन आदि के दृश्यो की भी कमी नही है। 'विकास' मे यह भावना अपनी चरम सीमा पर है।

टेकनीक सम्बन्धी नये प्रयोगो के दर्शन सेठ जी की कुछ विशिष्ट नाट्य कृतियो मे भी होते है। वे हिन्दी मे एकपात्री नाटको के सफल प्रणेता है, उनका 'प्रकाश' पाश्चात्य प्रतीक शैली का नाटक है और 'नवरस' भी प्रतीकवादी नाटको की परम्परा मे ही है। 'विकास' एक सुन्दर 'नाटकीय सवाद' है, जिसमे स्वप्न-नाटक की टेकनीक का निर्वाह बडी सुन्दरता से किया गया है।

टेकनीक की दृष्टि से सेठ जी को क्रान्तिकारी नाटककार कहा जाय तो अनुचित न होगा।

देश-काल—देश-काल के अन्तर्गत किसी भी देश या समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सास्कृतिक परिस्थितियाँ, रहन-सहन, आचार-विचार आदि आते है।

---

1 नाट्य कला मीमासा, पृ० 123।

सेठ जी के नाटको मे इस तत्त्व की प्रधानता है। उनका देश-काल चित्रण वैविध्यपूर्ण होने के कारण पर्याप्त आकर्षक है। पौराणिक एव ऐतिहासिक नाटको मे तत्कालीन वातावरण की यथार्थता, उसकी सजीवता नाट्यकार के सफल देश-काल चित्रण का प्रत्यक्ष प्रमाण है। उनके नाटको मे राष्ट्रीयता की भावना, देश प्रेम, भारतीय सस्कृति, प्राचीन भारत का गौरवपूर्ण अतीत, अ ग्रेजो की दमन नीति, काग्रेस का इतिहास, काग्रेसियो की स्वार्थ भावना आदि के अनेक चित्र प्रस्तुत किये गये है। सामाजिक एव आर्थिक परिस्थितियो के निरूपण के लिए अस्पृश्यता, विधवा विवाह, न्याय-अन्याय, शोषण, अ ध-विश्वास, हडताल हिन्दू-मुस्लिम एकता आदि अनेक समस्याओ का चित्रण उनके नाटको मे है। युगीन विचार-धाराओ के रूप मे गाँधीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, पूँजीवाद आदि का तुलनात्मक विवेचन भी प्रस्तुत किया गया है। सेठ जी के नाटको मे देश काल सम्बन्धी असगतिया प्राय नही है।

उद्देश्य—उपयोगितावादी कलाकार की रचना निरुद्देश्य नही हो सकती। सेठ जी 'कला कला के लिए' मत के अनुयायी नही है, उनके अनुसार 'कला कला के लिए' का सिद्धान्त जीवन से दूर हटकर मात्र बाह्य एव भौतिक प्रसाधनो मे तन्मय रहता है। कला जीवन के लिए होनी चाहिए और मनोरजन भी कौतूहल बने रहने के लिए होना चाहिए।[1]

उद्देश्य के सम्बन्ध मे डा० रघुवश का निम्न कथन महत्त्वपूर्ण है—

'प्रत्येक कला का कार्य अनुभवो को फिर से प्रस्तुत करना है, और इससे भी आगे जीवन की अन्त अनुरूपता से क्रम उपस्थित करना है। अनुभवो का ग्रहण सत्यो के आधार पर होता है और सत्य का ग्रहण अनुभव के आधार पर। कुछ कलाकार अनुभूति के सत्यो को प्रस्तुत करते है और दूसरे अनुभव के आधारभूत सत्यो को। आज अधिकतर हम सत्यो के आधार पर ही अनुभूति ग्रहण करते है।[2]

सेठ जी ने अनुभूति के सत्यो (यथार्थवादी दृष्टिकोण) और अनुभव के आधारभूत सत्यो (आदर्शवादी दृष्टिकोण) की अभिव्यक्ति का दृष्टिकोण अपने नाटको मे रखा है। उन्होंने प्राय आदर्शवाद की नीव पर यथार्थवाद का भवन खडा किया है। कहीं-कहीं ('विश्व प्रेम', 'सेवा-पथ' आदि) आदर्शवाद का रग कुछ अधिक चटकीला हो गया है।

सेठ जी का एक भी नाटक उद्देश्य-रहित नही है। उनके नाटको मे कर्तव्य-पालन, वलिदान-भावना, उदारता अहिसा, धर्म-निष्ठता, सेवा, प्रेम, त्याग, समर्पण, न्यायप्रियता, वीरता आदि अनेक उच्च मानवीय गुणो की प्रतिष्ठा मिलेगी।

---

1 नाट्य कला मीमासा, पृ० 13।

2 नाट्य कला—डा० रघुवश, प्र० स० 1961, पृ० 48।

अभिनेयता—अभिनेयता नाटक का अनिवार्य तत्त्व है। इसी के कारण नाट्य-रचना दृश्य काव्य की कोटि में परिगणित की जाती है। इस सम्बन्ध में पाश्चात्य आलोचक श्री ऐश्ले ड्यूक्स का कथन द्रष्टव्य है—

"The bond between drama and its audience is indestructible, plays truly in performance alone"[1]

अर्थात् नाटक और दर्शकों के मध्य का सूत्र अविच्छिन्न है, नाटक का वास्तविक अस्तित्व अभिनय में ही है।

'The Art of Drama' के लेखक-द्वय श्री मिलट एवं बैंटले ने अभिनेयता के सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार अभिव्यक्त किये हैं—

'A drama is written to be performed the student must not forget that the actor is an element indispensable to the drama'[2]

अर्थात् नाटक का निर्माण अभिनय के लिए ही होता है, पाठकों को यह नहीं भूलना चाहिए कि अभिनेता नाटक का अनिवार्य अंग है।

सेठ गोविंददास ने नाट्य-सृजन के समय रंगमंच और उसकी आवश्यकताओं को सदा ध्यान में रखा है। इसके साथ ही नाटक के दृश्यों, पात्रों, पात्रों से सम्बन्ध रखने वाली बातों जैसे उनकी वेशभूषा, आयु शरीर की बनावट आदि के प्रति भी वे सचेष्ट प्रतीत होते हैं। उनका मत है कि जिस काल की कथा पर नाटक लिखा जावे, उस काल के दृश्यों और वेशभूषा पर, एवं जिस प्रकार के पात्र हों, उन पात्रों पर विचार कर नाटककार को अपने नाटकों में उनके दृश्यों, पात्रों और वेशभूषा का पूरा वर्णन कर देना आवश्यक है, जिससे अभिनय के समय भी नाटक का अभिनय भ्रष्ट न हो और पढ़ते समय भी चित्र के समान ये सारी बातें नेत्रों के सम्मुख चित्रित हो जावें।"[3]

सेठ जी के पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों में उनकी उपर्युक्त मान्यता का साकार रूप देखा जा सकता है। उनके प्रायः सभी नाटकों में अभिनय के लिए विस्तृत रंग-संकेत मिलते हैं। इन रंग-संकेतों में प्रायः कमरे की सजावट, दीवालों के रंग, दरवाजों की स्थिति, फर्नीचरों का अभाव या बाहुल्य, आधुनिकता या प्राचीनता का प्रतिरूप, पात्रों की वेशभूषा, उनकी आयु, उनके रूप, रंग, स्वभाव, व्यसन आदि का उल्लेख रहता है। सेठ जी के कुछ नाटकों (कर्ण, कुलीनता आदि) में प्रारम्भिक रंग-संकेत चार-चार पृष्ठों में भी अधिक के हैं।

---

1 Drama, Ashlay Dukes, 2nd editon, 1947, p 28

2 'The Art of Drama' Fred B Millet and G E Bentley, p 7.

3 नाट्यकला मीमांसा, पृ० 165।

सेठ जी के अधिकांश नाटको की दृश्य-योजना सरल है। अनेक नाटको जैसे 'भिक्षु से गृहस्थ और गृहस्थ से भिक्षु', 'विजय बेलि', 'सिद्धान्त स्वातन्त्र्य', 'हिंसा या अहिंसा', 'दुःख क्यो', 'बडा पापी कौन', 'महत्त्व किसे', 'सतोष कहा', 'प्रेम या पाप', 'त्याग या ग्रहण' आदि मे एक ही दृश्य है। परन्तु इसके साथ ही कुछ नाटको जैसे शेरशाह, कर्तव्य, प्रकाश, कर्ण आदि मे दृश्यो की सख्या अधिक है। शेरशाह मे तो 36 दृश्य है। कई नाटको की अभिनेयता के लिए सिनेमा का उपयोग अनिवार्य है और इस तथ्य का सकेत स्वय नाट्यकार ने उस दृश्य-विधान के प्रसग मे किया है। 'कर्तव्य'' 'कर्ण', 'अशोक', 'भूदान-यज्ञ' आदि का सफल अभिनय सिनेमा और रगमच के सम्मिश्रण से ही सभव है।

नाटको मे भाषा-वैचित्र्य एव पात्रानुकूल सवाद सफल अभिनय मे पर्याप्त सहायक है लेकिन लम्बे-लम्बे स्वगत कथनो एव भाषणो के कारण इसमे व्याघात पहुचने की सभावना भी है। अभिनय की दृष्टि से नाटको मे गीत-योजना सफल भी है और असफल भी। 'कर्तव्य', 'कर्ण', 'भूदान यज्ञ', 'विकास' आदि नाटको के गीत अवसरानुकूल एव पात्रो के मनोगत भावो को प्रकट करने वाले है। इसके विपरीत 'शशि गुप्त', 'रहीम', 'भारतेन्दु', बडा पापी कौन', तथा 'गरीबी या अमीरी' के गीत अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं। 'शशिगुप्त' की गीत-योजना दोषपूर्ण है, हेलन का हर समय गाते रहना अत्यन्त अस्वाभाविक लगता है। 'बडा पापी कौन' जैसे गभीर समस्या नाटक मे वेश्या का बाजारू गीत खटकता है, इसी प्रकार 'गरीबी या अमीरी' नाटक मे भी गीत-योजना का कोई औचित्य नही दिखाई देता। सेठ जी के नाटको मे प्रयुक्त गीतो मे से बहुत कम गीत उनके द्वारा लिखे गये है, अधिकाश गीत अन्य व्यक्तियो द्वारा रचित ही है।

उपर्युक्त कतिपय सीमाओ के बावजूद समग्र रूप से सेठ जी के नाटको की अभिनय-योजना सफल ही मानी जायेगी।

अध्याय 12

गांधीवाद एवं पाश्चात्य नाट्य शिल्प का प्रभाव

पाश्चात्य आलोचक डाक्टर लीविस ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'New Bearings In English Poetry' में एक स्थान पर लिखा है—

"जो साहित्यकार अपने देश के किसी विशेष युग में उस युग के सबसे प्रमुख चेतना-बिन्दु के प्रति जितना अधिक जागरूक रहेगा, वह अपने युग का उतना ही बड़ा कलाकार होगा।"

प्रथम अध्याय में सेठ गोविन्ददास के कृतित्व का विवेचन करते समय वर्तमान युग के सबसे प्रमुख चेतना-बिन्दु (गांधीवाद) के प्रति उनकी जागरूकता का उल्लेख 'प्रेम विजय में युग चेतना' शीर्षक के अन्तर्गत किया जा चुका है। प्रस्तुत अध्याय में हम उनके नाटकों के आधार पर उनकी 'चेतना-बिन्दु' के प्रति जागरूकता का निरूपण करेंगे।

गांधी-जीवन-दर्शन के सम्बन्ध में प्रोफेसर ए० आर० वाडिया ने लिखा है—

Since the days of Buddha, no Indian with the possible exception of Kabir has attached so much importance or grown so eloquent over pure morality as Gandhiji. His religion is the religion of service, a practical idealism, which "is not meant merely for the Rishis and Saints. It is meant for the Common people as well."[1]

His ethical system rests on the twin principles of truth and sacredness of all life. Love of Man as man is inborn in him. In an interesting passage in his Atmakatha he says: "In all my experiences I have known no distinction between relations and

1 The Philosophy of Mahatma Gandhi and other Essays, Prof A. R. Wadia, Edn 1958, p 12

strangers, my country men and foreigners, between white and black, or between Hindus and Mussalmans, Christians, Parsees and Jews I can boldly say that my heart has never been able to recognise such differences, I do not claim this as a merit in me, for I do not remember ever to have made any attempt to develop this sense of equality, as I have endeavoured and I am still endeavouring to develop 'ahimsa' and 'brahmacharya' He sees (saw) God in man, and that is why he has developed a most novel difference between evil and evil doer, which made him say with reference to General Dyer "I hate the thing he has done, but if he were ill I would go to him and nurse him, and if it were possible heal him "[1]

सेठ जी के पौराणिक नाटको पर गांधीवाद का प्रभाव—सेठ जी के पौराणिक नाटको मे पौराणिकता की अपेक्षा बुद्धिवाद एव आधुनिकता का स्वर प्रमुख है, यही कारण है कि उनके पौराणिक नाटको पर भी यत्र-तत्र गाधीवाद की छाया दिखाई पडती है, यद्यपि पौराणिक काल के वातावरण पर आधुनिक काल की विचारधाराओ को आरोपित करना अधिक सगत नही कहा जा सकता। 'कर्ण' मे अस्पृश्यता, कुलीन-अकुलीन की भावना का युगानुरूप चित्रण निश्चित रूप से गाधीवाद का प्रभाव है। अकुलीन कर्ण को अपमानित करते हुए भीम का कथन द्रष्टव्य है—

भीम--(आगे बढकर) ओह! तो यह सारथी अधिरथ का पुत्र है। (कर्ण से) "रे सूत, तू अर्जुन से द्वन्द्व-युद्ध चाहता था! यह महत्त्वाकाक्षा! यह साहस! अरे, तू तो अर्जुन के हाथ से मृत्यु और वह भी रण-मृत्यु के योग्य नही। जा, जा, अपने कुल धर्म के अनुसार प्रतोद लेकर रथ पर बैठ, सारथी-कर्म से जीविका चला। सूत को राजा नही बनाया जा सकता। यज्ञ की पूर्णाहुति के पश्चात् की पुरोडाश प्रसाद रूप से कही श्वान को मिलती है।"[2]

जाति-पाँति, कुलीनता, वश-परपरा मिथ्या कुल गौरव के बाह्याडबर को व्यर्थ सिद्ध करते हुए नाट्यकार ने कर्ण के माध्यम से गाधीवादी विचार अभिव्यक्त किये है--

कर्ण—(गर्व से) वर्ण और वश! माता-पिता का नाम! वर्णो तथा वशो का द्वन्द्व होना है, या अर्जुन का और मेरा, आचार्य? मेरी दृष्टि से तो आप अर्जुन के वर्ण, वश और माता-पिता का विवरण कर, अर्जुन का उल्टा अपमान कर रहे है।

1 The Philosophy of Mathatma Gandhi and other Essays, Prof A R. Wadia, Edn 1958, p 13-14

2 कर्ण, द्वि० स० पृ० 11।

उन्हे गर्व होना चाहिए अपना और अपने पौरुष का। जन्म तो दैवाधीन है, आचार्य, हा, पौरुष स्वय के अधीन है। मुझे अपने कुल का परिचय देने की आवश्यकता ही नही, वह मेरे हाथ मे नही। मेरे हाथ मे है मेरा पौरुष, तथा मेरा पौरुष ही मेरा सच्चा परिचय है।[1]

ऐतिहासिक नाटको पर गाधीवाद का प्रभाव—ऐतिहासिक नाटको मे ऐतिहासिकता का बधन स्वीकार करने के कारण नाट्यकार की कल्पना अधिक उन्मुक्त नही रही है। ऐतिहासिक तथ्यो एव वातावरण का यथासभव निर्वाह करते हुए नाट्यकार ने अवसरानुकूल गाँधीवादी विचारधारा व्यक्त की है। इन नाटको मे अभिव्यक्त गाधीवादी विचार यद्यपि समय से कुछ आगे जान पडते है लेकिन उन्हे ऐसे सन्दर्भ मे प्रस्तुत किया गया है कि वे अस्वाभाविक नही प्रतीत होते।

'कुलीनता' एव 'शशिगुप्त' नाटक मे अभिव्यक्त देशप्रेम, मातृ-भूमि की रक्षा, मातृभूमि की स्वाधीनता, और स्वतत्रता की रक्षा आदि भावनाएँ युग-चेतना का प्रभाव है। 'शशिगुप्त' मे चन्द्रगुप्त के विवाहोपरान्त उसे छोडकर जाते समय चाणक्य का कथन है—

"जिस आश्रम को अब मै ग्रहण करने जा रहा हू उसमे न देश-भिन्नता है और न जाति-वैषम्य। मेरे लिए अब सारा विश्व एक देश और मानव समाज एक जाति होगा। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा 'सर्वभूत हितेरत' ये दो वाक्य मेरे भविष्य के जीवन का पथ-प्रदर्शन करेगे।"[2]

चाणक्य के उपर्युक्त कथन मे चाणक्य की नही अपितु गाधी की उदार भावना ध्वनित हो रही है। इसी प्रकार 'कुलीनता' मे नायक यदुराय एक स्थल पर कहता है—

"इस क्षमा मे भी जो महत्ता है, औदार्य है, वह क्रोध और प्रतिकार मे कहाँ? प्रतिहिसा हिसा पर ही आघात कर सकती, उदारता पर नही, आज मुझे इसका अनुभव हो रहा है।" चाहे यदुराय को इसका अनुभव हुआ हो या न हुआ हो, किन्तु गाधी-युग के लेखक को इसका अनुभव हुए बिना नही रह सकता।[3]

'कुलीनता' नाटक मे सुरभी पाठक के निम्न कथन मे भी गाधीवादी विचारो की झलक देखी जा सकती है—

"पराये राज्य पर आक्रमण कर व्यर्थ के रक्तपात को मै वीरता नही, नीचता मानता हू, पर स्वातत्र्य की और सच्चे सिद्धातो की रक्षा के लिए अहिसा के द्वारा

1 कर्ण, द्वि० स०, पृ० 9।
2 शशिगुप्त, पृ० 158।
3 सेठ गोविन्ददास अभिनदन ग्रन्थ, पृ० 308।

जब तक कोई उपाय ससार मे नही निकल आता, तब तक हिंसा के भय से देश को परतन्त्र और देश-निवासियो को दास नही बनाया जा सकता।"[1]

गाधीवाद के मूल तत्त्व 'अहिंसा' की बडी सुन्दर व्याख्या 'अशोक' मे हुई है, इसका एक अग देखिए—

"हिंसा से हिंसा की उत्पत्ति होगी, और यह हिंसा निरतर बढती जायेगी। एक दिन ऐसा आयगा जब इस हिंसा से सारी मानव-सस्कृति, सारी मानव-सभ्यता ही नहीं, मानव का ही नाश हो जायगा। अतः ससार के कार्यो मे, कम से कम सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ रचना इस मानव के कार्यो मे, हिंसा का मैं कोई स्थान नही मानता। अहिंसा और प्रेम से मानव कार्य चलने और निपटने चाहिए।"[2]

'विजय-वेलि अथवा कुरुष' मे गाधीवाद का स्वर अपेक्षाकृत अधिक गुजित है, वास्तव मे इसकी नायिका रेणुका नाट्यकार की मानसी सृष्टि है और उसे नाट्यकार ने गाधीवाद का पूरा जामा पहना दिया है। वह विश्व विजय के आकाक्षी कुरुष के मन मे दया, ममता, प्रेम, उदारता, सेवा आदि उच्च मानवीय भावनाओ को उद्दीप्त कर विजितो के साथ भी अच्छा व्यवहार करने के लिए विवश कर देती है। कुरुष और रेणुका के निम्न पारस्परिक कथोपकथन मे गाधी जी के हृदय-परिवर्तन सिद्धान्त का रूप देखा जा सकता है—

कुरुष— समस्त ससार मे स्नेह और प्रेम का राज्य स्थापित करने के लिए भिन्न-भिन्न जातियो और देशो का एक दूसरे के समीप आना आवश्यक है। यह ससार भर के एक राज्य हुए विना सभव नही और उस एक राज्य की स्थापना बिना युद्ध के नही हो सकती।

रेणुका—विना हृदय-परिवर्तन और मूल्यो मे परिवर्तन हुए हिंसा से बलात्कार कर जो समाज रचना करने का प्रयत्न किया जायगा उसके विरुद्ध सदा विप्लव होगा।[3]

गाधीवाद का अधिक स्पष्ट रूप कुरुष के निम्न कथन मे दिखाई पडता है—

"ससार का आध्यात्मिक और आधिभौतिक कल्याण परस्पर सघर्ष, कलह, युद्ध, विप्लव आदि हिंसात्मक प्रवृत्तियो मे नही, वह है प्रेम, शान्ति और अहिंसात्मक सदाचार मे।"[4]

'कुलीनता', 'सिंहल द्वीप' तथा 'चन्द्रापीड और चर्मकार' मे चित्रित अस्पृश्यता की समस्या पर गाधी जी के अछूतोद्धार की स्पष्ट छाया देखी जा सकती

1 कुलीनता, पृ० 34।
2 अशोक, पृ० 56।
3 विजय-वेलि अथवा कुरुष, पृ० 21।
4 वही, पृ० 109-110।

है । 'सिहल द्वीप' मे एक स्थल पर अजय का कथन देखिए—

"बग-देश के समुद्र-तट से हम भारत के दक्षिण समुद्र के तट तक पहुच चुके । सर्वत्र हमे वही भेद-भाव दिखा । वही अस्पृश्यता, मानव के ऊपर मानव का वही अत्याचार । किसी समय भारत देश मे जन्म लेने के लिए देवता भी तरसते थे । उस समय यहाँ एक ही हस वर्ण था । न यह वर्ण-व्यवस्था थी और न यह जाति-व्यवस्था । मानव-मानव मे कोई भेद न था । पर अब यह देश रहने योग्य नही । हम किसी ऐसे देश मे बसेगे जहाँ यह भेदभाव न होगा । उसी देश को हम अपना देश बनायेगे और वही के हो जायेगे ।"[1]

सामाजिक नाटको पर गाँधीवाद का प्रभाव

सामाजिक नाटको मे नाट्यकार पर पौराणिकता या ऐतिहासिकता का अ कुश न रहने के कारण वह विचाराभिव्यक्ति के लिए अधिक स्वतन्त्र रहा है, यही कारण है कि इन नाटको मे गाधीवादी विचार अपने प्रबलतम रूप मे व्यक्त हुए है ।

विश्व-प्रेम' मे विश्व-बन्धुत्व, सच्चा प्रेम, त्याग एव मानव-कल्याण की भावनाए अभिव्यक्त हुई है । सन्यासिनी प्रमोदिनी एव नायक मोहन गाधीवाद के प्रतिनिधि है । सच्चे प्रेम की व्याख्या करती हुई प्रमोदिनी एक स्थल पर कहती है—

"प्रेम और लालसा मे आकाश-पाताल का अन्तर है । प्रेम मे कामना नही है, वासना नही है । जहा कामना नही, वासना नही, वही सुख है । ऐसा सुख केवल प्रेम से उत्पन्न होता है । इस प्रेम का पात्र समस्त विश्व है । . जहाँ कोई इच्छा हुई, वहा प्रेम नही रहा, वहा लालसा है । कामना और वासना का बन्धन ही पराधीनता है । यह पराधीनता ही दु ख की जड है ।"[2]

'प्रकाश' मे शोषण, अन्याय और अनाचार के विरुद्ध अहिसात्मक आन्दोलन का रूप दिखाई पडता है तथा 'भूदान यज्ञ' मे गाधीजी के हृदय-परिवर्तन सिद्धान्त की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है । जनसमुदाय के समक्ष भाषण करते हुए विनोबा जी का कथन है—

" मैंने कभी माना ही नही कि मार-काट से इस देश की कोई समस्या हल हो सकती है ।

जनसमुदाय—बिल्कुल ठीक ! बिल्कुल ठीक ।

विनोबा—अब आपके सूबे मे जमीन का सवाल बिल्कुल हल कर मै मुल्क और दुनिया को बता देना चाहता हू कि ऐसे सवालो को हल करने का सबसे अच्छा तरीका हृदय-परिवर्तन ही है ।[3]

1 सिहलद्वीप, पृ० 36 ।
2 विश्व प्रेम, पृ० 19 ।
3 भूदान-यज्ञ, पृ० 51 ।

'सेवा-पथ' पर गाधीवाद का सर्वाधिक प्रभाव परिलक्षित होता है। इसका नायक दीनानाथ सच्चे अर्थो मे गाधीजी का प्रतिरूप है जिसमे त्याग, सेवा, उदारता, सहनशीलता, क्षमा, सन्तोष आदि उच्च गुणो का समावेश है। वह अपने शत्रु की रक्षा के लिए स्वय गोली का शिकार बनकर घायल हो जाता है। गाधीजी के समान उसकी महानता का परिचय पत्नी के साथ उसके निम्न सम्वाद से मिलता है—

दीनानाथ—देखो, स्वार्थ का मूलोच्छेदन केवल विषय-भोगो के त्याग से ही नही होता।

कमला—तो फिर विषय-भोग का त्याग निरर्थक है। आपने व्यर्थ ही इतना कष्ट पाया और पा रहे है।

दीनानाथ—नही, उनका त्याग तो आवश्यक है। विना उनके त्याग के तो स्वार्थ त्याग के पथ पर पैर रखना ही असम्भव है। जिस प्रकार लम्बी-से-लम्बी यात्रा के लिए भी पहले कदम की आवश्यकता है, उसी प्रकार मेरे स्वार्थ-त्याग के पथ की यात्रा के लिए विषय-भोगो का त्याग पहला कदम, पहली सीढी है। विपय-भोग के त्याग और अपने सिद्धान्त की अटलता मे विश्वास होने पर अपने पथ पर चलने की आत्म-शक्ति अवश्य प्राप्त हो जाती है, परन्तु उसे स्वार्थ के आक्रमणो से बचाने का फिर भी सदा प्रयत्न करने की आवश्यकता है। कीर्ति सुनने की लालसा और बुराई सुनने से क्रोध एव शोक, ये दोनो भी तो स्वार्थ से उत्पन्न होते है।[1]

इसके आगे दीनानाथ का कथन बडा ही मार्मिक है—

"कीर्ति श्रवण की लालसा का स्वार्थ तो, कमला, विपय-भोग के स्वार्थ से भी वडा है। कई व्यक्ति इसीलिए प्रत्यक्ष मे विपय-भोग का त्याग कर देते है कि उनकी कीर्ति होगी। भीतर-ही-भीतर वे इन विषयो को भी पूर्ण रूप से नही त्यागते। छिपे-छिपे वे उनका उपभोग करते है। छिपकर जो कार्य किया जाता है, वही पाप है। पाप का घडा जहा फूटा कि ऐसे व्यक्ति पथभ्रष्ट हुए और वह प्राय: फूटता ही है।"[2]

समस्या नाटकों पर गांधीवाद का प्रभाव

सामाजिक नाटको की भाति सेठ जी के समस्या नाटको पर भी गाधीवाद का व्यापक प्रभाव है। 'त्याग या ग्रहण' मे स्त्री-पुरुषो की समानता एव त्याग की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। इसमे पश्चिम के भोगवाद की तुलना मे भारतीय अध्यात्मवाद के त्याग सिद्धान्त को प्रधानता दी गई है। इसका नायक धर्मध्वज गाधीवादी युवक है जो बुराई या पाप से घृणा करता है लेकिन बुराई करने वालो या पापियो से नही। वह समाजवादी युवक नीतिराज के सम्पर्क मे आई मिस विमला

1 सेवा-पथ, पृ० 44-45।

2 वही, पृ० 46।

गया, जिसमे धन को महत्त्व था। इस जमाने मे दरिद्रनारायण की महिमा बढेगी। धनवान घृणा की चीज़ और निर्धन पूजा की वस्तु होगे।"[1]

सार्वजनिक सेवा-कार्यो के लिए वह लाखो रुपये खर्च कर देता है। उसका जीवनादर्श है

"महात्मा गाधी के एक तुच्छ अनुयायी की हैसियत से, काग्रेस के एक तुच्छ स्वयसेवक के रूप मे क्षुधित, दलित, रुग्णो की सेवा।"[2]

सेठ जी के प्रतीक नाटक 'नवरस' और नाटकीय सवाद 'विकास' पर भी गाधीवाद का प्रभाव स्पष्ट है। 'नवरस' मे गाधी-दर्शन के आधार पर युद्ध का विवेचन कर उसकी निस्सारता सिद्ध की गई है। 'विकास' मे गाधीवाद के प्रति नाट्यकार का आशावादी दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है। वह प्राय सभी धर्मो की उन्नति एव पतन के चित्र प्रस्तुत करता है, परन्तु गाधीवाद का केवल उत्थान का चित्र ही दिखाता है।

सेठ जी के नाटको मे गाधी-जीवन-दर्शन का व्यावहारिक पक्ष ही मूलतः अभिव्यक्त हुआ है, उसमे अन्तर्दर्शन की अभिव्यक्ति नही है।

पाश्चात्य नाट्यशिल्प का प्रभाव

सेठ जी का पाश्चात्य नाट्यशास्त्र और नाटकीय रचनाओ का अध्ययन बहुत विस्तृत है और इसी कारण उनके नाटको पर पश्चिमी प्रभाव बहुत व्यापक रूप मे देखने को मिलता है। पश्चिम के नाट्य-कला सम्बन्धी ग्रन्थो मे अरस्तु की 'दि पोएटिक्स', होरेस की 'दि एपिसल टु दि पिसास', ड्राइडेन की 'ऐन एसे आव ड्रामेटिक पोयसी', एलर डाइस निकाल की 'ऐन इट्रोडक्शन टु ड्रामेटिक थियारी' आदि रचनाओ का उन्होने अनुशीलन किया है। पाश्चात्य नाटककारो मे शेक्सपियर, मोलियर, इब्सन, स्ट्रिडवर्ग, टाल्सटाय, चेकाव, मेतर लिक, ब्रूवी, हाप्टमैन, शा, गाल्ज़वर्दी, वाइल्ड, बेरी, सिज, ओ'नील आदि की रचनाएँ उन्होने पढी है। इनमे वाइल्ड, शा, बेरी, गाल्सवर्दी आदि ने नाट्यकला के सम्बन्ध मे जो विचार प्रकट किये है, उनसे भी वे परिचित है। इसके अतिरिक्त सेठ जी ने पश्चिम के प्लेटो, अरस्तू, कान्ट, हेगल, शापेनहर, टेन, हर्बर्ट स्पेन्सर, जान रस्किन, क्लाइव बेल आदि के कला सम्बन्धी विचारो का भी मनन किया है। पाश्चात्य साहित्यकारो मे वाल्टेयर, शेलिंग, रोमा रोला, टामस मैन आदि के ग्रन्थो का भी उन्होने अध्ययन किया है।[3]

---

1 महत्त्व किसे, पृ० 21।

2 वही, पृ० 97।

3 हिन्दी नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव—डा० विश्वनाथ मिश्र, एम० ए०, डी० लिट्, प्र० स० 1966, पृ० 301।

सेठ जी के नाटको पर पाश्चात्य प्रभाव का अध्ययन हम निम्न तत्त्वो पर पडे प्रभाव के आधार पर करेंगे—

1 कथावस्तु
2 चरित्र-चित्रण
3 भाषा-शैली
4 अभिनेयता

कथावस्तु—सेठजी के पौराणिक नाटको की कथावस्तु पश्चिम के बुद्धिवाद और नवीन मूल्याकन की प्रवृत्ति से प्रभावित प्रतीत होती है। पौराणिक, लोकोत्तार घटनाओ को युगानुकूल बुद्धिग्राह्य रूप मे प्रस्तुत करना उपर्युक्त तथ्य को प्रमाणित करता है। 'कर्त्तव्य' मे नाट्यकार ने राम, कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित पौराणिक अतिमानवीय घटनाओ को अतिरजकता से मुक्त रखकर विश्वसनीय रूप मे प्रस्तुत किया है। राम का अन्तर्द्वन्द्व, सीता की अग्नि-परीक्षा की नवीन विधि, कृष्ण का जरासन्ध के सामने से भागना, राम और कृष्ण की मृत्यु आदि घटनाएँ चित्रित कर सेठजी ने राम और कृष्ण को देवो की श्रेणी से हटाकर मानवो की श्रेणी मे बिठा दिया है। 'कर्ण' मे अतिमानवीय घटनाओ का पूर्ण बहिष्कार तो नही किया जा सका लेकिन इसकी समस्याएँ (कुलीन-अकुलीन, अविवाहित कन्या के पुत्र की समस्या) आधुनिक अवश्य है। स्थगत कथनो के द्वारा कर्ण का अन्तर्द्वन्द्व चित्रण ओ'नील के 'स्ट्रेंज इन्टरल्यूड' की शैली पर किया गया प्रतीत होता है।

ऐतिहासिक नाटको मे ऐतिहासिकता की पूर्ण रक्षा करते हुये अवसरानुकूल यत्र-तत्र आधुनिक युग की कतिपय समस्याओ का चित्रण भी किया गया है। 'हर्ष' मे हर्ष का राज्य को प्रजा की धरोहर मानना, स्त्रियो को पुरुषो के समान अधिकार देना, 'कुलीनता' मे कुलीन-अकुलीन की समस्या, 'शेरशाह' मे हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या, 'अशोक' मे हिंसा-अहिंसा की समस्या, 'विजयवेलि अथवा कुरुष' मे अहिसा भावना, 'सिहलद्वीप' मे अस्पृश्यता की समस्या आदि का चित्रण सर्वथा युगानुरूप है और इसे पश्चिम के नवीन मूल्याकन की प्रवृत्ति का प्रभाव कहा जा सकता है।

सेठजी के अधिकाश सामाजिक और समस्या नाटक इब्सन तथा बर्नार्ड शा के विचार-प्रधान समस्या नाटको से प्रभावित माने जा सकते है। इन पर पश्चिमी नाटको के यथार्थवादी दृष्टिकोण का भी प्रभाव है। सामाजिक नाटको मे कुछ (सेवा पथ, महत्त्व किसे, सतोष कहाँ आदि) आदर्शवादी भी है जिनमे त्याग, सेवा, उदारता अहिंसा आदि भावो का प्राचुर्य है, इन पर गाँधीवादी विचारधारा के साथ ही महात्मा टालस्टाय के सदाचारपूर्ण उदारतावादी दृष्टिकोण का प्रभाव भी परिलक्षित होता है।

सेठजी के सामाजिक नाटक 'प्रकाश' पर पाश्चात्य प्रतीक शैली का प्रभाव स्पष्ट है। उनके ऐतिहासिक नाटक 'शेरशाह' पर स्वच्छन्दतावादी नाटको की प्रवृत्ति

—दोहरी वस्तु योजना— का प्रभाव परिलक्षित होता है। सेठजी का नाटक 'नवरस' प्रतीक परम्परा का नाटक है। सेठजी के गीति-नाट्य 'स्नेह या स्वर्ग' का निर्माण होमर के 'इलियड' की एक कथा के आधार पर किया गया है, इसे स्वय नाट्यकार ने माना है।

सेठजी के जीवनी नाटक जान ड्रिंकवाटर और शा के जीवनी नाटको की परपरा मे प्रतीत होते है। इन नाटको मे अग्रेजी के जीवनी नाटको की भाँति चरित्र नायक का जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार सेठजी के नाटको की कथावस्तु पर पाश्चात्य प्रभाव व्यापक रूप मे दिखाई पडता है।

चरित्र-चित्रण—सेठजी के चरित्र-चित्रण पर भी व्यापक पाश्चात्य प्रभाव है। पात्रो का अन्त सघर्ष प्राय पाश्चात्य शैली पर ही प्रस्तुत किया गया है। राम, कर्ण, अशोक, कुमारायन, जीवा, यदुराय आदि पात्रो के अन्तर्द्वन्द्व चित्रण मे सेठजी ने पाश्चात्य प्रवृत्तियो को ग्रहण किया है। पौराणिक पात्रो (राम, कृष्ण, कर्ण) के चरित्र-चित्रण मे बौद्धिकता का प्राधान्य दिखाई देता है। सेठजी के मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण मे पाश्चात्य 'साइकोएनालिसिस' का आशिक प्रभाव प्रतीत होता है, इस दृष्टि से अशोक की 'तिष्यरक्षिता', 'विजयवेलि अथवा कुरुष' का आतिथिग्व एव 'मानव मन' की पद्मा विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

पाश्चात्य नाट्य-शैली का ही प्रभाव है कि सेठजी ने अपने नाटको मे नायक की पत्नी को ही नायिका के पद पर प्रतिष्ठित नही किया है अपितु कोई अन्य स्त्री भी नायिका के पद पर बिठा दी गई है। 'कर्ण' की नायिका कर्ण की पत्नी रोहिणी न होकर कुन्ती है।। इसी प्रकार 'हर्ष' की नायिका राज्यश्री है।

सेठजी के कुछ नारी पात्रो, जैसे 'कर्ण' की द्रौपदी, कुन्ती, 'अशोक' की तिष्यरक्षिता, 'दु ख क्यो' की सुखदा, 'त्याग या ग्रहण' की विमला, 'महत्त्व किसे' की सत्यभामा आदि का चरित्र-चित्रण पश्चिम के बुद्धिवादी नाटको की सजग व्यक्तित्व की विद्रोहिणी नारी के अनुरूप हुआ है।

सामाजिक एव समस्या नाटको के अधिकाश पात्रो के चरित्र-चित्रण पर पाश्चात्य यथार्थवाद की छाया देखी जा सकती है।

भाषा-शैली—सेठजी की शैली पर तो पश्चिम नाटको की शैली का व्यापक प्रभाव है, अथवा यह कहना चाहिये कि पाश्चात्य नाट्य-शैली के आधार पर उन्होने हिन्दी मे नये-नये नाटकीय प्रयोग किये है, परन्तु उनकी भाषा अपनी है, उस पर मेरे विचार से पाश्चात्य प्रभाव मानना नाट्यकार के साथ अन्याय होगा। डा० शान्ति-गोपाल पुरोहित ने अपने शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी नाटको का विकासात्मक अध्ययन' पृष्ठ 252 पर लिखा है—

"सेठजी के सलापो की भाषा पर स्वच्छन्दतावादी अग्रेजी नाटको की भावात्मकता की भी छाया दिखाई देती है। यथा, चाणक्य और अलक्षेन्द्र के मिलाप के समय चाणक्य उसके विश्वास को तोडने के लिए कहता है—

"सर्वथा मिथ्या तू किसी देवता का नही, पर दैत्य का पुत्र है। देव पुत्र वीर कहते हुए भी सौम्य हुआ करते है, दयालु होते है। तू वीर है तो क्या, अत्याचारी और क्रूर है। तू दैवी कार्य के लिए अवतीर्ण नही हुआ है। मानव समाज का कल्याण तेरे द्वारा नही होगा।"

मै समझता हूँ कि डा० पुरोहित की मान्यता अधाधुँध प्रभाव दिखाने की प्रवृत्ति के कारण ही है। वास्तव मे यह सेठजी की अपनी भाषा है, इस पर किसी वाह्य भाषा का प्रभाव कहना उचित नही है। आलकारिक एव भावात्मक भाषा के अनेको उदाहरण सेठजी के नाटको से प्रस्तुत किए जा सकते है। अत इस सन्दर्भ मे सेठजी की नाटकीय शैली पर विभिन्न प्रभावो का निरूपण ही अभीष्ट है।

सेठजी के नाटको मे उपक्रम एव उपसहार की नई योजना यूनानी नाटको मे प्रयुक्त 'प्रोलाग' एव 'एपिलाग' से साम्य रखती है। शा ने भी 'एपिलाग' का प्रयोग अपने नाटको मे सेट जान की मृत्यु के बाद की घटनाओ को चित्रित करने के लिए किया है। सेठजी के समस्या नाटको पर इब्सन तथा शा की तर्क-प्रधान शैली का व्यापक प्रभाव है। उन्होने अमेरिका के ओ'नील और स्वीडन के स्ट्रिडवर्ग के मोनोड्रामा से प्रभावित होकर हिन्दी मे एकपात्री नाटको का सूत्रपात किया है। उनके नाटको मे लम्वे-लम्वे स्वगत कथन प्रसिद्ध नाट्यकार स्ट्रिडवर्ग के प्रभाव का ही परिणाम है। पाश्चात्य प्रतीक शैली पर उन्होने 'प्रकाश' और 'नवरस' का निर्माण किया है। पाश्चात्य नाटको के समान उनके कई नाटको (हर्ष, दु ख क्यो, महत्त्व किसे, बडा पापी कौन, आदि) का अत अनिश्चयावस्था मे होता है।

इस प्रकार सेठजी की शैली पर पाश्चात्य प्रभाव सबसे अधिक है।

अभिनेयता—सेठजी ने अपने नाटको की अभिनेयता के लिए कुछ नाटको (कर्ण, कर्त्तव्य, अशोक, भूदान यज्ञ) मे सिनेमा के प्रयोग का सुझाव भी दिया है। इस सम्वन्ध मे उनका कथन है—

अमेरिका मे इस बात का भी प्रयास किया गया है कि रगमच और सिनेमा दोनो का समन्वय किया जाए और यह प्रयास बहुत सफल रहा है।[1]

सेठजी के नाटको मे विस्तृत रग-सकेत मिलते है, यह वर्नार्ड शा का प्रभाव माना जा सकता है। सेठजी के नाटको मे पाश्चात्य प्रभाव के कारण वर्जित दृश्य जैसे वध, मृत्यु, आत्महत्या, युद्ध, चुम्बन, आलिगन आदि भी दिखाये जाते है। अग्रेजी नाटको के समान सेठजी के अनेक नाटक पाँच अको से कम के भी है। "कई नाटको

1 नाट्यकला मीमासा, पृ० 157।

की रचनाएँ 'मेटिरज' के आधार पर की गई है। 'सुख किसमे ?' इसका सुन्दर उदाहरण है। इसमे प्राप्त होने वाले 12 दृश्यो (उपक्रम एव उपसहार सहित) की मच सकेत योजना गद्य-काव्य-सी प्रतीत होती है। ऐसे मच-सकेत अवश्य ही शा के उस सिद्धान्त के प्रभाव का परिणाम है जिसके अनुसार वे नाटक मे उपन्यास के तत्त्वो का सन्निवेश करते है।"[1]

डा० विश्वनाथ मिश्र का यह कथन सर्वथा सत्य है कि सेठजी के नाटको पर पश्चिम के इन नाटककारो के प्रभाव को स्वीकार करते हुए अन्त मे यह कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि उन्होने एक जागरूक साहित्यकार के रूप मे इन प्रभावो को ग्रहण किया है, इसीलिए हमे उनकी रचनाओ मे पाश्चात्य नाटककारो के अन्धानुकरण की वृत्ति नही वरन् अपनी रुचि एव अपने साहित्य की प्रवृत्ति के अनुरूप प्रभाव ग्रहण की बात देखने को मिलती है।[2]

1. हिन्दी नाटको का विकासात्मक अध्ययन, प्र० स०, पृ० 255।
2 हिन्दी नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव, पृ० 355।

अध्याय 13

जीवन-दर्शन

प्रत्येक युग के सजग कलाकार का अव्यक्त सत्ता, जीव, जगत्, धर्म, संस्कृति, सभ्यता समाज, साहित्य एवं कला आदि के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण होता है। 'कला कला के लिए' सिद्धान्त के समर्थक पलायनवादी कलाकारों को छोड़कर प्रायः सभी अपने विचार या दृष्टिकोण प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अपनी कृतियों में अभिव्यक्त करते हैं। साहित्यकार की समग्र कृतियों में यत्र-तत्र अव्यवस्थित रूप से बिखरे पड़े विचार-कणों को संकलित कर उनके जीवन-दर्शन का सम्यक् निरूपण किया जा सकता है। सेठ जी के विचार उनके काव्य, उपन्यास, निबन्ध और सर्वाधिक मात्रा में उनकी नाट्य-कृतियों में बिखरे पड़े हैं, अतः उनकी रचनाओं को प्रकाश-स्तम्भ के रूप में ग्रहण कर उन्हीं के आधार पर हम उनके जीवन-दर्शन की व्याख्या का प्रयास करेंगे।

जीवन-दृष्टि—सेठ जी के जीवन-दर्शन का आधारभूत तत्त्व अद्वैत या अभेद-बुद्धि है। इसी अभेद तत्त्व को ऐकान्तिक सत्य (एबसोल्यूट ट्रुथ) मानकर अन्य तत्त्वों का उद्भव या विकास इसी से मानना चाहिए। अभेद से अहिंसा, अहिंसा से प्रेम, प्रेम से सेवा, सेवा से त्याग और त्याग से बलिदान। यह क्रम मानवात्मा के विकास की स्वाभाविक सरणि है और यही भारतीय संस्कृति का मूलाधार है। इसमें व्यतिक्रम होने से स्वार्थबुद्धि या संकीर्णता को स्थान मिलता है। स्वार्थबुद्धि या संकीर्णता मानवात्मा के विकास के मार्ग को अवरुद्ध करके उसे वर्ग या जाति के तुच्छ भेदों में विभक्त कर देती है।[1] सेठ जी के विशाल उपन्यास 'इन्दुमती' में इस प्रश्न का बहुत ही सुन्दर समाधान प्रस्तुत किया गया है। अपने व्यक्तित्व को प्रधानता देने वाली इन्दुमती दूसरों को भुनगे के समान समझती है, सामाजिक नियमों की अवहेलना करती है, अपनी स्वार्थ-बुद्धि के कारण वह जीवन भर दुखी रहती है, अभेदभाव में पूर्ण आस्था रखने वाला डा० त्रिलोकीनाथ इन्दुमती की मान्यताओं का विश्लेषण इस प्रकार करता है—

"विश्व में निज का व्यक्तित्व तो सब कुछ है ही, क्योंकि बिना निज को जाने कोई भी व्यक्ति विश्व को नहीं जान सकता। और जहाँ एक बार वह अपने व्यक्तित्व को समझ लेता है, वहाँ उसमें और विश्व में कोई भेद नहीं रह जाता। संसार की

1. सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ, डा० विजयेन्द्र स्नातक का लेख, पृ० 299।

समस्त वस्तुएँ अपने आप उसके आनन्द का साधन बन जाती है। क्षमा कीजिए, यदि मैं कहू कि आपने अपने व्यक्तित्व को पहचाना ही नही, अन्यथा आप न दूसरो को भूनगे के बराबर समझती, न समाज तथा उसके नियमो की अवहेलना करने का कष्ट उठाती और न किसी चीज को ठोकर मारती। जब दूसरे वही है जो आप स्वय, जब सारा विश्व वही है जो आप खुद, तब अपने को श्रेष्ठ तथा अन्य को हीन समझने का प्रश्न कहाँ उठता है? अहमन्यता के वशीभूत हो जो आचरण आपने किया वह हो कैसे सकता है।[1]

'कर्तव्य' मे कई स्थलो पर इस अभेद-तत्त्व का निरूपण हुआ है। उत्तरार्द्ध मे कृष्ण के मथुरा-गमन का समाचार पाकर भावी वियोग की आशका से व्याकुल राधा को समझाते हुए कृष्ण का कथन है—

"तुम अपने को ही कृष्ण क्यो नही मान लेती। पहले अपने को ही कृष्ण मानने का प्रयत्न करो, फिर अपने समान ही सारे विश्व को मानने लगो तथा भेद-भाव से रहित हो उसी की सेवा मे दत्तचित्त हो जाओ। सेवा मे तो प्रयत्न की आवश्यकता ही न होगी क्योकि भेद-भाव के नाश होते ही जब अपने और अन्य मे समता का अनुभव होने लगेगा तब जिस प्रकार अपनी भलाई मे दत्तचित्त रहना स्वाभाविक होता है उसी प्रकार अन्य की भलाई मे भी दत्तचित्त रहना स्वभाव हो जायेगा और इसके अतिरिक्त अन्य कार्य ही अच्छा न लगेगा।[2]

अभेद-बुद्धि मे ही सच्चा सुख है, इसका उद्‌घाटन सेठ जी ने राधा के माध्यम से इस प्रकार किया है—

कृष्ण—नेत्र चले गए, राधा!

राधा—हा, चर्म-चक्षु चले गये, सखा, पर हृदय-चक्षु खुल गये है। लगभग पैंतीस वर्षो मे यह अनुभव कर सकी, जिसे तुमने ब्रज छोडने के समय कहा था—मैं ही कृष्ण हू, सारा विश्व कृष्ण है। सुख, सर्वत्र सुख है, तुमने मुझे ऐसा सुखी बना दिया, सुख का ऐसा पूर हृदय पर चढा दिया कि मैं सारे ससार को सुख बॉट सकती हू।[3]

अभेद-बुद्धि के कारण जहाँ सर्वत्र सुख का सागर लहराता है, वही भेद-बुद्धि दु खो की जड है। इस सम्बन्ध मे बलराम से कहा गया कृष्ण का कथन द्रष्टव्य है—

रुक्मिणी आपकी भगिनी न थी और उसका हरण आपके भ्राता ने किया था, आपकी दृष्टि से भ्राता का वह कर्म पापमय होने पर भी आपने उस कर्म मे इसलिए

1 इन्दुमती, बृहद् सस्करण, पृ० 922।
2 कर्त्तव्य, तृ० स० 1967, पृ० 90।
3 वही, पृ० 146।

सहायता की कि वह आपके भ्राता ने किया था। सुभद्रा आपकी भगिनी है और उसे हरण करने वाला एक अन्य व्यक्ति है अत आप उसे दड देना चाहते हैं। आर्य, इस भेद-बुद्धि से ही तो दुःख होता है, यही तो स्वार्थ है, यही तो दुःख की जड है।[1]

'कर्तव्य' के अतिरिक्त सेठ जी की यह अद्वैत भावना उनके ऐतिहासिक नाटक 'शेरशाह' (पृ० 171-72), 'विजय बेलि अथवा कुरुप' (पृ० 109) तथा सामाजिक नाटक 'विश्व-प्रेम' (पृ० 5-6) और 'प्रकाश' (पृ० 198) तथा दार्शनिक नाटक सुख किसमें (पृ० 43-52) में भी अभिव्यक्त हुई है।

अभेदमूलक सिद्धात की विद्वत्तापूर्ण विवेचना सेठ जी ने अपनी 'नाट्य-कला-मीमासा' पुस्तक में की है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है—

"ससार में अब तक किए गए समस्त अनुसधानो में मेरी दृष्टि से देश, काल और पात्र के परे सबसे बडा अनुसधान वेदान्त के 'सर्व खल्विद ब्रह्म' महावाक्य में भरा हुआ है। 'सभी ब्रह्म है' इसमें बडे सत्य का अब तक मनुष्य पता नहीं लगा पाया है। समस्त सृष्टि एक ही तत्व है, यह वैज्ञानिको की भी सबसे बडी खोज है। इसका अनुभव करना ही मैं मनुष्य का सबसे बडा ज्ञान मानता हूँ। जब तक पचभूतमय शरीर है, तब तक मनुष्य क्षण मात्र भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता। इस अनुभव के पश्चात् मनुष्य वैसे ही कर्म करेगा, जो सबके लिए हितकारी हो, क्योंकि समस्त सृष्टि में एकता का अनुभव होने के पश्चात् अपना-पराया यह भेदभाव उसके लिए रह ही नहीं जाएगा, एव जिस प्रकार अपनी भलाई में दत्त-चित्त रहना मनुष्य का स्वभाव है, उसी प्रकार समस्त सृष्टि की भलाई में दत्त-चित्त रहना उसका स्वभाव हो जाएगा। और आगे बढकर यह कर्म जब वह निष्काम होकर करेगा तब उसके लिए दुःख भी न रहेगा और वह सदा आनन्द का उपभोग करता रहेगा। 'सर्व खल्विद ब्रह्म' ज्ञान का अनुभव, इस अनुभव के अनुरूप समस्त के उपकार में दत्तचित्त रहने वाला कर्म और इस कर्म को निष्काम कर आनन्द का उपभोग ही मैं मनुष्य जीवन का सर्वोत्कृष्ट उद्देश्य मानता हूँ।[2]

अद्वैत भावना अथवा अभेद-बुद्धि ही वास्तव में सेठ जी की मूल जीवन-दृष्टि के सर्वाधिक अनुकूल है। वे इस भावना को मानव मात्र की कल्याण-भावना का प्रतीक मानते हैं और इसे ही दर्शन, धर्म समाज की रीढ समझते हैं। इस सिद्धान्त के प्रति पूर्ण आस्थावान होने के कारण ही उन्होंने अपने साहित्य में सर्वाधिक मात्रा में इसी का उल्लेख किया है।

धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण—सेठ जी का व्यक्तित्व वैष्णव भावना और उसके सस्कारो की पृष्ठभूमि में विकसित हुआ है, यही कारण है कि उन पर

---

1 कर्तव्य, पृ० 124-25।

2 नाट्य कला मीमासा (लघु संस्करण), पृ० 7-8।

वैष्णव सस्कारो का परपरागत प्रभाव बहुत व्यापक है। आस्तिकता उनके जीवन की मूल भावना है। इस सम्बन्ध मे उनका स्पष्ट कथन है—"मै वल्लभ सप्रदाय का हू और भगवान श्रीकृष्ण मेरे इष्ट है।"[1] उनकी धार्मिक भावना सकुचित नही है अपितु सभी धर्मो के प्रति उनके हृदय मे सम्मान का भाव है। उन्होने अपने नाटको मे महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, गुरुनानक, स्वामी दयानद आदि अनेक धर्माचार्यो के प्रति श्रद्धा भावना प्रकट की है। 'हमारे मुक्तिदाता' एकाकी सग्रह मे सकलित 'महर्षि की महत्ता' नामक एकाकी के 'निवेदन' मे उन्होने लिखा है—"मै स्वय वल्लभ सप्रदाय का अनुयायी हू, उस सप्रदाय का जो केवल मूर्ति न मानकर उनका स्वरूप मानता है। मेरे सारे सस्कार वल्लभ सप्रदाय के है। फिर मैने उस सप्रदाय के सिद्धान्तो का अध्ययन और मनन भी किया है। बाल्यावस्था मे ही मै अपने कौटुम्बिक मन्दिर से सम्बद्ध नही रहा, पर आज तक भी सम्बद्ध हूँ। इतने पर भी मै कभी भी धर्मान्ध व्यक्ति नही रहा। ससार के सभी धर्मो तथा भारतीय धर्मो के सभी सप्रदायो और इन धर्मो एव सप्रदायो के प्रवर्तको पर मेरी श्रद्धा रही है।"

धर्म-विषयक उनकी मान्यताएँ अनेक कृतियो मे अभिव्यक्त हुई है। 'इदुमती' मे अपने प्रिय पात्र ललित मोहन के माध्यम से सेठ जी ने धर्म सम्बन्धी अपने विचारो को इस प्रकार प्रकट किया है—

"मुझे तो ईश्वर पर भी विश्वास है, और धर्म पर भी, बल्कि मै यह कहू तो और ठीक होगा कि ईश्वर के विश्वास के अन्तर्गत धर्म का विश्वास आ जाता है। धर्म की विशाल फैली हुई हद बन्दिया चाहे घट गई हो, पर जिन हृदयो मे विश्वास का निवास है, वहाँ सच्चे धर्म का आधिपत्य न तो कम हुआ है और न कभी होगा। यदि मै निरीश्वरवादी हो जाऊँ तो जीवितावस्था मे मेरे पास कोई अवलम्ब न रह जायगा। विश्वाससागर के भग्न होने पर जीवन जहाज डगमगाने लगेगा। मै जीवित रहते सच्चे धर्म का पालन न कर सकूँगा और मृत्यु का सामना करना तो अत्यधिक कठिन हो जायगा।"[2]

वैष्णव सस्कारो से युक्त होते हुए भी सेठ जी उसकी रूढियो तथा अन्ध विश्वासो से सर्वथा मुक्त है। यह उनकी युगानुरूप परिवर्तनशील प्रवृत्ति का परिचायक है।

सेठ जी भारतीय सस्कृति के पुजारी है। उनका खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, आचार विचार सब कुछ भारतीय सस्कृति के अनुकूल है। उनके नई दिल्ली स्थित निवास स्थान (33, फीरोजशाह रोड) पर ड्राइग रूम के सामने एक छोटासा साइन बोर्ड लगा है जिस पर सुन्दर अक्षरो मे अकित है—"यह भारतीय घर है, कृपया

---

1 स्मृति-कण, पृ० 15।

2 'इन्दुमती', बृहद् सस्करण, पृ० 252-53।

जूते बाहर रखें' और आगन्तुको द्वारा बिना किसी प्रतिवाद के इस नियम का पालन किया जाता है।

सास्कृतिक दृष्टि से सेठ जी का जीवन-दर्शन शुद्ध भारतीय विचारधारा पर आधारित है। .भारत की सस्कृति का आधार धर्म है। धर्म का मूल अध्यात्म है। अध्यात्म का आधार आस्तिक भाव या ईश्वर मे विश्वास है। ईश्वर पर आस्था रखने वाले को 'सर्वं खल्विद ब्रह्म' की प्रतीति अद्वैत भावना से होती है और इस प्रकार अभेद-बुद्धि का पुन सूत्रपात हो जाता है। अभेद-ज्ञान ही अहिंसा और प्रेम का उन्नायक है। अहिंसा और प्रेम—इन दो प्रधान शाखाओ से ही वैष्णव धर्म की उत्पत्ति होती है और ये ही गाधीवाद की प्रवर्तक है। सेठ जी का गाधीवाद के प्रति आकर्षण का यही कारण है कि वह मूलत भारतीय संस्कृति का ही नूतन रूप है, कोई नवीन वाद या मत नही। उनका विश्वास है कि सत्य का मार्ग एक और केवल एक है। उसे चाहे गाँधीवाद कहे या भारतीय दर्शन का अद्वैत मार्ग।[1]

सेठ जी की कृतियो मे भारतीय सस्कृति के अनेक तत्त्व—अहिंसा, प्रेम सेवा, उदारता, त्याग, नैतिकता, आदर्शनिष्ठा आदि मिलते हैं। अहिंसा का विवेचन तो सबसे अधिक हुआ है। 'अशोक' नाटक मे कलिंग-विजय के पश्चात् अशोक का अहिंसा विषयक कथन द्रष्टव्य है—

"हिंसा से हिंसा की उत्पत्ति होगी, और यह हिंसा निरंतर बढती जायेगी। एक दिन ऐसा आयेगा जब हिंसा से सारी मानव संस्कृति सारी मानव-सभ्यता ही नही, मानव का ही नाश हो जायगा। अत ससार के कार्यो मे कम से कम सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ रचना इस मानव के कार्यो मे, हिंसा का मैं कोई स्थान नही मानता। अहिंसा और प्रेम से मानव कार्य चलने और निपटने चाहिए।'[2]

'प्रेम-विजय' मे सेठ जी ने अपना अहिंसावादी दृष्टिकोण नायिका उषा के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त किया है—

निर्जीव जो वैभव ये समस्त हैं
सो जीव हत्या यदि, तात, चाहते,
तो त्याग देना अति श्रेष्ठ है इन्हे
पिये नरो का नर रक्त तो नही।[3]

हिंसा के दुष्परिणाम का सकेत नाट्यकार ने इस प्रकार किया है—

"बिना हृदय-परिवर्तन और मूल्यो मे परिवर्तन हुए हिंसा से बलात्कार

1. सेठ गोविन्ददास अभिनदन ग्रन्थ, लेख डा० स्नातक, पृ० 300।
2 अशोक, पृ० 56।
3. प्रेम-विजय, सप्तम सर्ग, पृ० 72।

... जो समाज रचना करने का प्रयत्न किया जायगा, उसके विरुद्ध सदा विप्लव होगा।"[1]

सेठ जी त्याग-भावना को जीवन की उच्च भावना के रूप में स्वीकार करते हैं। इस सम्बन्ध में 'त्याग या ग्रहण' नाटक में उन्होंने अपना मत धर्मध्वज (नायक) के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त किया है—

"त्याग महान है, पवित्र है। अगर मनुष्य त्याग की जगह ग्रहण को आदर्श बना लेगा तो उसमें और पशु में कोई अन्तर नहीं रह जायगा।"[2]

भारतीय संस्कृति के प्रति पूर्ण आस्थावान होते हुए भी सेठ जी उसकी संकीर्णता से मुक्त हैं। प्राचीन वर्णाश्रम धर्म के सम्बन्ध में उनके विचार आधुनिक युग से प्रभावित हैं। आश्रम प्रणाली की उपयोगिता वे आज भी स्वीकार करते हैं। उनका कथन है कि "हमारी संस्कृति के इन चारों आश्रमों में—ब्रह्मचर्य में स्वार्थ और परार्थ का परिचय तथा व्यवहार का ज्ञान कराकर प्रवृत्ति सिखलायी जाती थी। गृहस्थाश्रम में प्रवृत्ति करायी जाती थी और वानप्रस्थ आश्रम में निवृत्ति सिखलाकर तथा सन्यास में निवृत्ति कराकर मोक्ष-प्राप्ति का यत्न होता था। . . मानव के स्वस्थ और सन्तुलित जीवन-विकास-क्रम में ये क्रमिक कक्षाएँ थीं, जिन्हें एक-एक कर पार करना स्वस्थ व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक था। इस प्रकार हमारी इस सामंजस्य पूर्ण संस्कृति के द्वारा व्यक्ति के लौकिक और पारलौकिक दोनों ही पक्षों का हित-साधन होता था।"[3]

पुरातन भारतीय संस्कारों के विषय में उनकी निम्न मान्यता है—

"भारतीय संस्कार आदर्श जीवन के सर्वांगीण सांस्कृतिक विकास एवं परिष्कार के मनोवैज्ञानिक साधन थे। यदि हम उन्हें आधुनिक मनोविज्ञान के प्रकाश में भी देखें तो इनमें गहरे तत्त्व ज्ञान और आधुनिक खोजों का समन्वय मिलता है। इनके द्वारा भारतीय मनीषियों ने मनुष्य के विकास के प्रत्येक अवसर पर सही दिशाओं में सर्वांगीण विकास के साधन उपस्थित किए हैं।[4]

भारतीय संस्कृति में संकीर्णता का उल्लेख सेठ जी ने इस प्रकार किया है—

"हमारी संस्कृति में संकीर्णता का जो दोष आया वह संकीर्णता भी धर्म बन गयी। शूद्रों और स्त्रियों को समान अधिकारों से वंचित रखना, मानव को निकृष्ट से निकृष्ट पशुओं से भी बदतर, कुत्ते-बिल्लियों से भी कहीं हेय, स्पर्श योग्य भी न मानना, ऐसे अस्पृश्यों की यदि छाया भी पड़ जाए तो स्नान का विधान, यदि कभी

---

1 विजय-बेलि अथवा कुरूप, पृ॰ 21।
2 त्याग या ग्रहण पृ॰ 15।
3 मेरे जीवन के विचार-स्तम्भ, पृ॰ 24।
4 वही पृ॰ 27।

कोई हमारे धर्म को छोड किसी अन्य धर्म को ग्रहण कर ले और वह वापस हमारे धर्म मे आना चाहे तो उसे वापस आने का अधिकार न रहना सकीर्णता की यह पराकाष्ठा है ।[1]

सेठ जी जन्म के आधार पर बनी वर्ण-व्यवस्था के विरोधी है। व्यक्ति को जन्म के कारण ही पूज्य होने का अधिकार प्राप्त हो, इसे वे अनुचित मानते है। अपनी इस मान्यता को 'सिहल द्वीप' मे उन्होने इस प्रकार व्यक्त किया है—

सवर्ण और अस्पृश्य एक ऊँचा और दूसरा नीचा ये सारे भेदभाव निसर्ग कृत नही, मनुष्य कृत है ।[2]

सेठ जी की धार्मिक एव सास्कृतिक मान्यताओ का परीक्षण करने के उपरात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि वे पुरातन के प्रति अत्यधिक आस्थावान होकर भी अन्धानुकरण की प्रवृत्ति से मुक्त है।

दार्शनिक दृष्टिकोण—सेठ जी की दार्शनिक मान्यताएँ मुख्यत 'सुख किस मे' नाटक मे अभिव्यक्त हुई है। 'प्रेम-विजय' मे भी कुछ दार्शनिक विचार व्यक्त हुए है। इनके अतिरिक्त उनके अद्वैतमूलक विचारो की अभिव्यक्ति 'कर्तव्य', 'शेरशाह', 'विश्व-प्रेम' एव 'प्रकाश' मे हुई है। 'सुख किसमे' नाटक मे वैराग्य वैभव एवं सृष्टिनाथ के वार्तालाप मे वैराग्य वैभव के माध्यम से सेठ जी ने अपने दार्शनिक विचारो को इस प्रकार प्रकट किया है—

सृष्टिनाथ—अगर ससार असार है, दृश्य सभी अनित्य है, दिखने वाली कोई चीज सत्य नही, तो इस शरीर को रखने से फायदा ?

वैराग्य वैभव—सार, नित्य और सत्य इसी माध्यम से जाना जाता है।

सृष्टिनाथ—असार से सार, अनित्य से नित्य, असत्य से सत्य कैसे जाना जा सकता है ?

वैराग्य वैभव—सतत प्रयत्न के बाद अनुभव हो जाएगा ।[3]

... .. .

सृष्टिनाथ—सकुचित और व्यापक से आपका क्या मतलब है ?

वैराग्य वैभव—जितना दृश्य है वह सब सकुचित है। बुद्धि और उसके तर्क का वही क्षेत्र है। बुद्धि से चाहे उसका अधिकार प्राप्त हो जाय, पर वह सदा अनित्य ही रहेगा।

सृष्टिनाथ—और बिना तर्क की श्रद्धा से अदृश्य पर अधिकार होगा ?

वैराग्य वैभव—अवश्य ।

सृष्टिनाथ—अर्थात् शून्य पर ।

---

1 मेरे जीवन के विचार-स्तम्भ, पृ० 54 ।

2 सिहल द्वीप, पृ० 12 ।

3 सुख किसमे, पृ० 31 ।

वैराग्य वैभव—ये बातें समझायी नही जा सकती, प्रयत्न से अनुभव की जा सकती है।

सृष्टिनाथ—गुरुदेव, क्षमा करे, अगर मै यह कहूँ कि जो समझाया नही जा सकता और जो समझ मे नही आता, उसकी प्राप्ति कैसे होगी ? पहले कौन सी चीज चाहिए, यह संकल्प तो शुद्ध हो। सकल्प के बाद ही उस तरफ चलना हो सकता है और सकल्पित चीज मिल सकती है।

वैराग्य वैभव—अनित्य शरीर, मन या बुद्धि नित्य की प्राप्ति का शुद्ध सकल्प नही कर सकते।

सृष्टिनाथ—तब एक बात कहूँ।

वैराग्य वैभव—हाँ, हाँ।

सृष्टिनाथ—फिर तो अनित्य के द्वारा नित्य की प्राप्ति हो भी नही सकती।

वैराग्य वैभव—होती है वत्स, इसी के द्वारा हो सकती है। यही तो श्रद्धा... श्रद्धा की आवश्यकता है।[1]

.. .

सृष्टिनाथ—मोक्ष क्या है, गुरुदेव ?

वैराग्य वैभव—नित्य मे समावेश।

सृष्टिनाथ—शून्य मे मिल जाना।

वैराग्य वैभव—नही।

सृष्टिनाथ—तब।

वैराग्य वैभव—उसे समझाया नही जा सकता, प्रयत्न कर सतत प्रयत्न कर, अनेक जन्मो तक प्रयत्न कर, केवल अनुभव किया जा सकता है और न जाने कितनो ने उस मोक्ष को प्राप्त किया है।[2]

'प्रकाश' नाटक मे जेल जाने से पूर्व माँ से कहे गए प्रकाश के निम्न शब्दो मे सेठ जी की अद्वैत भावना का दर्शन होता है—

प्रकाशचन्द्र—ऐसे अवसर पर अपने बाह्य जगत् की सारी वस्तुओ मे—(जल्दी-जल्दी) आकाश मे स्थित उषा की द्युति, दिन के प्रकाश, सध्या की प्रभा, रात्रि के अधकार, सूर्य, चन्द्र, तारागण, मेघ, दामिनी, इन्द्र धनुष मे, पृथ्वी पर स्थित पर्वतो, नदियो, वनो, उपवनो, वृक्षो, पल्लवो, पुष्पो, फलो, गृहो, मार्गो मे, नभचरो, जलचरो, थलचरो मे, अपने स्वय के गृह और उसकी वस्तुओ मे, तू अपने प्रकाश, प्यारे प्रकाश को देखना, माँ, माँ, यदि तू प्रयत्न करेगी तो तुझे तेरा प्रकाश सर्वत्र दृष्टिगोचर होगा।[3]

---

1 सुख किसमे, पृ० 35-36।

2 वही, पृ० 36-37

3. प्रकाश, पृ० 198।

जीवन और मृत्यु के सम्बन्ध मे नाट्यकार ने अपना दृष्टिकोण 'इन्दुमती' में डा० त्रिलोकीनाथ के माध्यम से प्रकट किया है—

(डा० त्रिलोकीनाथ मृत्यु-शय्या पर लेटे ललित मोहन से कहता है)

"मृत्यु से आप ही डरते है, ऐसा नही है, सब डरते है, और साधारण हृदय रखने वालो के लिए मृत्यु का भय एक स्वाभाविक चीज है। फिर जिसे मृत्यु का भय कहते है, वह यथार्थ मे मृत्यु का भय न होकर न जीने का भय होता है। किन्तु जो आपके समान आस्तिक है, जिनमे ऐसे-ऐसे त्याग करने का पुरुषार्थ है, वे इस डर से ऊपर उठ सकते है। आखिर मृत्यु है क्या ? मै वैज्ञानिक हूँ, साथ ही मैने वेदात का थोडा बहुत अध्ययन किया है और दोनो दृष्टियो से देखने पर यथार्थ मे नतीजा एक ही निकलता है। कोई वस्तु सर्वथा नष्ट नही होती, उसका रूपातर होता है, यह विज्ञान कहता है। बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है, जो बीज वृक्ष उत्पन्न करता है, वह नष्ट हो गया, यह जान पडता है, लेकिन उसी वृक्ष से फिर वैसा ही बीज निकल आता है। बीज क्या था, वह वृक्ष था, वृक्ष क्या है, वह बीज है। सारा विश्व यथार्थ मे एक तत्त्व है, यह विज्ञान मानता है। सारी सृष्टि ईश्वरमय है, यह वेदात कहता है। अतर एक ही कि विज्ञान उस तत्त्व को जड कहता है, वेदात चैतन्य। ..... जब विज्ञान और वेदात दोनो ही यह कहते है कि यथार्थ मे विश्व एक ही तत्त्व है, तब उस तत्त्व का नाश मम्भव ही नही है।"[1]

'मृत्यु' के सम्बन्ध मे सेठ जी के कुछ विचार 'स्नेह या स्वर्ग' मे व्यक्त हुए है—

अजेय—जब लौ न आवे मृत्यु, मर्त्य भी अमर्त्य है।
जयन्त—मर्त्य भी अमर्त्य ? जो छुई मुई का भाई है।
अजेय—मरना भी मानवो की अपनी महानता।
जयन्त—मरना महानता है ?
अजेय—हाँ, हाँ, हाँ, महानता,
मृत्यु बिना जीवन विरस और व्यर्थ है
अन्तहीन नाटक-सा, मौन बिना वाणी सा।[2]

गीता के निष्काम कर्मयोग का सेठ जी पर व्यापक प्रभाव है, उन्होने अपने कई नाटको मे कार्य फल की आकाक्षा से मुक्त रहकर कर्म करने की बात कही है। 'कर्त्तव्य' मे मथुरा जाने से कुछ देर पूर्व कृष्ण राधा से कहते है—

यदि आसक्ति न रहने के कारण मनुष्य हृदयहीन कहा जा सकता है, तो तुम मुझे ऐसा कह सकती हो, पर मैं तो अपने को ऐसा नही मानता, राधा।

1. इन्दुमती, बृहद् सस्करण, पृ० 455-56।
2 स्नेह या स्वर्ग, पृ० 57।

क्या मैं हरेक को सुख पहुंचाने का सदा उद्योग नही करता? मेरी अवस्था का कोई बालक ऐसा करता है? परन्तु हाँ, इन सब कृत्यो के करने ही मे मुझे सुख मिल जाता है, इनमे मेरी आसक्ति नही है, फल की ओर मेरी दृष्टि ही नही जाती।[1]

सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टिकोण—सामाजिक कार्यकर्त्ता एव स्वातन्त्र्य-आन्दोलन के दृढव्रती सैनिक होने के कारण सेठ जी की सामाजिक और राजनीतिक मान्यताएँ कपोल-कल्पित न होकर ठोस वास्तविकता पर आधारित है। उनका सामाजिक दृष्टिकोण अत्यत व्यापक है और वह किसी रूढि-विशेष की कारा में अवरुद्ध नहीं है। आस्तिक वैष्णव होते हुए भी वे अस्पृश्यता को अभिशाप मानते है, उनकी अस्पृश्यता-विरोधी भावनाएँ अनेक नाटको—'कर्ण,' 'कुलीनता', 'सिंहलद्वीप' तथा 'चन्द्रापीड और चर्मकार' आदि मे अभिव्यक्त हुई है। 'चद्रापीड और चर्मकार' मे आदित्य शर्मा के माध्यम से स्वय नाट्यकार ने अपनी भावनाएँ व्यक्त की है। एक उद्धरण देखिए—

"जो गाय विष्ठा भी खा लेती है, उसका हम पूजन करते है। प्रहरी के रूप मे बडे-बडे क्षत्रिय श्वानो को पालते है। चूहो को खाने के पश्चात् बिल्ली मुखमार्जन कर हमारा दूध, दही नही खाती? उसे भगा कर, रखा हुआ दूध, दही, उसका उच्छिष्ट, हम खाते है। पर मनुष्य .... मनुष्य को हमने पशुओ से निकृष्ट, ऐसे वैसे पशुओं मे नहीं, निकृष्ट से निकृष्ट पशु कुत्ते बिल्लियो से भी निकृष्ट मान लिया है।"[2]

अस्पृश्यता का विरोध सेठ जी के लिए कोई आदर्श न होकर व्यावहारिक सत्य है। उनके कुटुम्ब मे अब भी छूत-छात की भावना विद्यमान है लेकिन वे इससे मुक्त है।

नारी के प्रति सेठ जी का दृष्टिकोण उदारवादी है। वे उसका अस्तित्व केवल पुरुष की वासना-पूर्ति का साधन बनने मे ही नही मानते अपितु उनकी दृष्टि मे वह हर क्षेत्र मे पुरुष के समकक्ष पहुँचने मे समर्थ है। सेठ जी के समग्र साहित्य मे दो-चार नारी पात्र ही पतित दिखाई देंगे। वे नारी-जागरण को अभिशाप न मानकर वरदान मानते है—

"स्त्री समझती है कि उसका काम केवल पत्नी और माता के काम को पूरा कर देना है। पर इतना ही नही, उसका काम अपनी जीविका उपार्जन करना भी है। उसका काम समाज मे अपना स्वतत्र स्थान बनाना भी है।"[3]

सेठ जी प्रचलित विवाह सस्था के पूर्ण समर्थक है। उन्हे इस सस्था की पवित्रता पर पूर्ण आस्था है। इस सम्बन्ध मे 'त्याग या ग्रहण' मे धर्मध्वज के द्वारा उन्होंने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए है—

---

1 कर्त्तव्य, तृ० स०, 1956, पृ० 89।

2 प्राचीन काश्मीर की एक झलक (चंद्रापीड और चर्मकार), पृ० 63।

3 गरीबी या अमीरी, पृ० 139।

"वह (विवाह) प्रेम के उस स्थायित्व का द्योतक है जिसके बिना किसी भी सच्चे प्रेमी को सतोष नही हो सकता। प्रेमी अपने प्रेमी के हृदय पर अपना ... केवल अपना स्थान देख सकता है, अन्य का नही और यह विवाह, विवाह के केवल सस्कार नही, सच्चे विवाह से ही हो सकता है, हाँ सस्कार उसकी एक विशद साक्षी अवश्य है।"[1]

सेठ जी के बृहद् उपन्यास 'इन्दुमती' मे भी विवाह के सम्बन्ध मे ऐसी ही धारणाएँ व्यक्त हुई है—

'नारी का विकास तो पत्नीत्व और मातृत्व मे है। विवाह उसे क्रीत दासी के रूप मे रखने का सबसे बडा विधान नही, वह उसके कल्याण का महान् अनुष्ठान है।"[2]

सेठ जी के महत्त्वपूर्ण नाटको—'सेवा पथ', 'गरीबी या अमीरी' तथा 'महत्व किसे' आदि मे धन-सग्रह की नीति का खण्डन हुआ है और इनमे त्याग की महत्ता प्रतिपादित हुई है।

सेठ जी के राजनीतिक विचार उग्रपथी न होकर गाँधीवाद से अनुप्राणित है। वे गाँधीवाद के अनुयायी है और उनकी वाणी एव कृत्यो पर उसका पूर्ण प्रभाव है। प्रारम्भ से ही काँग्रेस के सदस्य होते हुए भी आपने उसकी गलत नीतियो (गोवध, राजभाषा विधेयक आदि) का कभी समर्थन नही किया, अन्याय के सामने सिर न झुकाने की प्रवृत्ति गाँधी जी की देन है। सेठ जी के नाटको पर गाँधीवाद के प्रभाव का विवेचन पूर्व अध्याय मे हो चुका है, अत इस प्रसग पर यहाँ अधिक चर्चा केवल पुनरावृत्ति मात्र होगी।

राष्ट्रीय भावना—सेठ जी की व्यापक राष्ट्रीय भावना अनेक रूपो मे प्रस्फुटित हुई है। पराधीन भारत को दासता की शृ खलाओ से मुक्त करने के लिए वे स्वातत्र्य-आदोलन के महायज्ञ मे कूदे थे और गाँधी जी के सच्चे अनुयायी के रूप मे जीवन के महत्त्वपूर्ण वर्षो मे से 8 वर्ष उन्होने कारा की दुर्गन्धपूर्ण कोठरियो मे बिताये है। डा० नगेन्द्र का यह कथन सर्वथा सत्य है कि "भौतिक दृष्टि से, हमारे स्वातत्र्य आदोलन के इतिहास मे त्याग के इतने बडे उदाहरण कम ही मिलेगे।"[3] आज से लगभग छ वर्ष पूर्व सन् 1962 मे भारत-चीन सघर्ष के दौरान प्रधान मत्री स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू से बातचीत के समय देश-रक्षा के प्रसग मे उन्होने कहा था कि "धन तो मेरे पास अब नही रहा अत धन से मै देश की सेवा नही कर सकता लेकिन शरीर से मैं देश-रक्षा के लिए अब भी प्रस्तुत हूँ।"

---

1 त्याग या ग्रहण, पृ० 117।

2 इन्दुमती, पृ० 8।

3 राष्ट्र और राष्ट्रभाषा के अनन्य सेवक, पृ० 51।

सेठ जी की राष्ट्रीय भावना उनकी कृतियो मे भी अभिव्यक्त हुई है। हेलन के प्रति आकृष्ट शशिगुप्त को सावधान करते हुए चाणक्य के निम्न कथन मे सेठ जी का देश-प्रेम ही प्रस्फुटित हुआ है--

चाणक्य—तुम्हे इस प्रेम की देश के स्वतन्त्रता के यज्ञ मे आहुति देनी होगी। अपनी जन्म भूमि के परतत्र भागो को फिर स्वतत्र बनाना है। अपने देश मे एक साम्राज्य की स्थापना करनी है।[1]

इसी प्रकार 'कुलीनता' मे रेवा सुन्दरी के माध्यम से नाट्यकार ने अपनी राष्ट्रीय भावना व्यक्त की है—

"देशभक्त मनुष्य प्रकृति देवी की सबसे महान कृति होता है। वह किसी जाति का नही, पर स्वय प्रकृति देवी का सपूत होता है।"[2]

सेठ जी की राष्ट्रीयता का व्यापक रूप 'शेरशाह' मे दिखाई पडता है। इस सम्बन्ध मे शेरशाह का निम्न कथन द्रष्टव्य है—

"हिन्दुस्तान ही मेरे लिए सब कुछ है। यहाँ के रहने वाले चाहे वे किसी भी मजहबो मिल्लत के हो, मेरे भाई बिरादर है। . जो हिन्दुस्तान और यहाँ के रहने वालो से नफरत करता है, चाहे वह मेरा हम मजहब ही क्यो न हो, मै उससे नफरत करता हूँ।"[3]

मानवतावाद—वेदात के अभेद-वाद मे आस्था रखने वाले साहित्यकार की रचनाओ मे मानवतावाद का स्वर न हो, यह कैसे हो सकता है? सेठ जी की रचनाओ मे मानवतावाद की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। 'इन्दुमती' मे डा० त्रिलोकीनाथ का निम्न कथन सेठ जी के मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचायक है—

"मानव और मानव समाज की प्रेरक तीन ही चीजें रही है धर्म, नीति और प्रेम, परतु दुनिया मे ऐसी कोई चीज ग्राह्य नही जो जीवन को किसी ऐसे दलदल मे फँसा दे कि उससे बाहर निकलना ही मुमकिन न रहे, फिर चाहे वह दलदल धर्म का हो, नीति का हो, या प्रेम का हो। हर व्यक्ति का पृथक् व्यक्तित्व है, और अलग अस्तित्व है। मै मैं हूँ, आप आप है, वह वह है। सारा समाज और समाज ही क्या सारी सृष्टि हरेक के चारो ओर घूमती है, तब जो धर्म, जो नीति, जो प्रेम एक को दूसरे पर आधिपत्य करने का अधिकार देता है, या आधिपत्य करने के लिए प्रोत्साहित करता है, वह त्याज्य है। जिस धर्म, जिस नीति, जिस प्रेम से बिना किसी को हानि पहुँचाए या बिना किसी पर आधिपत्य की अभिलाषा के स्वय को व्यक्तिगत सुख मिलता है, वही ग्राह्य है।"[4]

1 शशिगुप्त, पृ० 61।
2 कुलीनता, पृ० 101।
3 शेरशाह, पृ० 81।
4 इन्दुमती, पृ० 924-95।

'विजय-वेलि' मे भी नाट्यकार का मानवतावादी स्वर प्रस्फुटित हुआ है। मानव-कल्याण के सम्बन्ध मे रेणुका का कथन द्रष्टव्य है—

".. यह (मानव का सच्चा कल्याण) हिंसा से सम्भव नही, यह अहिंसा से हृदय परिवर्तन कर, मूल्यो मे परिवर्तन कर, स्नेह और प्रेम से ही सम्भव है। यह विजय-वेलि स्नेह और प्रेम से कही विश्वविजय कर सके।"[1]

सेठ जी के नाटको मे कर्तव्य, त्याग, सेवा, नैतिकता, ईमानदारी, उदारता, आशावादिता, आदर्श के प्रति निष्ठा आदि अनेक मानवतावादी तत्त्वो की अभिव्यक्ति हुई है। 'अशोक' नाटक मे सेठ जी के आदर्शवाद एव उनकी आशावादिता का रूप द्रष्टव्य है—

"मनुष्य सूर्य से भी अधिक प्रकाशवत और अमारात्रि से भी अधिक काला हो सकता है। उसका मन आकाश से भी अधिक विस्तीर्ण और सुई की नोक से भी अधिक सकीर्ण हो सकता है। फिर शब्दो का मूल्य नही, मूल्य है जीवन किस प्रकार चल रहा है, उसका। हर मानव को प्रकाशवन्त रहने का ही प्रयत्न करना चाहिए और अपने मन को आकाश सदृश ही विस्तीर्ण रखना चाहिए . .. आशावादिता मे ही सच्चा जीवन है, आशा के अभाव मे आज के साथ ही आगामी कल का भी विनाश हो जाता है।"[2]

कला एव साहित्य के प्रति दृष्टिकोण—कला के सम्बध मे सेठ जी ने अपना दृष्टिकोण 'नाट्य कला मीमासा' मे इस प्रकार व्यक्त किया है—

"ललित कलाओ से अनुराग रखने वाले महानुभावो को मालूम है कि ललित कला विशेषज्ञो मे दो दल है। एक का मत है कला का उद्देश्य कला ही है (Art for art's sake)। दूसरा कहता है कला का उद्देश्य सत्पथ पर ले जाना। . . विद्वानो के मतो के अध्ययन और मनन के पश्चात् मै तो इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि कला के सम्बध मे यह विवाद ही निरर्थक है। जो लोग कुछ भी अनर्गल विचार प्रस्तुत कर सकते है कि कला का उद्देश्य कला ही है अथवा जो लोग कला को जीवन के लिए साधन मानते है वे दोनो एकागी और एक पक्षीय है।

अत यह स्पष्ट हो जाता है कि कला का प्रत्यक्ष नही तो परोक्ष सम्बध कल्याण से भी है।"[3]

कलागत श्रेष्ठता के विषय मे सेठ जी का मत है कि "कला कृति मे कथा की मौलिकता तो हो ही, साथ मे मनोरजन भी हो, जिससे कौतूहल मे कमी न आने पाये और वह शिक्षाप्रद भी हो जिसके फलस्वरूप मानवता का विकास हो, इसके-

---

1 विजय-वेलि अथवा कुरुष, पृ० 20।

2 अशोक, पृ० 66-67।

3 नाट्य कला मीमासा, बृहद् सस्करण, पृ० 10-11।

अतिरिक्त यह भी अनिवार्यता होनी चाहिए कि कलाकार का व्यक्तित्व भी उसकी कृति मे मुखरित हो और व्यक्तित्व के सन्दर्भ मे युग, समाज, संस्कृति, सभ्यता जन-जीवन की अन्तर्मुखी वृत्तियाँ भी परिलक्षित हो।"[1]

कला मे सत्य, शिव, सुन्दर से सम्बन्धित एक महत्त्वपूर्ण तथ्य का विवेचन सेठ जी ने इस प्रकार किया है—

"कलाकार का सत्य युग-प्रभावित तो होता है लेकिन यदि वह देश-काल की सीमाओ मे आबद्ध न हो तो सम्पूर्ण मानव जाति के लिए शिव होकर प्रत्यक्ष रूप मे प्रकट होता है और कला सजीवित होती है। कला मे कलाकार का युग सत्य जब शाश्वत सत्य के रूप मे अभिव्यक्त होता है तो उसकी कला प्रत्येक युग के लिए सामयिक बनी रहती है।" कलाकार का सत्य ही शिव है और शिव होने के कारण यह सुन्दर भी है। कलाकार अपने अन्तर्जगत् की रूप कल्पना को अपनी कला मे कल्पना का आश्रय लेकर एक सौन्दर्य-सत्य की अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है और सौन्दर्य के विराट् एव कोमल दो विशेष गुणो के सन्तुलन को भी अपनी कला मे प्रस्तुत करता है।"[2]

सेठ गोविन्ददास ने नाटको के कथानक, पात्र, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, सकलनत्रय, अभिनेयता, आदि का विवेचन भी अपनी 'नाट्यकला मीमासा' पुस्तक मे किया है और इनके सम्बन्ध मे नाट्यकार की मौलिक उद्भावनाए भी व्यक्त हुई है। उत्तम एव सफल नाटक के विषय मे सेठ जी का निम्न कथन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—

"जिस नाटक मे जितना महान् विचार होगा, जितना तीव्र सघर्ष होगा, जितनी सगठित एव मनोरजक कथा होगी, जितना विशद चरित्र-चित्रण होगा और जितनी स्वाभाविक कृति एव कथोपकथन होगे, वह उतना ही उत्तम तथा सफल होगा।"[3]

निष्कर्ष—सेठ गोविन्ददास का जीवन-दर्शन वेदात पर आधृत अद्वैतमूलक अभेद-दर्शन है। वेदात का मूल तत्त्व 'सर्व खल्विद ब्रह्म' कलात्मक रूप मे उनकी रचनाओ मे अभिव्यक्त हुआ है। उन पर गाधीवाद का व्यापक प्रभाव होने के कारण सत्य और अहिसा को भी उन्होने जीवन-दर्शन के रूप मे अपनाया है। डा० स्नातक की यह मान्यता तथ्यपूर्ण है कि आगे आने वाली पीढी जब इस युग की विचारधारा का अध्ययन साहित्य के माध्यम से करेगी, तो जिस प्रकार उपन्यास-क्षेत्र मे प्रेमचन्द जी का नाम आयेगा वैसे ही सेठ गोविंददास जी युग-चेतना के सफल नाटककार स्वीकार किये जायेंगे।[4]

---

1 नाट्य कला मीमासा, वृहद् सस्करण, पृ० 14।

2 वही, पृ० 15-16।

3 वही, पृ० 33।

4. सेठ गोविन्ददास अभिनदन ग्रथ, पृ० 305।

उपसंहार

सेठ जी की हिन्दी सेवा

अपनी राजनीतिक तथा साहित्यिक सेवाओ के कारण तो सेठ जी स्मरण किये ही जायेगे, लेकिन जिस सेवा के कारण आप कोटि-कोटि हिन्दी भाषी जनता के गले का हार बने हुए है और भविष्य मे भी बने रहेगे, वह है—राष्ट्रभाषा हिन्दी को अपने ही देश मे उसका उचित गौरवपूर्ण स्थान दिलाने के हेतु अहिंसात्मक आन्दोलन का नेतृत्व। यह आन्दोलन किसी राजनीतिक या अन्य तुच्छ प्रेरणा का परिणाम नही है, अपितु यह उनके जीवन-सिद्धात का प्रश्न है और इसके लिए वे आत्म-बलिदान तक करने को प्रस्तुत है।

सेठ जी का सार्वजनिक जीवन यथार्थ मे हिन्दी सेवा तथा साहित्य-निर्माण से प्रारम्भ होता है। केवल बारह वर्ष की अवस्था मे उन्होने अपना प्रथम उपन्यास 'चम्पावती' लिखा और लगभग 20 वर्ष की आयु मे जबलपुर मे 'शारदा भवन' नामक पुस्तकालय स्थापित कर हिन्दी आन्दोलन मे भाग लेना प्रारम्भ किया। उसी वर्ष (सन् 1916) जबलपुर मे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ और इस अधिवेशन के समय से ही उनका उक्त सस्था से सम्बन्ध हो गया और यह सम्बन्ध आज तक बना हुआ है क्योकि इस समय भी आप हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष है। इससे पूर्व कई बार वे सम्मेलन के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर चुके है।

सन् 1927 मे, कौसिल आफ स्टेट के सदस्य की हैसियत से, सर्वप्रथम सेठ गोविन्ददास ने हिन्दी भाषा के प्रश्न को उक्त कौसिल मे उठाया। इससे पूर्व यह प्रश्न न तो केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा मे उठाया गया था और न ही प्रान्तीय विधान सभाओ मे, अत शासनिक स्तर पर हिन्दी आन्दोलन के आदि प्रवर्तक गोविन्ददास जी माने जा सकते है। कौसिल आफ स्टेट मे उन्होने जो प्रस्ताव पेश किया और उसके समर्थन मे जो एक लम्बा भाषण दिया था उसका कुछ अश उद्धृत है—

अध्यक्ष महोदय, जो प्रस्ताव मैं रखना चाहता हू, वह इस प्रकार है—

यह कौसिल गवर्नर-जनरल से सिफारिश करती है कि वैधानिक प्रक्रिया के नियमो मे इस प्रकार परिवर्तन किया जाय, जिससे भारतीय विधान-मडल के सदस्य हिन्दी या उर्दू मे भाषण कर सकें और वे भाषण केन्द्रीय विधान मण्डल की औप-

चारिक कार्यवाही मे नियमानुसार मुद्रित व प्रकाशित हो।"[1] इसके आगे उन्होने कहा—"श्रीमन्, यदि अंग्रेजी ही सयुक्त भारत की भाषा बनने वाली है, तो मुझे यह कहना पडता है कि सयुक्त भारत एक अराष्ट्रीय भारत होगा। अंग्रेजी इस देश की भाषा न कभी रही है और न आगे होगी। जब भारत की सारी जनसख्या हिन्दुस्तानी समझती है और आधी बोलती भी है, तब क्या यह विडम्बना नही कि हमारे केन्द्रीय विधान-मण्डल की कार्यवाही एक ऐसी भाषा (अंग्रेजी) मे चलाई जाये जिसे केवल तीन लाख लोग बोलते है और अधिक से अधिक तीस लाख समझते है।"[2]

सन् 1947 मे भारत ने स्वतत्रता के सुरभित वायुमण्डल मे सास लेना प्रारम्भ किया। राजनीतिक दृष्टि से स्वतत्र हो जाने पर भी मानसिक दृष्टि से देश (अब भी) परतत्र था, क्योंकि मैकाले के मानस-पुत्रो ने परतन्त्रता की प्रतीक अंग्रेजी को यथावत् बनाये रखने का सकल्प कर लिया था। इसी बीच सविधान सभा का निर्माण हुआ, हिन्दी और हिन्दी-प्रेमी जनता का भाग्य कहिए कि उसके (हिन्दी) प्रबल समर्थक सेठ गोविन्ददास जी को इस सभा के सदस्य होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिस समय हिन्दी के राष्ट्रभाषा बनने का प्रश्न त्रिशकु के समान सविधान-सभा के अतरिक्ष मे लटक रहा था, सेठ जी ने अपनी पूरी शक्ति से उसे उसका गौरवपूर्ण स्थान दिलाने का निश्चय किया। दृढ निश्चय, आत्म-विश्वास तथा अनवरत परिश्रम के फलस्वरूप हिन्दी को राष्ट्रभाषा पद पर आसीन कराने का उनका चिरकालीन स्वप्न साकार हुआ। यह हिन्दी जगत् का परम सौभाग्य था कि जिन दिनो (सन् 1949) वे हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष थे उन्ही दिनो संविधान परिषद् ने यह निर्णय किया कि सन् 1965 से हिन्दी देश की राज-भाषा होगी।

सविधान सभा मे जब यह निर्णय किया गया कि सन् 1965 से हिन्दी देश की राजभाषा होगी, तो सरकार की, हिन्दी को लम्बी अवधि तक टाल देने की नीति से राजर्षि पुरुषोत्तमदास टडन बहुत दुखी हुए और उन्होने इस प्रस्ताव पर अपनी असहमति प्रकट की। उन्होने अपना मत प्रकट करते हुए कहा कि "मुझे विश्वास है कि इस निश्चित अवधि के बाद भी हिन्दी को राजभाषा नही बनने दिया जायेगा और दुख तो इस बात का है कि उस समय इसका विरोध करने वाला कोई नही होगा।" टडन जी की बातो का सेठ जी पर व्यापक प्रभाव हुआ और उन्होने प्रण किया कि यदि सरकार ने हिन्दी के प्रति उपेक्षा वृत्ति दिखाई और अपने वचनो पर अटल न रही तो मैं तन, मन से उसका विरोध करूंगा।

स्वर्गीय टडन जी का सन्देह उचित सिद्ध हुआ, सरकार न केवल अपने वायदे से हट गई अपितु सन् 1963 मे ससद् मे राजभाषा-विधेयक भी प्रस्तुत कर दिया जिसमे सन् 1965 के बाद भी अंग्रेजी को अनिश्चित काल तक बनाये रखने के लिए

---

1 हिन्दी-भाषा आन्दोलन, सकलनकर्ता लक्ष्मीचन्द, प्र० स० शकाब्द 1885, पृ० 3।
2 हिन्दी भाषा आन्दोलन, पृ० 9।

सविधान-सशोधन का प्रस्ताव भी उपस्थित हुआ। सेठ गोविन्ददास की अन्तरात्मा इसको सहन न कर सकी। राजर्षि टडन जी की मूर्ति उनके समक्ष साकार हो उठी और उन्हे याद आया अपना वह प्रण जो उन्होने टडन जी के सामने किया था। काग्रेस के प्रति पूर्ण निष्ठावान होते हुए भी उन्होने उस विधेयक का डटकर विरोध किया, साम, दाम, दड, भेद से उन्हे उस विधेयक के पक्ष मे मतदान करने के लिए राजी करने का पूर्ण प्रयास किया गया, परन्तु मतदान के समय कॉग्रेस मे केवल सेठ जी ऐसे थे जिन्होने विधेयक के विपक्ष मे अपना मतदान किया। यह घटना सेठ जी के नैतिक साहस और हिन्दी-प्रेम की परिचायक है।

23 अप्रैल सन् 1963 को मतदान के पूर्व ससद् मे अपना विचार व्यक्त करते हुए उन्होने कहा—

"मुझे दु ख है कि जिनके नेतृत्व मे—पडित जी के—मैने आज तक अपना सारा जीवन व्यतीत किया है, शास्त्री जी मेरे साथी रहे है, उनके द्वारा लाये गये विधेयक का मुझे विरोध करना पड रहा है। तीन वार उनके मत मे मुझे अपना विरोध प्रकट करना पडा है। एक वार उस वक्त, जवकि गोवध-वन्दी सम्वन्धी मेरे विधेयक का सरकार ने विरोध किया था और तीसरी वार यह है। लेकिन, यह मेरी अन्तरात्मा का प्रश्न है, यह वह प्रश्न है जिसको सुलझाते-सुलझाते और जिसके लिए काम करते-करते पचास वर्ष का अपना सारा जीवन मैने व्यतीत किया और जिस प्रश्न को स्वराज्य के बाद मै सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न समझता हू, इसलिए अपनी अन्तरात्मा के अनुसार काम करने के लिए, इस जीवन के सन्ध्याकाल मे, मै बाध्य हू।"[1]

सन् 1967 मे द्वितीय वार ससद् मे प्रस्तुत राजभाषा विधेयक के विपक्ष मे भी काग्रेस के सदस्यो मे से केवल सेठ जी ने ही मतदान किया, इस विधेयक के विरोध स्वरूप उन्होने अपनी 'पद्म भूषण' की उपाधि भी लौटा दी। हिन्दी-भाषी राज्यो मे 'हिन्दी चलाओ' आन्दोलन का नेतृत्व सेठ जी ही कर रहे है।

उत्तर प्रदेश सरकार ने सन् 1967 मे सेठ जी को उनकी हिन्दी-सेवा के लिए दस हजार रुपये का पुरस्कार प्रदान किया है। किसी भी हिन्दी-सेवी व्यक्ति को अब तक इतना बडा पुरस्कार नही मिला।

1 हिन्दी भाषा आन्दोलन, पृ० 116।

सेठ गोविन्ददास का हिन्दी साहित्य में स्थान

साहित्यकार के मूल्याकन की कसौटी यदि रचना-परिमाण है, जैसा कि कुछ लोग मानते है, तो निस्सदेह सेठ जी का हिन्दी साहित्य मे अद्वितीय स्थान है। इस क्षेत्र मे उनका प्रतिस्पर्द्धी यदि कोई हो सकता है तो केवल भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, लेकिन भारतेन्दु जी का साहित्य-निर्माण कार्य भी इतना वैविध्यपूर्ण नही है और न ही परिमाण की दृष्टि से उन्होने इतना लिखा ही है।

मूल्याकन का आधार रचना-परिमाण मानने के पक्ष मे मै बिल्कुल नही हूँ अत कुछ आलोचको की सेठ जी को साहित्याकाश का सूर्य मानने की मान्यता से भी मैं पूर्णत सहमत नही। हिन्दी साहित्य मे सेठ जी का स्थान निर्धारित करने से पूर्व उनके सम्बन्ध मे कतिपय मान्य आलोचको एव विद्वानो की निम्न सम्मतिया द्रष्टव्य है—

डा० नगेन्द्र—

साहित्य के क्षेत्र मे सेठ जी की उपलब्धि अपेक्षाकृत अधिक मानी जा सकती है। यद्यपि वे सभी कारण जो राजनीतिक जीवन मे बाधक रहे यहाँ न्यूनाधिक रूप मे उपस्थित रहे, फिर भी साहित्य का मार्ग कही अधिक सरल है। इसलिए साहित्य मे अपना उचित स्थान प्राप्त करने मे उन्हे विशेष बाधा नही हुई। अनेक सीमाओ के रहते हुए भी प्रसाद-परवर्ती-हिन्दी नाट्य-साहित्य मे उन्हे अत्यन्त सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त है।[1]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—

सेठ गोविन्ददास हिन्दी के प्रतिभाशाली नाटककार है। उनके नाटको मे मानव जीवन को समझने के अनेकानेक द्वार उद्घाटित हुए है। उनके चरित्र जीवन्त मानव है और जिन समस्याओ को वे हमारे सामने उपस्थित करते है, वे मनुष्य समाज और जीवन की गहराई मे प्रभावित करती है। सेठ जी ने अपनी अद्भुत प्रतिभा के द्वारा जीवन के अ यन्त मूल्यवान भडार को सुलभ किया है।[2]

1 राष्ट्र और राष्ट्रभाषा के अनन्य सेवक, पृ० 53।

2 सेठ गोविन्ददास व्यक्तित्व एव साहित्य, पृ० 112-13।

डा० नन्ददुलारे वाजपेयी—

सार्वजनिक जीवन से समय निकाल कर उन्होने हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि के लिए जो प्रयत्न किये है, उनके प्रति सम्मान व्यक्त करना हमारा कर्त्तव्य है। विशेषत नाट्य-रचना के क्षेत्र मे उनका कार्य अभिनन्दनीय है।[1]

डा० दशरथ ओझा—

सेठ गोविन्ददास उन नाट्यकारो मे से है, जो पश्चिमीय नाट्यकला से पूर्ण प्रभावित होकर नाटक लिखते है, किन्तु अपनी प्रतिभा का योग भी देते चलते है।[2]

डा० विश्वनाथ मिश्र—

हिन्दी साहित्य मे आपकी विशेष प्रतिष्ठा नाटककार के रूप मे ही है।[3]

डा० विजयेन्द्र स्नातक—

गाँधीवादी विचारधारा के पोषक साहित्यकारो मे सेठ जी का नाम अन्यतम है।[4]

आचार्य विनयमोहन शर्मा—

उनकी सेवाएँ बहुमुखी है। उन्होने एक हाथ से 'चक्र' और दूसरे हाथ से लेखनी सधान कर स्वातत्र्यदेवता और सरस्वती की साथ-साथ आराधना की है। उनकी हिन्दी भाषा और साहित्य की सेवाएँ चिर-स्मरणीय रहेगी।[5]

सेठ जी के प्रकाशित एव अप्रकाशित समग्र साहित्य का अनुशीलन करने के उपरात मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि वे साहित्याकाश के देदीप्यमान सूर्य तो नही है, लेकिन एक जाज्वल्यमान नक्षत्र की भाँति साहित्य-गगन मे सदा सर्वदा चमकते रहेगे, इसमे रचमात्र सदेह नही है।

---

1 सेठ गोविन्ददास अभिनदन ग्रंथ, पृ० 36।

2 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, द्वितीय सस्करण, पृ० 460।

3 हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2, प्र० स० 2020, पृ० 144।

4 सेठ गोविन्ददास अभिनदन ग्रथ, पृ० 305।

5 वही, पृ० 36।

परिशिष्ट

सहायक पुस्तकों की सूची

(क) सेठ गोविन्ददास द्वारा विरचित साहित्य

	पुस्तक का नाम	प्रकाशन काल	प्रकाशन
1	प्रेम-विजय	1959	भारतीय विश्व प्रकाशन, दिल्ली
2	पत्र-पुष्प	1959	,,
3	सवाद सप्तक	1959	,,
4	हमारा प्रधान उपनिवेश	1938	,,
5	सुदूर दक्षिण पूर्व	1951	आदर्श प्रकाशन, जबलपुर
6	पृथ्वी-परिक्रमा	1954	आत्माराम एड सस, दिल्ली
7	उत्तराखड की यात्रा	सवत् 2024	गीता प्रेस, गोरखपुर
8	आत्म-निरीक्षण (भाग 1, 2, 3)	1958	भारतीय विश्व प्रकाशन, दिल्ली
9	स्मृति-कण	1959	,,
10	चेहरे जाने पहचाने	1966	,
11	मोतीलाल नेहरु (एक जीवनी)	1961	मोतीलाल नेहरु जन्म शताब्दी समारोह समिति, मध्यप्रदेश
12	युग-पुरुष नेहरु	1964	हिन्द पाकेट बुक्स, शाहदरा
13	नाट्यकला मीमासा	1961	मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद्, भोपाल
14.	मेरे जीवन के विचार-स्तम्भ	1962	भारतीय विश्व प्रकाशन, दिल्ली
15.	इन्दुमती (वृहद् सस्करण)	1952	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
16	लिजा	अप्रकाशित	
17	कोसल्या	,,	
18.	कर्त्तव्य	1967	भारतीय विश्व प्रकाशन, दिल्ली
19	कर्ण	1964	,,
20	हर्ष	1961	,,
21	कुलीनता	1966	,,

पुस्तक का नाम	लेखक या सपादक	प्रकाशन काल	प्रकाशन
3 समीक्षा-शास्त्र	डा० दशरथ ओझा	1957	राजपाल एण्ड सस, दिल्ली।
4 नाट्य-समीक्षा	,,	द्वि० स०	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
5 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास	,,	,,	राजपाल एण्ड सस, दिल्ली।
6 काव्य के रूप	डा० गुलाबराय	पचम स०	आत्माराम एण्ड सस दिल्ली।
7 हिन्दी नाटक	डा० बच्चनसिंह	1958	साहित्य भवन, इलाहाबाद।
8 हिन्दी नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव	डा० विश्वनाथ मिश्र	1966	लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
9 नाट्य कला	डा० रघुवश	1961	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
10 अभिनव नाट्य शास्त्र	अभिनवभरत प० सीताराम चतुर्वेदी	1964	किताब महल, इलाहाबाद।
11 हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास	डा० शभूनाथ सिंह	1962	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।
12 सेठ गोविन्ददास नाट्यकला तथा कृतियाँ	डा० रामचरण महेन्द्र	1956	भारतीय विश्व प्रकाशन, दिल्ली।
13 सेठ गोविन्ददास साहित्य समीक्षा	,,	1963	,,
14 सेठ गोविन्ददास व्यक्तित्व एव साहित्य	स० प्रो० विजयकुमार शुक्ल एव श्री गोविन्द-प्रसाद श्रीवास्तव	1965	साहित्य भवन, इलाहाबाद।

	पुस्तक का नाम	लेखक या सपादक	प्रकाशन काल	प्रकाशन
15	राष्ट्र और राष्ट्रभाषा के अनन्य सेवक	स० श्री बाँकेविहारी भटनागर	1966	एस० चद एड कम्पनी, (प्रा०) लि० नई दिल्ली।
16	यात्रा साहित्य का उद्भव और विकास	डा० सुरेन्द्र माथुर	1962	साहित्य प्रकाशन, दिल्ली।
17	हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन	डा० वेदपाल खन्ना	1958	भारत भारती, दिल्ली।
18	भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य	डा० गोपीनाथ तिवारी	1959	हिन्दी भवन, इलाहाबाद
19	हिन्दी नाटककार	प्रो० जयनाथ नलिन	1961	आत्माराम एड सस, दिल्ली।
20	हिन्दी नाटको का विकासात्मक अध्ययन	डा० शान्तिगोपाल पुरोहित	1964	साहित्य सदन, देहारादून।
21	हिन्दी साहित्य कोश भाग 1	प्रधान स० डा० धीरेन्द्र वर्मा	सवत् 2020	ज्ञान मडल, वाराणसी
22	हिन्दी साहित्य कोश भाग 2	,,	,,	,,
23	हिन्दी भाषा आन्दोलन	सकलनकर्ता लक्ष्मीचद	शकाब्द 1885	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
24	मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य	डा० कमलाकात पाठक	1960	रणजीत प्रिन्टर्स, दिल्ली।

	पुस्तक का नाम	लेखक या सपादक	प्रकाशन काल	प्रकाशन
25	सेठ गोविन्ददास की जीवनी	श्रीमती रत्नकुमारी देवी	सवत् 1995	महाकोशल सा० मदिर, जबलपुर।
26	साहित्य दर्पण	आचार्य विश्वनाथ, व्याख्याकार डा० सत्यव्रतसिह	1957	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
27	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	सवत् 2021	नागरी प्रचारिणी सभा काशी
28	हर्ष चरितम्	वाणभट्ट, व्याख्या-कार जगन्नाथ पाठक	1962	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
29	महावश (हिन्दी अनुवाद)	अनुवादक श्री भदत आनद कौसल्यायन	स० 2014	हिदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
30	भारत का राजनैतिक तथा सास्कृतिक इतिहास भाग 1	डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव एव डा० सत्यनारायण दुबे	1966	शिवलाल अग्रवाल एण्ड क०, आगरा।
31	मुगलकालीन भारत	डा० आशीर्वादीलाल	1965	"
32	गढ मडला के गोंड राजा	श्री रामभरोसे अग्रवाल	2018	रामभरोसे अग्रवाल, मडला।
33	त्रिपुरी का इतिहास	व्यौहार राजेन्द्रसिह एव विजयबहादुर श्रीवास्तव	1939	मानस मदिर, जबलपुर।
34	त्रिपुरी का कलचुरि वश	चिन्तामणि हटेला 'मणि'	1950	हटेला ग्रन्थागार, प्रयाग।
35	अशोक	डा० भडारकर	1960	एस० चन्द एण्ड कम्पनी, (प्रा०) लि० नई दिल्ली।
36	प्राचीन भारत का इतिहास।	डा० रमाशकर त्रिपाठी	1965	मोतीलाल बनारसी-दास, दिल्ली।

ENGLISH BOOKS

1	Theory of Drama	Nicoll	1931
2.	Drama	Ashlay Dukes	1947

	पुस्तक का नाम	लेखक या संपादक	प्रकाशन
3	The Art of Drama	F B Millet and G E Bentley	
4	Ancient India	Dr R. C Majumdar	1960
5	The Early History of India	Vincent A Smith	1962
6	Harsha	Dr R K Mookerjee	1965
7	The Cambridge History of India	Vol I	1962
8	,,	Vol IV	1963
9	A History of Persia Vol I	Sir Percy Sykes	1951
10	The History of Persia from the most early period to the present time, Vol I	Sir John Malcolm	
11	Ashok	Vincent A Smith	1964
12	The Philosophy of Mahatma Gandhi and other Essays	Prof A R. Wadia	1958
13.	Psychology	R S Woodworth	1935

पत्र-पत्रिकाएँ—

साहित्य सदेश
वीणा
नवभारत
देशदूत
आर्यावर्त
जनतत्र
Thought